हकीकत किताबेवी प्रकाशन न ः **21**

मिफ़्ताह-उल-जन्ना

(जन्नत की राह के लिए किताब)

मुहम्मद बिन कुतुब्बुद्दीन इज़नीकी
के ज़रिए लिखित

हुसैन हिल्मी इशिक के ज़रिए
संशोधित

हकीकत किताबेवी
के ज़रिए हिन्दी संस्करण

पहला संस्करण

हकीकत किताबेवी
दारूश्शफेका कैड 57 पी.के : 35 **34083**
फोन: +90.212.523 4556 - +90.532 5843 फैक्स: +90.212.523 3693
http://www.hakikatkitabevi.com
e-mail: info@hakikatkitabevi.com
फातिह-इस्तानबुल/तुर्की

जन्नत के रास्ते के लिए किताब का तआरूफ

अल्लाह तआला ने पैग़म्बर 'अलैहिम-उस-सलाम' को इस दुनिया में पैदा किए हुए इंसानों के दरमियान उनकी ख़िदमत के लिए भेजा ताकि दुनिया में लोग ख़ुशियाँ, राहत और सुकून हासिल कर सकें और एक दूसरे के साथ भाई चारे के साथ रहें और अल्लाह की इबादत करने व किस तरह इसके फराइज़ अदा किये जाऐं, सिखाने के लिए भेजा उन चुनिन्दा लोगों के ज़रिये जो हर तरह से इंसानियत में सबसे अच्छे थे। इसने अपने पैदा किये गुलामों को दुनिया में रहने का सबसे अच्छा रास्ता बताया। अल्लाह ने यह भी पैग़ाम पहुँचाया के मुहम्मद 'अलैहिस्सलाम' सबसे बड़े, पहले और आख़री पैग़म्बर हैं। यह पैग़म्बर व अलैहिम अस सलावातु व तस्लीमात सारी दुनिया के पैग़म्बर हैं। और जब तक दुनिया है वह अमर रहेंगे। अल्लाह की आसमानी किताब जिसका नाम **कुरानुल-करीम** है जोकि इसने अपने सबसे प्यारे नबी को एक फरिश्ते के ज़रिये टुकड़ों-टुकड़ों में **23** सालों के दौरान ज़ाहीर की इसने अपनी हुकूमात और मनाहियतें फरमाई क्योंकि कुरानुल-करीम अरबी ज़बान में है और इसमें इंसान की समझ से ज़्यादा समझदारी की बातें है। इसलिए मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने सहाबा को कुरान के तमाम मुश्किल ईल्म को शुरूआत से आख़िर तक समझाया। अलैहिम-उर-रिज़वान ने कहाः **"कोई भी शख़्स जो कुरानुल-करीम को मेरी वज़ाहत से अलग समझाता है तो वह एक मुशिरक बन जाएगा।"** इस्लामिक उलेमा जिन्होने असहाबा-ए-ईकराम से हमारे हुज़ूर नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की वज़ाहतें सुनी इन्होंने इसे आसान और हर किसी के लिए समझने लायक़ बनाया और इन्हे तफसीर से किताबों में लिखा। इन उलेमाओं को अहले अस-सुन्ना के उलेमा (सुन्नी उलेमा) कहा

जाता है। वह किताबें जो अहले सुन्नत के उलेमाओं ने कुरानुल–करीम की वज़ाहतों और हमारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के बयानातों के इन्तेख़ाब नमूनों के ज़रिये लिखीं जिन्हे **हदीस–शरीफ** कहा जाता है और वह **ईल्म–ए–हाल** की किताबें कहलाती है। वह लोग जो **इस्लामिक मज़हब** की सच्ची और मुनासिब जानकारी हासिल करना चाहते है जोकि अल्लाहु तआला कुरानुल–करीम में सिखाता है उनको ईल्म–ए–हाल की इन किताबों को पढ़ना चाहिए।

किताब का असली उनवान, **जन्नत के रास्ते के लिए किताब** है, जोकि इस वक़्त हम **मिफ़्ताह–उल–जन्ना** में पेश कर रहे हैं जिसका मतलब **जन्नत के दरवाज़े की चाबी** है। यह मुहम्मद बिन कुतुब्बुद्दीन इज़्नीकी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के ज़रिये लिखी गई, जिनका इंतेकाल एडार्ने हेजिरल लुनार सन **885** [**1480** A.D.] में हुआ।

इस्लाम के बड़े आलिम सय्यद अब्दुल हकिम एफेंदी 'रहीमहिुल्लाहु तआला' (**1281** [**1865** A.D.], ने बशाहकाला वान **1362** [**1943** A.D.], अन्कारा, तुर्की) में क़ायम किया। "**मिफ़्ताह-उल-जन्ना** के हक़दार लेखक बहुत नेक इन्सान कहे गए। इस किताब को पढ़ना बहुत फायदेमंद होगा।" इसलिए हमने इस किताब को प्रकाशित किया है। किताब में इधर और उधर वज़ाहत और जो ब्रेकीटों में जोड़े गए तारीफों के ख़त दूसरी किताबों से लिए गए है वह ज़ाती राय और तफ्सरे के इज़हार के मतलब के ज़रिए से हैं। अल्लाह तआला हम सभी को अलगाववाद और एक दूसरे में फूट से बचाए। जोकि मुसलमानों के लिए ज़रूरी नतिजात हैं इस्लाम के दुश्मन लामज़हबी बेवफ़ा मुश्रिकों के ज़रिए दिमाग़ी सुधारवादी मुसलमानों के नाम से पिंजरे में गिराने के घात लगाए हुए है। जिनमें से कुछ मज़हबी मर्दो के लिए गुज़र गए। अल्लाह हम सभी को **अहले सुन्नत** के मज़हब से जोड़े रखे। पहला और वाहिद रास्ता प्यारे हुज़ूर नबी

'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के मुताबिक़त रास्ते पर चलाऐ! और हम सभी को ऐसे रास्ते से नवाज़े जिसमें हम एक दूसरे से प्यार और एक दूसरे की मदद करें! आमीन।

[जब कोई शख़्स कुछ करने वाला हो, पहला ख़तरा (ख़्याल) उसके दिल में आता है, तो फिर वो उस चीज़ को करने की नीयत करता है। उसकी इस नीयत को **नीय्या(त)** कहते है। फिर यह शख़्स अपने अज़ाऐ को उस चीज़ को करने का हुक्म देता है। शख़्स जो अज़ाओं को हुक्म दे रहा है इसे **कसद** या **टेशेब्बस** (करने का तरीका कहते है।) अज़ाऐ जो काम कर रहें हैं इन्हें **केस्ब** कहते हैं। जो दिल काम करता है उसे **अख़लाक़** (व्यवहार, अचरण) कहते है। ऐसी छः जगहें जहाँ से ख़तरा दिल में आता है: ख़तरा जो अल्लाह के डर से आता है उसे **वाहे** कहते हैं। वाहे सिर्फ नबियों के दिलों से आती है। ख़तरा जो फरिश्तों के ज़रिए लाया गया उसे **इलहाम** (प्रेरणा) कहते हैं। इलहाम नबियों 'अलैहिम-अस-सलावातु-वत-तसलीमात और (सालिह) मुसलमानों के दिल से आता हैं। सालिह मुसलमानों के ज़रिए दिया गया ख़तरा **नसीहत** (वकीली सलाह) कहलाता है। वाहे, इलहाम और नसीहत हमेशा अच्छी और फायदेमंद है। जो शैतान से ख़तरा आता है उसे **वसवसा** (शुबा और शक) कहते हैं, वह ख़तरा जो ख़ुद की नफ्स [आदमी की फ़ितरत में कुदरती महलक ताक़त] से आये उसे **हवा** (जज़्बा जुनून, कामुक कल्पना) कहते है, और ख़तरा जो शैतान के साथ से आता है उसे **इशहफाल** (लालच धोखे) कहते है। नसीहत (वकीली सलाह) किसी को भी दी जा सकती है। वसवसा और हवा फासिख़ [गुनेहगार, नाफरमान मुसलमान] और मुश्रिकों से मुसलमानों के दिलों में आता है दोनों शैतान नुक़सानदायक है। चीज़ें जो अल्लाहु तआला पसंद करते हैं और इसकी मंज़ूरी देते है वह **अच्छी** चीज़ें कहलाती है, और जो यह नापसंद करते है वह **फैना** (बुरी शैतानी चीज़ें) कहलाती है। क्योंकि अल्लाहु तआला रहम करने वाले है, इन्होने **कुरानुल करीम** में अच्छी और बुरी दोनों चीज़ें फरमाई है। इनके

एहकाम और मनाहीयतें **एहकाम-ए-इस्लामिया** की मिलावट कहलाती है। अगर कोई दिल अच्छे साथी की वजह के ज़रिए एहकाम-ए-इस्लामिया अपनाता है और इसलिए इसको क़ुबूल करता है, यह पाक और नूर से मुकम्मल हो जाएगा, यह इस दुनिया और आख़िरत दोनों में ख़ुशियाँ और सुकून हासिल करेगा। एक दिल जो अपनी नफ्स और शैतान पर अमल करने के ज़रिए एहकाम-ए-इस्लामिया से इंकार करेगा जो इसके शैतान और ज़िंदीख़ लोगों के ज़रिए ज़ुबानी और लिखित बयानातों पर यक़ीन लाने का नतीजा बनेगा, यह सड़ा हुआ और सियाह बन जाएगा, एक नूर से मुकम्मल दिल एहकाम-ए-इस्लामिया को मानते हुए ज़ायेका बन जाएगा। एक दिल जो सियाह बन गया है वह शैतानी साथ नफ्स, और शैतान का लुत्फ़ उठाएगा, अल्लाहु तआला बहुत रहम करने वाला है, यह पूरी दुनिया में हर नवजात पैदा हुए बच्चे के लिए पाक दिल बनाता है। बाद में, माँ-बाप या शैतानी साथ उसका दिल सियाह कर देते है अपने ख़ुद के दिल के जैसे।]

जन्नत की राह के लिए किताब

अल्हम्दुलिल्लाहि-ल-लज़ी जे-अलैना मिनत-तालिबीना वल्लि इल्मि मिनर-राग़िबीना वस्सलातु वस्सलामु अला मुहम्मदीनिल लज़ी अरसलहु रहमतन लिल आलमीना व अला आलिहि असहाबिहि अजमाईन।

इस्लाम

अल्लाह एक है और मौजूद है

अल्लाह तआला ने तमाम मख़लुक़ात बनाई तमाम चीज़ें नाबूद थीं। अल्लाह तआला अकेले मौजूद थे। यह हमेशा मौजूद है। यह कोई मख़लूक़ नहीं है जो बाद में वुजूद में आई हो। अगर यह पहले नाबूद रहे होंगे, तो ज़रूरी ही कोई कुदरत हुई होगी इनको बनाने के लिए। कुछ वुजूद पैदा करने की ताक़त की आदम की मौजूदगी के लिए ग़ैर मौजूद चीज़ को आदम मौजूदगी के मुसलसल होने पर ज़ोर देता है ताकि यह वुजूद में ना आ सके। अगर ताक़त

का मालिक इसे बुजूद में बनाता है, तो अल्लाह तआला वह अबदी है जो ताक़त को वुजूद में लाते हैं। इसके बजाए, अगर बाद में यह बहस की गई के तख़लीक़ी ताक़त साथ में वुजूद में आई, तो इसका किसी दूसरी ताक़त में तख़लीक़ करना होगा, लामेहदूद तख़लीक़ात में ख़ामख़ा बदल जाता है। किसी तरह से इसका मतलब होता है कि तख़लीक़ात के लिए ग़ैर मौजूदगी की शुरूआती तख़लीक़ातों की ग़ैर मौजूदगी में तख़लीक़ का नतिजा जो मुतासिर हुआ। जब तख़लीक़ात नाबूद हैं, तब यह चीज़ें और रूहानी तख़लीक़ जो हम

आस पास देखते और सुनते है सभी को नाबूद हो जाना है। जब से चीज़ें वुजूद में आई और रूहें मौजूद हुई हैं उनका ज़रूरी कोई एक हमेशा वुजूदी ख़ालिक़ रहा है।

अल्लाह तआला ने पहले सादे माद्दे बनाए, तमाम वुजूदी चीज़ों की घटक, रूहें और फरिश्तें। सादे माद्दे अब तत्व क़रार दे दिए गए हैं। आज **105** तत्व जाने जाते है। अल्लाह तआला ने बनाए और हमेशा बना रहे हैं, हर माद्दा और हर चीज़ इन **105** तत्वों में से है। लौहा, सल्फर, कार्बन, ऑक्सीजन गैस, क्लोरीन गैस सभी इनमें से एक-एक तत्व हैं। अल्लाह तआला ने नहीं फरमाया कि कितने लाखों साल पहले इन्होंने यह तत्व बनाए। और न ही हमें यह बताया के कब इन्होंने ज़मीन बनानी शुरू की, जन्नतें और ज़िन्दा मख़लुक़ात, जोकि इन तत्वों से बने मजनुआत है। ज़िन्दा और ग़ैर ज़िन्दा हर चीज़ का अपनी ज़िन्दगी का अरसा है जिसके दौरान यह मौजूदगी में रहते है। अल्लाह तआला इसे तब बनाते है जब इसका वक़्त आ जाता है, और जब इसका वक़्त पूरा हो जाता है इसे मिटा देते है। यह शून्य से कुछ ही चीज़ें नहीं बनाते, बल्कि कुछ और भी दूसरी चीज़ों से बनाते है, हल्के-हल्के या फिर अचानक से, पर इस तरह पिछला वुजूद में आता है और बाद के लिए मौजूद रहता है।

अल्लाह तआला ने आदमी और इसकी रूह को बेजान माद्दों से बनाया है, इसलिए आदमी कभी मौजूद नहीं रहे। जानवर, पौधें, जिन्नात, फरिश्तें आदमी से पहले बना दिए गए थे, पहले आदमी का नाम आदम (आदम 'अलैहिस्सलातु व सलाम') था। और इनसे (अल्लाह तआला ने) औरत को बनाया। और फिर इन दोनों से तमाम मानवजाति फैली। हम वह हर चीज़ देखते हैं, ज़िन्दा और ग़ैर ज़िन्दा जो लोगों के समान बदलती है। कुछ चीज़ें अवदी हैं वह कभी नहीं बदलतीं। जिस्मानी वाक़ियात में, माद्दों के हाल और रूप बदलते है। अब तक केमीकल रद्द अम्ल उनकी फितरत और सार बदलता है, माद्दें

मौजूद होना बन्द हो जाते है, जब दूसरे माद्दे मौजूदगी में आते हैं। जवाहरी वाक़्यात में, दूसरी तरफ जबकि अनासर ऐनर्जी ग़ायब हो जाते हैं। यह सभी चीज़ों का अम्ल एक दूसरे से वुजूद में आने का अम्ल बिना शुरूआत के अवदी नहीं हो सकता। उनको शून्य से बने शुरूआती माद्दों से जारी किया गया। अवदी का मतलब बिना किसी शुरूआत से है।

इस्लाम के दुश्मन अपने आपको (वैज्ञानिक) सांईसदा मर्द के रूप में बदल लेते है और कहते हैं के आदमी बंदरों से बनाए गए थे। वह कहते हैं के अंग्रेज़ी डॉक्टर नाम डरावीन ऐसा कहते हैं। लेकिन वह झूठे हैं। डरावीन (चरलेस [1809-82 A.D.]) ने ऐसा नहीं कहा। इन्होंने ज़िन्दा मख़लूक़ों के बीच बका को मायेपादत करने की जद्दो जहद की। इनकी किताब **प्रजातियों के मूल** में इन्होंने लिखा के ज़िन्दा मख़लुक़ात को जो माहोल सबसे बेहतर लगा वह उसमे पनपी और इसी तरह इन्होंने कुछ ग़ैर ज़रूरी बदलाव अपना लिए। इन्होंने नहीं कहा एक प्रजाति दूसरे में बदलती है। एक बैठक सन 1980 सलफोंड में ब्रिटिश ऐसोसीएशन फोर दा ऐडवांसमेन्ट ऑफ सांईस (British Association for the advancement of science) का आग़ाज़ किया गया स्वानसीआ यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर जॉन दुरन्त ने कहा के डरावीन के मर्दो के माख़ज़ अखतासवादी वज़ाहत एक ज़दीद मिथक तब्दील किया गया, साइंस और समाजी तरक़्क़ी के नुक़सान, तरक़्क़ी के दुनियावी मिथकों व साइंसी तेहकीकों पर एक नाटकीय असर हुआ है, इसने तबाही, ग़ैर ज़रूरी बहसों की तरफ रहनुमाई की। और सकल के लिए साइंस का गलत इस्तेमाल किया। इसने ऐसा नतिजा निकाला के अब डरावीन का नज़रीया अलग लगता है, तबाही के डेर और कपटी ख़्यालातों को पीछे छोड़कर। [डॉक्टर जॉन दोरंत (यूनीवर्सिटी ऑफ स्वेनसीआ, वेल्स) ये हवाले के तौर पर के "कैसे तरक़्क़ी एक साइंसी मिथक बन गई" "नए साइंसदाऐ साइंसी।" 11 सितम्बर 1980, p. 765.] यह बयानात जो प्रोफेसर दोरन्त के अपने हम वतन के बारे

में दिए उन दिलचस्प जवाबों में से हैं जो साइंस के नाम से डार्विनवादी को दिए गए। सबसे बड़ी वजह जोकि लोगों को किसी संस्कृती रंगने में लगी हुई है जिसका नज़रिया दर्जा-ए-तरक़्क़ी के रूप में है। वह किसी साइंसी इरादों को बर्दाश्त नहीं करते तो इस तरह कहे गए नज़रिए का शोषण किया गया मादी (भौतिकवादी) के औज़ार की तरह उकसावे की एक बहस के आदमी बंदरों से पनपे और ईल्म में इसका कोई पिछला मनज़र नहीं है। यह आगे की तमाम साई न्सों से किया जा रहा है। यह डरावीन की बहस नहीं है, या तो यह इस्लाम के झूठे दुश्मनों पर मुशतमिल है साइंस और इल्म से अनजान है। एक इल्म वाला आदमी या कोई साइंसदा इस तरह के जाहिलाना, मज़हका ख़ेज़ बयानात नहीं दे सकता। अगर एक यूनीवर्सिटी से ग्रेजुएट हुआ शख़्स अय्याशी की ओर जाता है और भूल जाता है के इसने स्कूल में क्या पढ़ा था बजाए अपनी साइंसी पढ़ाई से दूर रखने के जिसमें यह अहम था तो यह कभी भी इल्म वाला या साइंसदा नहीं हो सकता। कितनी बदतर है इसकी इस्लाम के लिए नफ़रत अपने इल्म और साइंस के नाम से झूठी और नख़ली तेहरीरों को फैलाने की कोशिश और समाज के लिए बेवफ़ाई के आधार पर नुक़सानदायक सूक्ष्मजीव को ख़त्म करते हैं। उस हालत में इसका डिप्लोमा लक़ब और पद नौजवानों को शिकार व शोषण करने के लिए दिखावटी बन जाता है। नख़ली साइंसदां जो अपने झूठ और इल्म व साइंस के नाम में बदनामी फैलाते है जिन्हें **साइंसी धोकेबाज़** कहा जाता है।

क्या अल्लाह तआला लोगों से चाहते हैं के दुनिया में इन्हें राहत और सुकून से जीना चाहिए और आख़रत में बेशुमार ख़ुशी हासिल कर सकें। इसी वजह से यह काम की चीज़ों का हुक्म फरमाते हैं ताकी वह ख़ुशी की वजह बनें और नुक़सानदायक चीज़ों से मनाहियत फरमाई जोकि दोज़ख़ की वजह बनेगी। अगर कोई शख़्स अपने मज़हबी होने पे बेपरवाह या नास्तिक है, एक ईमान वाला या ग़ैर ईमान वाला, अपने आपको एहकामें इस्लामिया यानि

अल्लाह तआला के हुकूमात और मनाहियतों में अपनाता है, जाने या अनजाने में बराबर है, राहत व सुकून की हद वह अपनी दुनियावी हासिल करेंगे उनकी अताअत के मायार फवाअद के निज़ाम से बड़ा रास्ता तनासिब में हो जाएगें यह ज़्यादातर लोगों के साथ समान है के कोई भी जो सही दवा लेता है वह बिमारी से या किसी और रोग से निजात पा लेगा। हाल ही की कामयाबी की बहुत ज़्यादा तादाद में नास्तिक और नास्तिक वृती का शख़्स और लोग कुरानुल करीम की मंज़ूरी के ज़रिए काम करके लुत्फ उठा रहे हैं। कुरानुल करीम को मान कर हमेशा की ख़ुशी हासिल कर रहे हैं। किसी तरह, सिर्फ यह तभी मुमकिन है जब अताअत (आज्ञाकारिता) इसे जानते हुए एक ईमान वाले के ज़रिए।

अल्लाह का शुरूआती हुक्म **ईमान** का होना है और **कुफ्र** वह है जिसे अल्लाहु तआला ने बिना किसी ख़राबी के पहले मना फरमाया है। ईमान का मतलब इस सच पे यक़ीन करना है के मुहम्मद 'अलैहिस्सलातु सलाम' अल्लाह तआला के आख़री नबी हैं। वाहे राह के ज़रिए अल्लाह तआला ने आपके द्वारा अपने हुकूमात पहुँचाए। दूसरे अलफ़ाज़ों में अल्लाह ने अपने एहकाम-ए-इस्लामिया एक फरिश्ते द्वारा पहुँचाए, और आपकी बारी लोगों को सभी समझाने की थी। एक लफ्ज़ जिसे कुरानुल करीम कहते हैं उसे अल्लाह तआला ने एक फरिश्ते द्वारा पहुँचाया। एक किताब जिसमें कुरानुल करीम का पूरा पाठ शामिल है उसे **मुशहाफ** (कुरानुल करीम की एक नक्ल) कहते हैं। कुरानुल करीम आप मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के ख़ुद के बनाए बयानात नहीं हैं। यह अल्लाह तआला के लफ़्ज़ हैं कोई शख़्स भी इतना क़ाबिल नहीं है के एक अकेला बयान भी इसकी कमाल आयत के बराबर बना सके। कुरानुल करीम में नियमों ने सिखाया, अजतमाई (समूहिक) को **इस्लाम** कहते हैं। एक शख़्स जो इन सभी को अपने दिल से मानता है उसे **मोमिन** (ईमान वाला) कहते हैं और या **मुसलमान**। इनमें से किसी एक को भी नापसंद करने को **कुफ्र**

कहते है (यानी अल्लाह तआला से बैर)। मौत के बाद ऊपर जाने पे ईमान, जिनों और फरिश्तों की मौजूदगी, यह सच है के आदम 'अलैहिस्सलातु व सलाम' पूरी मानवजाति के वालिद हैं और शुरूआती नबियों के भी, यह सिर्फ दिलों की तिजारत है। इन सचों को तालीमियत कहते हैं **ईमान** या **इतिक़ाद** या **अक़ाईद** के मुताल्लिक़ तरीक़ों के तौर पर जिसका ख़ास ख़्याल रहे मनाहियतों से ज़रूर ही बचा जाए जिस्मानी और दिली दोनों तौर पर, यह जरूरी है कि दोनों पर ईमान हो और उनको करे या उनसे बचे इनको **एहकाम–ए–इस्लामिया** की तालीमियत कहते हैं। उनपे भरोसा हो ईमान के साथ। उनपे मशक या नज़रअंदाज़ करना **इबादत** है पहले नीयत करके एहकाम–ए–इस्लामिया को मानना इबादत है। अल्लाह तआला के हुकूमात और मनाहियतें **एहकाम–ए–इस्लामिया** या **एहकाम–ए–इलाहीया** कहलाते है। हुकूमात को **फर्ज़** कहते हैं, और मनाहियतों को **हराम** कहते है जैसे देखा जाता है, एक शख़्स जो इनमें से किसी भी फर्ज़ियात को मना या नफरत करता है तो वह **काफिर** (अल्लाह का दुश्मन) बन जाता है। एक शख़्स जो उनमें लापरवाही बरदता है हालांकि यह मर्द (या औरत) उनपे ईमान रखता है तो यह काफिर नहीं बनता: यह मर्द या औरत **फासिख़** (गुनेहगार) मुसलमान बन जाता है। एक मुसलमान जो इस्लाम की तालीमियत पर भरोसा रखता है और इसको अपने अमल में लाने की पूरी कोशिश करता है उसे **सालिह** मुसलमान (अच्छा शख़्स) कहते है। एक मुसलमान जो इस्लाम के हुकूमात का पालन करता है और एक मुरशिद को प्यार करता है सिर्फ इसलिए के वह अल्लाहु तआला की इनायत और प्यार हासिल कर सके उसे **सालिह** (अच्छा) शख़्स कहते है। एक शख़्स जिसने अल्लाहु तआला का प्यार और इनायत हासिल कर ली उसे एक **आरिफ** या एक **वली** कहते हैं। एक वली जो दूसरों के लिए इस प्यार को हासिल कराने के लिए ज़रिए के तौर पर काम करता है उसे एक **मुरशिद** कहते है। यह सभी चुनींदा लोग सामूहिक (एक साथ) होकर **सादिख़** लोग कहलाते हैं। यह सभी लोग सालिह है। एक सालिह ई

मान वाला कभी भी दोज़ख़ में नहीं जायेगा। एक काफिर (अल्लाह का दुश्मन) ज़रूर ही दोज़ख़ में जायेगा। यह कभी भी दोज़ख़ से बाहर नहीं निकाला जायेगा और यह हमेशा के लिए दोज़ख़ का निशाना बन जायेगा। अगर काफिर के पास ईमान है तो वह (ईमान वाला बन जाता है) इसके गुनाह सीधे माफ कर दिए जायेंगे। अगर एक फासिख़ शख़्स तौबा करता है और इबादत के फराईज़ पे अमल करना शुरू कर देता है, तो यह दोज़ख़ में कभी नहीं जाएगा, और सीधे जन्नत में शामिल होगा, सालिह ईमान वालों की तरह। अगर यह तौबा नहीं करता हो सकता है कि यह शफाअत (हिमायत) को हासिल करने के ज़रिए या बिना किसी मतलब के सीधे जन्नत में शामिल हो जाए, या दोज़ख़ में जले जितना की यह अपने गुनाहों के लिए हक़दार है और जन्नत में बाद में दाख़िल हो, दोनों में से कोई एक।

जब कुरानुल करीम नाज़ील हुआ था, इसका व्याकरण अरबी ज़बान से मेल खाता था जो उस वक़्त लोगों के ज़रिए बोली जा रही थी, और यह काव्यात्मक रूप में है। दूसरे शब्दों में, इसके छंद संबंधी कविता की तरह है। यह अरबी ज़बान की नाज़ुक बारीकियों से भरा है। यह अरबी सांईस में ख़ूबसूरत अलफ़ाज़ों से है, बैदी, बयान, मैलानी और बेलागहत की तरह। इसी वजह से इसे समझना बहुत मुश्किल है। एक शख़्स जो अरबी ज़बान के व्यंजनों को नहीं जानता वह कुरानुल करीम को पूरी तरह नहीं समझ सकता चाहे यह शख़्स अरबी में पढ़ा लिखा हो जब की लोग इन व्याकरणों के ज्ञानी होने के बावजूद यह समझने में नाक़ाबिल रहे, इसलिए हमारे माहिर, मुबारक नबी, रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इसे ज़्यादा से ज़्यादा समझाया' कुरानुल करीम की वज़ाहतों को **हदीस-ए-शरीफ** कहते है। असहाबा-ए-ईकराम 'रज़ि-अल्लाहु तआला अलैहिम अजमाईन' ने हुज़ूर नबी 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' से जो तालीमियत सुनी उसे नई पीड़ी को इज़हार किया। [बराए मेहरबानी हक़दार किताब सहाबा 'मुबारक' को देखें, हकीकत किताबेवी की ही एक

अशाअत, फातिहा इस्तानबुल तुर्की।] वक़्त के अमल में धीरे-धीरे दिलों में एक गहरापन लिया, ताकि नए मुसलमान अपनी मक़ामी सोच के साथ क़ुरानुल करीम की व्याख्या करने की कोशिश और मुख़्तसिर नज़रें डालें, इस तरह हमारे हुज़ूर की वज़ाहतों के नापसंदीदाह मायने हासिल करें, इस्लामिक दुश्मनों के साथ अफसोसनाक दरारे खड़ी करीं, उनके **72** ग़लत मुश्रिकी भरोसे दिखाई दिए। जो मुसलमान इस तरह के ईमान से हटाने वाले भरोसे अपना लेते हैं उनको **बिद्दती लोग** कहते हैं। और यह सीधे दोज़ख़ में जायेंगे, लेकिन मुसलमान होने के नाते, वह हमेशा के लिए दोज़ख़ में नहीं रहेंगे, दोज़ख़ से बाहर निकलेंगे, वह जन्नत में दाख़िला करेंगे। अगर कोई शख़्स क़ुरानुल करीम या हदीस शरीफ में साफ-साफ फरमाये गए ईमान में से किसी एक में भी असहमती रखता है, वह शख़्स अपना ईमान खो बेठेगा। इसे एक **मुलहिद** कहा जाता है। एक मुलहिद सोचता है कि यह मुसलमान है।

इस्लामिक उलेमा जिन्होंने एतिक़ाद की तालीमियत असहाबा-ए-ई कराम 'रज़ि-अल्लाहु तआला अलैहिम अजमाईन' से सही तरीक़े से सीखी और यह सही तालीमियत किताबों में लिखी, जिसे **अहल-अस-सुन्नत** 'रहमतुल्लाह तआला अलैयहि अजमाईन' कहा जाता है। यह वह उलेमा हैं जिन्होंने चार में से किसी एक में इजतिहाद का दरजा हासिल कर लिया हो इन उलेमाओं को सिर्फ असहाबा-ए-ईकराम से सीखा हुआ माना गया, बजाए अपनी अक़्ल व नज़रिए से क़ुरानुल करीम के मायनों को समझने की कोशिश से उन्होंने सच्ची राह फैलाई जो उन्होंने हमारे नबी से सीखी थी, बजाए अपनी ख़ुद की सोच पे अमल करने से। तुर्को की रियासत मुसलमानों की रियासत थी, उन्होंने सुन्नी मज़हब अपनाया।

जैसे की समझा जाता है जो अब तक लिखा है, और जैसे की यह काफी क़ीमती किताबों में भी लिखा है, अपने आप को दुनिया और आख़िरत

दोनों में आपदाओं से महफ़ूज़ रखने के लिए और एक राहत भरी ख़ुशनुमा ज़िन्दगी की रहनुमाई के लिए, अहले सुन्ना के उलेमाओं के ज़रिए सिखाए हुए ईमान को अपनाना ज़रूरी है ताकि, उनके उसूलों का पालन सीखें और उन सब पे यक़ीन करें। एक शख़्स जो सुन्नी ईमान नहीं मानता वह या तो **अहले बिद्दत** यानि एक मुश्रिक मुसलमान या फिर एक **मुलहीद** यानि काफिर बन जायेगा एक ईमान वाले का दूसरा फर्ज़ यह है कि वह सच्चे ईमान और सही एतिक़ाद के साथ हो वह सालिह बनता है, जिसका मतलब अल्लाहु तआला की इनायत और प्यार हासिल करना है। इसके साथ ख़ात्मा नज़र में, हर एक को चाहिए के वह इस्लाम से मुताल्लिक़ तालीमियत हासिल करे के क्या करना ज़रूरी है और क्या करना ग़ैर ज़रूरी है, जिस्मानी और दिल के साथ और इसके मुताल्लिक़ ज़िन्दगी जिए। दूसरे अलफ़ाज़ों में, हर एक को चाहिए की इबादत के फर्ज़ अदा करे। अहले सुन्नत के उलेमाओं ने इबादत के चार अलग तरीकों से फर्ज़ी यात समझांए है। इसलिए इस्लाम के चार सबूती **मज़हब**। [चार मज़हब जो इस्लाम से मुताल्लिक़ अमल और जिन्हें इस्लाम इख़्तियार करता है वह: **हनफी, शाफी, मालिकी** और **हनबाली** है। इन चारों मज़हबों की ज़्यादा जानकारी के लिए हकीकत किताबेवी प्रकाशन इस्तानबुल में मौजूद है।] क्योंकि वह बातें जिनपर वह एक दूसरे से अलग हैं वह मामलात बहुत कम और ग़ैर ज़रूरी हैं, और जब से हूबहू उसूलों के पालन ने इन्हें एक दूसरे से जोड़ा, फिर दोनों ने एक दूसरे को हमदर्दी और एक दूसरे को इज़्ज़त दी। इन चारों में से किसी एक मज़हब के अताअत में हर एक मुसलमान को उनकी इबादत के फर्ज़ीयात पे अमल करना चाहिए। वह एक शख़्स जो अपने आप को इन चारों मज़हबों में से किसी एक में भी नहीं क़ुबूलता यह (सिर्फ सच्ची राह) अहले सुन्नत दुरूस्त सच छोड़ देगा, जोकि अहमद बिन मुहम्मद बिन इस्माईल तहतावीस 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' (d. 1231 [1815 A.D.] के हक़दार 'धेबायीह' के बाब में भी लिखी है। अलाउद्दीन हसकाफीस 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' (1021,

हसकफ - **1088 [1677 A.D.]**) तशरीह के लिए हक़दार किताब **दुर्र-उल-मुख़्तार।**

अगर एक काफिर (ग़ैर ईमान वाला) कहता है, "मैं मुसलमान बन गया हूँ" उसका यक़ीन करा जाएगा, चाहे वह जंग में बेपरवाही से कैद कर लिया गया है यह वह जो ऐसा इतमिनान के वक़्त कहता है। लेकिन फिर इसे फौरन **ईमान के छः ज़रूरीयात** सीखनी होगी और उनपे यक़ीन करना होगा। उसके बाद इसको इस्लाम के हुकूमात जिसे (फर्ज़) कहते हैं और इसकी मनाहियतें जिसे हराम कहते हैं सीखना होगा उसपे पालन करना होगा जब भी यह इस मर्द (या औरत) पे मौजूदा बन जाते है और जब भी उनके पास ऐसे करने का मौका हो। अगर वह उनको नहीं सीखते या उनमें से किसी एक को भी मामूली और ग़फलत में लेते है हालांकि इन्होंने ऐसा सीख लिया है, उनको अल्लाह तआला के मज़हब से नज़रअंदाज़ कर दिया जायेगा। वह अपना ईमान खो देगें। लोग जो इस तरह अपना ईमान खो देते हैं उनको **मुरतद** (स्वपक्ष त्यागी) कहा जाता है। मुरतद, वह लोग जो आपस में मज़हबी लोगों के तौर पर बातचीत करते हैं और इस तरह मुसलमानों को ग़लत राह दिखाते है इनको **ज़िन्दीख़** कहा जाता है। हमें ज़िन्दीख़ या उनके झूठ पर यक़ीन नहीं करना चाहिए। जैसे की यह तुर्कीश संस्करण के 116वें सफे पर लिखा है। **सियार-ए-कबीर** हक़दार किताब के लिए और बाब के आख़िरी हिस्से में भी के किसी काफिर के निकाह से निपटना (शादी क़रार इस्लाम के ज़रिए हुक्म में है) हक़दार **दुर्र-उल-मुख़तार** किताब में है के, अगर एक शख़्स इस्लाम को ज़ाहिर किए बिना बालिग़ हो जाता है और अपने दिमाग़ में सोचे बिना के यह मुसलमान है, अगर यह अनजानपन इस्लाम को न जानने की वजह से है और दुनियावी मफाद के रूप में नही, तो इसे मुरतद माना जाएगा (स्वपक्ष त्यागी) यह **दुर्र-उल-मुख़तार** के काफिरी निकाह व्यवहार के आख़िरी बाब में लिखा है। [वह किताब मुहम्मद बिन हसन बिन अब्दुल्लाह बिन तावूस बिन हुरमुज़

शेयबानी (इमाम मुहम्मद) 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' **135** [**752** A.D.] वासित - **189** [**805** A.D.] शेय के ज़रिए लिखी गई, इस्लाम के एक बहुत बड़े आलिम जो इमाम अबू हनफी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' के ज़रिए सिखाए गए। शोम्स अल अइम्मा अबू बकर मुहम्मद बिन अहमद 'रहमतुल्लाहि अलैहि (d. **483** [**1090** A.D.] ने किताव के लिए तफसीरी लिखी, और वह तफसीरी खुव्वाजा मुहम्मद मुनिब एफेंदी आयानतब के (d. **1238** A.H.) ज़रिए तुर्की में की गई।] जब कोई मुसलमान लड़की जो शादी शुदा (एक इस्लामिक तरीके से क़रार हुई) निकाह बालिग़ उम्र में इस्लाम को बिना जाने हुआ, उसका निकाह (यानि इस्लामिक शादी क़रार) अमान्य हो जाएगी। (दूसरे अलफ़ाज़ों में वह मुरतद बन जाएगी) अल्लाहु तआला के औसाफ उसको सिखाने होंगे। उसको वह दुबारा दोहराना होगा जो वह सुनती और कहती है, "मैं उनपे ईमान रखती हूँ।" इब्नी आबीदीन 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' इस मामले को समझाते हैं के निम्नानुसार "जब लड़की छोटी है, (यानि बालिग़ होने की उम्र से पहले,) वह एक मुसलमान है, जबसे उसका मज़हब उसके वालीदैन (माँ, बाप) के बाद नामित होगा। जब वह बालिग़ हो जाती है तो वह माँ बाप के मज़हब पे निर्भर नहीं करती। इस्लाम में जब वह अनजान रूप से बालिग़ होती है, वह एक मुरतद बन जाती है, अगर कोई शख़्स जो इस्लाम के उसूलों पे यक़ीन न रखता हो हालांकि उसने कलमा-ए-तौहीद बोलते हुए सुना है, यानि अगर यह कहता है, "**ला इलाहा इल-लल्लाह मुहम्मदुन रसूलुल्लाह,**" यह मुसलमान नहीं बनेगा। एक शख़्स जो इस्लाम के छः उसूलों पे ईमान रखता है और अपने ईमान में उसका इज़हार करता है के आमन्तु बिल्लाही "पढ़ता है, और जो कहता है, के मैं अल्लाह तआला के हुकूमात और मनाहीयतें क़ुबूल करता हूँ," वह मुसलमान है। इसी वजह से, हर एक मुसलमान को अपने बच्चों को (इस्लाम के छः उसूलों का ईमान में होना) का इज़हार वा याद दिलाना चाहिए "अमन्तु बिल्लाही व मलाइकतीही वा कुतुबीही वा रसूलिही वा ल योम-

इल-आख़िरी वा बील-कादरी खाएरीही वा शैरीही मीन-अलाही तआला वाल-बा-सूबा-द-अल-मौत हक्कून अश-हादू-अन-ला ईलाहा इल-लल्लाह वा अश हदू-अन्ना मुहम्मदन अब्दुहू वा रसूलूहु" और इसके अच्छे से मतलब सिखाना चाहिए। अगर एक बच्चा इन छः उसूलों पे ईमान नहीं रखता या इस्लाम के हुकूमात और मनाहियतों में से किसी एक पे भी और यह नहीं कहता के ये इनपे ईमान रखता है, यह एक मुरतद बन जाता है, एक मुसलमान नही, जब यह बालिग़ होता है, इन छः उसूलों पे तफ्सीली जानकारी हक़दार किताब **ईमान और इस्लाम** में मौजूद है। (इस्तानबुल में हकीकत किताबेवी का ही एक प्रकाशन) हर मुसलमान को ख़ुद को उस किताब को पढ़ना चाहिए, और अपने बच्चों को भी साथ में पढ़ाना चाहिए, इस तरह उनके ईमान को मज़बूत करना चाहिए, और अपनी तरफ से पूरी कोशिश करनी चाहिए ताकि जान पहचान वाले इससे मुताल्लिक़ पढ़ सकें। हमें अपने बच्चों का सबसे ज़्यादा ख़्याल रखना चाहिए ताकि वह मुरतद की तरफ न उठें। बचपन के शुरूआती दौर में ही, हमें उनको ईमान, इस्लाम, वज़ू, गुस्ल और नमाज़ सिखानी चाहिए। माँ बाप का सबसे पहला फर्ज़ अपनी औलाद को मुसलमान उठाना है। [**सआदते अबदिया** की चौथी पुलिका, हकीकत किताबेवी का ही एक प्रकाशन, इन तालीमियतों को बढ़ातें है।]

यह **दुरेर वा गुरेर** हक़दार किताब में फरमाया गया है: "एक मर्द जो मुरतद बन चुका है उसे ज़रूरी है कि मुसलमान बनने के लिए कहें। [मुहम्मद मौला हुसराव 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि', के ज़रिए लिखी गई, तीसरे शेख़-उल-इस्लाम तर्क।] इसकी शक शुबा ज़रूरी है कि स्पष्ट और ख़त्म हो। अगर यह राहत के वक़्त के लिए कहता है, तो इसे तीन दिन जेल में बन्द रखा जाएगा। अगर यह तौबा करता है (यानि गुनाह के लिए पछताता है और अल्लाहु तआला से माफी की भीक माँगता और वादा करता है कि यह अब वह गुनाह नहीं करेगा।) तो इसकी तौबा क़ुबूल की जाएगी। अगर यह तौबा नहीं

करता, तब यह मुसलमानी फैसले के ज़रिए मौत के लिए उठा लिया जाएगा। एक औरत जो मुरतद बन गई है उसे मारा नहीं जाएगा, उसे जेल में बन्द कर दिया जाएगा और तब तक बन्द रखा जाएगा जब तक वह एक मुसलमान नहीं बन जाती। अगर वह दार-उल-हारब से पलायन करती है, जब तक वह दार-उल-हारब में है तो वह जारिया नहीं होती। अगर वह पकड़ी जाती है तो वह जारिया बन जाएगी। जब वह एक मुरतद बन जाती है उसका निकाह बातिल और शून्य हो जाता है। उसकी तमाम जायदाद उसके अधिकार से निकल जाती है, (यानि वह जायदाद अब उसकी नहीं रहती) अगर वह दुबारा मुसलमान बन जाए वह जायदाद उसकी दुबारा हो सकती है। जब वह मरती है या दार-उल-हारब से पलायन करती है (या जैसे की वह दार-उल-हारब में थी एक मुरतद बनती है) उसकी जायदाद उसके वारिसों की विरासत हो जाएगी। (अगर उसके वारिस नहीं हैं, तो वह जायदाद उनकी हो जाएगी जिनका बैतुल माल से हक़दारी का हिस्सा निकलता है।) [बराए महरबानी **सआदते अबदिया** के पाँचवीं पुलिका का पहला बाब देखें।] एक मुरतद दूसरे मुरतद की जायदाद का वारिस नहीं बन सकता। जायदाद जोकि एक मुरतद के ज़रिए कमाई गई वह उस मर्द या औरत की नहीं होगी जैसे की यह मुरतद थे यह मुसलमानों के लिए (फै) (मृतक के बराबर है) (**फै** छोटे बाब में शीर्षक **काफिरों की शादी** में समझाया गया है और **सआदते अबदिया** की पाँचवी पुलिका के बारवें बाब से जुड़ा हुआ है।) उसका तमाम समाजिक लेन देन खरीदने और बेचने के मुताल्लिक़, रेंटल ऐग्रीमेंट, और दिए हुए तोहफें बातिल बन जाएगें। बराए महरबानी **सआदते अबदिया** के पुलिका के **31**वें बाब को देखें। अगर वह दुबारा मुसलमान बन जाती है तो वह अपने पुराने हाल में तब्दील हो जाएगें और सही बन जाएगें। उसे अपनी पहली इबादत के फ़र्ज़ की क़ज़ा अदा नहीं करनी होगी, हज के अपवाद के साथ, जो उसे दुबारा अदा

करना होगा, “इबादत के तीन शुरूआती फर्ज़ जो नए ईमान वाले को सीखने होते हैं के कैसे वज़ू, गुस्ल और नमाज़ अदा करें।

ईमान के छः ज़रूरी उसूल: के अल्लाह तआला मौजूद और एक है और इसके औसाफ पे (ईमान होना) (यानि यक़ीन) फरिश्तें, नबियाँ, जन्नत की किताबें, वाक्यात जो आख़िरत में होंगे, कादा और कदार। बाद में हमें चाहिए की उनमें से हर एक को अलग-अलग समझें।

मुख़्तसिर में, हमें इस्लाम के हुकूमात और मनाहियतें जिस्मानी और दिली दोनों से ज़रूर ही माननी चाहिए, और हमारे दिलों को सर्तक होना चाहिए ऐसा न हो की वह ग़फलत (फरामोशी, अनजानपन, सुस्ती, उदासीनता।) में डूब जाए अगर किसी शख़्स का दिल चौकन्ना नहीं है (यानि, अगर यह अल्लाह तआला की मौजूदगी, महानता और जन्नत में नेमतों के ज़ायक़े और दोज़ख़ की आग के उत्साह को,) दिमाग़ में नहीं रखता तो उस शख़्स के जिस्म के लिए इस्लाम को क़ुबूलना बहुत मुश्किल होगा। (इस्लामिक सांईस) के उलेमा जिन्हें फिकह कहा जाता है (जोकि इस्लाम के हुकूमात और मनाहियतें सिखाते हैं) फ़तवे बताते हैं (यानि मुसलमानों के लिए अधिकृत इस्लामिक उलेमाओं के ज़रिए दिए गए जवाबात।) इबादत के फर्ज़ अदा करने के तरीक़ों के बारे में सवालात) यह अल्लाह के बन्दें के अमल को आसान बनाते है। [तरीक़े जिनपर फतवा बुनियाद रखता है वह फतवा से संल्गन होता है।] जिस्म इस्लाम को फुर्ती से अपने आप क़ुबूलता है, आराम और चाहत दिल को पाक बनाना चाहती है। किसी तरह, अगर किसी शख़्स के औसाफ सिर्फ दिल के पाक होने पे ग़ौर करते हैं और अख़लाक़ के अच्छे होने पे और अब तक जिस्मानी ठंडे कंधे इस्लाम की फरमाबरदारी में, तो यह एक **मुलहीद** है इस तरह के लोग यानि निराली कामयाबी। [इस तरह से अनजान गलत इलाज करने वालों की ख़बर उनपे सांस छोड़ने के ज़रिए दे रहे हैं,] उन्हें **इस्तीदराज** कहा जाता है

और यह दोज़ख़ में दोनों को तारीफ करने वालों और कामयाबी के मालिकों को नीचे खींच लेगे। एक दिल के अलामत के वह पाक है और एक नफ्स जोकि मुतमईन (सीखने के क़ाबिल है) तो इसका जिस्म इस्लाम अपने आप चाहत से क़ुबूलेगा। यह बहाना, "के मेरा दिल पाक है, मेरे दिल में देखो," उन लोगों के ज़रिए जो अपने एहसास-ए-अज़ाए और जिस्म को इस्लाम के मुताबिक़ नहीं क़ुबूलते, ऐसे कहना बेकार है, वह अपने आप और अपने आस पास के लोगों को धोका दे रहे हैं।]

ईमान के औसाफ

अहले सुन्नत के उलेमा कहते है कि ईमान के छः औसाफ है:

आमन्तु बिल्लाही: में यह यक़ीन रखता है कि अल्लाहु अज़ीम-उश-शान मौजूद और एक है; मेरा इनपे ईमान है।

अल्लाहु अज़ीम-उश-शान मौजूद और एक है।

अल्लाह के लिए कोई शरीक या नज़ीर नहीं है (इनका कोई साथी या इनके जैसा कोई नहीं है।)

यह मूनीज़ाह है, जगह या मकान से (आज़ाद) है। (यह किसी स्थाई जगह पर नहीं है।)

यह अपने कमाल के औसाफों के साथ मुतासिफ है। इनके कमाल के औसाफ हैं।

यह आज़ाद और औसाफों के दोष से बहुत दूर है। वह इनके अंदर नहीं समाते।

कमाल के औसाफ इनमें मौजूद हैं। और औसाफ के दोष हम में मौजूद है।

दोष के औसाफ जोकि हमारे पास कमियाँ है जैसे की बिना हाथ और पेरों के, आँखों के, बीमारी और सेहत, खाना-पीना, और इसी तरह के काफि दूसरे दोष।

अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के ज़रिए मौजूद औसाफ कमाल के औसाफ हैं। जैसे की इसकी बनाई ज़मीने, जन्नतें और इसी तरह के तमाम मख़लुक़ात जो हवा में, पानी में, ज़मीन पर और ज़मीन के अंदर जो रह रहे हैं, यह बहुत सी मख़लूक़ों को हर वक़्त मौजूदगी में रखते है कुछ जो हम जानते हैं, और लाजवाव महानात जोकि हम ध्यान में लाने के क़ाबिल भी नहीं हैं - इन्सान के दिमाग़ी मौजूदा गुंजाइश के -अल्लाह रिज़्क (खाना, जीविका) दे रहा है हमको और इन तमाम मख़लुक़ातों को, और इनके कमाल के दूसरे औसाफ यह कादिर-ए-मतलख़ (ख़ुदा) है। हर एक मख़लूक़ अल्लाह अज़ीम-उश-शान के कमाल के औसाफों से काम करते हैं।

22 औसाफात जो अल्लाह अज़ीम-उश-शान के बारे में है और जो हमें भी जानना वाजिब है। इनके **22** दूसरे औसाफ हैं जो की मुहाल (समझ से बाहर, नामुम्किन है) इनके लिए होना)।

वाजिब का मतलब ज़रूरी। यह औसाफ अल्लाहु अज़ीम-उश-शान में मौजूद हैं। औसाफ जो मुहाल हैं वह इनमें मौजूद नहीं हैं। मुहाल वाजिब का उलटा है, इसका मतलब "मौजूद नहीं हो सकता है"।

अल्लाह अज़ीम-उश-शान के बारे में एक औसाफ जिसे सिफाते नफ्सीया कहते हैं जोकि हमारे लिए जानना वाजिब है: **वुजूद** जिसका मतलब मौजूदगी से है।

परंपरा के ज़रिए साबित किए गए सबूत के अल्लाहु अज़ीमु-शान अल्लाह तआला के क़ौल-ए-शरीफ में मौजूद है (मुबारक बयानात) जो पढ़ते हैं: "**इन्नेनी इन्नलाहु।**" दिमाग़ी तौर पर साबित किए गए सबूत यह है के ज़रूरी है ख़ालिक मौजूद है जिसने इन सभी मख़लूक़ों को बनाया। इन के लिए मौजूदगी में न होना मुहाल होगा।

सिफात-ए-नफ्सीया का मतलब के धात इसके बग़ैर (शख़्स) और यह धात के बग़ैर सोचे व इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अल्लाह अज़ीम-उश-शान के बारे में पाँच औसाफ जो सिफात-ए-धातिया में क़रार दिया गया और जोकि हमारे लिए जानना वाजिब है: वह **उलूहिय्यत के औसाफ** से भी जाने जाते हैं।

1- किदेम (या किदाम), जिसका मतलब के अल्लाहु अज़ीम-उश-शान की मौजूदगी के लिए कोई शुरूआत ज़रूरी नहीं है।

2- बाका मतलब के अल्लाहु अज़ीम-उश-शान की मौजूदगी के लिए कोई ख़ात्मा नहीं है, जो वाजिब-उल-वुजूद भी कहा जाता है, यह अल्लाह तआला के ज़रिए (कुरानुल करीम) की हदीद सूरा में तीसरी आयत-ए-करीमा में फरमाया गया है। यह दिमाग़ी सबूत है कि अगर इनकी मौजूदगी की शुरूआत और या ख़ात्मा होता तो यह अजीज़ और अधुरे होते। तो यह मुहाल है (इनकी मौजूदगी के लिए शुरूआत का ख़ात्मा होना न मुमकिन है।)

3- कियाम बी-नफसीही, जिसका मतलब अल्लाहु अज़ीम-उश-शान को अपनी धात में किसी की ज़रूरत नहीं है, और न ही औसाफ या अमाल में। यह परंपरा के ज़रिए सबूत है मुहम्मद 'अलैहिस्सलाम' की सूरा की आख़िरी आयत-ए-करीमा है। यह दिमाग़ी सबूत है कि अगर इनके यह औसाफ नहीं

होते तो ये नाक़ाबिल और नामुकम्मल होते। अलाह अज़ीम-उश-शान के बारे नाक़ाबिल या नामुकम्मल होना मुहाल है।

4- मुख़ालफत-उन-लिल-हवादीस, का मतलब अल्लाहु अज़ीम-उश-शान किसी की तरह नहीं है, इनकी धात (शख़्स) साथ-साथ इनके औसाफ में। यह पंरपरा के ज़रिए सबूत है के अल्लाह तआला ने शूरा सूरा की ग्यारवीं आयत-ए-करीमा में फरमाया है यह दिमाग़ी सबूत है कि अगर इनके यह औसाफ नहीं होते तो ये नाक़ाबिल और नामुकम्मल होते। अल्लाह अज़ीम-उश-शान के बारे में नाक़ाबिल या नामुकम्मल होना मुहाल है।

5- वाहदानीयत मतलब के अल्लाह अज़ीम-उश-शान का कोई शरीक (साथी) या नज़ीर (से मिलता जुलता, या जैसा) नहीं है। न ही इनकी धात, औसाफ या आमाल में। यह पंरपरा के ज़रिए सबूत है अल्लाह तआला की इख़्लास सूरा की पहली आयत-ए-करीमा में। यह दिमाग़ी सबूत है के अगर इनका कोई साथी था तो तमाम मख़्लुक़ात ग़ैर मौजूद होती, जैसे की उनमें से कोई एक कुछ करना चाहता, तो दूसरा वाला उस तरह नहीं कर पाता।

[इस्लामिक उलेमाओं की एकता के हिसाब से, **वुजूद**, जिसका मतलब मौजूदगी एक अलग औसाफ है, इनके मुताबिक़ **सिफात-ए-धातिया** के नीचे छः पदवी है।]

सिफात-ए-सबुतिया

अल्लाह अज़ीम-उश-शान के बारे में आठ औसाफ हैं जो हमें जानना वाजिब है जो सिफात-ए-सबुतिया की श्रेणी में आते है: हयात, इल्म, सेम, बसर, इरादा, कुदरत, कलाम, तेकवीन।

इन आसाफों के मतलब निम्नलिखित में दिए गए हैं:

1- **हयात** मतलब के अल्लाह अज़ीम-उश-शान ज़िन्दा है।यह रिवायतों के ज़रिए सबूत है के अल्लाह तआला का शुरूआती हिस्सा सूरह बक़रा है **255**वीं आयत-ए-करीमा में है।यह दिमाग़ी सबूत है कि अगर अल्लाहु तआला ज़िन्दा नहीं होते तो यह मख़लुक़ात वुजूद में नहीं आ पाती।

2- **इल्म** मतलब अल्लाहु तआला के पास इल्म है।यह रिवायतों के ज़रिए सबूत के अल्लाह तआला की हश्र सूरा की **22**वीं आयत-ए-करीमा में यह दिमाग़ी सच्चा सबूत है के अगर अल्लाहु अज़ीम-उश-शान को इल्म न होता तो यह नाक़ाबिल और नामुकम्मल होते।अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के बारे में नाक़ाबिल और नामुकम्मल होना मुहाल (नामुमकिन) है।

3- **सेम** मतलब अल्लाहु तआला सुनता है।यह रिवायतों के ज़रिए सबूत है कि अल्लाहु तआला की इसरा सूरा की पहली आयत-ए-करीमा में दिमाग़ी सबूत यह है के अगर यह ना सुनता तो यह नाक़ाबिल और नामुकम्मल होता, अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के लिए नाक़ाबिल या नामुकम्मल होना मुहाल है।

4- **बसर** मतलब के अल्लाहु अज़ीम-उश-शान देखता है दुबारा रिवायतों के ज़रिए सबूत है, अल्लाहु तआला की पहली आयत-ए-करीमा

में। दिमाग़ी सबूत यह है के अगर अल्लाहु अज़ीम-उश-शान नहीं देखते तो यह नाक़ाबिल और नामुकम्मल होते। अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के मुताल्लिक़ नाक़ाबिल या नामुकम्मल होना मुहाल है।

5- इरादा मतलब अल्लाहु तआला चाहता है। जो वो चाहता है वह होता है, जब तक यह नहीं चाहता एक चीज़ भी जगह से नहीं हिलती। इसको मख़लुक़ात की (मौजूदगी) की चाहत थी और इनको बना दिया। यह रिवायतों के ज़रिए सबूत है अल्लाह तआला की सूरह इब्राहीम की **27**वीं आयत-ए-करीमा में। इसका दिमाग़ी सबूत यह है के अगर इसके पास चाहत न होती तो यह नाक़ाबिल और नामुकम्मल होता। और इसके लिए नाक़ाबिल या नामुकम्मल होना मुहाल नामुमकिन है, अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के बारे में यह हकीकत का उल्टा, बेबुनियाद है।

6- कुदरत मतलब अल्लाहु अज़ीम-उश-शान सबसे ज़्यादा ताक़त वाला है। यह रिवायत के ज़रिए सबूत है के अल्लाहु तआला के सूरह अल इमरान में **165**वीं आयत-ए-करीमा में दिमाग़ी सबूत है के अगर यह सबसे ज़्यादा ताक़त वाला नहीं होता तो यह नाक़ाबिल और नामुकम्मल होता। अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के लिए नाक़ाबिल या नामुकम्मल होना मुहाल है।

7- कलाम (या केलाम) मतलब अल्लाहु अज़ीम-उश-शान की तक़रीर है। यह रिवायत के ज़रिए सबूत है अल्लाहु तआला की सूरह निसा में **164**वीं आयत-ए-करीमा में।

8- तेकवीन मतलब के अल्लाहु अज़ीम-उश-शान तख़लीक़ी है, यानि (इसके पास तख़लीक़ी ताक़त है) तो ही यह तख़लीक़ करता है यह अकेले ही तमाम को ग़ैर मौजूदगी से बनाता है, इसके अलावा कोई और तख़लीक़ी नहीं

है। रिवायतों के ज़रिए सबूत है के अल्लाहु तआला की ज़ूमर (या ज़ूमेर) सूरा की 62वीं आयत-ए-करीमा में। दिमाग़ी सबूत है कि ज़मीन पर और जन्नतों में इसकी बहुत ख़ूबसूरत मख़लुक़ात की क़िस्में है, यह तमाम का वाहिद ख़ालिक है। किसी की ग़ैर मौजूदगी में उसे तख़लीक़ी कहना कुफ्र होगा यानी यह उस शख़्स का ईमान खोने की वजह होगी। आदमी कुछ नहीं बना सकता।

अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के पास आठ सिफात-ए-मा-नविय्या (ग़ैर माद्दी सिफाते) है जोकि हमें जानना वाजिब है: हायून, अलीमुन, समीउन, बासीरून, मूरीदुन क़ादीरून, मुताकल्लीमुन, मुकव्वीनुन। [लेटिन हुरूफ तेहजी में मुतावादील प्रति लेखन पाठकों के लिए तकनीकी अलफ़ाज़ों के तल्फ्फुज़ को आसान बनाने की नीयत से मदद करने का इरादा किया है।]

इन मुबारक औसाफों के मतलब निम्नलिखित में है:

हायून: अल्लाहु अज़ीम-उश-शान ज़िन्दा है।

अलीमुन: अल्लाहु अज़ीम-उश-शान इस तरह के इल्म से जानता है जैसे की इल्म-ए-कादीमी (अबदी इल्म)।

समीउन: अल्लाहु अज़ीम-उश-शान सुनता है और सुन रहा है जोकि अबदी (सेम-ए-क़दीम) है।

बासीरून: अल्लाहु अज़ीम-उश-शान देखता है।

मूरीदुन: अल्लाहु अज़ीम-उश-शान एक इरादे ऐ कुदरत-ए-कदीमी (अबदी ताकत) के साथ चाहता है।

क़ादीरून: अल्लाहु अज़ीम-उश-शान अपनी कुदरत-ए-कदीमा (अबदी शक्ति) के साथ ताक़त वाला है।

मुताकल्लीमुन: अल्लाह अज़ीम-उश-शान के पास तक़रीर है, जोकि कलाम-ए-क़दीम (अबदी तक़रीर) है।

मुकव्वीनुन: अल्लाह अज़ीम-उश-शान तख़लीक़ी है, और यही सभी को बनाता है।

औसाफ जो अल्लाहु तआला के बारे में मुहाल है वह निम्नलिखित औसाफों के उल्टें है।

व मलाईकतिही: मैं अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के फरिश्तों पे भी यक़ीन रखता हूँ, मेरा उनपे ईमान है। अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के पास फरिश्तें है। इसने इन्हें नूर (चमक, लाईट) से बनाया है। वह जिस्म (शरीर) है। जिस्म (शरीर) जो इस सबब में बताया गया है वह वाला जिस्म नहीं है (जो भौतिक विज्ञान की किताबों में बताया गया है।) वह खाते पीते नहीं है, उनके बीच यौन क्रिया नहीं होती, वह जन्नतों से नीचे उतरते है और वापस जन्नतों के लिए उड़ जाते है, वह अलग भेस में नज़र आते है। उन्होंने कभी पलक झपकने के बराबर भी अल्लाहु अज़ीम-उश-शान की नाफरमानी नहीं की, हमारी तरह कभी भी गुनाह नहीं किया। उनमें मुर्करब और अम्बिया है। [बराए मेहरबानी बारा का पाँचवा दरजा, मुर्करबों के लिए **सआदते अबदिया** की छठी पुलिका के पहले बाब देखें।]

व कुतूबीही: मैं अल्लाहु अज़ीम-उश-शान की आसमानी किताबों पे भी यक़ीन रखता हूँ।

अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के पास किताबें है। कुरानुल करीम में 104 किताबों के नाम दिए गए है। उन किताबों में 100 किताबें छोटी है उनको 'सूहूफ' कहा जाता है और इनमें चार किताबें अहम है। **(तवरात** या **तौराह)** हज़रत मूसा 'अलैहिस्सलाम' (मोज़ीस) को नीचे भेजी गई, दाऊद (डेवीड)

'अलैहिस्सलाम' को **ज़ूबूर** भेजी गई, **इनजील** ईसा (जिजस) 'अलैहिस्सलाम' को और **कुरानुल करीम** हमारे नवी मुहम्मद 'अलैहिस्सलाम' को।**जवाब नहीं दे सकते** नामक ,हमारी ही एक अशाअत **तौराह** और **बाईबल** के बारे में तफसीली जानकारी पेश करता है जोकि आज यहूदियों और ईसाईयों के ज़रिए पढ़ी जा रही है।

सौ सूहूफ का (सहीफा की जमा) जोकि चादर, या पन्ना या नोटबुक, मतलब में बदलती है सचमुच दस सूहूफ आदम 'अलैहिस्सलाम' को नीचे भेजे गए थे, **50** सूहूफ शिस (सेठ) 'अलैहिस्सलाम' को, तीस सूहूफ इदरीस 'अलैहिस्सलाम' को और दस सूहूफ इब्राहिम 'अलैहिस्सलाम' को, यह सभी जिबराईल 'अलैहिस्सलाम' के ज़रिए नीचे लाये गए, कुरानुल अज़ीम-उश-शान आसमानी किताबों की आख़िरी किताब है जो नीचे भेजी गई।कुरानुल करीम के अहिस्ता-अहिस्ता आयतों के उतराव में तेइस साल लगे, और इसके नियम दुनिया के ख़ात्मे तक चलेंगे।इसे अभिनिषेद से [यानि गलत होने से] और इन्सानी प्रक्षेप से [यानि किसी बदलाव करने से या इन्सानी जाति के अशुद्ध बनाने से बचाया गया।]

व रसूलिहि: मैं अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के नवी 'अलैहिम अस-सलावातु व अत-तसलीमात' पे भी ईमान रखता हूँ।

अल्लाह तआला के पास नवी 'अलैहिम अस-सलावातु व अत-तसलीमात' है।तमाम नवियाँ इन्सान है।आदम 'अलैहिस्सलाम' पहले नवी है, और हमारे नवी, मुहम्मद मुस्तुफा 'सल्लल्लाहु तआला अलैहिम वसल्लम' आख़िरी नवी है।इन दो नवियों के बीच बहुत से नवी आए और गए, अल्लाह अज़ीम-उश-शान उनकी गिनती जानता है।

नबी 'अलैहिम अस-सलावातु व अत-तसलीमात' के बारे में पाँच औसाफ जो हमें जानना वाजिब है: सिदख़, अमानत, तब्लीख़, इसमत, फेतानत।

1- सिदक़: तमाम नबी 'अलैहिम अस-सलावातु व अत-तसलीमात' अपने लफ़्ज़ के पक्के है। जो भी वह कहते है वह सच होता है।

2- अमानत: वह कभी भी किसी का भरोसा नहीं तोड़ते।

3- तब्लीग़: वह अल्लाहु अज़ीम-उश-शान के तमाम हुकूमात और मनाहियतें जानते है और उनको अपनी उम्मत तक पहुँचाते है।

4- इसमत: गुनाह करने से बहुत दूर होना कब्र और अमर एक जैसे है, वह कभी भी गुनाह नहीं करते, नबी 'अलैहिम अस सलाम' का ही सिर्फ ऐसा गुट है जो बेगुनाह है, [हालांकि शिया कहते है अब बेगुनाह लोगों का दूसरा गुट भी है।]

5- फेतानत: इसका मतलब के तमाम नबी 'अलैहिम अस-सलावातु व अत-तसलीमात' दूसरे लोगों से ज़्यादा समझदार है।

पाँच औसाफ जो नबी 'अलैहिम अस-सलावातु व अत-तसलीमात' के लिए जायज़ (मुमकिन का हुक्म है) वह एक दुनिया से हिजरत करते है, (यानि एक दुनिया से दूसरी दुनिया में) यानि आख़िरत, वह दुनिया के शौकीन नहीं होते।

28 मुबारक नबियों के नाम जो कुराने अज़ीम-उश-शान में दिए गए है, उलेमाओं के बयानातों का कहना है कि हर किसी को नबियों को जानना वाजिब है।

नबियों 'अलैहिम अस-सलावात-उ-वस-सलाम' **के नाम**:

आदम, इदरीस, नूह, शिस (सेठ), हूद, सालिह, लूत, इब्राहीम, इस्माईल, इशहाक, याकूब, यूसुफ, मूसा, हारून, दाऊद, सुलेमान, युनूस, इल्यास, अलैसा, ज़लकीफल, अय्यूब, ज़ेकेरीया, याहया, ईसा और मुहम्मद 'सलावातूही आला नबीयीना वा अलैहिम'। कुछ नामों पे असहमति थी जोकि उज़ेर, लुकमान और ज़ुलकरनैन है। इस्लाम के कुछ उलेमाओं ने कहा के यह तीन लोग और हिज़ीर 'अलैहिस्सलाम' भी नबी थे, जबके दूसरे (यानि इस्लाम के दूसरे उलेमाओं) ने कहा के वह औलिया थे। यह मख़्तूबात-ए-मासुमीय्या के दूसरे ख़ंड के 26वें ख़त पे लिखा है के रीति रिवाज़ी उलेमात के हवाले से हिज़ीर 'अलैहिस्सलाम' यक़ीनी नबी थे। [यह मुहम्मद मासूम फारूकी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' के ज़रिए लिखा गया (1007, सरहिन्द - 1079 [1668 A.D.], एक ही जगह) हज़रत इमामे रब्बानी 'कुद्दीसा सीरूहमा' के तीसरे बेटे।] जैसे की यह 182वें ख़त में फरमाया गया है, हिज़ीर 'अलैहिस्सलाम' दिखाई देते हैं और इन्सान के भेस में चीज़ें करते है वह नहीं दिखाते के यह मौजूदगी में हैं। अल्लाह तआला ने इनकी रूह और साथ में बहुत से नबियों की रूहों को इन्सानी भेस में दिखने की इजाज़त दी है। उनको देखने से यह नहीं दिखता के वह ज़िन्दा हैं।

और तुम पे भी क्या मौजूदा है के यह कहना के, "मैं अलहम्दुल्लीलाह हूँ, हज़रत आदम 'अलैहिस्सलाम' की एक औलाद और एक उम्मत के (ईमान वाला मुसलमान) हाल ही के नबियों के वक़्त के, वहाबियाँ इस सच से इन्कार

करते हैं के आदम 'अलैहिस्सलाम' एक नबी थे। इसीलिए, और इसी वजह से वह मुश्रिकी मुसलमान कहलाए जाते हैं। वह काफिर (ग़ैर ईमान वाले) हैं।

व-अल-यौम-इल-आख़िरी: मैं दिन के होने पे यक़ीन रखता हूँ, मेरा भी इसपे ईमान है। अल्लाह तआला के लिए कि इन्होंने हमें इसके बारे में जानकारी दी। कयामत का दिन जब शुरू होगा तब लोग कब्रों से उठ खड़े होंगे और यह तब तक चलता रहेगा जब तक लोग अपनी जगहों पर नहीं पहुँचेंगे। जन्नत या दोज़ख़ (जो कि दोनों में से कोई एक है)। हम सभी को मरना है और उसके बाद दोबारा ज़िन्दा होना है। जन्नत और दोज़ख़ और मिज़ान (काटें) और सिरात का पुल और हशर (जमा) और नशर [हशर का मैदान छोड़ते हुए जन्नत या दोज़ख़] और कब्र में अज़ाब और दो फरिश्तें नामुनकर और नकीर के ज़रिए किए गए सवालात सब हक़ (सच) में हैं। वह ज़रूर ही तजुरबेकार होंगे।

व-बिल-क़दर-ल-ख़ैरीही-व-शरेही-मिन-अल्लाही तआला: मैं ये भी ईमान रखता हूँ कि तमाम पिछले और अगले वाक्यात अच्छे और बुरे सभी इसी तरह से अपनी जगह पर गए और अल्लाहु अज़ीम-उश-शान की तक़दीर के साथ जगह लेंगे, यानी अबदी गुज़िश्ता में ठीक तरह से इसके इल्म और हक़ के साथ, और इनके क़िस्मत के वक़्तों के साथ बनाना और अपनी लिखावट के साथ उनको लौह-ए-महफ़ूज़ में लिखना। मेरे दिल में कभी कोई शक नहीं है। [बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** की तीसरी पुलिका का तेईसवाँ बाब देखें।]

अश-हादु-अन-ला-ईलाहा-इल-लल्लाह-वा-अश-हादु-अन्ना-मुहम्मदन-अब्दुहु-वा-रसुलूह।

और मेरा मज़हब भी इतिक़ाद में है, [यानि उसूलों पे यक़ीन होना] **अहले सुन्नत व अल जमात** का मज़हब है और में इस मज़हब में हूँ। और दूसरे **72** फिरकों द्वारा बनाए गए असूल ग़लत और मुश्रिकी है। वह दोज़ख़ में जायेंगे।

[वो मुसलमान जो तमाम असहाबा-ए-ईकराम अलैयहिम उर रिज़वान को प्यार करते है उनको **अहल-अस-सुन्नत** के गुट का कहा जाता है। तमाम असहाबा-ए-ईकराम सीखे हुए थे और आदिल मुसलमान थे। उन्होंने सोहबत को हासिल किया, (यानी मुबारक साथ, मौजूदगी) पूरी इन्सानियत के हुज़ूर की (यानि रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम') और इनकी मदद की। जबकि एक सहावी जिन्होंन इस (बहुत ज़्यादा क़ीमती) सोहबत को बहुत कम हासिल किया वह एक वली से बढ़ कर है जो तमाम औलियाओं के बड़े हैं और मगर जो एक सहावी नहीं है। हाल एक वाहिद सोहबत और तवाज्जूस अल्लाहु तआला के उस मेहबूब से तर्जुबा हुई और इनके साथ के असर से कमाल हासिल हुआ और वह सांस किसी पे भी नहीं गिरी जिसने वो मौजूदगी हासिल नहीं की, वह पास होने की ख़ुशनसिबी थी। तमाम असहावा-ए-ईकराम 'रिज़वानुल्लाहि तआला अलैहिम अजमाईन' अपनी नफ़्स की इच्छाओं के कहर से महफ़ूज़ थे। [वराए मेहरवानी नफ्स के लिए **सआदते अबदिया** की दूसरी पुलिका का **43**वाँ वाब देखें।] जितनी जल्दी वह (रसूलुल्लाह की) पहली सोहबत हासिल करते हैं। हम को सभी को प्यार करने का हुक्म है। यह हक़दार **सीरत-उल-इस्लाम** किताब में शुरूआती सायफों पे तफ़सीर से लिखी हुई है। [मुहम्मद बिन अबू बकर 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' (d. **573** (**1178** A.D.) के ज़रिए लिखी गई। इसकी तफसीरी याक़ूब बिन सय्यद अली 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' (d. **931** (**1525** A.D.) के ज़रिए लिखी गई।] असहावा-ए-ईकराम 'अलैहिम-उर-रिज़वान' के बारे में जितनी नम्रता से बात कर सको उतना करो। उनके बारे में कभी बुरा मत कहो। जैसे **72** (मज़हब

से हटाने वाले) फ़िरक़े: उनमें से कुछ ने मामला बहुत बढ़ा दिया है, जबकि दूसरे इसमें बेपरवाह हैं, कुछ ने यक़ीन दिमाग़ में बेठा रखा है, जिस दौरान ग्रीक और दूसरे फिलोस्फर फिलोस्फी में गिरे। इस तरह उन्होंने उन चीज़ों पे मश्क़्क़त की जो इस्लाम में नहीं थी और जो इस्लाम के उल्टे (विपरीत) थी। उन्होंने बिद्दतों को गले लगाया, (यानि वो अक़ाईद और मश्क़्क़त जो इस्लाम के साथ नहीं करनी चाहिए थी और जोकि इस्लामी अक़ाईद और मश्क़्क़त के नाम में जोड़ा गया) उन्होंने सुन्नत (यानि इस्लाम) को त्याग किया। वहा इस्लामी हसतियाँ दिखाई दीं जैसे की हज़रत अबू बकर सिद्दीक़ और हज़रत उमर 'रज़ि-अल्लाहु अन्हुमा', इजमा से मुताल्लिक़ असहाबा-ए-ई कराम के सबसे बड़े दरजे के (इस्लामी उलेमाओं की एकता), दरअसल उनमें से कुछ के ज़रिए महसूस की गई नाराज़गी हमारे हुज़ूर नबी 'अलैहिस्सलाम' के नाम से बचने का चारा नहीं था। वहाँ कुछ मौजूदा लोग जिन्होंने इस सच को मानने से इन्कार कर दिया के हमारे हुज़ूर नबी मिराज की रात को जिस्मानी और रूहानी दोनों रूप से ऊपर ले जाये गए हैं (जोकि **सआदते अबदिया** की तीसरी पुलिका के साठवें बाब में तफसीर से समझाया गया है।)

यह देखना काफी डर भरा है के मास्सर इस्लामी उलेमा **इस्लामिया** नमक फिरक़े की जगह बोल रहे हैं, बिद्दत के (72) फिरक़ों में सबसे ज़्यादा नुक़सान दायक)। वह नौजवानों को भटकाने की कोशिश व ज़हर घोलने में लगे है लिखावटों और बहकाने वाले काफिर झूटों के ज़रिए इस तरह के वह मुबारक मर्द व औरत हमारे हुज़ूर के पूर्वज नबी ग़ैर ईमान वाले थे और हमारे मुबारक हुज़ूर नबी 'अलैहिस्सलाम' ने पहले जानवर कुरबान किए, पहले बुतों को नबी नामंकित किया गया था, और बहकावट में शियाई किताबों की मदद कर रहे है। यह साफ-साफ देखा जा सकता है कि (पराजयवादियों) निराशात्मक किस तरह इस्लाम के मज़हब को कमज़ोर बनाने में लगे हैं, नौजवानों का ईमान चुराने के लिए, और उनपे ग़ैर ईमान का धब्बा लगाने के लिए। कुरानुल करीम

की एक आयत से मुराद है: "**एक शख़्स जो कुरानुल करीम की तशरीह अपने दिमाग़ से करेगा वह काफिर बन जायेगा**" इस्लामी उलेमाओं के पास अदब था (जैसे की इस्लाम के ज़रिए सिखाए गए, अच्छे अदब)। काफिर लगन के साथ लिखेंगे व बात करेंगे। वह मश्क़्क़त से सोचेंगे के उन्हें कुछ ग़लत कहना चाहिए और बिना किसी रोकथाम के बात करेंगे, मिसाल के तौर पर **एदिल्ला-ए-शर-इया** से सच्ची मालूमियत बताने की बजाए यानि इस्लामी इल्म से चार एहम तरीकों को लेने की बजाए अपनी ख़ुद की ग़लत राय देंगे और इस्लाम के नाम में ग़ैर मज़हबी आवाज़ की कोशिश करेंगे। यह नहीं है के हर एक मुसलमान ऐसा करता है या कोई अकेला इस्लामी आलिम। हमें बहुत ज़रूरी है के ऐसे मुश्रिक लोगों को समझें जो हमारे मुबारक हुज़ूर 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की क़ाबलियत या असहाबा-ए-ईकराम 'रिज़वानुल्लाही तआला अलैहिम अजमाईन' की महानता नहीं महसूस कर पाए। हमें उनके भटका देने वाले तरीकों और गन्दें अक़ाईद अलफ़ाज़ों को समझना होगा जोकि जानलेवा ज़हर की तरह है।

हिन्दी में एक फारसी लाइन:

अगर वह मेरे ईमान पे हमला करते हैं
मैं एक विलो पत्ते की तरह थरथराता हूँ।

अल्लाहु तआला हमारे दिलों में अपने मेहबूब के लिए प्यार बढ़ाए, इसके दुश्मनों को प्यार करने की वजह से दोज़ख़ में गिरने से महफ़ूज़ फरमाए। दिल में ईमान के आसार मौजूद रहे और अल्लाह तआला के मुबारक लोगों को प्यार करते रहें।

अमाल में चार मज़हब है, (इस्लामिक तरीक़े, इबादत के फर्ज़, अमाल और हरकतें) यह इमाम आज़म (अबु हनीफा), इमाम शाफी, इमाम मालिक, और इमाम अहमद बिन हनबल 'रहमतुल्लाहि अलैहिम' के मज़हब से है।

यह ज़रूरी है के इन चारों मज़हबों में से किसी एक को ज़रूर क़ुबूलें। चारों मज़हब सही और सच्चे है। चारों अहल अस सुन्नत के साथ है। हम इमाम आज़म के मज़हब में हैं, जो मुसलमान इस मज़हब में हैं उन्हें **हनफी** कहा जाता है। इमाम आज़म का मज़हब सवाब और सही है। [सवाब लफ्ज़ एक विशेषण और एक संज्ञा दोनों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जब कोई व्यवहार सवाब है। इसका मतलब अल्लाह तआला इसे बहुत पसन्द करते है और आख़रत में इसको इसका ईनाम दिया जाएगा।] यहाँ पे साथ में यह संभावना भी है कि हो सकता है कि यह गलत हो, के अन्य तीन मज़हब गलत हैं, हम कहते हैं के साथ में यह संभावना भी है के हो सकता है के यह सही हो।

और यह भी के ईमान वाले के साथ ईमान हमेशा रहेगा अपने पे निर्भर **6** शर्तो और वजहों को छोड़े बग़ैर:

1- हमें ग़ैब (अनजाना, अनदेखा), पे ईमान था। हमारा ईमान ग़ैब में था ज़ाहिर (जाना हुआ, देखा हुआ) में नहीं था हम अल्लाहु अज़ीम-उश-शान को अपनी आँखों से देखने में नाक़ाबिल रहे है। लेकिन फिर भी हमें यक़ीन है, हमारे पास ईमान था जैसे की हमने इसे देखा हो, हमारे पास कभी भी कोई ऐसा शक नहीं रहा है:

2- ज़मीन पर और जन्नतों में, इन्सानों, जिनों, फरिश्तों और नबियों 'अलैहिम अस सलावातु-व-अत तसलीमात' के बीच, कोई ऐसा मख़लूक़ नहीं है जो ग़ैब को जान सके। अल्लाह अज़ीम-उश-शान ग़ैब के बारे में अकेले जानने

वाले है, और यह जिस भी मख़्लूक़ को चुनना चाहते है उसे ग़ैब से ख़बर देते हैं। [ग़ैब मतलब कुछ भी जोकि एहसास अज़ाए के ज़रिए या तर्जबात के हिसाब के ज़रिए समझा जा सके। ग़ैब सिर्फ उन लोगों के ज़रिए जाना जा सकता है जिसको अल्लाह ग़ैब की ख़बर दे।]

3- हराम को हराम जानना और ऐसे ही उसपे यक़ीन रखना।

4- हलाल को हलाल जानना और ऐसे ही उसपे यक़ीन रखना।

5- अल्लाह अज़ीम-उश-शान के अज़ाब से ख़ुदको महफ़ूज़ न समझना, और हमेशा इससे डरते रहना।

6- अल्लाह अज़ीम-उश-शान के रहम की उम्मीद न छोड़ना चाहे आप कितने भी गुनाहगार हों।

अगर कोई शख़्स यह छः शर्तें पूरी नहीं करता हालांकि यह उनमें से पाँच पूरी करता है, या फिर उनमें से यह एक पूरी करता है और पाँच पूरी नहीं करता, तो उस शख़्स का ईमान और इस्लाम सही नहीं होगा।

ऐसी **40** चीज़ें है जो किसी शख़्स के एक पल में ईमान के साथ होने की वजह है उनका ईमान बाद में खोने के लिए:

1- बिद्दत को अपनाना, जिसका मतलब किसी के ईमान के साथ बहना। [अहले सुन्नत के ज़रिए सिखाए गए ईमान के उसूलों में थोड़ी भी कमी ईमान से हटाने वाले के लिए वजह बन जाएगी ग़ैर मज़हबी या एक मुश्रिक बनाने की। अगर कोई शख़्स कुछ मानने से इन्कार करता है जोकि मानना लाज़िम है, वह शख़्स उसी वक़्त काफिर (ग़ैर ईमान वाला) बन जाता है। यह

बिद्दत या **जहालत** होगी के कुछ लाज़िम को मानने से इन्कार करना। एक बिद्दती या जहालत को अपनाने वाले की वजह ग़ैर ईमान में मरने की होगी।]

2- ईमान जो कमज़ोर है यानि बिना अमाल के ईमान (लाज़िम तरीक़े या इबादत के फराईज़)।

3- किसी के नौ अंग जानना व सही रास्ता छोड़ना।

4- कब्र के गुनाहों को लगातार करते रहना। [इसलिए मुसलमानों को शराब नहीं लेनी चाहिए और मुसलमान औरतों व लड़कियों को अपने सर, बाल, बियाने, कलाई नामहरम मर्द को नहीं दिखानी चाहिए।] [बराए मेहरबानी महरम और नामहरम के बारे में तफसीली जानकारी के लिए **सआदते अबदिया** की पाँचवी पुलिका के 12वें बाब पर नज़र डालें।]

5- इस्लाम के साथ होने का शुक्र ख़त्म करना।

6- आख़िरत में बिना ईमान के जाने से ना डरना।

7- ज़ालिमत मुस्तक़िल रखना।

8- अज़ाने मुहम्मदी को ना सुनना जोकि सुन्नत के ज़रिए पढ़ी जा रही है। [एक शख़्स जो होती हुई अज़ान की बेईज़्ज़ती करता है वह उसी वक़्त मुश्रिक बन जाता है](अज़ान सुन्नत के हिसाब से कैसे अदा करनी फरमाई गई, यानि इस्लाम के, यह **सआदते अबदिया** की चौथी पुलिका के 11वें बाब में ख़ुलासे से बताई गई है।)

9- अपने माँ बाप का हुक्म न मानना, उनके हुकूमात जो इस्लाम के मुताल्लिक़ और जोकि मुबाह है उनको गुस्से से इन्कार कर देना।

10- एक दम से कसम खाना जब की वह सच्चे हैं।

11- नमाज़ की हालत में रूकू पे ता-दिल-ए-अरकान को नज़रअंदाज़ करना (नमाज़ के दौरान जिस्म को मोड़ना) कोमा पे, रूकू के बाद सीधे खड़े होना, दो सजदों पे (नमाज़ के दौरान सजदा करना) तादिल-ए-अरकान मतलब तुमानियत में रहना, यानि, बिना हिले-डुले इतनी देर जब तक कोई "सुबहान-अल्लाह।" कहे।

12- यह सोचना के नमाज़ ग़ैर ज़रूरी है और इसको सीखना ज़रूरी न समझते हुए परिवार और बच्चों के लिए, और दूसरों को नमाज़ अदा करने से रोकना।

13- हामर (शराब) पीना या और कोई ऐसी चीज़ पीना जो बहुत ज़्यादा नशा करे, अगर कोई थोड़ी सी भी शराब ले तो उस हाल में भी हूबहू नियम लागू होता है।

14- ईमान वालों को मुश्किलों में डालना।

15- किसी वली या इस्लाम के सीखे हुए की दिखावट करना अपने आप को मज़हबी आदमी दिखाना, अहले सुन्नत की तालीमियत हासिल किए बग़ैर एक उपदेशक बनना।इस तरह झूटों के ज़रिए लिखी हुई ग़लत मज़हबी किताबें नहीं पढ़नी चाहिए।उनके ख़तबात और बयानातों में शामिल नहीं होना चाहिए।

16- किसी की गुनेहगारता भूल जाना, या उसको तवज्जो न देना।

17- तकबीर, यानि, किसी पे बहुत ज़्यादा फख़्र करना।

18- उजब (खुदी तारीफ) यानि किसी का इल्म और नेकियाँ हासिल करना।

19- मुनाफिक होना: यानि मुनाफिकत, दुगना मुखोटापन।

20- लालचपन: किसी मुसलमान भाई से हसद करना।

21- सरकार या किसी (उस्ताद) के हुकूमात न मानना (जबकि) वह हुकूमात इस्लाम के ख़िलाफ नहीं हैं, उनके हुकूमात के ख़िलाफ जाना जोकि इस्लाम के ख़िलाफ हैं।

22- किसी शख़्स को बिना परखे उसे कहना कि वो ऐसा है या वैसा है।

23- एक कट्टर झूठा बनना।

24- आलिमों को नज़रअंदाज़ करना। [अहले सुन्नत की लिखी हुई किताबों को न पढ़ना।]

25- सुन्नत की हद से ज़्यादा बड़ी मूछें बढ़ाना।

26- मर्द के लिए रेशम पहनना। मसनूई (कृत्रिम) रेशम या रेशम धागों और कपास बाने से बुने हुए कपड़े पहनना जायज़ है।

27- आदतीन चुग़लख़ोर बनना।

28- अपने पड़ोसियों को परेशान करना, हत्ता कि वो काफिर हों।

29- दुनियावी कामों के लिए हद से ज़्यादा गुस्सा दिखाना।

30- सूद लेना और देना।

31- लम्बी आस्तीनों और स्कर्ट जैसे कपड़ों को घमन्ड के साथ पहनना।

32- जादू करना।

33- किसी सालिह (धार्मिक) रिश्तेदार महरम की कभी ज़ियारत न करना।

34- अल्लाह तआला के पसन्दीदा बन्दे को नापसन्द करना और उस शख़्स को पसन्द करना जिसे तुम जानते हो कि वह इस्लाम को नापाक करने की कोशिश में है।

35- तीन दिन से ज़्यादा किसी मुसलमान भाई के ख़िलाफ शिकवा रखना या वर्दाश्त करना।

36- ज़िना को आदत बना लेना।

37- लौंडेबाज़ी (गुदामैथुन) करना और उसके बाद तौवा [तौबा करने से मुराद है अपने किये हुए गुनाह के लिए अल्लाहु तआला से माफी माँगना और वादा करना कि वो गुनाह दुबारा नहीं होगा।] नहीं करना। लिवाता (गुदामैथुन) का मतलब है कि अपना अज़ू तनासिल (लिंग) किसी दूसरे शख़्स की गुदा (पैखाने का हिस्सा) में डालना। लिंग आदमी के जिस्म का वो हिस्सा है जहाँ से पेशाब किया जाता है। औरत का हिस्सा फैरज (योनि) भी इसी काम के लिए है।

38- फिक की किताबों में दिये गये तरीके से और सुन्नत और वक़्त के मुताबिक़ अज़ान न देने से, और सुन्नत के, तरीके के मुताबिक़ अज़ान का एहतराम न करना।

39- किसी शख़्स को देखना जो हराम कर रहा हो और उसे न रोकना। एक ख़ूबसूरत ज़बान में, हालांकि तुममे वो करने की काबीलियत हो।

40- अपनी बीवी बेटियों को इस्लाम के मुताल्लिक़ यानि हराम चीज़ों से आगाह करना जैसे अपना सिर और बदन बिना ढके बाहर न जाने देना, या ज़ेवर और इतर के मुताल्लिक़।

ईमान के मायने है, उन सच्चाईयों को दिल से क़ुबूलना और ज़बान से गवाही देना जिन्हें नबी करीम 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अल्लाह तआला के हुक्म से फरमाया। और **इस्लाम** का मतलब है मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' को मानना और आपकी सिखाई गई चीज़ों पर अमल करना।

साथ ही **दीन और मिल्लत** पर्यायवाची है। **दीन और मिल्लत** के मायने इतिक़ाद है यानि इस्लामी बुनियादें, जो नबी अल्लाहु तआला से लाये।

इस्लाम या **अहकाम-ए-इस्लामिया** के मायने अमल के है, यानि हरकती आमाल, जो हमारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' अल्लाहु तआला से लाये।

साथ ही, ईमान-ए-इजमली, यानि कम वज़ाहत से यक़ीन करना एक (मुसलमान) के लिए काफी है। ईमान का विस्तार से जानना ज़रूरी नहीं। एक मुक़ल्लिद ईमान यानि बिना समझे यक़ीन, सहीह है। कुछ मामलों में वज़ाहत ज़रूरी है।

ईमान के तीन स्तर हैः ईमान-ए-तकलीदी, ईमान-ए-इस्तिदलाली और ईमान-ए-हकीकी।

ईमान-ए-तकलीदी। इस तबके के इन्सान फर्ज़, सुन्नत, वाजिब, मुस्तहब के बारे में नहीं जानता है। वो अपने माँ-बाप के ईमान को अपनाता है और इबादत करता है। ऐसा ईमान रखने वाले लोग अनिश्चित है।

ईमान-ए-इस्तिदलाली। इस तबके का इन्सान फर्ज़, वाजिब मुस्तहब हराम, हलाल सबको जानता है। यह दोनों ईमान के यक़ीन और इल्म को साबित रखते है। इन्होने अपने मज़हबी उस्तादों और किताबों से सीखा है। ऐसे लोगों का ईमान मज़बूत है।

ईमान-ए-हकीकी। अगर सारी मख़लूक रब के ख़िलाफ हो जाये तो इस तबके का इन्सान अल्लाह को नहीं नकारेगा। उसमें कोई शक व शुबा नहीं होगा। इस तबके के लोगों का ईमान अम्बियाओं के ईमान के बराबर होता है। यह ईमान बाकी दोनों से ऊपर है।

साथ ही इस्लामी कानून अमल के मुताबिक़ है ईमान के नहीं। ईमान, अकेला जन्नत में दाख़िल होने के लिए काफी है। तो उसमे अमल के साथ जाने का सवाल अलग लगता है। अमल के बिना ईमान क़ुबूल है। पर दूसरी तरफ ई मान के बिना अमल बेकार है। इबादत, नेक काम वगैरह करना बगैर ईमान के फिज़ूल है और यह आख़िरत में काम न आयेंगे। ईमान किसी और को तोहफे में नहीं दिया जा सकता जबकि अमल का सवाब किसी को तोहफे में दे सकते है। कोई अपनी आख़िरी ख़्वाहिश में किसी के नाम ईमान नहीं लिख सकता। पर वो अपनी मौत के बाद अपने लिए अमल करने के बारे में अपने रिश्तेदारों को बता सकता है। एक इन्सान जो अमल को अन्देखा करता है वो काफिर नहीं बनेगा। पर जो ईमान को छोड़ता है और अमल को कमतरी में लेता है काफिर बन जाता है। एक इन्सान अच्छे उज़र के साथ या कुछ करने में क़ाबिल न हो वो अमल से छूट ले जाता है। पर किसी भी तरह ईमान में छूट नहीं है।

हर नबी ने एक ही ईमान अपनी उम्मत तक पहुँचाया। फिर भी वो एक दूसरे के कानूनों, कायदों और मज़हबी इबादतों में अलग थे।

साथ ही ईमान दो तरह के होते है। एक है ईमार्नएख़िलकी और ईमार्न एंकसवी।

ईमान-ए-ख़िलकी बन्दगी से कहना, "**बेला (हाँ),**" अहद-ए-मिसाक के वक़्त। [**आख़िरत और दोबारा उठाया जाना** किताब के पहले बाब का तीसरा पैराग्राफ देखें।]

ईमान-ए-कसबी वो ईमान है जो बालिग़ होने पर मिलता है। हर किसी का ईमान एक जैसा है। पर वो फिर भी अमाल में अलग है।

ईमान फर्ज़-ए-दाईम (हमेशा ज़रूरी) है, पर अमल फर्ज़ (ज़रूरी) बन जाता है अपना वक़्त आने पर।

ईमान काफिर और मुसलमान दोनों के लिये फर्ज़ है। अमल सिर्फ मुसलमानों के लिये फर्ज़ है।

साथ ही ईमान की आठ शाखांए हैः

ईमान-ए-मतबू फरिशतों का ईमान है।

ईमान-ए-मासूम नबियों का ईमान है।

ईमान-ए-मकबूल ईमान वालों का ईमान है।

ईमान-ए-मौकूफ बिद्दत के लोगों का ग़लत ईमान है।

ईमान-ए-मरदूद मुनाफिकों का झूठा ईमान है।

ईमान-ए-तकलीदी उन लोगों का ईमान है जिन्होने इसे इस्लामी उस्तादों के बजाये अपने माँबाप से सुना। इनका ईमान नाज़ुक है।

ईमान-ए-इस्तिदलाली उन लोगों का ईमान है जो मौला-ए-मुताली को जानते है और सबूतों से उसका अनुमान लगाते है। इनका ईमान कट्टर है।

ईमाने हकीकी एक शख़्स का ईमान जो अपने रब (अल्लाहु तआला) के होने पर इन्कार नहीं करता, चाहे पूरी कायनात रब के न होने पर एकमत हो जाये, उस शख़्स के दिल में कोई शक या शुबा नहीं होता। जैसा कि हमने पहले लिखा है कि यह आला लोगों का ईमान होता है।

ईमान एक 3 गुना आयात हैः

पहला, यह तलवार से गर्दन बचाता है।

दूसरे, यह माल पर जज़िया और खरज़ से बचाता है। इमेहरबानी करके जज़िया और खिराज के लिए **सआदते अबदिया** के पहले एडिशन का 20वां, दूसरे एडिशन का तैंतीसवां, चौथे एडिशन का इक्कीसवां, और पाँचवें एडिशन का पहला व बारवाँ और छठे एडिशन का छठा बाब देखें। उ

तीसरे, यह उसके जिस्म को अबदी जहन्नुम की आग से बचाता है।

"**आमन्तु बिल्लाहि...,**" को सिफाते ईमान या मोमिनुन बिह या ज़ाते ईमान या अस्ली ईमान भी कहते है, इसकी इज़्ज़त और मरतबे के लिए। (यह इस्लाम की बुनियादों का इज़हार है और इसके आगे है: "**...व मलाईकतिहि व कुतुबिहि, व रूसुलिहि, वल यौमि आख़िरी, व बिल कदरी, ख़ैरिहि व शर्रिहि मिनल्लाहि तआला व बादुल मौत हक़्कुन अशहदु अन ला इलाहा इल्लल्लाह व अशहदुअन्ना मुहम्मदन अबदुहु व रसूलुहु।**")

साथ ही ईमान के दो मेज़ार है, यानि वक़्त का वो शुबा जहाँ शख़्स पर ईमान लाज़िम हो जाता है। समझदारी की उम्र और बालिग़ता की उम्र।

साथ ही ईमान की दो वजहें है सारी मख़्लूक़ का बनना और कुरान करीम का नाज़िल होना।

साथ ही, **सबूत दो तरह के होते है:** दलीले अक़्ली (दिमाग़ी सबूत) और दलील-ए-नक़ली (रिवायती सबूत)।

साथ ही, **ईमान के दो असली उसूल है**ः इकरारून विल्लिसान (ज़बान से दावे के साथ कहना) और तसदीकुन बिल जेनान (दिल से क़ुबूल करना)। और इसके लिए दो शर्ते मुक़र्रर हैः

जो शर्त दिल के लिये मुक़र्रर की गई है कि उसमे कोई शक या शूबा या हिचकिचाहट न हो, और ज़बान की शर्त यह है कि जो वो कहता हो उसका उसे इल्म हो।

साथ ही, क्या ईमान एक मख़्लूक़ है? यह मख़्लूक़ नहीं है क्योंकि यह अल्लाहु तआला की तरफ से दी गई हिदायत है। दूसरी तरफ यह बन्दों की तज़दीक और ऐलान से जुड़ी है, तो यह उस नज़रिये से मख़्लूक़ हो जाती है।

क्या पूरा ईमान वाहिद है या जमा?

यह दिल में एक पूरा है और अंगों में बहुसंख्या (जमा) में है।

यक़ीन के मायने है अल्लाहु तआला की ज़ात और कमाल को जानना।

ख़ौफ मतलब अल्लाह से डर।

रेजा का मतलब है अल्लाह तआला से रहम की उम्मीद न खोना।

मुहब्बतुल्लाह का मतलब है अल्लाह और उसके पैग़म्बर 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' से प्यार का होना और उसके ईमान वालों और इस्लामी ईमान से भी मुहब्बत होना।

हया का मतलब है अल्लाह और उसके पैग़म्बर 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के आगे शर्मसार होना।

तवक्कुल के मायने है अपना सब कुछ अल्लाह का समझना। और किसी चीज़ के शुरू करने से पहले उसके लिए अल्लाह पर भरोसा करना। [**सआदते अबदिया** के तीसरे एडिशन के **35**वें बाब में तव्वकुल की वज़ाहत है]

साथ ही, ईमान, इस्लाम और एहसान किसे कहते है?

ईमान मतलब मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के ज़रिये बताई गई सभी सच्चाईयों पर यक़ीन रखना।

इस्लाम का मतलब अल्लाहु तआला के बताये गए हुक्म को करना और मना की गई चीज़ों से बचना।

एहसान मायने है इस तरीक़े से इबादत करना जैसे तुम अल्लाह तआला को देख रहे हो।

ईमान; इसके लफ़्ज़ी मायने है 'सकारात्मक तज़दीक'। इस्लाम का मतलब है **6** उसूलों को मानना और तज़दीक करना।

मारीफत का मतलब है कि अल्लाहु तआला हर कमाल का मालिक है और किसी भी तरह की कमी से पाक है।

तौहीद के मायने है अल्लाहु का एक होने पर ईमान रखना और उसका कोई शरीक नहीं बनाना।

इस्लाम (अहकामुल इस्लामिया) का मतलब है अल्लाह तआला के हुक्म और मनाही।

दीन-व-मिल्लत का मतलब है वफात तक ईमान के स्तूनों पर क़ायम रहने का क़रार।

साथ ही, ईमान पाँच कुलबन्दियों में महफ़ूज़ हैः

1- यक़ीन

2- इख़्लास

3- फर्ज़ को करना और हराम से बचना।

4- सुन्नत पर अमल करना।

5- अदब में मुसतकिल मिजाज़ी रहना और इसके लिए होशियार रहना।इखाने और पीने से मुताल्लिक़ आदाब का इल्म **सआदते अबदिया** के छठे एडिशन के छठे बाब में है।उ

कोई शख़्स जो इन पाँच कुलबन्दियों में मुसतहकिम है वो ईमान में भी मुसतहकिम होगा।इनमें से किसी भी एक को नकारने से दुशमनी बढ़ेगी।आदमी के चार दुशमन हैः सीधे हाथ पर शैतान साथी; उल्टे हाथ पर इंसान की नफ्स; उसके आगे दुनिया का शौक़; और पीछे शैतान; यह चारों दुशमन ईमान को

ख़त्म करने की होड़ में लगे हुए है। वो सिर्फ शैतानी सोहबत नहीं होती जो किसी को घर, पैसा या दुनियावी झूठ और धोखे में फसाते है। सबसे बुरी शैतानी सोहबत वो है जो किसी का ईमान, अदव, यक़ीन, हया और तहज़ीव खराब करे और दुनिया और आख़िरत दोनों को बर्बाद करे। अल्लाहु तआला ऐसी शैतानी ताकतों से हमें और हमारे ईमान को बचाए।

कलमा-ए-तौहीद, यानि "**ला इलाहा इल्लल्लाह,**" कहने के मुबारक मायने है: अल्लाह तआला के सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं। अल्लाह लाशरीक है। वो हमेशा से है और वाहिद है। उसका कोई शरीक नहीं और न ही नाज़िर (उससे मिलता जुलता)। वो जगह और वक़्त से पाक है।

"**मुहम्मदुन रसूलुल्लाह**" के मायने है हज़रत मुहम्मद मुस्तफा 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' अल्लाह के बन्दे और रसूल है। हम आपकी उम्मत में से है, अल्हम्दुलिल्लाह।

साथ ही कलिमा-ए-तौहीद के आठ नाम है:

1- कलिमा-ए-शहादत।

2- कलिमा-ए-तौहीद।

3- कलिमा-ए-इख़्लास।

4- कलिमा-ए-तक़वा।

5- कलिमा-ए-तय्यबा।

6- दावतुल हक़।

7- उरवातुल वुधक़ा।

8- कलिमा-ए-धेमीरातुल-जन्नत।

साथ ही इख़्लास की शर्ते पूरा करना भी ज़रूरी है। [कुछ अच्छा करना सिर्फ अल्लाह की रज़ा के लिए और बुरी चीज़ों से बचना क्योंकि अल्लाह ने मना करा है इख़्लास कहलाता है।] नीयत करना उसके मायने जानना और उसे पढ़ना और दोहराना इज़्ज़त बख़्श तरीक़े से।

और ज़िक्र करने के लिये चार चीज़ों की ज़रूरत हैः तज़दीक, ताज़ीम, हलावत और हुरमत।

एक शख़्स जो तज़दीक छोड़ देता है तो वो मुनाफिक है; जो शख़्स ताज़ीम छोड़ता है तो वो बिद्दती है शख़्स जो हलावत छोड़े वो पाखंडी है; वो दिखावा करता है; शख़्स जो हुरमत छोड़ता है वो फासिक है। इन सबको नकारना कुफ्ऱ है।

साथ ही, ज़िक्र तीन तरह का हैः

1- ज़िक्र-ए-अवाम।

2- ज़िक्र-ए-ख़्वास।

3- ज़िक्र-ए-अख़ास।

ज़िक्र-ए-अवाम ना सीखे हुए लोगों का ज़िक्र है। ज़िक्र-ए-खास इस्लामी आलिमों का ज़िक्र है, ज़िक्र-ए-अख़ास नबियों का ज़िक्र है।

साथ ही, इन्सान तीन अंगों से ज़िक्र करता हैः

1- ज़बान से ज़िक्र यानि कलमा-ए-शहादत कहना।

2- तौहीद और तस्बीह करना और कुरान करीम को पढ़ना और याद करना।

3- दिल से ज़िक्र करना।

दिल से ज़िक्र तीन तरह के होते हैः

1- अल्लाह तआला की तरफ मुतव्वजा करने वाले सबूतों का ध्यान करना।

2- अहकामुल इस्लामिया के सबूतों का ध्यान करना।

3- मख़्लूक़ के इसरार का ध्यान करना।

तफसीर के आलिमों ने सूरह बक़रा की **152**वीं आयत की वज़ाहत इस तरह की है: कुरान करीम में बयान है: "ऐ मेरे बन्दों! अगर तुम ताआत अल्लाह तआला की फरमाबरदारी के साथ मेरा ज़िक्र करोंगे मैं तुम्हारे ज़िक्र के बदले में तुम्हे रहमत दूगाँ। अगर तुम मेरा ज़िक्र इबादत और फरयाद के ज़रिये करोगे तो मैं तुम्हारे ज़िक्र के बदले तुम्हे इजाबत यानि फरयाद क़ुबूल करूँगा। अगर तुम मेरा ज़िक्र ताआत के साथ करोंगे तो मैं तुम्हारे ज़िक्र का बदला अपने नईम जन्नत से दूगाँ। अगर तुम मेरा ज़िक्र तन्हाई में करोगे तो मैं तुम्हारे ज़िक्र का बदला जमिय्याति कुबरा यानि महशर की जगह में से दूगाँ। अगर तुम गरीबी में मेरा ज़िक्र करोगे तो में तुम्हारे ज़िक्र के एवज़ में अपनी मदद से नवाज़ूगाँ। अगर तुम मेरा ज़िक्र इजाबत यानि मेरे दिये हुए का शुक्र करोगे तो मैं तुम्हे हिदायत का रास्ता दिखाऊंगा तुम्हारे ज़िक्र के बदले। अगर तुम मेरा ज़िक्र सिदक और इख्लास के तरीक़े से करोंगे तो मैं तुम्हारे ज़िक्र के बदले तुम्हें ख़लास और निजात दूगाँ। अगर तुम मेरा ज़िक्र

फातिहा शरीफ से और फातिहा शरीफ में रूबुबियत से करोंगे तो मैं तुम्हारे ज़िक्र के एवज़ में तुम्हे रहमत दूगाँ।"

साथ ही इस्लामी आलिमों ने ज़िक्र के कई सौ फायदे बताये है हम उनमें से कुछ लिखेंगेः

जब कोई मुसलमान ज़िक्र करता है, अल्लाहु तआला उससे राज़ी होता है। फरिशतें उससे ख़ुश होते है। शैतान दुखी होता है। इंसान का दिल कोमल और नर्म हो जाता है। वो इबादत ख़ुद दिल से और जोश से करता है। ज़िक्र दिल से ग़म निकाल देता है दिल को ख़ुशमिजाज़ बनाता है और चेहरे को नूर से भर देता है। वो शख़्स बहादुर हो जाता है और मुहबतुल्लाह को पा लेता है। मारीफातुल्लाह से एक दरवाज़ा उसके लिए खोल दिया जाता है, ताकि वो औलियाओं से फैज़ हासिल कर सके। वो कुछ साठ अख़लाक़-ए-हमीदा से नवाज़ा जाता है।

"अशहदु अन्ना मुहम्मदन अब्दुहु व रसूलुह", इस कलमे के मुबारक मायने हैः हज़रत मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' इस वक़्त के नबी, अल्लाह के बन्दे और रसूल है।

आपने खाया, पिया और निकाह किया। आपके बेटें और बेटियाँ थी। और सारी औलादें हज़रत ख़दीजा 'रज़ि-अल्लाहु अन्हा' से थी। सिर्फ इब्राहीम एक जारिया जिसका नाम मारिया था उससे हुई। और दूध छोड़ने के बाद उसका भी इंतेक़ाल हो गया। सिर्फ फातिमा 'रज़ि-अल्लाहु अन्हा' को छोड़के आपकी सारी औलादें आपसे पहले वफात पा गई। आपने अपनी बेटी फातिमा का निकाह हज़रत अली 'करीमुल्लाह' से कराया। हज़रत हसन और हज़रत हुसैन, हज़रत अली और हज़रत फातिमा सबसे अफ़ज़ल है। और आप ही रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की सबसे प्यारी बेटी है।

रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की ग्यारह मुबारक बीवियाँ हैंः हज़रत खदीजा, सौवदा, आयशा, हफ्सा, उम्मी सलेगा, उम्मी हबीबा, ज़ैनब बिन्त जैश, ज़ैनब बिन्ते हुज़ैमा, मैमुना, जुवैयरिय्या, सफीय्या ह्वरज़ि-अल्लाहु अन्हुमाह।

अदिल्ला-ए-शरीय्या किताब, सुन्नत, इज्मा-ए-उम्मत, और क़ियासुल मुजतहिद से बना है। इन चार स्रोतों से इस्लामी आलिमों ने मज़हब इल्म निकाला है। अल्लाह तआला के कलाम को किताब कहते है। सुन्नत, क़ौल-ए-रसूल यानि जो रसूलुल्लाह ने फरमाया फीले-ए-रसूल अल्लाह के रसूल की करी हुई चीज़ें और तक़रीर-ए-रसूल अल्लाह के रसूल की तौफीक और तज़दीक है। इजमा-ए-उम्मत एक ही सदी में मौजूद मुजतहिदों की इतिफाकी राय है मसलन असहाबा-ए-ईकराम 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम' के ज़रिये या चार मज़हबों से। कियास मुजतहिदों के ज़रिये दो अलग चीज़ों पर निकाली गई समानता है।

साथ ही, मज़हब के लफ्ज़ी मायने है, रास्ता। हमारे पास दो अलग रास्ते है एक रास्ता इतिक़ाद का है और दूसरा रास्ता अमल का है।

हमारा रहबर इमाम, अबू मनसूर मातुरीदी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के इतिक़ाद का रास्ता है। उनका रास्ता **अहले सुन्नत** कहलाता है। इस अमल के रास्ते में हमारे रहबर इमामे आज़म अबू हनीफा 'रहमतुल्लाहि तआला' है। उनका रास्ता **हनफी मज़हब** कहलाता है।

अबू मनसूर मातुरीदी का नाम मुहम्मद है, आपके वालिद का नाम भी मुहम्मद है, आपके परदादा का नाम भी मुहम्मद है और आपके उस्ताद का नाम अबू नसर-ए-इयाद 'रहमतुल्लाहि तआला' है।

अबू नसर-ए-इयाद के उस्ताद का नाम अबू बकर-ए-जुरजानी है, उनके उस्ताद का नाम अबू सुलेमान जुरजानी उनके उस्तादों के नाम अबू यूसुफ और इमाम-ए-मुहम्मद शैबानी है। और इन दो बड़ी हस्तियों के उस्ताद है इमामे आज़म अबू हनीफा 'रहमतुल्लाहि तआला' तो इमामे आज़म दोनों मामलों में ख़ास रहबर है हमारे इतिक़ाद के मज़हब में और अमल के मज़हब में।

मुसलमानों के तीन ईमाम रहबर है, उन्हे जानना फर्ज़ है। हमारे ईमाम जिन्होने कुरान करीम के हुक्म और मनाही को आज्ञा दी। हमारे ईमाम जिन्होने हमें यह बताया यानी इस्लाम में रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने। हमारे ईमाम जिन्होने हमें ज़ोर दिया यानि जो करा उसे देखा वो रसूलुल्लाह की तरफ से मुस्लिम राज्य का वज़ीर है।

इमामे आज़म के उस्ताद का नाम हम्माद है, जिनके उस्ताद का नाम इब्राहिम नेहाई जिनके उस्ताद अलकाम बिन क़ैस जो उस वक़्त हज़रत नेहाई के मामा भी थे। हज़रत अलकामा के उस्ताद अब्दुल्लाह इब्ने मसऊद 'रहमतुल्लाहि तआला' है, जिनको इल्म हुज़ूर पाक 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' से मिला।

यह इल्म रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' को जिबराईल 'अलैहिस्सलाम' से मिला। अपनी वारी में जिबराईल 'अलैहिस्सलाम' को वह हुक्म अल्लाहु तआला अज़ीमुश्शान से मिला।

अल्लाह तआला ने इंसान पर चार ज़ेवर अता फरमाये: अक़्ल, ई मान, हया और फील यानि अमल-ए-सालिह।

साथ ही, इबादत और सालिह काम तभी क़ुबूल होते है जब पाँच शर्ते पूरी हो ईमान, इल्म, नीयत, खुलूस, यानी, इखलास किसी का हक़ न मारना (जिन्हे कुल का हक़ कहा जाता है।) सबसे पहले अहले सुन्नत पर यक़ीन रखना है और सारी शर्ते जो इबादत के वक़्त इस्तेमाल होती है उन्हे जानना।

[किसी अमल का सहीह होना उसके क़ुबूल होने से अलग है। इबादत की कुछ अपनी शर्ते और फराइज़ है जिनका पूरा होना उस इबादत के सहीह होने के लिए ज़रूरी है। अगर उनमें से कोई एक भी मौजूद नहीं है तो इबादत सहीह नहीं होगी। यह उस इबादत को न करने के बराबर ही है और इसके लिए वो ख़ुदको अज़ाब में मुबतिला होने से नहीं बचा सकता। अगर इबादत क़ुबूल न हुई हो पर सहीह हो तो उसपे कोई अज़ाब नहीं है। यानि मुसलमान ऐसी इबादत के लिए कोई सवाब हासिल नहीं करेगा। इबादत के क़ुबूल होने के लिये पहले उसका सहीह होना लाज़िम है; यानि ऊपर कही गई पाँच शर्तो का मुकम्मल होना ज़रूरी है। क़ुल के हक़ इन शर्तो में से है।] इमामे रब्बानी 'रहमतुल्लाहि तआला' अपनी किताब **मकतूबात** के दूसरे जिल्द के **87**वे ख़त में लिखते है। [यह ख़त **सआदत अबदिया** के तीसरी जिल्द के **15**वें बाब में मौजूद है।] "अगर कोई शख़्स नबियों के जैसे अमल करता है और फिर भी क़ुल का हक़ बरक़रार रखता है, उतना जितना दंक है [यानि उसकी मिकदार से] वो जन्नत में तब तक दाख़िल न होगा जब तक उसे अदा न कर दे।" [उसकी दुआंए क़ुबूल नहीं होगी।]

इब्ने हजर-ए-मक्की 'रहमतुल्लाहि तआला' अपनी किताब **ज़ेवाजिर** के **187**वें गुनाह के काम में फरमाते हैः सूरह बक़रा की **188**वीं आयत कहती हैः **"ऐ ईमान वालों! एक दूसरे का माल बातिल की तरह ख़त्म मत करो!"** उस तरह से मायने है फिरौती सूद जुआ चोरी धोखा गरारी झूठ गवाह वग़ैरह में सर्फ करना। कुछ हदीस शरीफ इस तरह हैः **"एक शख़्स जो हलाल में से खर्च करता है और फर्ज़ करता है और हराम से बचता है और बिना किसी वजह के दूसरों को नुक़सान नहीं पहुचाँता वो जन्नत में जायेगा।"** और **"एक जिस्म जो हराम में मुबतिला है जहन्नुम में जलाया जायेगा"** और **"अगर लोग किसी इन्सान के गुस्से और नुक़सान से ख़ुद को हिफाज़त से महफूज़ नहीं करते, वो शख़्स अपनी नमाज़, ज़कात या ईमान का फायदा नहीं ले सकता।"** और

"अगर एक इन्सान का जिलबाब हराम से है तो उसकी नमाज़ क़ुबूल नहीं होगी।" इजिलबाब के मायने है औरत का पूरा दुपट्टा। दूसरा लम्बा कपड़ा जिसे आदमी पहनते है उसे भी जिलबाब कहते है। कुछ लोगों की राय यह भी है कि जिलबाब औरत के पहनने का दो टुकड़ों वाला चारशफ है, हदीस शरीफ बयान करती है कि आदमी भी चारशफ पहनते है। यह ज़ाहिर है कि उनकी कमज़ोर बहस जाहिल और ऊटपटांग यक़ीन दिखाती है। दो सौ वे हदीस शरीफ गुनाह का काम **"वो शख़्स जो मिलावटी तिजारत करता है वो हमारे समाज से नहीं है। उसका ठिकाना जहन्नुम है।"** यह हदीस शरीफ में लिखा है जोकि 210वें गुनाह के काम में लिखी हैः **"जहन्नुम उन लोगों का ठिकाना है जो अपने पड़ोसियों को अपनी ज़बान से परेशान करते है हत्ता कि वो नमाज़ पढ़े या रोज़ा रखे या बहुत ज़्यादा अमल करता हो।"** चाहे किसी का पड़ोसी काफिर क्यो न हो, यह ज़रूरी है कि उसे तंग न किया जाये, उन पर एहसान किये जाये और उनसे नरमी से पेश आया जाये। 313वें गुनाह के काम में हदीस शरीफ का बयान है किः **"एक शख़्स जो अमन के ज़माने में किसी काफिर को नाहक कत्ल करता है वो जन्नत में दाख़िल नहीं हो सकता।"** दूसरी हदीस शरीफ हैः **"जब दो मुसलमान दुनियावी मामले में लड़ते है, तो मरने वाला और मारने वाला दोनो जहन्नुम में जाते है।"** 317वें गुनाह के काम में हदीस शरीफ बयान हैः **"लोगों पर ज़ुल्म करने वाला आख़िरत के दिन अज़ाब में होगा।"** तो यही बात गैर मुस्लिमों के साथ ज़ुल्म करने पर भी है। 350वें गुनाह के काम में हदीस शरीफ बयान है किः **"तीन लोगों की फरयादे यक़ीनन क़ुबूल की जायेंगीः मज़लूमों की, मुसाफिरों की और वालदैन की।" "एक मज़लूम शख़्स की फरयाद न मन्ज़ूर नहीं की जायेगी हत्ता कि वो एक काफिर हो।"** 402वें गुनाह के काम में हदीस शरीफ है किः **"एक शख़्स जो अपने दोस्त को मार डाले वो हमारे समाज से नहीं है हत्ता कि उसका दोस्त काफिर ही क्यो न हो।"** 409वें गुनाह के काम में हदीस शरीफ है किः **"सारे गुनाहो में से किसी**

के ख़िलाफ बढ़ती हुई हुकूमत, उसकी होगी जिसके अज़ाब में सबसे ज़्यादा तेज़ी बरती जायेगी।" **ज़ेवाजिर** का हमारा तर्जुमा यहाँ मुक्म्मल हुआ। ऐ मुसलमानों! अगर तुम अल्लाह की रहमत हासिल करना और अपनी दुआओं और इबादात की कुबूलियत चाहते हो तो ऊपर लिखी हुई हदीसों को अपने दिल में गाढ़ लो! किसी के माल, जान या इज़्ज़त को नुक़सान न पहुँचाओ! मुसलमान और गैर्रमुसलमान एक जैसे है। किसी को तकलीफ मत दो! लोगों को उनका हक़ दो! 'मेहर' देना कुल के हक़ में से एक हक़ है [**सआदत अबदिया** के छठे एडिशन का **15**वां बाब और पाँचवें एडिशन का **12**वां बाब देखे] उस औरत को जिसको उसने तलाक़ दिया हो अगर वो 'मेहर' नहीं अदा करता तो दुनिया व आख़िरत दोनों में बहुत सख़्त अज़ाब झेलेगा। कुल के हक़ ह्ययानि इन्सानों और मख़्लूक़ोंह में से सबसे अहम हक़ जिसको अदा न करने पर सबसे ख़तरनाक अज़ाब मिलेगा वो है अपने रिश्तेदारों को इस्लाम सिखाना ख़त्म कर देना ख़ासकर कि जब वो किसी की सरपरस्ती और हिफ़ाज़त में हो तो। अगर कोई शख़्स दूसरे लोगों को जुल्मों सितम या धोखे की बिना पर इस्लाम की तालीम लेने से और इबादत करने से रोकता है तो वो शख़्स इस्लाम न मानने वाला और इस्लाम का दुश्मन समझा जाता है। इसकी एक मिसाल है अहले सुन्नत की तालीम को नापाक करने और इस्लामी मज़हब को ख़त्म करने में करी जाने वाली कोशिशें, जोकि बिद्दती लोगों और किसी अलग मज़हब के लोगों की तरफ से है, तवाहकुन बयानों और दंगे कराने वाली बातों के ज़रिये। कभी हुकूमत या कानून के ख़िलाफ मत खड़े हो। अपने टैक्स भरो। हुकूमत के ख़िलाफ खड़ा होना गुनाह का काम है, यह **बरीका** किताब में लिखा है। (जोकि मुहम्मद बिन मुस्तफा हादिमी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' के ज़रिये लिखी गई। d. 1176 (1762 A.D.), हादिम, कोनया तुर्की) चाहे तुम दारू-उल-हर्ब में हो, यानी काफिरों का मुल्क। उनके कानून को मत तोड़ो! फितना मत फैलाओ! जो लोग इस्लाम पर हमला करते है बिद्दती है या जो चार में से

किसी भी मज़हब से नहीं है उन्हे दोस्त न बनाओ! उनकी किताबें और अख़बार मत पढ़ो! उनके रेडियो और टेलीविज़न के प्रोग्रामों को अपने घरों में मत आने दो! उन लोगों के साथ **अमर-ए-मारूफ** (यानि इस्लाम की तालीम) दो जो तुम्हारी सुने! दूसरे लफ़्ज़ों में उन्हे ख़ूबसूरत अख़लाक़ से इस्लाम की इज़्ज़त और अज़मत लोगों में बिखेरो जो तुम्हारे आस पास हो!

इब्ने आबिदीन 'रहमतुल्लाहि तआला' [फिक के आलिम, जिनका असली नाम सय्यद मुहम्मद अमीन बिन 'उमर बिन' अब्दुल अज़ीज़ (1198 [1784 A.D.], दामस्कस - 1252 [1836], उसी जगह) दुर्र-उल-मुख़्तार के ऐनोटेशन में आपने 5 जिल्द लिखी **रद-उल-मुख़तार** की। **दुर्र-उल-मुख़्तार, अलाउद्दीन हसकफी** 'रहमतुल्लाह तआला अलैहि' के ज़रिये लिखी गई थी (1021, हसकफ - 1088 [1677]), **सआदते अबदिया** के छटे एडिशन के 100 और 30वें बाब जिनमे फिक की तालीम है वो **रददुल-मुख़तार** से ही लिये गये है।] पहले बाब में फरमाते है: सैव एतेइन सवाअतैन यानि जनन संबंधी और गुदा का हिस्सा, चारों मज़हब में ग़ालिध आवरत है। [**सआदत अबदिया** के चौथे एडिशन का 8वां बाब देखे।] चारों मज़हब में शर्मगाहें छुपाना फर्ज़ है। एक शख़्स जो इनको ढकने में अहमियत नहीं दिखाता वो काफिर हो जाता है। एक शख़्स जो अपने घुटने दिखाता है उसे अमर-ए-मारूफ देना चाहिए ताकि वो अपने घुटनों को ढक सके। हालांकि अमर-ए-मारूफ को नर्म अलफ़ाज़ों में सिखाना चाहिए। और उसकी तरफ से कि गयी ज़िद्दि हरकत को खामोशी से जवाब देना चाहिए। जांघों को दिखाती हुई जिद, दूसरी तरफ डांटी जानी चाहिए। अगर कोई शख़्स अपने सेवेतैन को खोलते हुए और उसे न ढकने पर आमादा हो तो उसकी शिकायत अदालत में करनी चाहिए जो उसे ढकने पर मज़बूर करे। यही तरीका गुनाह के गहरा होने पर भी होता है, आदमी के अवरत हिस्सों को देखना।" मुसलमान औरतों के लिए फर्ज़ है कि वो ना-महरम मर्दो और गैर-मुस्लिम औरतों के सामने अपना पूरा जिस्म हाथ

और चेहरे को छोड़कर, ढक कर रखे, इसका मतलब है कि वो अपने पैर, बाहे और बाल ऐसे लोगों की मौजूदगी में छुपा के रखे, (ना महरम लोगों मर्द या औरत के बारे में **सआदते अबदिया** 5वें एडिशन के 12वें बाब में लिखा है।) शाफी मज़हब में चेहरा छुपाना भी फर्ज़ है। अगर उनके बाप या शौहर इसमें अहमियत नहीं दिखाते तो वो काफिर हो जाते है। लड़कों के लिए नाचना या खुले पैर खेल खेलना कबीरा गुनाह है, और लड़कियों के लिए भी यही बिना अपना सर और बाल ढके करना या करता देखना। एक मुसलमान को अपना वक़्त खेल खेलने में या बेकार चीज़ें करने में बर्बाद नहीं करना चाहिए बल्कि इसका फायदा नमाज़ पढ़कर और सीखकर उठाना चाहिए। **किमया-ए-सआदत** में बयान हैः "जैसा कि औरतों के लिए खुले सिर, बाल और नंगे हाथ व पैर बाहर जाना हराम है, वैसे ही बारीक, ज़ेवर लगे, कसे हुए और ख़ुशबू लगे हुए कपड़े पहन के जाना भी हराम है। वालदैन, शौहर या भाई जो अपनी औरतों को इसके लिए माफ कर देते है या उसका साथ देते है या पसन्द करते है वो भी उसके अज़ाब में हिस्सेदार है। दूसरे लफ्ज़ों में वो भी उनके साथ जहन्नुम में जलाये जायेंगे। अगर वो तौबा कर ले, वो माफ कर दिये जायेंगे और नहीं जलाये जायेंगे। अल्लाह तआला तौबा करने वालों को पसन्द करता है।

ज़वगत और गज़ावत-ए-पैग़म्बरी

नबी की मुबारक बीवियाँ और पाक लड़ाईयाँ

रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' चालीस साल के थे, जब हज़रत जिबराईल आपके पास आये और आपको बताया कि वो नबी है। तीन साल बाद आपने मक्का में अपनी नबुव्वत का ऐलान किया। उस साल को **बिधात** का साल कहा जाता है। आपने **27** बार जिहाद (मज़हबी लड़ाई) किया। उनमें से **9** में आपने ख़ुद ही हमला किया। **18** पाक लड़ाईयों में आप ख़ुद कमांडर थे। आपके चार बेटें चार बेटियाँ ग्यारह बीवियाँ बारह चाचा व मामा और छः ख़ालाये थी। आप ने **25** साल की उमर में ख़दीर्जातुर्लकुबरा से निकाह किया। ख़दीजा-तुल-कुबरा के इन्तेकाल के एक साल बाद आपने यानि **55** साल की उम्र में भी अल्लाह के हुक्म से हज़रत अबू बकर 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' की बेटी आइशा से निकाह किया। और **63** बरस की उम्र में आपने अपने कमरे में वफात पाई जो मस्जिद के पास था। आपको उसी कमरे में दफनाया गया। जब मस्जिद को वसीअ किया गया था। तो वो कमरा भी मस्जिद में आ गया था। हज़रत अबू बकर और हज़रत उमर 'रज़ि-अल्लाहु अन्हुम' भी इसी कमरे में दफनाये गये। हगीरा के सातवे साल में आपने, उम्मे हबीबा से निकाह किया, जोकि मक्का के कुरैश काफिरों के सरदार अबू सूफयान की बेटी थी। अबु सूफयान, हज़रत उमर 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' के वालिद थे। मक्का के फतह होने पर वो ईमान लाये। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने हफसा से निकाह किया जो हज़रत उमर 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' की बेटी थी। हिजरत के पाँचवे साल में, आपने जुवैरिय्या को खरीदा, जोकि बनी मुसतलाक़ कबीले की पकड़ी गई बांदी थी ह्यमूरेसी की पाक लड़ाईह और सरदार की बेटी थी, उसे छुड़ाया और उससे निकाह किया (यानि आपने

इस्लामी तौर से उनसे शादी की जिसका ज़िक्र तफ्सील में **सआदत अदबिया** के पाँचवे एडिशन के बारवें बाब में है।) मज़हब तरग़ीब के लिये आपने उम्मा सालामा, सेवदा, ज़ैनब बिन हुज़ैमा, मैमुना और सफिय्या 'रज़ि-अल्लाहु अन्हुमा' से निकाह किया; आपके चाचा की बेटी ज़ैनब से निकाह अल्लाहु तआला ने करवाया।

जिबराईल 'अलैहिस्सलाम' आपके पास **24** हज़ार दफा आये। आप **52** साल के थे जब आप मेराज **[सआदत अबदिया** के तीसरे एडिशन के **60**वें बाब में मेराज का ज़िक्र तफ्सीर से है।] पर गये। **53** साल की उमर में आपने मक्का से मदीना हिजरत की। आप और अबू बकर सेवर नाम की गुफा में तीन रातों तक रूके और पीर की रात को गुफा को छोड़ रवाना हुए। हफ्तों पैदल चलने के बाद, वो कूबा पहुँचे, जो मदीना का एक गाँव था। वो **20** सितम्बर को पीर के दिन पहुँचे। और जब वो मदीना पहुँचे वो उसी हफ्ते का जुमा था।

रमज़ान के मुबारक महीने में बदर की पाक लड़ाई, हिजरत के दूसरे साल, पीर के दिन लड़ी गई। **313** मुसलमान जिहादी जिसमें **8** अलग-अलग कामों में थे, उनके ख़िलाफ हज़ारों कुरैश थे। **13** सहाबियों ने शहादत हासिल की। अबु जहल और **70** अलग काफिर क़त्ल किये गये।

हैगीरा के तीसरे साल में शव्वाल के महीने में उहुद की पाक लड़ाई हुई। **700** मुसलमानों की फौज, तीन हज़ार मज़बूत काफिरों के ख़िलाफ थी। **70** सहावा अकरम शहीद हुए। उहुद की लड़ाई के चार साल बाद **70** जवान सहावा इस्लाम के मिशन पर नजद के वाशिन्दों के पास भेजे गये। जब वो एक जगह जिसका नाम **बीरी मैमुना** पहुँचे तो पूरे ग्रुप ने घात लगाकर उनपर हमला किया, दो सहाबियों को छोड़के सब शहीद हो गये।

पाँचवा हैरीगल साल हन्दक की लड़ाई का गवाह है। **10** हज़ार काफिरों के मुकाबले में तीन हज़ार मुसलमान थे। काफिरों ने मदीना का मुहासिरा करा। मुसलमानों ने पहले ही मदीना के नीचे एक खाई खोद दी थी। एक साथ पहले हैबर की पाक लड़ाई में जोकि सातवें साल में हुई थी, एक समझौता **बैतु-र-रिज़वान**, हुदैबिया नाम की जगह में हुआ। मुता का पाक जिहाद बीजान्दी कैसर हैराकुलैस के ख़िलाफ हुआ। तीन हज़ार मुसलमान, सौ हज़ार मज़बूत बीजान्टीन फौज के ख़िलाफ थे। जाफर तय्यर 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' ने इस जंग में शहादत पाई। ख़ालिद बिन वालिद के ज़रिये ये जंग जीती गई। मक्का आंठवे साल में फतह हुआ। **हुनैन** एक मशहूर और बड़ी मज़हबी जंग है। वो जीत के साथ ख़त्म हुई। **हैबर** एक जानी मानी गढ़ी है। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने हज़रत अली 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' को भेजा और गढ़ी पर फतह हासिल हुई। यह वो जगह थी जहाँ रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' को ज़हरीला खाना पेश किया गया था और आपने मना कर दिया था। वहाँ से वापसी के वक़्त हज़रत आईशा बदनामी का शिकार हुई, जिसने अल्लाह के नबी को बहुत ग़मगीन कर दिया। आयते करीमा नाज़िल हुई, जिससे पता चला कि वो बदनामी एक शैतानी झूठ था। ताईफ की जीत भी मशहूर है।

अगर तुम ख़ुशी चाहो, ऐ नौजवान,
तो मेरे बच्चों, लगातार इस्लाम के लिए रोज़े रखो।

यह फ़र्ज़, वाजिब, सुन्नत और मनदूब है,
और साथ ही साथ अमर-ए-बिल मारूफ।

हमेशा इन्हे पूरा करो, कोई भी छूटे ना,
सगीरा और कबीरा एक जैसे है।

मकरूह और हराम से बचना भी ज़रूरी है,
कुल का हक़ अदा करना भी लाज़िम है।

सीधे अहले सुन्नत से सीखो!
और जो सीखो उसे फ़ौरन अमल में लाओ!

ईमान की वज़ाहत के बारे में

ईमान की **12** वज़ाहते हैः मेरा रब अल्लाह तआला है। इसके सबूत का लेख सूरह बक़रा की **163**वीं आयत में मौजूद है। मेरे नबी हज़रत मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' है। इसके सबूत का लेख सूरह फातिहा की **28**वीं और **29**वीं आयत में है। मेरा मज़हब इस्लाम है। इसका सबूत सूरह अल इमरान की **19**वीं आयत में है। मेरी किताब क़ुरान करीम है। इसका सबूत सूरह बक़रा की दूसरी आयत में है। मेरा किबला काबा शरीफ है। इसका सबूत सूरह बक़रा की **144**वीं आयत में है।

मेरा मज़हब इतिक़ाद में **अहले सुन्नत वल जमाअत** है। इसका सबूत सूरत अनआम की **153**वीं आयत में है।

मेरे सबसे पहले पुर्खे हज़रत आदम है। इसका सबूत सूरह आराफ की **172**वीं आयत में मौजूद है।

मेरी मिल्लत, मिल्लत-ए-इस्लाम है। सूरह हज की **78**वीं आयत मेरी बात का सबूत है।

मैं मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की उम्मत में से हूँ। इसका सबूत सूरह अल इमरान की **110**वीं आयत में मौजूद है।

मैं एक सही (हक्कान) मोमिन हूँ। सूरह अन्फाल की चौथी आयतुल करीम इसका सबूत है। अल हम्दु लिल्लाहि अला तौफिकिहि वस तग़फिरूल्लाहा मिन कुल्ली तक्सिरीन।

इल्म, अमल से पाँच वजहों से बड़ा हैः जिस चीज़ का इल्म मुहताज है उसका अमल मुहताज है। इल्म ज़रूरी है जबकि अमल उससे अलग नहीं किया जा सकता। इल्म ख़ुद ब ख़ुद फायदा पहुँचा सकता है जबकि अमल बिना इल्म के फायदा नहीं दे सकता।

इल्म, अक़्ल से ऊंचा है। जैसे पहले (साबिक) कदीम है पर आखिरूल ज़िक्र हदीस है। (यानि वो लावजूद से वजूद में आई।)

आदमी के ज़ीनत (ज़ेवरात) उसके इख़्लास के साथ है। इख़्लास की ज़ीनत ईमान के साथ है। ईमान की ज़ीनत जन्नत के साथ है। जन्नत की ज़ीनत है हुरीस, गिलमन और जमालुल्लाह में। यानि अल्लाह तआला को इस तरह देखना जो न सोचा जा सकता है न बयान किया जा सकता है।

साथ ही, अगर अमल ईमान का हिस्सा होता तो एक हायज़ा (महावारी) याफ्ता औरत को हर रोज़ की नमाज़ से दोष मुक्त (साकित) नहीं किया जाता। इसलिए, ईमान इससे साकित नहीं किया जा सकता।

कलमा-ए-शहादत का कम से कम ज़िन्दगी में एक बार कहना फर्ज़ है। मुहम्मद सूरत की 19वीं आयत इसका सबूत है।

कलमा-ए-शहादत कहने की चार शर्तें हैः जब ज़बान इसे कहे तो दिल साथ हो (यानि दिल से हो)। इसके मायने का इल्म होना। इसे साफ दिल से बोलना। इसे ताज़ीम के साथ बोलना।

यहाँ कुछ **130** फायदे है कलमा-ए-शहादत बोलने के। पर, चार चीज़ों के होने से इसके सारे फायदे ख़त्म हो जाते है। यह चार चीज़ें हैः शिर्क, शक, तशबीह और तआतिल। शिर्क का मतलब है अल्लाह तआला का शरीक बनाना। शक का मतलब है मेक्स (संदेह) मज़हब में। तशबीह के मायने है अल्लाह तआला को एक ग़ैर हक़ीकी (काल्पनिक) हयात में मिलना। तआतिल के मायने है (यक़ीन रखना) और कहना कि, "अल्लाह तआला चीज़ों के साथ कुछ नहीं करता, हर शय वजूद में आती है जब उसका वक़्त आता है।"

और साथ ही इस लेख में **130** में से **30** फायदे लिखे है। यह है **30** फायदे, पाँच वो जो दुनिया में है, अगले पाँच मरने के वक़्त, अगले पाँच कब्र के, अगले पाँच उस जगह के जिसे अरासात कहते है, अगले पाँच दोज़ख़ के और आख़िरी पाँच जन्न्त के। दुनिया के पाँच फायदे इस तरह हैः

1- उसका नाम ख़ूबसूरती से लिया जायेगा।

2- उसमें अहकाम-ए-इस्लामिया मौजूद होगे।

3- उसकी गर्दन तलवार से महफूज़ होगी।

4- अल्लाह अज़ीमुश्शान उससे राज़ी होगा।

5- सारे ईमान वाले उसकी तरफ खिचेंगे।

मौत के वक़्त के पाँच फायदे यह है किः

1- इज़राईल 'अलैहिस्सलाम' (मौत के फरिशतें) बहुत ख़ूबसूरत शक्ल में सामने आयेंगे।

2- फरिश्ता उसकी रूह जिस्म से ऐसे निकालेगा जैसे मक्खन में से बाल निकाला जाता है।

3- जन्नत की ख़ुशबू उस तक पहुँचेगी।

4- उसकी रूह को इल्लियीन (जन्नत के आठ बागों में सबसे ऊपर) पर ऊपर तक ले जाया जायेगा और फरिश्तें अच्छी ख़बरों के साथ वहाँ आयेंगे।

5- एक आवाज़ कहेगीः "मरहबा (ख़ुश आमदीद), ऐ ईमान वाले, तेरी क़िस्मत में जन्नत है।"

उसकी कब्र के पाँच फायदे हैः

1- उसकी कब्र कुशादा (बड़ी, विशाल) होगी।

2- (सवालातों के फरिशतें) मुनकर व नकीर बेहद ख़ूबसूरत शक्ल में सामने आयेंगे।

3- एक फरिशता उसे वो सिखायेगा जो वो नहीं जानता।

4- अल्लाहु तआला उसके ज़हन की हौसला अफज़ाई करेगा।

5- वो जन्नत में अपना घर देखेगा।

अरासात के पाँच फायदे हैः

1- हिसाब के सवालात और सुनवाई जो इन्सान के साथ होने वाली होती है उसमें आसानी।

2- उस इन्सान के नामा-ए-आमाल (यानि इन्सान की ज़िन्दगी का लफ्ज़ बा लफ्ज़ हिसाब जो उसने कहा या करा) उसके सीधे हाथ में दिया जायेगा।

3- उसके सवाब का वज़न पैमाने पर ज़्यादा वज़नी होगा।

4- वो 'अर्श-ए-रहमान' के साए में बैठेगा।

5- वो बिजली की रफ्तार से पुल-ए-सिरात को पार करेगा।

जहन्नुम में पाँच फायदे इस तरह हैः

1- वो जहन्नुम में दाख़िल नहीं होगा और उसकी आँखें बाकी जहन्नुमियों की तरह भूरे रंग में तवदील नहीं होगी।

2- वो अपने शैतान से लड़ाई नहीं करेगा।

3- न उसके हाथों में आग के कफ चढ़ाए जाऐंगे और न ही गले में आग की ज़ंज़ीर।

4- उसे हमीम (वेइन्तेहा गर्म पानी) पीने की सज़ा भी नहीं मिलेगी।

5- वो हमेशा जहन्नुम में नहीं रहेगा।

जन्नत में पाँच फायदे हैः

1- हर फरिश्ता उसका इस्तक़बाल करेगा।

2- सिद्दिक़ियों के साथ दोस्ती रहेगी।

3- जन्नत उसका अवदी ठिकाना होगी।

4- अल्लाह तआला उससे राज़ी रहेगा।

5- वो शख़्स अल्लाह तआला को देखने की अज़मत हासिल करेगा।

[काज़ी ज़दा अहमद अफेन्दी (**1133-1197** [**1783** A.D.]) अपनी किताब **फरादुल फवाईद** में **अमेन्तु के शहर** में फरमाते है: जहन्नुम सात परतों से बनी है जो एक के ऊपर एक है। हर नीचे की परत की आग ऊपरी पर्त से ज़्यादा शदीद है। मुसलमान अपने न बख़्शे हुए गुनाहों के लिये दोज़ख़ की पहली पर्त में जलाये जायेंगे जब तक अपने गुनाहों का हिसाब पूरा न कर ले: फिर वो जहन्नुम से निकाल के जन्नत में दाख़िल कर लिया जायेंगे। बाकी की छः पर्ते बाकी अलग-अलग काफिरों को जलाने के लिए है। मुनाफिक सातवीं परत में जलाये जायेंगे और सबसे शदीद अज़ाब झेलेंगे। ये दो चेहरे वाले काफिर है जो अपनी बातों से इस्लामी है पर दिल से काफिर है। जब काफिर जल के राख़ हो जायेंगे तो उन्हे दोबारा बनाया जायेंगा और दोबारा जलाया जायेंगा, ये जलने का सिलसिला हमेशा चलता रहेगा। जन्नत और जहन्नुम अब भी मौजूद है कुछ इस्लामी आलिमों के मुताबिक़, जहन्नुम का पता मालूम नहीं है। जबकि कुछ के मुताबिक़ यह ज़मीन की सात पर्तो के नीचे है। इनके यह लफ़्ज़ दिखाते है कि यह ज़मीन में मौजूद नहीं चूंकि चांद, सूरज, ज़मीन, सितारे सब पहले आसमान के नीचे है तो, हम जिस ज़मीन पर है यहाँ की सात पर्तो के नीचे एक जन्नत है। इसलिए जहन्नुम ज़रूर जन्नत की सात पर्तो में से एक है।]

कुफ्र के वजहें

कुफ्र तीन तरह का होता है, [यानि अल्लाह से दुशमनीः] कुफ्र-ए-इनादी, कुफ्र-ए-जेहली (या जाहली), और कुफ्र-ए-हुक्मी।

कुफ्र-ए-इनादी एक शख़्स का जान बूझकर इस्लाम और ईमान से किया जाने वाला ज़िद्दी इन्कार है, यानि अबू जहल, फिरऔन, नमरूद और शैद्दाद (शद्दाद बिन आद) जैसे लोगों का कुफ्र। इन लोगों को सीधे यह कहना कि यह लोग दोज़खी है, जायज़ है।

कुफ्र-ए-जहली: जैसा कि आम लोगों में मौजूद काफिर यह जानते है कि इस्लाम सही मज़हब है और अज़ाने मुहम्मदी को सुनते है, अगर तुम उनसे कहते हो कि, "आओ, मुसलमान बनो," तो वो कहते है, "अपनी ज़िन्दगी का तरीका वो है जो हमने अपने दादा-परदादाओं और परिवार से सीखा है। हम उसे ही जारी रखेंगे।"

कुफ्र-ए-हुक्मी के मायने है, तहकीर (तौहीन जैसा सलूक), की जगह ताज़ीम (अज़मत जैसा सलूक) और ताज़ीम की जगह तहकीर।

औलिया और अम्बिया (नबीयों) और अल्लाहु तआला के उलेमाओं और उनके बयानों और फिक की किताबों और दिये गये फतवों को अज़मत न देते हुए बल्कि तौहीन करना भी कुफ्र है। काफिरों के मज़हबी सस्कार को पसन्द करना और जुन्मार (एक पुजारी के ज़रिये पहने जाने वाली रस्सी) पहनना बिना किसी ज़रूरत के और पादरी कपड़े पहनना और क्रोस जैसे निशानों का पहनना भी कुफ्र है।

कुफ़्र से सात नुक़सान हैः यह यक़ीन और निकाह को ख़त्म करता है। ऐसे इन्सान के ज़रिये मारे गये खाये जाने वाले जानवर को भी नहीं खाया जा सकता (चाहे उसने इस्लाम की शर्तो के मुताबिक़ उस जानवर का गला घोटा हो) उसका अपने हलाल के साथ किया हुआ भी ज़िना बन जाता है। उस आदमी को क़त्ल करना वाजिब हो जाता है। जन्नत उससे दूर हो जाती है। जहन्नुम उसके नज़दीक हो जाता है। अगर वो कुफ़्र की हालत में मर जाता है तो उसके लिये नमाज़े जनाज़ा नहीं पढ़ाई जाती।

अगर कोई शख़्स अपनी ख़्वाहिश से कहता है कि, "फला फला के पास फला फला चीज़ है (या नहीं है)। अगर मैं ग़लत हूँ तो हो सकता है मैं एक काफिर हूँ," उसने एक कसम खाई है जो उसे कुफ़्र में घसीटती है, इस बात से बेपरवाह हो कि उस शख़्स ने किसी मख़सूस चीज़ का नाम लिया हो या नहीं। उसके ईमान और निकाह की तजदीद ज़रूरी है।

इस्लाम में मना किये गये काम जैसे ज़िना, सूद या झूठ बोलना को यह कहना कि, "काश! यह हलाल होते, तो मैं इसे कर लेता!" भी कुफ़्र का सबब बनता है।

मसलन अगर कोई शख़्स कहेः "मैं नबियों पर ईमान रखता हूँ। पर मैं नहीं जानता कि आदम 'अलैहिस्सलाम' एक नबी है," तो वो काफिर हो जाता है। एक शख़्स जो नहीं जानता कि हज़रत मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' आख़िरी नबी है वो भी काफिर हो जाता है।

जैसा कि इस्लामी आलिमों के ज़रिये बयान है कि अगर एक इन्सान कहता हैः "अगर नबी 'अलैहि स्सलातु वस्सलाम' ने जो कहा है वो सच है तो हम निजात पा चुके है।" तो वो काफिर हो जाता है। बिरगिवी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' ने फरमायाः "अगर वो इन्सान इसको शक के नज़रिये या भाव से

कहता है तो वो काफिर हो जाता है। पर अगर वो इसे इलज़ाम के भाव से कहता है तो काफिर नहीं होता।

यह इस्लाम के उलेमाओं की तरफ से बयान है कि अगर एक शख़्स को साथ में नमाज़ पढ़ने की दावत दी जाये और वो जवाब दे कि वो नहीं पढ़ेगा तो वो काफिर हो जाता है। पर वो काफिर नहीं होगा अगर उसके कहने का मतलब हैः "मैं आपकी सलाह पर नमाज़ नहीं पढूँगा। मैं ऐसा करूँगा क्योंकि अल्लाहु तआला ने ऐसा हुक्म दिया है।"

अगर लोग किसी ख़ास शख़्स पर कहते हैः "एक हाथ की मुठठी से छोटी दाढ़ी मत उगाओं या उसे इतना छोटा करो कि वो एक हाथ की मुठठी में आ जाये या अपने नाख़ून काटो क्योंकि यह हमारे रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की सुन्नत है," और अगर वो शख़्स कहता है कि, "नहीं मैं वो नहीं करूँगा जो तुम कहते हो।" तो वो काफिर हो जाता है। यही चीज़ दूसरी सुन्नतों के मुताल्लिक़ भी लागू होती है, पर यह सुन्नत आम हो यानि आम तौर पर सुनी हुई हो और तवस्सुर के तरीक़े से कि सवाल में काम भी एक सुन्नत है। इसकी एक मिसाल (दाँतों का साफ करना) मिसवाक (पहले या वुज़ू के दौरान) है। हज़रत बिरगिवी [ज़ैनुल मुहम्मद बिरगिवी अफेन्दी 'रहमतुल्लाहि ताला अलैहि' [928 (1521 A.D.)], बलिकेसिर ' 981 [1573], बिरगी व] ने इस मुद्दे पर कुछ जोड़ा हैः "अगर वो सुन्नत को नकारते हुए कुछ कहे तो वो कुफ्र होगा। पर यह कुफ्र नहीं होगा अगर वो कहेः "मैं सिर्फ ऐसा तुम्हारे कहने से नहीं करूँगा क्योंकि यह तुमने कहा है। पर मैं इसे इसलिए करूँगा क्योंकि यह रसूलुल्लाह की सुन्नत है।

[यूसुफ क़रदवी अपनी किताब **अल हलाल वल हराम फिल इस्लाम** के चौथे एडिशन के इक्यासिवे सफहे पर लिखते है किः किताब हदीस शरीफ या **जामी सहीह** [मुहम्मद बिन इस्माईल बुख़ारी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि'

(194 [810 A.D.], बुख़ारा - 256 (870), समरकन्द के ज़रिये इकट्ठा की गई] में बयान हैः **"मुशरिकों से उल्टे बरताव करो! अपनी दाढ़ी बढ़ाओ! अपनी मूंछे काटो!"** यह हदीस शरीफ अपनी दाढ़ी काटने से रोकती है और उसे एक मुठठी से छोटा रखने को कहती है। आग की इबादत करने वालों ने अपनी दाढ़ी काट दी। और कुछ ने अपनी दाढ़ी ही हटा दी। यह हदीस शरीफ हमें उनके रिवाज़ के बरअक्स करने का हुक्म देती है। कुछ फिक के आलिम यह भी कहते है कि इस हदीस शरीफ के मुताबिक़ दाढ़ी उगाना वाजिब है और दाढ़ी पूरी कटवाना हराम है। उनमें से एक इब्ने तैमिया दाढ़ी पूरी कटवाने के ख़िलाफ बड़ी सख़्ती से लिखते है। दूसरी तरफ कुछ इस्लामी आलिमों के मुताबिक़ यह एक रिवायती चीज़ है, न कि इबादती। किताब फतह-कोट-इयाद में बयान है कि किसी को दाढ़ी कटवाना मकरूह है। यह इस मामले की सच्चाई है। यह हदीस शरीफ इस मामले के लिये नहीं दिखाई जा सकती जिसमें दाढ़ी उगाना वाजिब है। इसलिए हदीस शरीफ में बयान हैः **"यहूदी और ईसाई नहीं रंगवाते** (बाल और दाढ़ी), **जो वो करते है उसके बरअक्स करो।"** दूसरे लफ़्ज़ों में हदीस शरीफ बाल और दाढ़ी रंगवाने को कहती है। पर यह हदीस शरीफ यह नहीं कहती कि किसी के बाल या दाढ़ी रंगवाना वाजिब है। यह बताती है कि ऐसा करना मुस्तहब है। कुछ असहाबे अकरम ने अपने बाल और दाढ़ी भी रंगवाऐ थे। पर ज़्यादातर ने ऐसा नहीं किया था। अगर यह सब के सब करते तो ऐसा करना वाजिब हो जाता। तो हदीस शरीफ का दाढ़ी के मुताल्लिक़ भी मामला ऐसा ही हैः यह दिखाता है कि दाढ़ी उगाना मुस्तहब है, वाजिब नहीं। हमारे किसी इस्लामी आलिम ने दाढ़ी को कटवाने की रिवायत नहीं दी। उनके ज़माने में दाढ़ी उगाना रिवायती था। [ये मुसलमानों के रिवायती कामों की न पैरवी करके बदनामी झेलना है। यह मकरूह है। अगर इससे फितना फैले तो यह हराम भी है।] यहाँ हम करदवी का तर्जुमा ख़त्म करते है। अपनी किताब के इफतिताह में करदवी लिखते है कि उन्होने चारों मज़हबों के फिक

के इल्म को मिलाया है और किसी को एक मज़हब इख़्तियार करना मुनासिब नहीं माना। इसलिए वो अहले सुन्नत के आलिमों के बताये गये रास्ते से भटक गये। अहले सुन्नत के आलिमों ने फरमाया है कि एक शख़्स को चार में से किसी एक मज़हब की पैरवी करनी है पर वो शख़्स जो इन्हे मिलाता है वो ला मज़हबी जिन्दीक हो जाता है। चूंकि करदवी के लिखे हुए बयान जोकि दाढ़ी बढ़ाने से मुताल्लिक़ थे वो हनफी मज़हब के इल्म के मुताबिक़ थे, पढ़ने वाले से इल्तिजा की जाती है कि वो सबूतों पर यक़ीन करे। हज़रत अब्दुल हक़ देहलवी 'रहमतुल्लाहि तआला' **(958 [1551 A.D.] 1052 [1642]**, दिल्ली**)** **ऐश्यातुल लेमियात** के तीसरे एडिशन में फरमाते है कि, "इस्लामी आलिम जो उस वक़्त में रहते थे जिसके बाल और दाढ़ी रंगवाये जाते थे। तो यह दिखाता है कि किसी ख़ास जगह की रिवायत को नहीं अपनाना चाहिए। जोकि मकरूह है। मुहम्मद बिन मुस्तफा हादिमी 'रहमतुल्लाहि तआला' (d. **1176 [1762** A.D.] हादिम, कोनया, तुर्कीह अपनी किताब **बरीका में फरमाते है**ः हदीस शरीफ में बयान है किः '**अपनी मुंछे छोटी और दाढ़ी बड़ी बढ़ाओ।**' इसलिए किसी की दाढ़ी काटना या उसे हाथ की मुठठी से छोटा उगाना मना है। एक मुठठी के बराबर दाढ़ी उगाना सुन्नत है। जब वो मुठठी से बढ़े हो जाए तो उसे काटना भी सुन्नत है।" निचले होठ से लेके हाथ की बड़ी उगंली से छोटी उगंली तक की मुठठी एक हाथ की मुठठी है। अगर कोई सुल्तान किसी सुन्नत को करने का हुक्म देता है हत्ता कि वो मुबाह हो पर उसे करना वाजिब हो जाता है। यह सुल्तान का कहना है और मुसलमानों के लिए हुक्म। कई जगहों पर दाढ़ी की मुठठी से ज़्यादा बढ़ाना भी वाजिब है। इसे न बढ़ाना या काटना वाजिब के ख़िलाफ जाना है। यह मकरूह तहरीमी है। ऐसा करने वाले इन्सान पर मस्जिद में जमाअत का इमाम बनना (नमाज़ के लिए) जायज़ नहीं। पर दारूल हर्ब में दाढ़ी काटना जायज़ है क्योंकि ऐसा न करने से वो शख़्स अपना काम खो सकता है और अपनी गुज़र करता रहे और इस्लाम के लिए ख़िदमत

करता रहे। बिना किसी उज़र के इसे छोटा करना या काटना मकरूह है। एक मुट्ठी से छोटी दाढ़ी बढ़ाना बिद्दत है यह सोचके कि वो सुन्नत कर रहे है। इसका मतलब सुन्नत को बदलना है। बिद्दत का काम करना क़त्ल से बड़ा कबीरा गुनाह है।]

मसलन एक लड़की और लड़का बालिग़पन की उम्र तक पहुँच गये थे और उन्होने निकाह कर लिया, और फिर भी ईमान के अरकानों के बारे में किये गये सवालों के जवाब देने में नाकाम रहे, इसका मतलब यह हुआ कि वो मुसलमान नहीं। उनका निकाह तभी सहीह होगा जब उन्हे ईमान के अरकान सिखाये जाए और उनका निकाह दुबारा कराया जाये। **54** फर्ज़ो से मुताल्लिक़ बाब देखे।

अगर कोई शख़्स अपनी मूँछें काटता है और दूसरा शख़्स उसे कहे, "यह अच्छा नहीं है", तो दूसरे शख़्स के ईमान खोने का डर रहता है। क्योंकि मूँछों को काटना सुन्नत है और दूसरे शख़्स ने सुन्नत को मज़ाक में लिया।

अगर कोई शख़्स अपने पूरे जिस्म पर रेशम के कपड़े पहनता है और दूसरा शख़्स उसे देख के कहता है, "तुम्हे ये मुबारक साबित हो", तो दूसरे शख़्स के ईमान खोने का डर है।

अगर कोई शख़्स मकरूह काम करता है, किबले की तरफ पैर करके लेटना और किबले की तरफ थूकना या पेशाब करना, और बाकी लोग उसे रोके मकरूह करने से और के झिड़क कर कहे, "काश हमारे सारे गुनाह ऐसे ही माफ करने लायक़ होते", तो उसके ईमान खोने का डर है। क्योंकि उसने मकरूह के बारे में इस तरह बात की है जैसे वो कोई गैर अहमयती मामला हो।

साथ ही, अगर कोई नौकर अपने मालिक के कमरे में घुसता है और अपने मालिक को कहता है, "अस्सलामु अलैकुम, सर," और कोई तीसरा

शख़्स जो मालिक के साथ कमरे में मौजूद हो, नौकर को डांटते हुए कहता है, "चुप रह, बेअदब इंसान! कोई अपने मालिक को इस तरह सलाम नहीं कर सकता", तो वो तीसरा इन्सान काफिर हो जाता है। अगर उसका मतलब उसे और अच्छे से समझाने का था तो वो काफिर नहीं होगा। अगर कोई किसी की पीठ पीछे चुगली करता है और कहता है, "मैने कुछ खास नहीं किया है, क्या मैने किया है", वो काफिर हो जाता है, आलिमों के मुताबिक़। क्योंकि उसने एक हराम काम किया है।

अगर कोई शख़्स कहता है, "अगर अल्लाह तआला मुझे जन्नत दे, फिर भी मैं तुम्हारे बिना जन्नत में दाख़िल नहीं होऊँगा" या "अगर मुझे किसी और के साथ जन्नत में दाख़िल होने का हुक्म हो तो मैं नहीं होऊँगा" या "अगर अल्लाह तआला मुझे जन्नत दे तो मैं उससे ज़्यादा अल्लाह का दीदार करना पसन्द करूँगा" आलिमों के मुताबिक़ ये बातें कुफ़्र का सबब बनती है। आलिमों के मुताबिक़ यह कहना कि ईमान घटता व बढ़ता है भी कुफ़्र है। बिरगिवी के मुताबिक़ **मुमिनुन बिह** के साथ ईमान का बढ़ना व घटना कहना कुफ़्र है। पर यक़ीन व कुव्वते-ए-सिदक के हिसाब से कहना कुफ़्र नहीं है। ईमान की कमी और बढ़ोतरी पर कई मुजतहिदों के बयान है।

आलिमों ने कहा है कि यह कहना कुफ़्र है कि "किबले दो है एक काबा और एक जेरूस्लम में।" बिरगिवी के मुताबिक़, दो किबले अभी मौजूद है कहना कुफ़्र है। पर यह कहना कुफ़्र नहीं कि "बैत मुकद्दस एक किबला था पर बाद में काबा किबला बना। अगर कोई शख़्स बेवजह किसी मज़हबी आलिम की कसम खाता है तो उसके ईमान खोने का डर रहता है।

इस्लाम से अलग ईबादतों या काफिरों के इस्लाम से अलग बातों पर यक़ीन और पसन्द करना भी कुफ़्र है।

आलिमों के मुताबिक़ अगर कोई कहता है कि मजूसियों का एक अच्छा तरीका खाते वक़्त बात न करना या यह मजूसियों का अच्छा काम यह है कि महावारी या हैज़ के दौरान बीवी से हमबिस्तरी न करना। तो वो काफिर हो जाता है।

अगर कोई शख़्स किसी से पूछता है कि क्या वो ईमान वाला है और दूसरा कहता है, "इन्शाअल्लाह..." इसकी वज़ाहत न कर पाना कुफ़्र है।

अगर कोई शख़्स किसी के बेटे से मुख़ातिब होते हुए कहता है कि "अल्लाह के लिए तुम्हारा बेटा ज़रूरी है।" वो काफिर हो जाता है।

अगर कोई औरत अपनी कमर पर काला रस्सा बांधती है और पूछने पर कहे कि यह जुन्नार है, वो काफिर हो जाती है और अपने शौहर के लिये हराम।

अगर कोई शख़्स हराम चीज़ को खाने से पहले "बिस्मिल्लाह" कहता है तो वो काफिर हो जाता है। हज़रत बिरगिवी ने फरमाया "जितना यह फक़ीर जानता है, हराम लीयानिही खाने वाला शख़्स काफिर हो जाता है। [यानि, शराब, गंदा गोश्त] यह तभी है जब वो शख़्स जानता हो कि जो वो खा रहा है हराम-ए-लीयानिही (यानि वो खाना जिसकी इस्लाम में मनाही है।) यह करते हुए उसने अल्लाह के नाम को हल्के में लिया। उसके लिए वो चीज़ें हराम हो जाती है। इमामों से रिवायत है कि फिरौती के पैसों से ख़रीदा हुआ खाना हराम नहीं पर फिरौती के पैसे हराम है। [इस मसले को जानने के लिये **सआदते अबदिया** के छठे एडिशन का पहला बाब पढ़े। जोकि हकीकत किताबवी, फातिह, इस्तानबुल तुर्की में मौजूद है।] अगर कोई शख़्स दूसरे को कहता है कि, "काश अल्लाह तेरी रूह को कुफ़्र में ले जाये", इस्लामी आलिम इसपे एक राय नहीं कि वो काफिर बन जायेगा। एक सच्चाई से, इस्लामी आलिम इस बात

पर एकमत है कि अपना कुफ्र मंजूर करना भी कुफ्र है। किसी दूसरे के कुफ्र की मंज़ूरी पर दूसरे इस्लामी आलिम कहते है कि यह कुफ्र होगा जब ख़ुद कुफ्र इसको मंज़ूर करेगा। पर यह कुफ्र नहीं होगा कि उसके कुफ्र की मंज़ूरी की बिना फिस्क (गुनाह) है- उसका अज़ाब शदीद और हमेशा रहने वाला होगा। बिरगिवी 'रहीमाहुल्लाहु तआला' फरमाते है: "हम इस क़ौल को अहम जानते है। हज़रत मूसा 'अलैहिस्सलाम' की सच्ची कहानी कुरान करीम में इसका सबूत देती है।"

अगर कोई शख़्स कहता है, "अल्लाहु तआला जानता है कि मैने ऐसा काम नहीं किया", पर वो ख़ुद जानता है कि वो उसने किया है, वो काफिर हो जाता है। ऐसा कहके वो हक़ तआला शानहु की हिकमत की आड़ में जहालत की बात की है।

अगर एक औरत निकाह करती है और फिर दोनों आदमी और औरत कहते है कि अल्लाह तआला और नबी गवाह है, दोनों काफिर हो जायेंगे। क्योंकि हमारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ग़ैब को नहीं जानते थे जब वो ज़िन्दा थे। वो ग़ैब को जानते है यह कहना कुफ्र है।

अगर कोई शख़्स कहता है कि वो जानता है कि चोरी का माल या खोई हुई चीज़ कहाँ है, जो वो ख़ुद और जो उसपे यक़ीन करे काफिर हो जाते है। अगर वो कहता है कि उसे जिन ख़बर देते है तब भी वो काफिर हो जाता है। सिर्फ अल्लाह तआला ग़ैब को जानता है या जिसे वो ख़बर दे वो, न कोई नबी न जिन।

आलिमों ने बयान किया है, कि एक शख़्स जो अल्लाह की क़सम खाना चाहता है और दूसरा शख़्स कहता है, "मैं नहीं चाहता कि तुम अल्लाह

की क़सम खाओं बल्कि मुझे तलाक़, इज़्ज़त वगैरह की क़सम चाहिए", तो दूसरा काफिर हो जाता है।

अगर एक शख़्स दूसरे से कहता है कि, "तुम्हारा चेहरा मुझे मौत के फरिशतें की याद दिलाता है", तो वो काफिर बन जाता है। क्योंकि मौत का फरिश्ता बहुत बड़ा फरिश्ता है।

अगर कोई शख़्स कहता है कि, "कितना अच्छा होता अगर नमाज़ न पढ़नी होती" काफिर हो जाता है। जैसा कि मज़हबी आलिमों ने बयान किया है, अगर एक शख़्स दूसरे को कहता है, "चलो नमाज़ पढ़ने", और दूसरा जवाब देता है, "मेरे लिए नमाज़ पढ़ना मुश्किल है", दूसरा काफिर हो जाता है।

अगर कोई शख़्स कहता है, "अल्लाह तआला जन्नत में मेरा गवाह है", वो काफिर हो जाता है क्योंकि अल्लाह तआला जगह से पाक है। [साथ ही जो अल्लाह को 'वालिद' कहता है काफिर हो जाता है।]

अगर कोई शख़्स कहता है, "रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने खाने के बाद अपनी मुबारक उंगली चाटी थी," और दूसरा शख़्स कहता है कि ऐसा करना अशिष्ट व्यवहार है तो दूसरा काफिर हो जाता है।

अगर कोई कहता है कि, "रिज़्क अल्लाह से आता है पर फिर भी बन्दे की हरकत ज़रूरी है," इसका बयान शिर्क होगा। चूंकि बन्दों की हरकत भी अल्लाह ही बनाता है। अगर कोई शख़्स कहता है कि यहूदी होने से अच्छा नसरानी होना है वो काफिर हो जाता है। कोई यह कह सकता है कि यहूदी नसरानियों से ज़्यादा बेहतर है।

अगर कोई कहे कि खयानत के लिए काफिर होना अफ़ज़ल है, काफिर हो जाता है।

अगर कोई शख़्स कहता है, “इल्म से मेरा क्या लेना देना,” या “जैसा उलेमा ने कहा है वैसा कौन कर सकता है,” या एक लिखा हुआ फतवा ज़मीन पर फेक देता है और कहता है, “मज़हबी लोगों के अलफ़ाज़ अच्छे नहीं है,” वो काफिर हो जाते है।

अगर कोई शख़्स एक शख़्स से जिससे उसका झगड़ा हो गया हो, कहता है कि “चलो इस्लामी अदालत चले,” और दूसरा कहता है, “मैं जब तक नहीं जाऊँगा जब तक पुलिस मुझे न ले जाए,” या “मैं इस्लाम कैसे जानू,” दूसरा काफिर हो जाता है।

अगर कोई शख़्स कुछ कहता है जिससे कुफ्र आता है वो और जो उसपे हँसे काफिर हो जाता है। दूसरे की हँसी कुफ्र नहीं होगी अगर वो ज़रूरी हो तो।

अगर कोई शख़्स कहता है, “ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ अल्लाह न हो,” या “अल्लाह जन्नत में है” वो इस्लामी आलिमों के मुताबिक़ काफिर हो जाता है।

कोई जो कहे की मैशायख़ की रूह हमेशा हाज़िर रहती है और जानती हैं तो वो काफिर हो जाता है। ऐसा कहना कुफ्र नहीं की वो हाज़िर होंगे।

शख़्स जो कहता है, “मैं इस्लाम नहीं जानता या नाहीं जानना चाहता,” काफिर हो जाता है।

अगर कोई शख़्स कहता है, “अगर आदम ‘अलैहिस्सलाम’ ने गेहूँ नहीं खाया होता तो हम शाकी नहीं बनते,” वो काफिर हो जाता है। इस्लामी आलिम

इस बात पर एक राय नहीं है कि यह कुफ्र होगा या नहीं अगर वो कहे, "... हम आज ज़मीन पर नहीं होते।"

अगर कोई कहे, आदम 'अलैहिस्सलाम' ने कपड़े बुने थे और दूसरा कहे कि, "तो हम जुलाहे के बेटे है," दूसरा काफिर हो जाता है।

अगर कोई शख़्स सगीरा गुनाह करता है और वो उस शख़्स को यह कहे जो उसे तौबा करने की राय दे की "मैने तौबा करने लायक़ कौनसा गुनाह किया है।" तो वो काफिर हो जाता है।

अगर कोई शख़्स दूसरे से कहता है, "चलो साथ में मज़हबी आलिम के पास चलते है," या "चलो इल्मे फिक और इल्मे हाल की किताबें पढ़कर सीखें," और दूसरा जवाब दे की, "इल्म से मेरा क्या लेना देना," दूसरा काफिर हो जाता है। इसका मतलब इल्म की तौहीन करना है। एक शख़्स जो फिक या तफसीर की किताबों की तौहीन करता है वो काफिर हो जाता है। काफिर जो चार में से एक मज़हब के उलेमाओं की किताबों पर हमला करने वाले काफिरों को शाम विज्ञानी या जिन्दीक कहते है।

अगर कोई शख़्स नहीं जानता कि इन सवालों के जवाब कैसे देने है जैसे की "तुम किस की औलाद हो?", "तुम किसकी मिल्लत में से हो?" "इतिकाद में तुम्हारे मज़हब का इमाम कौन है?" और "अमल के मज़हब में तुम्हारा इमाम कौन है?" तो वो काफिर हो जाता है।

इस्लामी आलिमों के ज़रिए बयान किया गया है कि अगर एक शख़्स एक हराम-ए-कतिय्या (जो ज़रूर हराम है) -जैस सुअर और शराब-, को 'हलाल' कहते है या हलाल-ए-कतिय्या (जो ज़रूर हलाल है), को 'हराम' कहता है, वो काफिर बन जाता है। [तम्बाकू को हराम कहना खतरनाक है।]

[**सआदते अबदिया** के छठें ऐडिशन का चौथा बाब देखे जिसमें तम्बाकू के बारे में बताया गया है।]

यह करना कुफ्र है कि कोई हराम काम काश हलाल होता, अगर वो काम हराम बनाया गया है सभी मज़हबों में और वो अगर हिकमत का विरोध में हो उस चीज़ के हलाल के लिए। इसकी मिसालें: ज़िना, गुदामैथुन, पेट भर जाने के बाद भी खाना, सूद लेना और देना। शराब के लिए सोचना की काश ये हलाल होती कुफ्र नहीं होती है। क्योंकि शराब पुराने नबियों की उम्मतों में हराम नहीं थी। कुरान करीम के बीच के लफ्ज़ लेके उनका मज़ाक बनाना कुफ्र है। अगर कोई इंसान कहता है किसी को जिसका नाम याहया है कि, "**या यहया! हुज़ इल किताबा,**" के काफिर हो जाता है। यही कानून कुरान करीम की आयतों को संगीत, नाच या गाने के साथ पढ़ने पर भी है।

यह कहना आफत है, "मैं अभी पहुँचा हूँ, बिस्मिल्लाह।" अगर कोई शख़्स कहता है '**मा ख़लकल्लाह**', किसी चीज़ को देखकर जिसका वो इरादा कर लेता है, अगर उसे इसके मायने नहीं पता तो वो काफिर हो जाता है।

यह कहना आफत है कि, "मै अभी तुम्हारी क़सम नहीं खाऊँगा, क्योंकि उन्होंने क़सम खाने को 'गुनाह' कहा है।"

यह कहना आफत है कि, "तुम तो जिबराईल की तरह पूरी तरह से नंगे हो।" इसका मतलब तुम उनका मज़ाक उड़ा रहे हो।

अल्लाह तआला के अलावा किसी की क़सम खाना हराम है। एक शख़्स हराम काम करने से मुरतद या काफिर नहीं बनता। पर वो हराम के बारे में हलाल बोलने से काफिर हो जाता है यानि मनसूसन अलैहि (जिसे नाम में हराम क़रार दे दिया जा चुका है जोकि हदीस शरीफ और आयत करीमा में साफ अलफ़ाज़ों में है।)

और साथ ही अगर कोई शख़्स अपने बेटे के सर या अपने सिर पर हाथ रख कर अल्लाह की क़सम खाता है, यानि अगर वो कहता है, वल्लाहि मेरे बेटे के सर की क़सम, तो उसके कुफ़्र में पढ़ने का डर है।

अहकाम–ए–इस्लामिया

इस्लामी मज़हब के हुक्म और मनाहियों को मिलाकर **अहकाम–ए–इस्लामिया** या **इस्लाम** कहा जाता है। यह आठ चीज़ों से मिलकर बना है: **फ़र्ज़, वाजिब, सुन्नत, मुस्तहब, मुबाह, हराम, मकरूह** और **मुफिसद**।

फ़र्ज़ अल्लाह अज़ीम ओ शान का हुक्म है। और इसलिए उसके हुक्म सबूत के साथ साफ साफ ज़ाहिर है। दूसरे लफ़्ज़ों में, उसने आयतुल करीमा में साफ साफ बयान फरमाया है। वो शख़्स जो इसे नकारता है या इसको एहमियत नहीं देता वो काफिर बन जाता है। मसलन (अल्लाह तआला का हुक्म जिसे फ़र्ज़ कहते है): ईमान, कुरान, वज़ू करना, नमाज़ अदा करना, ज़कात अदा करना, हज करना, जुनूब की हालत में गुस्ल करना, [अपने पूरे जिस्म को इस्लामी तरीक़े से धोना]।

फ़र्ज़ तीन तरह के होते है: फ़र्ज़े दाईम, फ़र्ज़े मुवक्कत और फ़र्ज़े अल्ल किफाया। फ़र्ज़े दाईम के मायने है **आमन्तु बिल्लाहि...**, को पूरा याद करना और उसके मायने पर ईमान रखना। फ़र्ज़े मुवक्कत वो फ़र्ज़ है जो हम उसके बताए गए वक़्त के आने पर अदा करते है। मिसाल के तौर पर रोज़ पाँच वक़्त की नमाज़ अदा करना, रमज़ानुल मुबारक के रोज़े रखना, इल्म और तिजारत के मामले की बारीकया सीखना। फ़र्ज़े अल्ल किफाया एक गुप या समूह को दिया गया अल्लाह का हुक्म है, समूह में चाहे पचास लोग हो या सौ या ज़्यादा, अगर वो चीज़ उनमें से एक शख़्स भी कर लेता है तो पूरा समूह

साकित हो जाता है इसकी एक मिसाल सलाम की है। [**सआदते अबदिया** के तीसरे ऐडिशन के **62**वें बाब को देखें जिसमें मुसलमानों को सलाम के बारे में लिखा गया है।] कुछ दूसरी मिसालें है नमाज़े जनाज़ा पढ़ना, मरे हुए मुसलमान को नहलाना, अरबी में सर्फ और नौह सीखना, हाफिज़ बनना, वुजूब का सीखना, अपनी कला और ज़रूरत के मुताबिक़ से ज़्यादा दुनियावी और दीनी इल्म का सीखना।

साथ ही एक फर्ज़ में पाँच फर्ज़ होते है। यह फर्ज़ है: इल्म-ए-फर्ज़, आमाले फर्ज़, मिकदार-ए-फर्ज़, इतिक़ाद-ए-फर्ज़, इख़्लास-ए-फर्ज़, और इन्कारे फर्ज़। इन्कारे फर्ज़ कुफ़्र है।

वाजिब अल्लाहु अज़ीमुश्शान का हुक्म है फिर भी अस्पष्ट लिखित सबूतों से समझी गई है। अगर कोई शख़्स किसी वाजिब काम को वाजिब मानने से इन्कार करता है तो वो काफिर नहीं होगा। फिर भी वाजिब को न अदा करने से जहन्नुम में अज़ाब झेलना पड़ेगा। इसकी मिसाले है: वित्र की नमाज़ में दुआए कुनूत का पढ़ना, कुरबानी करना, रमज़ाने शरीफ की ईद में फितरा अदा करना, और जब भी सजदा शरीफ की आयत सुनो **सजदा-ए-तिलावत** का अदा करना। एक वाजिब में चार वाजिब और एक फर्ज़ होता है: इल्मे वाजिब, आमाले वाजिब, मिकदारे वाजिब, इतिकादे वाजिब, और इख्लासे फर्ज़। फर्ज़ या वाजिब का मज़ाक बनाना हराम है।

रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के ज़रिए एक या दो बार करी गई चीज़े सुन्नत है। इसको छोड़ने वाला शख़्स आख़िरत में अज़ाब में नहीं होगा। पर अगर कोई शख़्स बिना किसी अच्छे बहाने के (उज़र) इसे छोड़ने की आदत बना लेता है तो वो आख़िरत इताब का हक़दार है, साथ ही वो उसके सवाब से महरूम रहेगा। इसकी मिसालें है: मिसवाक करना, अज़ान देना व इकामत करना, जमात के साथ नमाज़ पढ़ना, किसी की शादी की शाम को

खाना परोसना, अपने बेटे या बेटों की खतना करना। सुन्नतें तीन तरह की है: सुन्नते मुआक्किदा, सुन्नते ग़ैर मुआक्किदा, और सुन्नते अल्ल किफाया।

सुन्नते मुआक्किदा की मिसालें है: फर्ज़ नमाज़ के फर्ज़ पहले की सुन्नतें, ज़ुहर की नमाज़ की शुरू की और फर्ज़ के बाद की सुन्नतें और ईशा की नमाज़ के बाद की सुन्नतें। यह सुन्नतें, सुन्नते मुआक्किदा कहलाती है। कुछ इस्लामी आलिम फर्ज़ की सुन्नतों को वाजिब भी बताते है। बिना किसी उज़र के यह सुन्नतें नहीं छोड़ी जा सकती। जो शख़्स इन से नफरत करता है वो काफिर बन जाता है।

सुन्नतें और मुआक्किदा की मिसालें है: असर नमाज़ की सुन्नतें और ईशा की नमाज़ की शुरू की सुन्नतें। इनको कई दफा भी छोड़ देने से कोई फर्क नहीं है पर इन्हे कभी न करने से आख़िरत में ज़िल्लत मिलेगी और शफाअत से महरूमियत भी।

[**हालाबी** और **कुदुरी** ने लिखा है की इबादत के दो तरीके है: **फराईज़** और **फज़ाइल**। इबादत के वो काम जो न तो वाजिब है न फर्ज़ **फज़ाइल** या **नाफिला** कहलाते है। हर रोज़ की पाँच वक़्त की नमाज़ों में सुन्नतें नाफिला इबादत है जो फर्ज़ में हुई कमियों को पूरा करती है। दूसरे लफ्ज़ों में यह फर्ज़ों में हुई नुक़सान की तलाफी करता है। पर यह बात हमें धोखे में न डाले कि सुन्नतें हमारी छोड़ी हुई फर्ज़ नमाज़ों की भरपाई कर पायेगी। फर्ज़ छोड़कर जहन्नुम का अज़ाब झेलने वाले इन्सान को सुन्नत नहीं बचा सकती। एक शख़्स जिसने बिना किसी उज़र के फर्ज़ नमाज़ छोड़ी है और सुन्नत पढ़ी हो तो उसकी सुन्नत नमाज़ सही नहीं होगी। सुन्नत नमाज़ के लिए सही नियत का होना लाज़िम है। अगर नीयत सही नहीं है तो सुन्नत इबादत का सवाब नहीं मिलेगा। तभी वो लोग जिन्होंने अपनी ज़िन्दगी में कई नमाज़ें छोड़ी है उन्हें चाहिए कि वो चार वक़्त नमाज़ों की सुन्नतों में कज़ा की भी नीयत करे। जब

वो यह नीयत करेंगे तो उनकी कज़ा नमाज़ें भी पूरी होंगी और उस वक़्त की सुन्नतें भी अदा होंगी। ऐसा करने से मुराद सुन्नत छोड़ना नहीं है।] [इस दोहरी नीयत के बारे में **सआदत अबदिया** के चौथे एडिशन के **23**वें बाब में लिखा है।]

सुन्नत-ए-अल्ल किफाया ऐसी सुन्नत है जिसके ग्रुप में से कम से कम एक शख़्स के अदा किए जाने पर पूरे ग्रुप उससे साकित हो जाता है। सलाम, इतिकाफ और बिस्मिल्लाह पढ़ना जब कोई काम शुरू करो उससे पहले, इसकी कुछ मिसालें हैं।

अगर कोई शख़्स जो खाना खाने से पहले बिस्मिल्लाह नहीं पढ़ता वो तीन नुक़सानों में रहता है: **1-** शैतान उसके खाने में शरीक हो जाता है। **2-** जो खाना वो खाता है वो उसके जिस्म के लिए नुक़सान और बीमारी का सबब बनता है। **3-** उसके खाने में बरकत नहीं होती है।

अगर वो बिस्मिल्लाह शरीफ पढ़ता है तो उसे तीन फायदें होते हैं: **1-** शैतान उसके खाने में हिस्सेदार नहीं बनता। **2-** उसका खाना उसके जिस्म में शफा का सबब बनता है। **3-** उसके खाने में बरकत होती है। [अगर कोई बिस्मिल्लाह पढ़ना भूल जाता है तो उसे जब भी याद आये खाने के दौरान, पढ़ लेनी चाहिए।]

मुस्तहब के मायनें उन चीज़ों से है जो रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अपनी ज़िन्दगी में एक या दो बार किए हों। वो शख़्स जो इसे न करे वो न तो आख़िरत में अज़ाब में होगा और न ही ज़लील होगा। और न ही इसे अदा न करने पर शफात से महरूम रहेगा। इसकी मिसालें हैं: नफिल नमाज़ पढ़ना, नफिल रोज़ें रखना, उमरा करना, नफिल हज करना, और नफिल सदका देना।

मुबाह वो काम है जिन्हें अच्छे काम की नीयत से करा जाए तो सवाब है और बुरे काम की नीयत से करा जाए तो अज़ाब है। इसको छोड़ने से अज़ाब नहीं है। चलना, बैठना, घर खरीदना, हर तरह का खाना खाना जो हलाल हो, और हर तरह के कपड़े पहनना, सबका हलाल होना ज़रूरी है।

हराम वो चीज़ है जिसे अल्लाह तआला ने कुरान करीम में साफ मना क़रार दिया है। दूसरे लफ़्ज़ों में यह वो न करने वाली चीज़ें है जिसे उसने कुरान करीम में बयान फरमाया है। एक शख़्स जो हराम को नकारता है या हल्के में लेता है, वो काफिर बन जाता है। वो शख़्स जो हराम करता है पर यक़ीन रखता है कि यह हराम है वो काफिर नहीं बनता। वो फासिक हो जाता है। [इब्ने आबिदीन 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' अपनी तहरीर एक इमाम के मुताल्लिक़ में फरमाते है [इस मामले में इमाम का मतलब वो शख़्स जो जमाअत को नमाज़ पढ़ाता है जिसका ज़िकर **सआदत अदबिया** के चौथें एडिशन के **12**वें बाब में है।] "एक फासिक इमाम के पीछे नमाज़ मत पढ़ो। फासिक का मतलब है वो मुसलमान जो कबीरा गुनाह जैसे शराब पीना, ज़िना और सूद लेना वग़ैरह करता हो। [एक सगीरा गुनाह के बार-बार करने से वो कबीरा में तब्दील हो जाता है।] एक ऐसी जगह जहाँ जुमे की नमाज़ एक से ज़्यादा मस्जिदों में पढ़ाई जाती हो तो तुम्हें सालिह इमाम के पीछे नमाज़ पढ़नी चाहिए न कि एक फासिक इमाम के पीछे। फासिक शख़्स से हकारत और धोखे से पेश आना वाजिब है। हालांकि अगर पता हो कि कोई शख़्स फासिक है तो उसे इमाम बनना ही नहीं चाहिए था। उसे इमाम बनाने से मुराद है उसे बड़े इन्सान की तरह मानना और उसकी इज़्ज़त करना। अगर कोई शख़्स फासिक है और साथ ही वो किसी मज़हब में से नहीं है तो उसे इमाम बनाना मकरूहे तहरीमी है। हराम से बचना **तकवा** कहलाता है। उन चीज़ों से बचना जिनके हराम या हलाल होने में शक शुबा है **वारा** कहलाता है। बिना हलाल न हो कि पर कुछ शक वाली चीज़ करनी चाहिए उसे **जुहद** कहते है। अगर दारूल हरब में रहने वाला कोई शख़्स

ईमान ले आता है तो उसपे वाजिब है कि वो दारूल इस्लाम की जानिब हिजरत करे।]

हराम दो तरह के होते है: उनमें से एक है **हराम-लि-आयनीहि** और दूसरा **हराम-लि-ग़ैरिही।** पहले वाला हराम, जौहर है, यह हमेशा हराम है। इसकी मिसालें है: क़त्ल, ज़िना, गुदामैथुन, शराब पीना, जुआ खेलना, सुअर खाना, औरतों, लड़कियों के लिए उनका नंगें सिर, पैर, हाथ बाहर जाना। अगर कोई शख़्स मर्द या औरत, ऊपर लिखे हुए काम करता/करती है और उन्हें हलाल समझते हुए बिस्मिल्लाह पढ़ती है यानि वो इस बात को एहमियत नहीं देते कि अल्लाह तआला ने उन्हें हराम बनाया है तो वो काफिर हो जाते है। फिर भी अगर लोग यह जानते हुए भी कि यह चीज़ें हराम है और उसे करते हुए अल्लाह का भी डर रखते है तो वो काफिर नहीं होगे पर जहन्नुम के अज़ाब के हक़दार होगे।

हराम लि गैरिहि वो काम है जो हराम तरीक़े से किए जाने पर हराम बन जाता है हालांकि वो हराम नहीं है। इसकी मिसालें है: किसी के बगीचे में घुसना और बिना उसके मालिक की इजाज़त के उसका फल खा लेना; किसी दूसरे की जायदाद या पैसा चुरा लेना और खर्च कर देना। अगर कोई शख़्स ऐसा करता है और बिस्मिल्लाह कहता है या इसे हलाल कहता है वो काफिर नहीं बनेगा। अगर इस दुनिया में कोई शख़्स जो के दाने के बराबर भी किसी का माल मार लेता है तो आख़िरत में अल्लाह तआला उसके बदले में मज़लूम इन्सान को 700 मकबूल नमाज़ें देगा जो जमाअत में पढ़ी गई हो। आख़िरत में इबादत से ज़्यादा सवाब इन हरामों से बचने पर मिलेगा।

मकरूह के मायने वो जो अमल के ज़रिए कमाये गए सवाब को ख़राब कर दे। मकरूह दो तरह के होते हैं: कराहते तहरिमिय्या और कराहते तनज़िहिय्या।

कराहते तहरिमिय्या से मुराद वाजिब का छोड़ना है। यह हराम के करीब है। कराहते तनजिनिय्या सुन्नत को छोड़ना है। यह हलाल के करीब है। अगर कोई शख़्स कराहते तहरिमिय्या जान बूझ कर करता है तो वो नाफरमान और गुनाहगार बन जाता है। जहन्नुम की आग का हक़दार है। अगर वो इसे नमाज़ के दौरान करता है तो उसे वो नमाज़ दोबारा पढ़नी होगी। अगर उसने यह गलती से किया हो तो उसे सजदा सहू करना लाज़िम है। (नमाज़ के आख़िर में) [**सआदते अदबिया** के चौथें एडिशन के 16वें बाब में सजदा सहू मौजूद है।] तब नमाज़ को दोबारा पढ़ना ज़रूरी नहीं। वो शख़्स जिसने कराहते तनजिहिय्या किया हो उसे अज़ाब नहीं दिया जायेगा। पर वो धिक्कारा जायेगा और शफाअत से महरूम रहेगा अगर वो आदतन इसे करता रहेगा। इसकी मिसालें हैं: एक घोड़े में से गोश्त खाना, चूहे या बिल्ली का बचा हुआ खाना खाना, किसी शराब बनाने वाले को अंगूर बेचना।

वो चीज़ जो अमल को ख़त्म कर देती है उसे मुफ़सिद कहते है। इसकी मिसालें हैं: किसी को ईमान, नमाज़, निकाह, हज ज़कात या खरीद फरोख्खत अदा करते वक़्त उसका वो काम बिगाड़ देना।

[एक मुसलमान जो फर्ज़, वाजिब, सुन्नत अदा करता है और हराम और मकरूह से बचता वो **अजर** या **सवाब** यानि आख़िरत में सिला से नवाज़ा जाएगा। अगर कोई शख़्स हराम या मकरूह करता है या फर्ज़ और वाजिब को नकारता है तो वो **गुनाहगार** दर्ज कर लिया जाता है। एक हराम से बचने का सवाब एक फर्ज़ अदा करने से ज़्यादा है। एक फर्ज़ को अदा करने का सवाब एक मकरूह से बचने के सवाब से ज़्यादा है। जोकि अपनी बारी में सुन्नत से कई गुना बढ़कर है। मुबाह में से वो चीज़ें जो अल्लाह तआला को पसंद है उन्हें ख़ैरात और **हसनात** कहते है, हालांकि सवाब उस शख़्स को दिया जायेगा जो

अदा करेगा, इसका सवाब सुन्नत के सवाब से कम है। यह समझ के कोई काम करना कि इसका ईनाम मिलेगा उसे **कुरबत** कहते हैं।

अल्लाह तआला अपने बन्दों के लिए बहुत शफीक बनकर उसके लिए मज़हब भेजे, जोकि राहत और ख़ुशी के ज़रिये है। आख़िरी मज़हब मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' का मज़हब है। बाकी मज़हब शैतानी लोगों ने तब्दील कर दिए। अगर कोई इन्सान, मुसलमान या ग़ैर मुस्लिम, अपनी ज़िन्दगी इस मज़हब के मुताबिक़ गुज़ारता है बिना इसके कि वो इसे जानता है या नहीं जानता, वो इस दुनिया में कोई ग़म में नहीं होगा। इस कहावत की मिसाल अमेरिकन और यूरोपियन काफिर इस मज़हब के मुताबिक़ काम कर रहे है। हालांकि काफिरों को आख़िरत में कोई सवाब या ईनाम नहीं है। जो शख़्स ऐसा काम करता है वो मुसलमान है और इस्लाम को मानता है, उसे आख़िरत में रहमतें मिलेंगी।]

इस्लामी इमारत

इस्लामी इमारत के पाँच हिस्सें हैं, दूसरे लफ़्ज़ों में इस्लाम पाँच बुनियादों से बनाता है। पहला है कलमा-ए-शहादत का कहना और उसपर ई मान लाना और उसके मतलब का जानना। दूसरा हर दिन पाँच वक़्ता नमाज़ उसके बताये गए वक़्त पर अदा करना। तीसरा रमज़ान के पाक महीने के पूरे रोज़ें रखना। चौथा ज़कात देना सालाना, जबकि वो फर्ज़ हो जाये। ज़िन्दगी में कम से कम एक बार हज करना। [इन पाँचों बुनयादों में से दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवी वज़ाहत से **सआदत अदबिये** के चौथे और पाँचवें एडिशन में मौजूद है।] अल्लाह तआला के इन पाँच हुक्मों को मानना और हराम से बचना **इबादत करना** कहलाता है। यह एक नफ़िला इबादत होगी अगर कोई शख़्स वुज़ुव और अदा के साथ हज न अदा करे; या वो पहले हज अदा कर चुका हो

और दूबारा कर रहा हो। ऐसे कामों को करना जायज़ नहीं है जो बिद्दत या हराम की तरफ जा सकते हो। हज़रत इमामे रब्बानी कुद्दीसा सिररूह अपने **29**वें **100**वें और **23**वें और **124**वें ख़तूत व अब्दुल्लाह देहलवी कुद्दुसी सिरूहि अपने **26**वें ख़त **मकामाते मज़ारिया** में, नफ़िल हज या उमरा की इजाज़त न दो। (अफीफुद्दीन अब्दुल्लाह बिन इसाद याफि 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि', **698** [1298 A.D.], यमन - **768** [1367], मक्का, अपनी 'जुहद' की गुफ्तगू में लिखते हैं, मकामाते अशारा का एक हिस्सा (दस हिस्से), अपनी किताब जिसका नाम) **नशर-उल-महासिन-इल-गलिय्या:** "जब इमाम नेबेवी, बड़े आलिम और एक वली, से पूछा गया: आप हर सुन्नत का पालन करते हो। पर आपने एक सुन्नत छोड़ दी, बड़ी सुन्नत निकाह, आपने जबाब दिया, "मुझे डर है इस सुन्नत को करके मैं और हराम काम न कर बैठूँ। इमाम यहया बेवेही ने **676** में दमसकस में वफात पाई [1277 A.D.] प्रोफेसर हबीबुर्रहमान **जामिया-ए-हबीबिया** के डीन, **1401** [1981 A.D.] में हज पर गये। जब आपने देखा कि एक वहाबी इमाम लाऊड स्पीकर पर जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ा रहा है, आपने अपनी नमाज़ अलग पढ़ी। इसके लिए उन्हें हथकड़ी पहना दी गई और जेल भेज दिया गया और सवाल किया गया कि तुमने जमात के साथ नमाज़ क्यों नहीं पढ़ी। जब उन्होंने कहा कि एक बड़ी जमात के साथ नमाज़ पढ़ते वक़्त लाउड स्पीकरों का इस्तेमाल करना जायज़ नहीं तो उन्हें हज करने से रोक दिया और अपराधी क़रार दिया गया।

पहली चीज़ जो इन्सान के लिए ज़रूरी है ईमान और यक़ीन का सीखना, चाहे वो दुनिया के किसी भी कोने में क्यों न हो। पुराने ज़माने में इस्लामी आलिमों से ईमान सीखना बहुत आसान था। जिस नये ज़माने में हम रह रहे है यहाँ कही भी इस्लामी आलिम नहीं है जाहिल और कमअक्ल जो अंग्रेज़ों के हाथों बिक चुके है वो तक़रीबन नज़दीक और दूर हर तरफ फैल चुके हैं मज़हबी लोगों के नाम पर। सिर्फ एक ही तरीका है यक़ीन और ईमान सीखने

का और वो है अहले सुन्नत के आलिमों की किताबें पढ़ कर। यह किताबें अल्लाह तआला की रहमत है। इस्लाम के दुश्मन गलत किताबों के ज़रिए नौजवानों को गुमराह कर रहे है ताकि उनके लिए सच्ची मज़हबी किताबें खोजना ज़्यादा मुश्किल हो जाये। यह एक मायूस करने वाली मुहताजाना ख़बर है कि नौजवान बस इसे खेल समझ रहे हैं। यह बीमारी जवान लोगों में फैल रही है। ऐसी चीज़ों से हमें अपने बच्चों को बचाना चाहिए। ऐसा करते हुए हमें अपने बच्चों को ईमान और सही किताबों के बारे में बताना चाहिए। और ऐसे अपने बच्चों को नुक़सानात से बचा सकते है। हम देखते है कि हमारे बच्चें आजकल अपने कुछ खतरनाक खेलों में इस कदर मशगूल हो जाते है कि वो खाना भी भूल जाते हैं। ऐसे में बच्चों के लिए उनकी स्कूल की किताबें पढ़ना और पास होना भी मुश्किल हो जाता है। वालदैन को कैसे न कैसे उनके बच्चों को किताबें पढ़ने की तरफ मुतव्वजा करना पड़ेगा। **सआदते अबदिया**, मसलन पढ़नी चाहिए। जो शख़्स इसे पढ़ेगा वो न सिर्फ ईमान सीखेगा बल्कि इस्लाम के दुश्मनों के धोखे से भी बचेगा। अगर माँ बाप अपने इस फर्ज़ में कोताही करते है तो आने वाली जवानों की कौम हमारे मुल्क को खूब नुक़सान पहुँचायेगी।

एक और ख़ास हिस्सा जिसपे वालदैन को ख़्याल रखना चाहिए वे है 'सतरे अवरत', (जो **सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन के 8वें बाब में इसका ज़िकर है।) हम आजकल देखते है कि हमारे नौजवान खुले पैर और नंगें बदन बहुत खतरनाक खेलों में लगे हुए है। सतरे अवरत छुपाना बहुत अहम फर्ज़ है। वो इन्सान जो इस पर एहमियत नहीं देते वो अपना ईमान भी खो सकते है। मुसलमान मस्जिदों में या तो अपनी नमाज़ों से ज़्यादा सवाब कमाने जाते है या तब्लीग़ बयान सुनने। इन कामों के बरअक्स भी मस्जिद में जाने पर बहुत सवाब है। एक जगह जहाँ पर लोग इकट्ठा होते है अपने अवरत हिस्सों को खोलकर वो मस्जिद नहीं हो सकती; यह फिस्क (गुनाह) का जमावड़ा है। कई इस्लामी किताबों में लिखा है कि फिस्क की जगह पर जाना हराम है। जो लोग

ऐसी मस्जिदों में जाते है वो फिस्क के जमावाड़े में जा रहे है जो गुनाह है। एक शख़्स जो ऐसी मस्जिद में सवाब कमाने और बयान सुनने जाता है वो सवाब के बदले गुनाह कमा कर लौटता है। जब लोग खुले अवरत हिस्सों के साथ मस्जिद में घुसते है तो वो मुसलमानों को भी गुनहगार बनाते हैं। जिस तरह से अवरत हिस्सों को खुला छोड़ना कबीरा गुनाह है। इसलिए मुसलमान जो ऐसी मस्जिदों में जाते है और गुनाह कमाते है और सवाब के बदले गज़बे इलाही कमाते है।

नमाज़ का बाब

नमाज़ के **12** फर्ज़ है: **7** बाहर के और **5** अंदर के।

फर्ज जो बाहर के है: तहारत, हदैस से; नजासत से तहारत; सतरे अवरत; इस्तिकवाल-ए-किबला; वक़्त; नियत; तकवीर-ए-इफतिताह। अन्दर के फर्ज़ है: कियाम; किरात; रूकू हर एक रकअत में; सजदा हर रकअत में **2** बार; कज़ा-ए-आख़िरा में तशहहुद में बैठना जितनी देर हो सके। नमाज़ के फर्ज़ो को **रूकन** कहते है। सजदे में माथा और पंजों (पैरों के) को ज़मीन पर रखना फर्ज़ है।

हदैस से तहारत के मायने है, अगर वुज़ू न हो तो वुज़ू करना, जुनूब की हालत में गुस्ल करना, और अगर आस पास पानी न हो और वुज़ू या गुस्ल ज़रूरी हो तो तैयम्मुम करना। हदैस से तहारत को पूरा करने के लिए तीन शर्ते है।

इस्तिन्जा और इस्तिबारा (जिसका ज़िकर आगे किया जायेगा) का बारीकी से ख़्याल रखना, जब धो रहे हो, जब सिर का मसह कर रहे हो, ऐसी जगहों को सूखा न छोड़ देना जिनका गीला करना फर्ज़ हो।

नजासत से तहारत पूरा होने की तीन शर्ते है: नमाज़ के वक़्त पहने हुए कपड़ों का नजासत से पाक होना। नमाज़ पढ़ते वक़्त पढ़ने वाले के जिस्म का पाक होना। नमाज़ पढ़ने की जगह का पाक होना। [इस बाब का आख़िर देखे जो **54** फ़र्ज़ों के बारे में है!]

सतरे अवरत के पूरा होने के लिए तीन शर्ते है: हनफी मज़हब में, आदमी के लिए अपनी नाभी के नीचे से अपने घुटनों के बिल्कुल नीचे तक के हिस्से को छुपाना। अपने पैरो को नमाज़ के वक़्त ढक कर रखना आदमी के लिए सुन्नत है।

आज़ाद औरत के लिए, अपने हाथ और चेहरे के अलावा बाकी हिस्सों को न दिखाना, आलिमों के मुताबिक़ उसके पैरों का भी शामिल होने पर अपवाद है।

जारिया औरतों के लिए उनके जिस्म के पीछे के हिस्से का ऊपरी हिस्सा और छाती से घुटनों तक ढक कर रखना। [वो औरतें जो बिना अपना सिर हाथ या पैर ढके बाहर जाती है या जो बिल्कुल बदन से चिपके हुए कपड़ें पहनती है और उन्हें मर्द देखता है तो वो गुनाहगार हैं क्योंकि वो हराम कर रहें हैं। वो इन्सान जो इस सच्चाई से कान बन्द कर लेता है वो काफिर और मुरतद हो जाता है।]

इस्तिकबाल-ए-क़िब्ला के पूरा होने की तीन शर्ते है: किबले की तरफ रूख करना।

अपनी छाती क़िब्ले की तरफ से न मोड़ना जब तक कि नमाज़ पूरी न हो जाए।

अपने आप को अल्लाहु तआला के दीवान-ए-मा-नावी में शाईस्ता करना।

नमाज़ के वक़्त के पूरा होने की तीन शर्ते है: नमाज़ का वक़्त कब शुरू और कब ख़त्म होता है इसका इल्म रखना। नमाज़ के वक़्त पर नमाज़ को मुलतवी न करना बल्कि पहले पढ़ना मकरूह है।

नियत के मायने है नमाज़ का फर्ज़, वाजिब या सुन्नत या मुस्तहब का जानना और उसे अपने दिल से गुज़ारना और हर एक लफ्ज़ को दिल से समझना। वित्र नमाज़ इमाम आज़म के मुताबिक़ वाजिब, दो इमामों के मुताबिक़ सुन्नत (यानि अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) और शाफी और मालिकी मज़हब में है। [मालिकी मज़हब के मुताबिक़ किसी हरज (इस्लाम की बताई गई मुश्किल) के होने पर वित्र को छोड़ा जा सकता है।]

तक्बीरे इफ्तिताह में आदमी अपने हाथों को कान तक ले जाता है और दिल जागता और चौकस रखें।

कियाम के पूरा होने की तीन शर्ते है: क़िब्ले की तरफ रूख़ होना, सजदे की जगह पर देखना (यानि वो जगह जहाँ तुम अपना माथा लगाओंगे) और कियाम के दौरान ना डोलना।

किरात के पूरा होने की तीन शर्ते है: जब ज़रूरत हो तो कलाम को ऊँचा पढ़ना, और जब अकेले में हो तो ऐसे पढ़ना की आवाज़ ख़ुद के कानों तक पहुँच जाए, और लफ्ज़ों की सही तलफ्फुज़ से पढ़ना। कुराने करीम की जिस आयत को आप पढ़ रहे हो उसके मायने सोचना। तजवीद के कानूनों को समझना जो तुम आयतों में पढ़ते हो। तकवीर जो नमाज़ से पहले पढ़ते है और जो भी नमाज़ में पढ़ा जाता है और अज़ान को अरबी ज़बान में होना चाहिए। इन अरबी आयतों को कैसे पढ़ना है यह उस हाफिज़ से सीखना

चाहिए जो इस्लाम जानता हो और इल्मे हाल के मज़हब की किताबों का पालन करता है। लैटिन लफ्ज़ों में लिखी हुई कुरान करीम की आयतों को सही से नहीं पढ़ा जा सकता। इसे पढ़ना गलती भरा होगा। कुरान करीम की तफ्सीर मुमकिन है। जबकि इसका तर्जुमा इस सवाल से बाहर है। किलबे जैसे 'करान का तुर्की तर्जुमा' जो लामज़हबियों के ज़रिए लिखी गई है वो सही नहीं है। वो गलत और ख़ामियों वाली है। हर मुसलमान को कुरान करीम सीखना चाहिए ताकि वो कुरान करीम और नमाज़ को सही से पढ़ सके। वो नमाज़ जिसमें आयत करीम सही और इबादत सही अदा की जाए वो क़ुबूल होगी। **तब्रीग़-उस-सलात** किताब में लिखा है: "अगर नमाज़ में कोई शख़्स आयत करीम और इबादत पढ़ता है जो **9** इस्लामी आलिमों के मुताबिक़ गलत और एक के मुताबिक़ सही है तो, हमें उसकी नमाज़ को फासिद की नमाज़ के तरीक़े से नहीं देखना चाहिए।" (फासिद वो इबादत होती है जो क़ुबूल न हुई हो।)

रूकू के पूरा होने की तीन शर्ते है: क़िब्ले की तरफ रूकू करना, अच्छी तरह झुकना (अंग्रेज़ी के अक्षर 'L' की तरह ऊपर से नीचे) कमर और सिर एक स्तर पर रखना। तुमानिनत (वो वक़्त जब तक तुम्हारा दिल आज़ीज़ न हो जाए) के वक़्त कम इस तरह रहना।

सज्दा पूरा होने की तीन शर्ते: सज्दे के लिए उस तरह से झुकना जैसा सुन्नत में बताया गया है। क़िब्ले की तरफ सज्दा करना; एक लाईन में नाक और माथा ज़मीन पर लगाते हुए। और तुमानिनत तक उसी तरह सजदे में रहना। [किसी सेहतमंद इंसान के लिए जायज़ होगा कि वो उस स्तर से **25** CM. ऊँची चीज़ पर सज्दा करे। (जिस जगाह पर वो नमाज़ पढ़ रहे हो), पर ऐसा करना मकरूह है। हमारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' और सहाबा अकरम में से किसी ने भी स्तर ऊँची चीज़ पर सज्दा नहीं किया। किसी ऊँची चीज़ पर सज्दा करना नमाज़ को फासिद कर देता है।]

कज़ा-ए-आख़िरा के पूरा होने की तीन शर्ते है: **1-** आदमी के लिए अपने उल्टे पैर पर बैठना जबकि उल्टा पंजा खड़ा रहे, औरत के तीन तवररूक पर बैठना, यानि कूल्हों पर बैठना और दोनों पैर सीधी तरफ से बाहर निकालना। **2-** तहीय्यत को ताज़ीम से पढ़ना। **3-** कज़ा-ए-आख़िरा में सलाकत और बाकी दुआये पढ़ना। नमाज़ के बाद की दुआएँ अगले लेख में सिखाई जायेंगी।

गुस्ल का तरीका

हनफी मज़हब में गुस्ल करने के **3** फर्ज़ हैं, मालिकी मज़हब में **5** फर्ज़, और **2** फर्ज शाफी मज़हब में है और एक फर्ज़ हनबाली मज़हब में है।

हनफी मज़हब में:

1- पहले मुँह में पानी डाल कर कुल्ला करे पानी दाँतों के अन्दर जाना फर्ज़ है। कुल्ला अच्छे से करना ताकि बचे हुए टुकड़े निकल जाए [एक मुसलमान जो हनफी मज़हब से है वो तब तक अपना दाँत नहीं भरवा सकता जब तक कि ज़रूरत न हो, वो एक मसनूई कर सकता है ताकि जब वो गुस्ल करे उसे भी निकाल कर धोले। एक मुसलमान जिसका दाँत भरा हुआ हो बिना किसी ज़रूरत के वो ऐसा मुसलमान होगा जिसका उज़र हर्ज (मुश्किल) की बिना पर है और उसे झेलना पड़ेगा, उसे गुस्ल के वक़्त मालिकी या शाफी मज़हब की नकल करनी पड़ेगी। उस मामले में, उसे नमाज़ पढ़ने में या वुज़ू या गुस्ल में यह कहना पड़ेगा कि, "मैं शाफी या मालिकी मज़हब की नकल कर रहा हूँ।"

2- एक बार नाक में पानी डालें।

3- एक बार पूरा शरीर धो लो। शरीर का हर हिस्सा धोना फर्ज़ है जिस हिस्से को धोने में परेशनी न हो। और कुछ हिस्सा शरीर का रह जाता है जैसे के मल मूत्र के आस पास की जगह जहाँ अक्सर पानी नहीं पहुँच पाता है। इस स्थिति में (अल्लाह ताला फरमाते है) कि उसका गुस्ल माना जायेगा।

जैसे की आप पुरानी किताबों में पढ़ चुके है **दुर्र-उल-मुख़्तार** अगर खाने का कोई अंश आपके दाँतों में लगा रह जाता है या दाँतों के खाली जगह में चुपका रह जाता है। तो इस स्थिति में गुस्ल सही नहीं माना जाता है। यह स्थिती फतवे के अन्दर आती है। [फतवा वो है जो मुस्लिम आलिमों के द्वारा दी गई राय, मज़हबी मुददों पर। वह राय जोकि आलिमों द्वारा दी गई हो और उसपे सब आलिमों की रज़ामंदी हो।] पानी का मुँह के हर हिस्से में धुसना दाँतों के दरमियान और खाली स्थान तक पहुँचना अन्दर का हर हिस्सा गीला होना चाहिए अगर कुछ आपके दाँतों के दरमियान जा कर सब जगह गीली हो जाती है, अगर कुछ ठोस पदार्थ आपके दाँतों में लगा रह जाता है और पानी वहाँ तक पहुँच जाता है और उस हिस्से को गिला कर देता है, तो उस स्थिति में उलेमाओं की राय यह की वो पानी की तबाही को बचा लेगा और यह इस बात की सच्चाई है। **इब्ने आबिदीन** 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' इस मामले को ऐसे ब्यान करते है: यह किताब **खूलासा-त-उल-फतवाह** में लिखा है, कि वो अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता (पानी की तबाही क्योंकि, तरल है, यह खाने के अन्दर तक जा सकता है (ऐसे यह अन्दर तक जा कर पदार्थ लगे हुए हिस्से को भी गीला कर देगा।) अगर हम पाते है की पानी उस हिस्से तक पहुँच जाता है पर पदार्थ के दाँत पर लगे हुए से अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता है तो इस स्थिति में गुस्ल सही नहीं माना जाता है, यह वो सच है जिस पर सारे आलिमों की एक राय है। यही बात किताब **हिलया-त-उल-मुजल्ली**, (जिसको लिखने वाले इबनी इमीर हज़) हालाबी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' d. 879 [1474 A.D.] अगर कुछ खाने के अंश दाँतों के दरमियान रह जाते है और कुल्ला करने के

बावजूद वो अंश नहीं निकल पाते और पानी अन्दर तक नहीं पहुँच पाता उस स्थिति में भी गुस्ल ठीक नहीं माना जायेगा। इसके अन्दर इसकी कोई ज़रूरत नहीं है (दूसरे शब्दों में, यह ऐसा कुछ नहीं है जो अपने आप हो जाए।) नहीं इसमें वो हर्ज है [इनको साफ़ करते समय (और जिस्म)]

हालाबी-ए-सगीर किताब में लिखा है, अगर किसी इंसान के गुस्ल के दौरान कुछ खाने के अंश या ब्रेड का टुकड़ा या कोई भी चीज़ दाँतों के दरमियान रह जाती है तो उसका गुस्ल सही नहीं माना जाएगा, फतवाह के तहत, भले ही वह ये नहीं जानता की पानी (गुस्ल में लिया गया) अंश तक पहुँचा है की नहीं। इसके तहत फतवाह जो की **खुलासा-त-उल-फतवाह** में है। कुछ उलेमाओं के तहत गुस्ल सही नहीं माना जाता अगर ठोस (खाने का टुकड़ा) दाँतों में अटका रह जाता है। इसका आख़िरी फैसला किताब **ज़ाहिरा-त-उल-फतवाह** में है (लिखने वाले बुरहानउद्दीन महमूद बिन ताजुद्दीन अहमद बिन अब्दुल अज़ीज बुख़ारी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' **551 [1156 A.D.]** - शहीद **616 [1219]**।) यह एक मान्य फैसला है। गुस्ल के लिए अगर, पानी वहाँ तक नहीं पहुँच पाता और गीला नहीं कर पाता और वहाँ ना कोई ज़रूरत है और ना ही कोई हर्ज है।

दुरू-उल-मुनताका: [लिखने वाले आलाउद्दीन हासकाफी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' **1021**, हसकाफ **-1088 [1677 A.D.]** में लिखा है गुस्ल के विषय में अगर खाने के कुछ अंश आप के दाँतों के दरमियान रह जाता है, और तो उस पर कुछ इस्लामिक उलेमाओं का कहना है कि वह गुस्ल ठीक है पर इसके साथ-साथ कुछ का कहना है की हमें ख़ुद की भलाई के लिए गुस्ल करने से पहले बचे हुए खाने को अपने हाथों के द्वारा निकाल लेना चाहिए। **माराक-ईल-फालहा** की कमनटरी **ताहतवी** में लिखा है, अगर खाने का कोई अंश आपके दाँतों के दरमियान रह जाता है तो आपका गुस्ल सही

है।क्योंकि पानी एक तरल पदार्थ है और वो असानी से दाँतों के दरमियान रिस-रिस कर पहुँच सकता है।अगर ये कुछ पदार्थ जो की खाने के बाद भी रह गया हो और ठोस बन गया हो तो वो गुस्ल से बचा लेता है।इसलिए यह **फत-ह-उल-कादीर** में लिखा हुआ है।

बाहर-उर-रईक किताब में लिखा है।वो गुस्ल ठीक हे अगर अपने दाँतों की जगह में कुछ रह जाता है यानि खाने या ब्रेड के कुछ अंश क्योंकि गुस्ल के समय जब पानी मुँह में लेकर कुल्ली की जाती है तो पानी रिस-रिस कर अन्दर की जगह तक पहुँच जाता है।यही बात तेजनीस (और तजनीस) किताब में भी लिखी हुई है।सदर-उश-शहीद हुसामाद्दीन कहते है यह गुस्ल ठीक नहीं है और इसलिए बचे हुए अंशों को निकालना जरूरी है और पानी का अन्दर तक पहुँचना जरूरी है।इसलिए यही सुरक्षित रास्ता है की पहले उसे निकाल ले ताकि पानी अन्दर तक सही से जा सके।

फातवा-ए-हिन्दीया: किताब में लिखा है यह बेहस सच्चाई के बहुत करीब है।कि अगर कोई इन्सान गुस्ल करने में यह धारंणा का इस्तेमाल करता है यानि वे इन्सान जिसके गुस्ल करते वक़्त दाँतों के बीच खाने के कुछ अंश रह गए और उसने गुस्ल कर लिया और पानी वहाँ तक पहुँच गया हो तो उसका गुस्ल ठीक है।यही बेहस **ज़ाहीदी** में लिखी हुई है।सबसे अच्छा यह रहेगा अगर आप उस अंश या खाने के टुकड़े को निकाल ले और पानी अन्दर तक जा सके और दाँतों के दरमियान और खाली जगह में अन्दर तक असानी से घुस सके।इस प्रकार **कादीखान** किताब में कहा गया है **नातीफी** किताब में लिखा हुआ है कि गुस्ल करते वक़्त अगर कुछ खाने का अंश आपके दाँतों के दरमियान चुपका रह गया है तो वे गुस्ल पूरी तरह से सही नहीं माना जाएगा इसलिए जरूरी यह है की उसे निकालने के बाद अच्छे से पानी खाली स्थान तक पहुँचाए।

किताब **अल-मजमूआत-उज-जुहदिया:** में लिखा है; अगर दाँत में फंसा खाना ठोस गोली बन जाता है और उसी मात्रा से बचा रहता है, तो वो बेपरवाह गुस्ल से भी बचेगा। ऐसा ही **हलबी** में भी लिखा है। इस पर बहस नहीं की जा सकती कि, "बचे हुए खाने को निकालने में कोई हर्ज या मुश्किल नहीं है, पर भरे हुए दाँत नहीं निकाले जा सकते; तो उन्हे निकालने में हर्ज है।" हाँ यहाँ हर्ज है। जब इंसान पर कोई चीज़ हराम हो जाती है। तो उसपर किसी और मज़हब की नकल करना उज़र हो जाता है। फर्ज़ को छोडना कोई उज़र नहीं। एक शख्स फर्ज़ को न पढ़ने से तक दोषमुक्त हो सकता है जब दूसरे मज़हब की नकल करते हुए भी वो मुमकिन न हो। जिसका मतलब है कि ज़रूरत और हर्ज का एक साथ होना। अगर यह पूछा जाये कि, "किसी का दाँत का भरवाना उसको दर्द से बचने की नीयत से किया जाये। तो क्या ऐसा करने की ज़रूरत नहीं है (यानि फर्ज़ से दोषमुक्त होने और बिना दाँत धोये)" तब हमारा जवाब होगा, "वहाँ एक ज़रूरत होगी जोकि दूसरे मज़हब के मुताबिक़ रास्ता बताएगी।"

वह बहस, "गुस्ल करते वक़्त दाँतों का धोना, दाँतों के भरे हुई ऊपरी परत की तरफ चली गई है" इस्लाम के मुताबिक़ नहीं है। तहतावीं (अहमद बिन मुहम्मद बिन इस्माईल) अपनी किताब **इमदादुल फतह:** की टिप्पणी में फरमाते है: "किसी शख़्स का वुज़ू जो अपने मेस्ट पर रखकर वुज़ू तोड़ने के बाद, वुज़ू का टूटना मेस्ट पर असर करेगा पैरों पर। [मेस्ट के भाव और उज़र होने, के मुताल्लिक़ मालूमात के लिए **सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन का तीसरा बाब देखें।] यह फिक़्ह का बयान वुज़ू बनाने और मेस्ट पहनने से संबध रखती है। इसे गुस्ल करने या दाँत भरवाने से जोड़ने से मतलब है व्यक्तिगत फतवा जारी करने जैसा है। किसी फतवे पर अगुंली उठाना। और न ही यह घनी दाढ़ी और भरे हुए दाँत को मिलाने में विपरित है। वुज़ू करते हुए दाढ़ी के अन्दर की खाल को धोना ज़रूरी नहीं है। यह फर्ज़ है तो गुस्ल में भी होगा वो

अपनी घनी दाढ़ी की खाल को धोयेगा। तो उस शख़्स का गुस्ल और वो लोग जो उसपे यक़ीन करते है और नमाज़ अदा करे तो उनकी नमाज़ सही नहीं होगी।

न ही यह ऐसा कुछ है जो फिक़्ह की किताबों में हो जो दाँत के भर जाने को पैरों की दरारों को महरम से भरने से तुलना करे या लकड़ी की कमठी को जकड़ा जाये जख़्म में या टूटे पैरों पर या बैंडेज से। अगर कोई हर्ज या मुश्किल हो सकती है उन्हे जख़्म से हटाने में तो यह मुश्किल नहीं की दूसरे मज़हब की नकल की जाये। इन तीन बातों से वो अन्दर से धोने पर दोषमुक्त हो जाता है।

जबकी तुम्हे छूट है कि तुम अपनी मर्ज़ी से अपने सड़े हुए या दर्द देने वाले दाँत को भरवाओं क्योंकि तुम उसे हटाना या बदलवाना नहीं चाहते एक नकली दाँत या दाँतों से तो उसे भरवाना या दाँत लगवाना कोई ज़रूरत पैदा नहीं करता है। यह कहना कि यह एक ज़रूरत है अपने में ही दोषमुक्त होने का कारण बनता है अन्दर के हिस्से को धोने के। तब दूसरे मज़हब की नकल करना मुश्किल है। किसी को कोई हक़ नहीं कि वो ज़रूरत को एक चीज़ की तरह इस्तेमाल करे दूसरे लोगों को बुरा कहने के लिए, जो फिक़्ह की किताब पढ़ता हो और शाफी और मालिकी की मज़हब का पालन करता है।

ज़रूरत के मायने है अलौकिक वजह जो किसी को, कोई चीज़ करने पर मजबूर करती हो, यानि वजह जिसका कोई चारा नहीं। ज़रूरत की मिसालें है, इस्लामी हुक्म या, मनाही, दर्द, अपना हाथ या अपनी जान खोने का ख़तरा और कोई चारा ना होना। **हरज,** दूसरी तरफ की मुश्किलें, जो किसी चीज़ को बचाने में की गई जिसे तुमने करा हो या फर्ज़ अदा करने से बचाने या हराम के काम से बचाने। अल्लाह तआला के हुक्म और मनाही को **अहकाम-ए-इस्लमिया** कहते है। अहकाम-ए-इस्लमिया का पालन करते हुए यानि कोई हुक्म मानते हुए

या कोई मनाही से बचते हुए तुम अपने मज़हब के आलिमों की लिखी हुई किसी एक बात जो आम तौर पर सबको पता हो उसका इस्तेमाल करते हो। अगर चुने हुए में से कोई हर्ज (मुश्किल) है उस बात पे जो तुम कर चुके हो तो आप सबसे कम तवज्जो दी गई बयानात पर अमल करो। (जिसे तुम्हारे मज़हब के आलिमों ने बताया है) अगर उस बयान में कोई हर्ज आता है तो तुम दूसरे मज़हब पर जा सकते हो उस मुद्दे से मुतालिक। अगर दुसरे मज़हब में भी हर्ज आता है तो तुम उस मुद्दे को ग़ौर से देखो कि उस मामले, जिसे करने में हर्ज आये, उसे करने की ज़रूरत है भी या नहीं।

1- जब किसी काम को करने की ज़रूरत हो (जो फर्ज़ है) जो हर्ज पैदा कर रही हो, तो तुम उस फर्ज़ को पूरा करने से साकित हो जाते हो।

2- जब किसी हरज वाली चीज़ को करने की ज़रूरत न हो [मसलन नाखूंन पौलिश], या कोई ज़रूरत हो और उसको करने के और भी तरीक़ें हो और तुम वो चुनते हो जो हरज था, तो जो इबादत तुम करते हो वो सही नहीं होगी। तुम्हे इबादत का वो रास्ता अपनाना चाहिए जिसमें हर्ज न हो। हर्ज या मुश्किल के होने पर दूसरा मज़हब इस्तेमाल किया जा सकता है। इस बात से बेपरवाह कि इसकी ज़रूरत है की नहीं, यह किताब **फतवा-ए-हदिसिय्या** (इब्ने-हज़र-ए-मक्की 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि', **899 [1494 A.D.] - 974 [1566]**, मक्का) और **खुलासा-त-उत-तहकीक** (अब्दुल घहनी नबलुसी 'रही-मुहुल्लाहु तआला' **1050 [1640 A.D.]**, दमसकस, **1143 [1731]**,) में तहतवी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' को ऐनोटेशन से शरबलाली 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' की किताब **मेराकिल फेलाह** और हलील इसिरदी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' की किताब **माफूवत** में भी लिखा है। मौला हलील (असअरदीई) गुज़र गए **1259 [1843 A.D.]**। एक हनफी मुसलमान जो अपने दर्द करते हुए या सड़े हुए दाँत को उखड़वाने या दूसरे दाँत लगवाने के बजाये उसे साफ़

करवा के भरवाना चाहता है तो उसे गुस्ल के वक़्त मालिकी या शाफी मज़हब का इस्तेमाल करना पड़ेगा। क्योंकि इन दोनों मज़हबों में नाक और मुँह में पानी डालना फर्ज़ नहीं है। और मालिकी या शाफी मज़हब की नक़ल करना आसान है। तुम्हे नीयत करनी पड़ेगी, यानि पूरे दिल से कि तुम गुस्ल, वुज़ू करने में फला मज़हब की नक़ल कर रहे हो या नमाज़ पढ़ने से पहले, और अगर तुम भूल जाते हो, तो नमाज़ के बाद या जब भी याद आये। इस मामले में जो वुज़ू और नमाज़ तुम अदा करते हो वो शाफी या मालिकी मज़हब के मुताबिक़ सही होगा। शाफी मज़हब के मुताबिक़ उनका सही होने के लिये तुम्हे अपना वुज़ू दोबारा करना पड़ेगा अगर जो तुम्हारे जिस्म का हिस्सा किसी औरत के जिस्म से छू जाता है यह औरत उन **18** औरतों में से है जिन्हे निकाह के लिए हराम कर दिया गया हो [औरत जिनसे निकाह जायज़ नहीं है, उससे मुताल्लिक़ मालूमात के लिए **सआदते अबदिया** के **5**वें एडिशन का **12**वां बाब देखें।] या जब तुम्हारी हथेली तुम्हारे काबा अवरत (यानि गुप्त अंगों को छुए) और इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ते हुए सूरह फातिहा का पढ़ना। मालिकी मज़हब की नकल जानने के लिए **सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन का **6**वां भाग देखे। किसी दूसरे मज़हब की नकल करने से मुराद अपना मज़हब बदलना नहीं है। एक हनफी मुसलमान जो दूसरे मज़हब की नकल करता है वो हनफी मज़हब से बाहर नहीं होता। वो अपने आप को उस मज़हब के फर्ज़ और मुफ्सिद के मुताबिक़ ढाल लेता है। वो वाजिब मकरूह और सुन्नत में अपने मज़हब का पालन करता है।

फिक़्ह के आलिमों की बातें गुस्ल के मुताल्लिक अभी भी बाकी है, ऐसे लोग जो किसी मज़हब में से भी नहीं है उनकी लेखों की कोशिशों को सुना जा रह है। वो कहते है कि यह **1332** [**1913** अ।ड।] के फतवे में लिखा है सबील-उर-रशीद किताब में कि दाँत को भरवाना जायज़ है। सबसे पहले हम यह कहना चाहते है कि यह गलत मज़हब सुधारकों की बातें है और बिना

किसी मज़हब के लोगों का घेरा है। इनका एक लेखक इस्माईल हक्की जो मनास्तिर (वितोला) था, एक कपटी मिस्री था। दूसरा इज़मीर का इस्माइल हक्की, वो इसमें भी आगे का शख़्स था जो की महमत अब्दुह से धोखा खाया हुआ था, थामरों का मुफती मिस्री और इस्लाम सुधारक था। उस ने हाई स्कूल की तालिम इज़मीर और टीचर की तालीम इस्तान्बुल से ली। उसके पास एक कमज़ोर और कम इस्लामी तालीम थी। यूनियन पर्टियों से मदद लेके वो मदरसे का उस्ताद बन गया और अब्दुसो सुधारकों के विचारों को फैलाने लगा। तारीफी भाषण जो इस्माईल हक्की ने अपनी किताब **तलफीक-ए-मज़ाहिब** में लिखा है, जो कि राशिद रिदा जोकि मिर्स के थे उनकी तर्जुमा थी और बाद में अहम हमदी अक्सकी, से तर्जुमा हुई जो एक पीड़ित चेला था उसके जहरीलें धोखे और अपने अंदर के धोखे का।

इस्माईल हक्की के इस बयान पर चर्चा करते हुए फिक़्ह के आलिमों ने इस बात पर ध्यान दिया कि किताबों को आगे रखते हुए दाँतों पर सोने की तारें लगवाना जायज़ है, किताबें मसलन (मुहम्मद शैबानी की किताब) **सियारे कबीर** जोकि आलिमों को ये इल्म देती है कि सोने का तार सिल्वर के तार के मुकाबले ज़रूरत कि है या नहीं, पूरे मामले से पता चला कि दाँत एक ज़रूरत है। पर सवाल यह था कि एक भरे हुए दाँत के इन्सान का गुस्ल सही होगा या नहीं और ना की दाँत पर सोने या चांदी का तार चड़वाना। बिना सही सवाल जाने इज़मीर के इस्माईल हक्की ने अपने निष्कर्षो को नतीजा बताते हुए सवालों का जवाब दिया। कि उसने जो किया वो सरासर गलत था। यह एक अपने आप को धोखा देने वाला काम है इस्लामी आलिमों के फतवे के ख़िलाफ। उसकी यह कोशिश उससे बदतर थी। गुस्ल पर फिक़्ह के आलिमों के बयान का हवाला देते हुए, उसने उन्हे अपनी ज़ाती राय में ठुकरा दिया। मसलन वो कहता है, "जैसे की बहर में बयान है, जहाँ पानी का पहुँचना मुश्किल हो वहाँ पानी को पहुँचाना जरूरी नहीं है।" दूसरी तरफ **बहर** किताब में लिखा है:

"...जिस्म के वो हिस्से जहाँ पानी का पहुँचना मुश्किल है।" यानि उसने वो चीज़ें मिलाई जो कोई शख़्स लाज़मी तौर पर कर सकता है या जो किसी ने लाज़मी तौर पर किया हो। न ही वो अपने इस बयान में सही था कि "अगर औरत के लिये सिर धोना नुक़सान दायक है तो वो अपना सिर नहीं धोती।" जोकि किताब **दुर्र-उल-मुख़्तार** में सबूत के तौर पर लिखा है कि भरे हुए दाँतों से किया गया गुस्ल जायज़ है। एक जिस्मी बीमारी के कारण पानी से सिर को नुकसान पहुंचता है। जबकि दाँतों को भरना एक ख़ुद अपनी पसन्द से है। यह इसलिए है क्योंकि यह सवाल यानि दाँत भरे हुए बन्दे का गुस्ल जायज़ होगा या नहीं अलग से किताब **दुर्र-उल-मुख़्तार** में लिखा है।

जो भी चाले और अज़ाब अब तक बताई गई है वो इज़मीर के इस्माईल हक्की की शैतानी को बताने के लिये कम है। वो मसलन, इतना दुराचारी था कि वो इस्लामी आलिमों को अपने लिए झूठा गवाह बना लेता था यह कह के, "यह जरूरी नहीं कि चांदी या सोने के भरे हुए दाँत के अन्दर तक पानी जाये गुस्ल के दौरान या उसके अन्दर की चीज़ों को धोना। फ़िक़्ह के आलिमों ने एकमत राय रखकर कहा है कि उस दाँत के लिए एक ज़रूरत है और ज़रूरत के लिए जरूरी नहीं है कि पानी उस जिस्म के हिस्से तक पहुँचे।" फ़िक़्ह के किसी हनफी आलिम ने यह नहीं कहा कि दाँत को भरवाना ज़रूरत है। दरअसल जिस वक़्त फ़िक़्ह के आलिम थे उस वक़्त दाँत भरवाने जैसा मसला नहीं था। **सियार-ए-कबीर** किताब के 64वें पन्ने पर लिखा है जोकि एक सबूत है मुहम्मद शैबानी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' की कही हुई बात का कि एक शख़्स के लिए अपना टूटा दाँत बदलवाना या सोने की तार लगवाना जायज़ होगा। किताब दाँत भरवाने के बारे में कुछ नहीं बताती। यह इज़मीर के इस्माईल हक्की की एकमत झूठी बाते है। फ्रिमासन संप्रदाय के लोग, बिना किसी मज़हब के और पांखडी है जो बाद में आए मुसलमानों को धोखे में डालने वाले बयान दिए। उन्होने गलत चीज़ें और बातें लिखी।

इमाम मुहम्मद शैबानी ‘रहीमा-हुल्लाहु तआला’ में बयान किया कि एक लड़खड़ाते हुए दाँत को सोने या चांदी के तार से बांधा जा सकता है। उन्होने यह नहीं कहा कि ऐसा करना जायज़ होगा। ऐसी चीज़ें इस्माईल हक्की के ज़रिए रखी गई। मुफ्तियों और मज़हब के दूसरे कीमती लोगों ने इस्माइल हक्की इज़मीरी के खिलाफ अपने जवाब रखे ताकि सही के सामने गलत को परखा जाये। जैसा कि पिछले लेख में ऊपर लिखा है। उनमें से एक अलिम यूनुस ज़ादे अहमद वेहवी अफेन्दी ‘रहीमा-हुल्लाहु तआला’ वोलवादिन (तुर्की) भी थे। यह बड़े आलिम ने साबित किया कि दाँत भरे हुए इन्सान का गुस्ल सही नहीं होगा।

आवर्धिक प्रशासन किताब **सबील-उर-रशाद** को इतना दानिशमंदाल तो होना चाहिए कि अल्प चाल रोज़गार जैसा लेख इज़मिरर के ज़रिये लिखा हुआ, ताकि वो इसे जरूर समझे, इसको सहारा देना उसमें फतवें जोड़ के, “...गुस्ल सही होगा,” दूसरे एडिशन, **1329** [**1911** A.D.] में, फतवा की किताब **मजमूआ-ए-जदीदा** में। हालांकि कि जिसे यह फतवा कह रहे है वो पहले एडिशन की किताब से नदारद है। **1299** A.H., जबकी यह गुमराही बात दूसरे एडिशन में है जो कुख्यात यूनियन पार्टी के ज़रिये खड़े किये गये आदमी, मूसा कज़ीम शेख़-उल-इस्लाम ने जोड़ी है। तो सबील-उर-रशीद ने निष्कर्ष निकालने की कोशिश की है एक मनगंढ़त बयान जोकि एक फ्रिमासन ने इस्लाम के सुधारकों का सहारा देने के लिए पेश किया। किसी भी फिक़्ह के आलिम ने दाँत के भर पाने को ज़रूरत नहीं कहा। और जो लोग ऐसा कहते है वो गुमराह इंसान या इस्लाम के सुधारकों या बिना किसी मज़हब के या वहाबियों, से भटके हुए लोग है। उसके अलावा कुछ नहीं है।

अहमद (बिन मुहम्मद बिन इस्माईल) तहतवी ‘रहीमा-हुल्लाहु तआला’ अपनी किताब **मेराकिल फलाह** की ऐनोटेशन में कहते है, “जब (तुम एक

जमात में होते हो) और (इमाम के पीछे) नमाज़ पढ़ते हो जो की तीन में से किसी एक मज़हब से है। जो नमाज़ तुम पढ़ोगे वो होगी यह ध्यान में रखते हुए कि तुम्हारे मज़हब की ऐसी बात जो नमाज़ को ख़राब कर देती हो वो उस इमाम में ना हो या अगर उसमें नमाज़ खराब करने वाली कोई बात है और तुम्हे उसका इल्म हो। यह भरोसेमन्द क़ौल है। दूसरे क़ौल के मुताबिक़ सही है तो उसके पीछे नमाज़ पढ़ना सही है इस बात को न सोचते हुए की जो तुम्हारे मज़हब में बात है वो उसमें न हो। यही बात इब्ने आबिदीन में भी लिखी है। जैसा कि इस बयान से जाना जा सकता है जो कि तहतवी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने तहतवी के हवाले में लिखी है, यहाँ दो अलग-अलग आलिमों के क़ौल है इस मामले पर कि एक हनफी मुसलमान के लिए जिसका दाँत भरा हुआ नहीं है वो जमाअत में नमाज़ उस ईमाम के पीछे पढ़ता है जिसका दाँत भरा हुआ है तो वो सही नमाज़ होगी: पहले क़ौल के मुताबिक़ एक हनफी मुसलमान बिना दाँत भरा के दाँत भरे हुए ईमाम के पीछे नमाज़ पढ़ सकता है। यह इमाम हिन्दुवानी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' का इजतिहाद है। यही कानून शाफी मज़हब में भी है। जब तक यह पता न हो कि सालिह इमाम जिसका दाँत भरा हुआ है वो शाफी या मालिकी मज़हब की नकल न कर रहा हो। हनफी मुसलमानों जिनका दाँत भरा हुआ नहीं है उसको उस इमाम के पीछे नमाज़ पढ़नी चाहिए। तांक-झांक करते हुए इमाम से पूछना कि वो मालिकी या शाफी मज़हब की नकल कर रहा है जायज़ नहीं है। दूसरा क़ौल कमज़ोर है। हालांकि पहले लिखा जा चुका है कि जब कोई हरज हो तो कमज़ोर क़ौल पर काम करना चाहिए। फैलाने से बचाएगा, ऐसा किताब **हदीका** में भी लिखा है। अगर कोई मुसलमान चारों मज़हब से नफरत करता है और फिक के बताये तरीकों पर अमल नहीं करता, तो उसे सुन्नी नहीं माना जायेगा। और जो शख़्स सुन्नी नहीं या तो वो बिद्दती है या पाखंडी है, या उसने अपना ईमान खो दिया है और मुरतद बन गया है। हम यह नहीं कह रहे कि तुम्हे अपने दाँत नहीं भरवाने

चाहिए। हम हमारे भाईयों और बहनों को जिन्होने अपने दाँत भरवा रखे है उनको सही और क़ुबूल होने वाली इबादत का तरीका बता रहे है। हम उन्हे आसान रास्तें दिखा रहे है।

गुस्ल **15** तरह के है, उनमें से पाँच फर्ज़ है, पाँच वाजिब, चार सुन्नत है और एक मुस्तहव। गुस्ल जो फर्ज़ है: जब एक औरत (और एक लड़की) किसी की महावारी का महीना पूरा हो, संभोग के बाद, वीर्य के निकलने जाने के बाद, रात को वीर्य निकलने के बाद जब वीर्य को बिस्तर पर या अपनी पतलून में देखे, बताये हुए वक़्त से पहले गुस्ल फर्ज़ है जब एक बिना अदा की गई नमाज़ पूरी हो जाये।

किस स्थिति में गुस्ल वाजिब है। और मरने के बाद मुसलमान पर गुस्ल वाजिब है: और बच्चे पर गुस्ल जब वाजिब हो जाता है जब वो अपनी जवानी की उम्र में आ जाता है। और उसे अच्छे बूरे का फर्क पता लगने लगता है। जब पति और पत्नि दोनों साथ सोते है। और सुबह उठ कर देखते है की कुछ वीर्य उनके इर्द-गिर्द है और यह पता नहीं होता की यह वीर्य दोनों में से किसका है तो ऐसी हालत में पति और पत्नी दोनों पर गुस्ल वाजिब हो जाता है। जब आप ख़ुद को देखते हो कुछ वीर्य पढ़ा और आपको यह पता नहीं होता यह कब निकला तो इस हालत में भी उस इन्सान पर गुस्ल वाजिब हो जाता है और जब औरत बच्चे को जन्म देती है तो उस पर गुस्ल वजिब हो जाता है चाहे उस जगह से ख़ून निकले या ना निकाले पर उस औरत पर इस स्थिति में गुस्ल वाजिब हो जाता है। (ख़ून निकलने की स्थिति में गुस्ल फर्ज़ होता है।)

गुस्ल जो सुन्नत है: जुम्मे के दिन के लिए गुस्ल करना और ईद के दिनों और एहराम के वक़्त -आपकी नीयत पर और अराफात (पहाड़) [मिहरबानी करके चौथा भाग देखे चौथे एडिशन **सआदत अबदिया** का “गुस्ल” और सातवें एडीशन का सातवें भाग का “हज”] पर चढ़ने से पहले गुस्ल जो

मुस्ताहाब है: जब एक काफिर मुसलमान होता है, इस स्थिति में उस पर गुस्ल करना फर्ज़ हो जाता है और उसकी स्थिति मुसलमान बनने से पहले जुनूब की है तो उस पर गुस्ल फर्ज़ हो जाता है, (जिसका मतलब जिस हालत में गुस्ल करना जरूरी है वरना, उसके लिए गुस्ल करना मुस्ताहाब हो जाता है।

गुस्ल में तीन तरह के हराम होते है:

1- गुस्ल करते वक़्त आदमी और औरतों के लिए नाभि के नीचे और घुटनों से ऊपर का हिस्सा नहीं दिखाना; (दूसरे शब्दों में नाभि से नीचे और घुटनों से ऊपर का हिस्सा किसी दूसरे आदमी को दिखाना हराम है, और औरतों के लिए भी गुस्ल के दौरान यही हिस्सों को दूसरी औरत को, दिखाना हराम है)

2- क़ौल के तेहत, मुसलमान औरत के लिए हराम है की वो गुस्ल के दौरान खूद को ग़ैर मज़हबी औरत को दिखाए (यह कानून बाकी वक़्तों पर भी लागू होता है)

3- पानी का फिज़ूल खर्ची; (गुस्ल के वक़्त पानी का फिज़ूल खर्च करना भी हराम होता है)

हनफी मज़हब में गुस्ल के दरमियान **13** सुन्नतें देखी जाती है।

1- पानी से इस्तनजा करे। दूसरे शब्दों में अपने गुप्त अंगों को पानी से साफ़ करना।

2- हाथों को कलाई तक धोना।

3- अगर कोई असल नजासत आपके जिस्म के किसी हिस्से पर लगा हुआ है तो उसे हटा लेंना।

4- मसमज़ा और इस्तीनशाख करने में ज़्यादा ध्यान होना, (मसमसा मतलब मुँह को पानी से खंगोलना (कुल्ला करना) और इस्तीनशाख मतलब नाक के ज़रिए से पानी को ऊपर लेना।) वह गुस्ल सही नहीं होगा जिसमें मुँह या नाक के अन्दर के हिस्से को एक सूई की नोक के बराबर भी गीला ना किया हो जब गुस्ल करने की शुरूआत हो नमाज़ के लिए वुज़ू करा जाए।

5- गुस्ल करने के लिए (नियत) करना।

6- हाथों के ज़रिए, हर एक अंग को रगड़कर पानी डालना।

7- पहले सर पर पानी डालना, उसके बाद दांए और बांए कंधे पर, हर एक पर तीन मरतबा।

8- हाथों और पेरों की उंगलियों के बीच खीलाल करना, दूसरे अलफ़ाज़ों में उंगलियों के बीच गीला करना।

9- क़िब्ले की तरफ पीठ या उसका सामना ना करना।

10- गुस्ल के दरमियान दुनयवी मामलातों पर न बोलना।

11- मज़मज़ा और इस्तीनशाख को तीन-तीन मरतबा करना।

12- हर एक अंग को धोने की शुरूआत सीधी तरफ से करना।

13- उस जगह पेशाब न करना जहाँ तुम वुज़ू करते हो अगर यह वह जगह है जहाँ पानी पुल बना रहा है।(गुस्ल के लिए इस्तेमाल होता है) इन सुन्नतों के अलावा दूसरी सुन्नतें है जो हमने दर्ज की है।

तौहीद की इबादत

या अल्लाह, या अल्लाह। ला इलाहा इल-लल्लाह मुहम्मदुन रसूलुल्लाह। या रहमान, या रहीम, या अफुवू या करीम, फा फू अन्नी वा रहमानी या इनहाम अर राहीमीन! तवाफ्फानी मुस्लिमान वा अल हिकनी बिस सालीहीन। अल्लाहुम्मागफीली वा ली आबाई वा उम्माहाती वा ली आबाई वा उम्माहाती ज़वजाती वा ली अजदादी वा जद्दाती वा लेबनाई वा बेनाती वा ली ई हवाती वा अहावाती वा ली अमामी वा अम्माती वा ली अहवाली वा हालाती वी ली उसताज़ी। अब्दुल हकीम-ए-अरवासी वा ली काफ्फा तील मु मीनीना वल मोमीनात 'रहमतुल्लाह तआला अलैहिम अजमाईन'।

हैद वा निफास के मुताल्लिक़ बाब
(महावारी और ज़च्चा अवधि)

महावारी की अवधि कम से कम तीन दिन और ज़्यादा से ज़्यादा दस दिन की होती है। ज़च्चा अवधि के सबसे कम दिनों की कोई अवधि नहीं है। जब भी ख़ून का बहाव खात्मे की कगार की तरफ आए यह ज़रूरी होगी के गुस्ल करे और नमाज़ रोज़ें अदा करें यह ज़्यादा से ज़्यादा चालीस दिन तक है। अगर कम से कम तीन दिन की हद से पहले महावारी का ख़ूनी बहाव रूक जाता है, औरत को ना पढ़ी हुई नमाज़ों की इबादत की कज़ा अदा ना करने की चिंता हो जाती है क्योंकि उसने सोचा के वह अभी महावारी के दौर से गुज़र रही है। [इबादत फर्ज़ को कज़ा करना यानी इसको इसके फरमाए गए वक़्त के बाद अदा करना।] इस मामले में गुस्ल ज़रूरी नहीं है। अगर तीन दिन के दौरान के बाद ख़ूनी बहाव रूकता है, तो उसे गुस्ल करना होगा और नमाज़ें

फरमाए गए वक़्त के साथ अदा करनी होगी जब ख़ूनी बहाव रूकता है। (ज़्यादा से ज़्यादा) दस दिन की हद के बाद, वह गुस्ल करे और वक़्त के हिसाब से नमाज़ अदा करे, चाहे ख़ूनी बहाव ना रूका हो। जब (ज़्यादा से ज़्यादा) चालीस दिन का दौरान ख़त्म हुआ हो और इसलिए इसने गुस्ल कर लिया हो, वह बिल्कुल अपनी नमाज़ें अदा करे चाहे ख़ूनी बहाव ख़त्म की कगार पे ना आया हो। महावारी या ज़च्चा के दिनों के दौरान की तमाम तरह की ख़ूनी बहाव का फैसला करना बहुँत ज़रूरी है, (हल्के पीले रंग का और गन्दगी के समान होता है।)

अगर महावारी के दस दिनों में या जेर के चालीस दिनों में एक या दो दिन ख़ूनी बहाव लगातार नहीं होता और वह गुस्ल कर लेती है और रोज़े रखती है क्योंकि इसने सोच के ख़ूनी बहाव आख़िरी कगार पे आ गया है और फिर दुबारा ख़ूनी बहाव हो जाता है, तो उसको उन रोज़ों की कज़ा अदा करना होगा (जैसे की इसने उनको बिल्कुल भी ना रखा हो), और इसको दुबारा गुस्ल करना होगा जब भी ख़ूनी बहाव ख़त्म हो जाए। अगर इसकी आदत से पहले ख़ूनी बहाव रूकता है और अभी तक (ख़ूनी बहाव) का तीसरा दिन हो, तब वह गुस्ल करे और अपनी नमाज़ अदा करे। हालांकि इसकी आदत के खात्मे से पहले इसका अपने शौहर (पति) के साथ संभोग नहीं हुआ है। जेर के लिए भी हूबहू नियम लागू होता है। अगर इसकी आदत के खात्मे के बाद ख़ूनी बहाव खात्मे पे आता है और अभी तक ख़ूनी बहाव के शुरूआती या दसवाँ दिन हो, यह पूरी अवधि हैद तर्जुबा की गई। [दिनों के उस दौरन के बीच जब ख़ूनी बहाव होता हुआ दिखता है और वह दिन जब यह रूकावट में दिखता है आदत कहलाता है। यह हनफी मज़हब में कम से कम तीन दिन और ज़्यादा से ज़्यादा दस दिन है। शाफी और हनवाली मज़हब में यह कम से कम एक दिन और ज़्यादा से ज़्यादा **15** दिन है। [बराए मेहरबानी तफसीली मालूमात के लिए **सआदते अदबिया** की पूलिका के **14**वें सस्करण **2008** के **50**वें सफे को

देखें।] अगर ख़ूनी बहाव खात्से पे ना आए और दसवें दिन के बाद भी लगातार रहे, तो उसकी आदत के बाद ख़ूनी बहाव हैद नहीं है, और उन ज़्यादा दिनों के लिए उसे इबादत को क़ज़ा अदा करना होगा (यानी उसकी आदत के बाद वाले दिन।) महावारी के चालीस दिन और ज़च्चा के दस दिन एक जैसे है।

जब हैद (ख़ूनी बहाव) या निफास (ज़च्चा ख़ूनी बहाव) रमज़ान में दिन की शुरूआत के बाद ख़त्म होता है, वह खाती पीती नहीं है, जैसे के वह रोज़े से हो, हालांकि, यह रोज़े के लिए नहीं होगा, (यानी उसको इस मुबारक महीने रमज़ान के बाद रोज़ा रखना होगा) और अगर ख़ूनी बहाव सवेरे के बाद शुरू हो जाता है, और बाद दोपहर नज़र आता है, तो वह अकेले में खा पी सकती है, आम बोलचाल के साथ, अगर कोई औरत देखती है के वह ख़ूनी बहाव कर रही है, तो उसे नमाज़ और रोज़े की अदाएगी को रोकना होगा, अगर यह तीसरे दिन के ख़त्म होने से पहले तक रहता है, तो वह ख़त्म होने की हद तक सब से नमाज़ के वक़्त तक इंतेज़ार करती है, अगर ख़ूनी बहाव दुबारा नहीं होता, तो वह वुज़ू बनाती है और नमाज़ अदा करती है, और अगर ख़ूनी बहाव दुबारा होता है, तो वह दुबारा नमाज़ छोड़ती है, तो वह करीब की नमाज़ के वक़्त तक इंतेज़ार करती है, उस हालत में जब ख़ूनी बहाव दुबारा नहीं होता, वह इसी तरह लगातार करती जब तक तीसरे दिन ख़त्म नहीं होता, और इसी बीच के वक़्त में गुस्ल ज़रूरी नहीं होता, वुज़ू बनाना भी काफी होगा, अगर ख़ूनी बहाव के बाद ख़त्म होता है, वह दुबारा नमाज़ के अच्छे व मुनासिब वक़्त होने तक इंतेज़ार करती है और गुस्ल करती है और अपनी नमाज़ अदा करती है अगर ख़ूनी बहाव दुबारा नहीं हुआ हो तो, अगर वह हुआ हो, तो वह नमाज़ अदा नहीं करती, अगर इस तरह से दस दिन तक चलता है, तब वह गुस्ल करती है और अपनी नमाज़ अदा करती है, पक्की ख़ूनी बहाव की हालत में भी, यह नियम निफास (ज़च्चा) पे भी लागू होता है हालांकि ख़ूनी

बहाव के हर एक के खात्मे के बाद गुस्ल ज़रूरी होगा, जबकि यह रमज़ान में पहले दिन ही ख़त्म हुआ हो, अगर यह सुबह होने से पहले ख़त्म हुआ हो, वह अपना रोज़ा रखती है अगर कूशलूक के वक़्त के बाद ख़ूनी बहाव होता है (जोकि पूर्वाह के दौरान) या दोपहर के बाद, उसको रोज़ा नहीं होगा उसको इसका कज़ा अदा करना होगा (मुबारक महीने रमज़ान के बाद)।

गर्भपात की हालत में, यह ऐसा होगा जैसे की इसने एक निर्दोष बच्चे को जन्म दिया है अगर इस बच्चे के बाल मुँह या नाक क़ायम हो गया है, अगर उसका कोई अंग क़ायम नहीं हुआ हो, तो यह निफास (ज़च्चा) की हालत नहीं है, हालांकि, अगर वह तीन या ज़्यादा दिनों से ख़ूनी बहाव की हालत में है, यह हैद (महावारी) का मामला है। अभी तक यह महावारी का मामला नहीं है, दोनों में से कोई एक है, अगर गर्भपात पहली महावारी की ख़ूनी बहाव के **15** या ज़्यादा दिनों के बाद ख़त्म होता है, या अगर **15** दिन नहीं विताए पहली महावारी के ख़ूनी बहाव के खात्मे के बाद। यह ख़ूनी बहाव का है, ख़ूनी नाक मामला से कोई बदलाव नहीं। इसको अपनी नमाज़ अदा करनी है। इसको रोज़ा रखना है। और उसको अपने पति के साथ विस्तर पर जाने से पहले गुस्ल ज़रूरी नहीं है।

(इस्लाम के महान आलिम (ज़ैन-उद्दीन) मुहम्मद बिरगीवी (बिन अली) 'रहमतुल्लाह अलैहि' (**928** [**1521** A.D.] बाली केसीर फ्लैगू के **981** [**1573**], में बीरगी, अयदिन, तुर्की।) ने एक बहुत ज़्यादा क़ीमती किताब लिखी है हक़दार **जेहर-उल-मुताहहीलीन** और औरतों की महावारी और ज़च्चा हालातों को समझाया वह किताब अरबी ज़बान में है। अल्लामा शामी सय्यद मुहम्मद ऐमीम (या अमीन) बिन उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ इब्नी आबीदीन 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' (**1198** [**1784** अ।ड।] डमसकस - **1252** [**1836**], हूबहू जगह) ने इस किताब को बढ़ाया और **मेनहेल-उल-वारीदीन** नाम

रखा। यहाँ पे संराश है के **मेनहेल** (उल वारीदीन) क्या लिखा है: यहाँ फिकह के उलेमाओं के एक मत के ज़रिए फरमाया गया के (इस्लामी तालीमियत) जिसे इल्म-ए-हाल कहते है उसे हर एक मुसलमान मर्द और औरत को सिखना फर्ज़ है। उस मामले के लिए औरत और उनके शौहरों को हैद और निफास से मुताल्लिक़ तालीमियत सीखनी चाहिए। शौहरों को अपनी बीवियों को सिखाना चाहिए, या अगर वह भी नहीं जानते तो उनको दूसरी औरतों से मालूमियत हासिल करने दे जो उसकी तालीमियत रखती है, एक औरत जिसका शौहर उसे सिखाने से रोके वह अपने शौहर की इजाज़त के बगै़र बाहर जाए और सीखे औरतों के मुताल्लिक़ यह तालीमियते गुमनामी में डूबी हुई दिखती है, आगे के तौर पर मज़हब का कोई आदमी भी उनके बारे में नहीं जानता, मज़हब के माअसर आदमीयों ने इतना ज़्यादा नहीं सीखा के ख़ूनी बहाव जिससे हैद कहते है (मासिक धर्म), निफास (लोधीअल खात्मे) और इस्तीहादा (अत्यातर्व) के अलावा कुछ बता सके। उन्होंने इन मुद्दों के बढ़ावे की किताबों पे मालिकियत नहीं रखी। और वह शख़्स जिसके पास इससे मुताल्लिक़ तालीमियत की किताबे है इसको पढ़ व समझ नहीं सकता। क्योंकि यह तालीमियत समझाने के लिए मुश्किल है। दूसरे अलफ़ाज़ों में मज़हबी मामलात जैसे की वुज़ू, नमाज़, कुरआन-अल-करीम का (पढ़ना) रोज़ा, इतीकाफ, हज (तीर्थ यात्रा), बालिग़ (उम्र) तक पहुँच, शादी, तलाक़, एक (तलाक़शुदा) औरत के लिए इद्दत की अवधि, इस्तीबारा, वगैहर-वगैरह। ख़ूनी बहाव (की तराहियत के) मुताल्लिक़ जानकारी को हासिल करने की ज़रूरत इसे अच्छे से समझने में मेरी आधी ज़िन्दगी लग गई। मुझे चाहिए के मैं अपनी मुसलमान बेहनों को साफ़-साफ़ समझाऊ इनके फायदे के लिए जो कुछ भी मैने सीखा।

हैद ख़ून है जो तंदरूस्त लड़की की योनि से बहता है (कम से कम) आठ साल की उम्र के फौरन बाद, या सीधे मुकम्मल तहारत की एक अवधि के बाद एक औरत की उसकी पहली कामयाव महावारी के आख़िरी मिनट बाद,

और जोकि कम से कम तीन दिन लगातार रहती है।इस ख़ूनी बहाव को **सही ख़ूनी बहाव** भी कहते है।(या सही मासिक धर्म) अगर आदत की अवधि के 15 या ज़्यादा दिनों के बाद ख़ूनी बहाव महसूस नहीं किया गया और जोकि महावारी की अवधियों के बीच है, तहारत की इस अवधि को **सही तहारत** कहते है।अगर तहारत के 15 या ज़्यादा दिन की अवधि के पहले या बाद में फ़ासिद ख़ूनी बहाव के दिन मौजूद हो या सही तहारत के बीच की अवधि यह तमाम दिन (बाधित होते है इसलिए फ़ासिद ख़ूनी बहाव के दिन कहलाते है) इन्हें **हक्मी तहारत** या **फ़ासिद तहारत** कहा जाता है।अवधियाँ जो ख़ूनी जो ख़ून बहाव के बग़ैर और अब जो 15 दिनों से कम है उन्हें फ़ासिद तहारत कहा जाता है।सहीह तहारत और हुक्मी तहारत को **पूरी तहारत** कहा जाता है।ख़ूनी बहाव जो पूरी तहारत की अवधि के पहले या बाद में महसूस हो और जोकि (कम से कम) तीन दिन तक लगातार हो दोनों हैद की अलग अवधियाँ है।

सफेद रआयत के साथ ख़ून का कोई भी रंग, और फिर धुंधला रंग मिलाकर हैद का ख़ून है।

जब एक लड़की महावारी शुरू कर देती है तो वह **बालिग़** हो जाती है।(यानी वो बालिग़ की उम्र तक पहुँच गई है।) दूसरे अलफ़ाज़ों में, वह एक औरत हो गई है।उन दिनों के बीच की सख्या जब ख़ूनी बहाव महसूस होता है और वह दिन जब ख़ूनी बहाव ख़त्म होता है इसे **आदत** की अवधि कहते है।आदत की अवधि ज़्यादा से ज़्यादा दस दिन और कम से कम तीन दिन है।शाफी और हनबाली मज़हबों में यह ज़्यादा से ज़्यादा 15 दिन और कम से कम 1 दिन है।

हैद ना रूकने वाला ख़ूनी बहाव नहीं है।अगर एक ख़ूनी बहाव शुरू और ख़त्म होता हुआ महसूस हो और फिर एक या दो दिन बाद दुबारा होता हुआ महसूस हो, तहारत का वक़्त जो इस दरमियान होता है और जो तीन दिन

से भी कम का होता है, अगर ख़ून लगातार बहता है तो इसे उस अवधि में शामिल करना ज़रूरी है, इस्लामिक उलेमाओं की आम राय के हिसाब से अगर वह तहारत तीन दिन या ज़्यादा लगातार रहती है और फिर हैद के दसवें दिन से पहले खात्मे पे आ जाती है तो यह शामिल किया जाएगा के वह ख़ूनी बहाव दस तीन तक लगातार रहा, इमाम मुहम्मद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के रिर्पोट के मुताबिक़ जो इमाम आज़म अबू हनीफा 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' बताते है। और फिर उलेमाओं की रिर्पोट इमाम मुहम्मद के ज़रिए बताई गई। दूसरे अलफ़ाज़ों में, इमाम अबू यूसुफ 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़ तहारत के तमाम दिन जो पन्द्रह (15) दिन से पहले ख़त्म हो गए है वह भी उस अवधि में शामिल कर लिए जाएंगें जैसे कि अगर ख़ून लगातार बहता है। अगर एक लड़की ख़ूनी बहाव को एक दिन के लिए महसूस करती है और फिर 14 दिन के बाद तहारत का तर्जुबा करती है और इसके बाद ख़ूनी बहाव एक दिन के लिए फिर दुबारा होता है; या अगर एक औरत ख़ूनी बहाव से गुज़र रही है और उसके बाद तहारत के दस दिन सीधे एक दिन के ख़ूनी बहाव पे अमल करते है या तीन दिन ख़ूनी बहाव महसूस करती है और उसके बाद पाँच दिन की तहारत में चली जाती है और फिर दुबारा एक दिन के लिए ख़ूनी बहाव करती है; लड़की के पहले दस दिन उसकी महावारी अवधि बनाते है। जिसे आदत कहते है। इमाम अबू यूसुफ के मुताबिक़। जैसे की पहले वाली औरत के उसकी आदत के बराबर के दिन महावारी है, उसके बाद सीधे तमाम दिन इस्तीहादा है (उत्यार्तवं) बाद की औरत के तमाम नौ दिन महावारी है। इमाम मुहम्मद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़ पहली रिवायत, (यानी उलेमाई रिपोर्ट) के पहले वाली औरत के सिर्फ 9 दिन महावारी (हैद) है। इमाम मुहम्मद की दूसरी रियावत के मुताबिक़ पहले वाली औरत के सिर्फ पहले तीन दिन महावारी है। और इसके अलावा कोई महावारी नहीं है। हमारी हाल की किताब के लिए हक़दार किताब **मुलतेखा** (या मुलतखा) से तर्जुमा किया हुआ, हमने

इमाम मुहम्मद की पहली रिवायत की रोशनी में तमाम जानकारी लिख दी है।[इबराहीम बिन मुहम्मद हालाबी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' **866**, अलेप्पो - **956** [**1549** A.D.] के ज़रिए इस्तानबुल में लिखी गई।यह किताब फ्रेन्च ज़बान में भी मौजूद है।] एक दिन, (इस संदर्भ में) यानी पूरे **24** घन्टें, यह ग़ैर शादीशुदा (अछूत) औरत के लिए मासिक धर्मो के दौरान मुसताहब है, और शादीशुदा औरत के लिए भी हमेशा, के अपनी जननांग के मुँह पे कपड़े का टुकड़ा (पेड, सेन्टेरी तोलीया, तंपन) लगाना, और उसपे परफीयूम इस्तेमाल करना।यह उनके लिए मकरूह होगा अगर पूरा खुरसूफ अपनी योनि में घुसेड़ दे।एक लड़की जो महीनों के लिए हर एक दिन खुरसूफ पे ख़ून का होना महसूस करे आख़िर में ये माना जाएगा के वह पहले **10** दिन महावारी में थी और बाकी बीस दिन वह इस्तीहादा में चल रही थी (हर महीने के) यह नियम लगातार ख़ूनी बहाव तक लागू होता है, जोकि **इस्तिमरार** क़रार करता है।अगर एक लड़की तीन दिन ख़ूनी बहाव होता हुआ महसूस करती है और फिर एक दिन ना महसूस होता है और फिर उसे एक दिन दुबारा महसूस करती है और फिर उसके बाद दो दिन तक न होता हुआ महसूस करती है फिर उसको एक दिन दुबारा महसूस करती है और एक दिन दुबारा उसको ना महसूस करती है और फिर एक दिन दुबारा महसूस करती है।तमाम दस दिन महावारी के दिन है।अगर वह एक दिन ख़ून देखती है और उसके बाद वाले दिनों में नहीं देखती और अगर यह दस दिन तक लगातार होता है हर महीने तो नमाज़ रोज़े से हर एक दिन दूर होती है, जब भी वह ख़ून देखती है, और गुस्ल कर के हर दूसरे दिन अपनी रोज़मर्रा की नमाज़ अदा करती है यानी जबभी ख़ूनी बहाव रूक जाता है [मिसाइल-ए-सहारह-ए-वीकाया]।[फारसी ज़बान में वह किताब अब्दुल हक़ सजादील सरहिन्दी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' के ज़रिए लिखी गई।] वह ख़ूनी बहाव जो तीन दिन से कम लगातार होता है, जो बहात्तर घन्टों के बराबर है या **5** मिनट से छोटा हो सकता है, एक नई नौजवान हुई

लड़की के लिए, जोकि दसवें दिन के बाद भी लगातार चलता रहता है जब यह दस दिनों से लगातार चलता है, या, एक औरत के लिए जो नई नहीं है, जो औरत अपनी आदत में चल रही है न सिर्फ उसकी आदत वल्कि दस दिन से भी ज़्यादा बढ़ जाती है, या जो गर्भवती या ऐसे के दौरान चल रही है ऐसा यानी (बड़ी) औरत या एक कच्ची उम्र नौ साल की लड़की यह महावारी में नहीं है, इसे **इस्तीहादा** कहा जाता है (अत्यातर्व), या फ़ासिद ख़ूनी बहाव। एक औरत **55** साल की उम्र के पास **ऐसा** हो जाती है। अगर एक औरत जिसकी आदत महसूस करती है जब आधा सूरज निकल चुका होता है और **11**वीं सुवह को दो तिहाई सूरज निकलने तक ख़ूनी बहाव रहता है। अपनी आदत के पाँच दिन इस्तीहादा (अत्यातर्व) के ज़्यादा ख़ूनी बहाव में चली गई है। उसके ख़ूनी बहाव ने (ज़्यादा से ज़्यादा) दस दिन व दस रातों की हद सूरज के एक तिहाई के ज़रिए पार कर दी है। जब दस दिन ख़त्म हो जाए, उसको ज़रूर ही गुस्ल कर लेना चाहिए और जो उसने अपने आदत के दौरान नमाज़ छोड़ी थी उनकी कज़ा नमाज़ अदा कर देनी चाहिए।

एक इस्तीहादा के दौरान होती हुई औरत उधार औरत है, जैसे कोई लगातार पेशाव या लगातार नाक के ख़ूनी बहाव वीमारी से ग्रस्त उसको रोज़े नमाज़ अदा करने होगें और उसके लिए जिस्मानी संवध (संभोग) जायज़ होगा।

इमाम मुहम्मद की क़ौल के मुताविक़, अगर एक लड़की अपनी ज़िन्दगी में पहली बार ख़ूनी बहाव का तर्जुवा करती है, और अगर यह एक दिन लगातार हो और आठ दिन रूक-रूक के और सिर्फ दसवें दिन दुवारा हो, सारे दस दिन महावारी है। अगर किसी तरह वह एक दिन ख़ूनी बहाव करती है और वाकी नौ दिन ख़ूनी बहाव ठहरता है और फिर ग्वारवें दिन होता है, उनमें से कोई भी महावारी नहीं है। दो दिन का ख़ूनी बहाव इस्तीहादा है। यह पहले

भी बताया गया है, दसवें दिन के बाद महसूस ख़ूनी बहाव के पहले तहारत के दिन महावारी में नहीं गिने जाते। अगर वह दसवें और ग्यारवें दिन ख़ूनी बहाव महसूस करती है, इनके बीच तहारत के दिन महावारी के रूप में गिने जाएंगें और इसी तरह पहले दस दिन महावारी होगी और ग्यारवा दिन इस्तीहादा हो जाएगा।

ख़ूनी बहाव जिसे इस्तीहादा (अत्यातर्व) कहते है वह बीमारी की निशानी है। उसका ज़्यादा दिन तक बहना ख़तरनाक हो सकता है। किसी डॉक्टर के साथ इसका मशवरा करना ज़रूरी है। लाल गेंद का ड्रेगन का ख़ून कहा जाता है यह ख़ूनी बहाव को रोक देगा अगर यह छोटी गेंदों में लपेटा हुआ हो और दिन में दो बार कुछ पानी के साथ निगल लिया जाए, एक ग्राम सुबह और एक शाम को। सलाह के मुताबिक़ पाँच ग्राम रोज़ाना है, एक औरत की महावारी की अवधि साथ ही में तहारत भी, हर महीने में हूबहू दिन होती है। इस सबक में, एक महीना एक हैद की शुरूआत और दूसरे के बीच की लम्बाई है। हर एक औरत को दिल से उन दिनों और घन्टों को याद करना चाहिए जिनमे वह महावारी में ख़ूनी बहाव करती है और अपने तहारत के दिनों और घन्टों को भी, यानी अपनी आदत को। किसी औरत की आदत सालों साल नहीं बदलती। अगर यह बदलती है, तो उसको अपने हैद और तहारत के दिनों को याद रखना होगा।

हक़दार किताब **मेनहेल** (उल-वारीदीन) एक आदत के बदलाव के बारे में पेश करती है। अगर एक औरत अपनी पहली हुई महावारी के हूबहू वक़्त और दिन महावारी करती है, तो यह माना जाना चाहिए के उसकी आदत बदली नहीं है। अगर यह वक़्त व दिन बदल देती है तब इसकी आदत बदल गई है। और इस बदलाव की तराहियतें निम्नलिखित पन्नों में समझाई जाएंगी। अगर यह सिर्फ एक बार होने के बाहर है तो आदत को बदला हुआ

माना जाएगा यह नियम फतवे के ज़रिए भी तसदीक है। अगर एक औरत सही तहारत के अवधि के बाद आदत में छः दिन ख़ून महसूस करती है, यह छः दिन उसके नये हैद होगा, नई आदत तहारत के दिन भी एक वाक्यि होने पर बदल जाएंगें जब यह बदलते है, आदत का वक़्त होता है। मसला एक औरत की आदत तहारत के **25** दिन बाद पाँच दिन ख़ूनी बहाव है; अगर इसकी नई आदत तीन दिन का ख़ूनी बहाव बन जाती है तहारत के **25** दिन बाद या तहारत के **23** दिन बाद पाँच दिन का ख़ूनी बहाव, तब ख़ूनी बहाव के दिन या वो तहारत के, बताए तरतीब, वह संख्या में बदल गई है। इसी तरह अगर ख़ूनी बहाव की हद दस दिन से ज़्यादा होती है, तो वह फ़ासिद ख़ूनी बहाव अपनी जगह लेता है और उस फ़ासिद ख़ूनी बहाव के आख़िरी तीन या ज़्यादा दिन पहले हुई आदत के दिनों में मिल जाते है और उसकी पहली आदत के दिन नई तहारत में मिल जाते है, उसकी पहली आदत में मिले हुए दिन उसकी नई आदत है। अब उसकी आदत बदल गई है अगर उसकी आदत पाँच दिन है और ख़ूनी बहाव सात दिन पहले शुरू हो गया है तो उसकी तहारत के दिन ख़त्म हो गए है और वह ख़ूनी बहाव लगातार **11** दिन लगातार रहता है, वह ख़ूनी बहाव फ़ासिद ख़ूनी बहाव है क्योंकि यह दस दिन से ज़्यादा हो गया है, उस ख़ूनी बहाव के तीन दिन से ज़्यादा यानी चार दिन, उसकी पहले वाली आदत में, और उसकी पहले हुई आदत नई तहारत में एक दिन बड़ जाता है, हालांकि उस वक़्त की अवधि जिसमें यह हुई वह नहीं बदली है। आदत में इस तरह के बदलावों के लिए हमें कुछ वज़ाहत फराहम करते है:

अगर ख़ूनी बहाव के नए दिन जो संख्या में है पहले वालों से अलग और दस दिनों से ज़्यादा लगातार होते है और उनके तीन या ज़्यादा दिन पहले वाली आदत के दिनों में नहीं बदलते, उस वक़्त का दौरान जब आदत बदलती है, (आदत के) दिनों की संख्या में कोई बदलाव नहीं होता और जब ख़ून महसूस होता है तबसे इसकी शुरूआत होती है, अगर एक औरत जिसकी

आदत पाँच दिन कोई ख़ूनी बहाव महसूस नहीं करती अगले महीने के पाँच दिनों में, या अगर वह शुरूआत के पहले तीन दिन कोई ख़ूनी बहाव महसूस नहीं करती, और उसके बाद वह 11 दिन ख़ूनी बहाव महसूस करती है, उसकी महावारी की अवधि पाँच दिन की है, जब ख़ूनी बहाव पहली बार महसूस होता है ये तभी से शुरू होता है: अब उसकी आदत का वक़्त बदल गया है, अगर नई ख़ूनी बहाव के तीन या ज़्यादा दिन उसकी पहली वाली आदत के दिनों में मिल जाते है, तो सिर्फ यह तीन (या ज़्यादा) दिन महावारी है, बचे हुए दिन इस्तीहादा (अत्यातर्व) अगर वह अपनी पिछली आदत से पहले ख़ूनी बहाव महसूस करे और फिर अपनी आदत में कोई ख़ूनी बहाव महसूस न करे और (पिछली) अपनी पिछली आदत के बाद सीधे एक दिन ख़ूनी बहाव महसूस करे, इमाम अबू यूसुफ के मुताबिक़, तहारत के पाँच दिन इनके बीच में है, महावारी, और उसकी आदत नहीं बदली। अगर वह अपनी पहली आदत के आख़िरी तीन दिनों में ख़ूनी बहाव महसूस करे और फिर उसके बाद सीधे आठ दिन ज़्यादा इसके पहले तीन दिन महावारी है, और जो इसकी संख्या बदली है। अगर ख़ूनी बहाव के दिन कुछ काफी है तो वह अतिरिक्त दस दिन से ज़्यादा नहीं होगें और इसी तरह से यह एक सही तहारत होगी, पूरी संख्या, (यानी आठ दिनों से कम जुड़े हुए तीन) महावारी है। अगर वह तहारत फ़ासिद तहारत का अनुगमन करती है, तो उसकी आदत नहीं बदलेगी। अगर उसकी आदत पाँच दिन और फिर वह छः (6) दिन और ख़ूनी बहाव महसूस करती है और उसके बाद (14) दिन तहारत में चली जाती है और फिर एक दिन का ख़ूनी बहाव, उसकी आदत नहीं बदली है, हमने ग़ैर हकीकी के ऊपर (11) मिसाल दी है वह औरत जिसके के हैद पाँच दिन होते है और तहारत के (55) दिन उसकी व्याख्या में जोड़ने के लिए जो अब तक कहा जा चुका है:

1- अगर यह औरत महावारी की पाँच दिनों की अवधि में चली जाती है और तहारत के (15) दिनों में और उसके बाद (11) दिन ख़ूनी बहाव में

इसकी पहली और सामान्य आदत में कोई ख़ूनी बहाव नहीं होगा, जो (**55**) दिनों के बाद हुई (और फिर इसकी आदत के पाँच दिनों के आख़िर में) तो आदत का वक़्त बदल गया है लेकिन इसको दिनों की संख्या में कोई बदलाव नहीं है। आख़िरी (**11**) दिनों के पहले पाँच दिन महावारी है।

2- अगर वह तहारत के (**60**) दिनों के बाद पाँच दिन के लिए ख़ूनी बहाव में चली जाती है और (**11**) दिनों के ख़ूनी बहाव में उस मसले के आख़िरी (**11**) दिनों के आख़िर वाले दो दिन आदत की अवधि में हो गए है, हालांकि तबसे वह तीन दिनों से कम हो गए है, आदत के दिनों की संख्या नहीं बदलती हालांकि इसका वक़्त बदलता है। तो, उन (**11**) दिनों के पहले पाँच दिन महावारी है।

3- अगर वह महावारी के पाँच दिन और तहारत के (**48**) दिनों का तर्जुबा करती है और फिर बारह (**12**) दिनों के ख़ूनी बहाव का उन (**12**) दिनों में पाँच दिन तहारत के सामान्य (**55**) दिनों में से है, और पाँच दिन महावारी है तो, कोई बदलाव नहीं हुआ।

4- अगर वह पाँच दिनों के ख़ूनी बहाव और (**54**) दिनों की तहारत में जाती है फिर एक दिन के ख़ूनी बहाव में और तहारत के चौदह (**14**) दिन और फिर एक दिन के ख़ूनी बहाव में, इनके बीच एक दिन का दरमियान (वह शुरूआती दिन) वही, इसकी सामान्य तहारत का आख़िरी दिन है, तभी से **14** दिन निफास अधुरी तहारत है। (दूसरे अलफ़ाज़ों में, क्योंकि यह पाँच दिनों से कम है मुकम्मल तहारत की क़ुबूलियत से) यह दिन ख़ूनी बहाव के, और उनमें से पहले पाँच महावारी है। आदत का वक़्त और इसके दिनों की संख्या नहीं बदली है।

5- तहारत के **(57)** दिनों के बाद **(5)** दिनों के ख़ूनी सिलसिले में फिर तहारत के **(14)** के बाद तीन दिनों का ख़ूनी बहाव और एक दिन के ख़ूनी बहाव का अमल, ख़ूनी बहाव के तीन दिन आदत के वक़्त के साथ है। और वह **(14)** दिन जो उनपे अमल करते है उन्हें ख़ूनी बहाव के दिन गिना गया हालांकि, जबसे **(11)** दिनों की संख्या वड़ी है, तभी से आदत के सिर्फ दिनों की संख्या में बदलाव आया है।

6- अगर पाँच **(5)** दिनों का ख़ूनी बहाव और **(55)** दिनों की तहारत और फिर **(9)** दिनों का ख़ूनी बहाव जोकि सही तहारत के बाद है, उसका तर्जुबा किया गया, ख़ूनी बहाव के पाँच (आख़िरी) दिन महावारी है। सिर्फ आदत के (दिनों की संख्या) बदल गई है। आदत और उसके बाद के वक़्त में तीन दिन से ज़्यादा है।

7- अगर पाँच दिनों के ख़ूनी बहाव तहारत के **(50)** दिन और ख़ूनी बहाव के दस दिन बाद, यह दस दिन हैद (महावारी) है। तहारत के आदत के दिन **(50)** दिनों में बदल गए है। ख़ूनी बहाव के दिन आदत के वक़्त और इसकी संख्या में है।

8- अगर ख़ूनी बहाव के पाँच दिन और तहारत के **(54)** दिन और आठ दिनों का ख़ूनी बहाव। आठ दिन महावारी के, और इसके तीन दिन से ज़्यादा आदत में है। महावारी की संख्या और तहारत एक दिन के ज़रिए बदल गए है।

9- अगर पाँच दिनों का ख़ूनी बहाव और पचास दिनों तहारत और सात दिनों का ख़ूनी बहाव, और सात दिन महावारी में, निसाब के दिनों की जितनी संख्या है यह पहले आदत है और कम से कम तीन दिन आदत में

है। तो, हैद अपने वक़्त और दिनों की संख्या दोनों में बदल गया है जबकि तहारत के दिन सिर्फ संख्या में बदले है।

10- अगर तहारत के (**58**) दिन और (**5**) दिनों के ख़ूनी बहाव और तीन दिनों का ख़ूनी बहाव तीन तो हैद है, और उनमें से दो दिन अब भी आदत के वक़्त में है और एक दिन के है। हैद की आदत वक़्त और दिनों की संख्या दोनों में बदल गई है, और तहारत सिर्फ अपने दिनों की संख्या में बदली है।

11- अगर (**5**) दिनों का ख़ूनी बहाव और (**64**) दिन तहारत और सात (**7**) या (**11**) को ख़ूनी बहाव, पहले उप मामले में सात दिन महावारी है, जबकि बदलाव पे आदत और इसके वक़्त में जगह ली। बाद वाले उप मामले में (**11**) में से पहले पाँच दिन महावारी है, और बचे छः दिन इस्तीहादा ही रहे। आदत सिर्फ अपने वक़्त में बदलती है। जबसे ख़ूनी बहाव दस दिन से ज़्यादा लगातार हुआ है, संख्या नहीं बदलती, तहारत दिनों की संख्या में बदलती है।

यह इमाम फखरूद्दीन ओटोमान जेलाई 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' (d. **743** [**1343** A.D.], मिस्त्र) के ज़रिए इनकी किताब तेबयीन-उल-हकाईख के ज़रिए फरमाया गया, और अहमद बिन मुहम्मद शेलबी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' (d. **1031** [**1621** A.D.] मिस्त्र के ज़रिए, किताब की तश्रीख़ में कि: "अगर वह आदत एक दिन पहले ख़ूनी बहाव में चली जाती है और दस दिन की तहारत और फिर एक दिन का ख़ूनी बहाव, इमाम अबू यूसुफ 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़, उसका हैद उन दस दिन शुरू होता है जिस दौरान उसने कोई ख़ूनी बहाव महसूस नहीं किया और वह उसकी आदत के बराबर लगातार रहा। उसके नये हैद के पहले और आख़िरी दिन (रक्तहीन) बिना ख़ून के है। ख़ूनी बहाव आदत के पहले और दसवें दिन के बाद महसूस किया गया,

जिसका मतलब के इनके दरमियान फ़ासिद तहारत ख़ूनी बहाव के दिनों में गिनी जाएगी। इमाम मुहम्मद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़ पूरी अवधि ग़ैर महावारी है अगर एक औरत की आदत तहारत के **(25)** दिनों के बाद **(5)** दिनों के ख़ूनी बहाव की है:

"**1-** अगर वह शुरूआती एक दिन ख़ूनी बहाव में चली जाए और एक दिन सीधे तहारत में ख़ूनी बहाव का वह दिन और उसके बाद ख़ूनी बहाव शुरू होता है इसी अन्दाज़ में चालू रहता है जिसे इस्तेमरार (लगातार, ज़ारी) कहते है जो इसे **10**वें दिन से परे करती है, आदत के मुताबिक़, इसके पाँच दिन महावारी है, इमाम अबू यूसुफ के हिसाब से। इसके पहले और बाद के दिन (अत्यातर्व) ख़ूनी बहाव (इस्तीहादा) है। इमाम मुहम्मद के मुताबिक़, ख़ूनी बहाव के तीन दिन, यानी जो उसकी आदत से सहमत है वह महावारी है। वह तीन दिन दूसरे, तीसरे और चौथे दिन है उसकी आदत के। वह अपनी आदत के पहले दिन कोई ख़ूनी बहाव महसूस नहीं करती। उन दिनों का पाँचवा दिन जब वह ख़ूनी बहाव महसूस करती है, दूसरे अलफ़ाज़ों में, यह उसकी आदत के बाहर है।

"**2-** अगर वह अपनी आदत के पहले दिन ख़ूनी बहाव महसूस करती है और उसके बाद एक दिन के लिए तहारियत में चली जाती है जोकि लगातार ख़ूनी बहाव के बाद आती है उसे इस्तेमरार कहते है जो इसे दसवें **(10)** दिन से दूर करती है, पाँच दिन, यानी जब तक उसकी आदते महावारी है, जैसे के यह इस्लामिक उलेमाओं के एक मत से फरमाया गया है के इसके पहले और आख़िरी दिन ख़ूनी होते है।

"**3-** अगर वह अपनी आदत के तीन दिन ख़ूनी बहाव महसूस करती है और उसके बाद दो अन्य दिनों के लिए **तहारियत में चली जाती है** और फिर उसके बाद एक इस्तिमरार जो इसे दसवें दिन से दूर करती है, उसकी पाँच दिन

की आदत महावारी है, इमाम अबू यूसुफ के मुताबिक़। इमाम मुहम्मद के मुताबिक़ उसकी आदत के पहले दिन महावारी है। इमाम मुहम्मद के इजतीहाद में महावारी के पहले और आख़िरी दिन ज़रूर ही ख़ूनी होगा।"

यह हक़दार किताबों **बहर** और **दूर-उल-मनतेखा** में फरमाया गया है: "अगर ख़ूनी बहाव आदत की अवधि को पार कर जाए और दस दिनों के ख़त्म होने से पहले तक रहे और फिर (15) दिनों के दौरान इसके खात्मे तक कभी दुवारा नहीं हुए, वह बढ़े हुए दिनों का ख़ूनी बहाव महावारी है यह इस्लामिक उलेमाओं के एक मत से फरमाया गया। उस मामले में, आदत के दिन बदल जाएंगें। अगर (15) दिनों या रातों के दौरान एक बार भी ख़ून बाहर आ जाता है, तो उसकी आदत में बढ़े हुए दिन महावारी नहीं होंगे; वह (अत्यातर्व) (इस्तीहादा) होंगे और जब वह दिन अत्यातर्व जाने जाएंगे। तो वह नमाज़ों की कज़ा अदा करेगी जोकि उसने उन दिनों नहीं पढ़ी।" यह उसके लिए मुस्तहिब होगा के उस नमाज़ के वक़्त लगभग खात्मे तक इंतेज़ार करे जिसमें उसे ख़ूनी बहाव होता है, अगर आदत के पूरे होने के बाद खात्मा अपनी जगह लेता है और अब दस दिन के पहले। तो वह गुस्ल करे और अपनी वक़्ती नमाज़ें अदा करे। वाटी बाद में जायज़ हो जाता है। अगर वह नमाज़ और गुस्ल छोड़ देती है जैसे की वह इंतेज़ार कर रही है, तव, जब उस नमाज़ का वक़्त पूरा हो जाए, वाटी बिना गुस्ल के जायज़ होगा।

जब एक लड़की अपनी ज़िन्दगी में पहली बार ख़ूनी बहाव महसूस करती है और या औरत अपनी आदत के (15) दिन के खात्मे के बाद, अगर ख़ूनी बहाव महसूस करती है (इन दिनों मिसाली लोगों में) ख़ूनी बहाव तीन दिन से पहले तक रहता है, तो इन दोनों लोगों को इबादत के खात्मे के करीब तक इंतेज़ार करना होगा (जिसमे खात्मा अपनी जगह लेगा) फिर, वह बिना गुस्ल के बुज़ू बनाए वक़्ती नमाज़ें अदा करे और (उन तीन दिनों से कम लगातार ख़ूनी

बहाव के दौरान) छोड़ी गई नमाज़ों की कज़ा अदा करे। अगर उस नमाज़ की अदायगी के बाद ख़ूनी बहाव दुबारा होता है, तो वह नमाज़ न पढ़े अगर वह दुबारा हो रहा हो, वह इबादत के खात्मे की तरफ वुज़ू बनाए और (अगर कोई नमाज़ छुटी हुई) हो तो उन ना पढ़ी हुई नमाज़ों की कज़ा अदा करे वह इस तरह से तीन दिन के खात्मे तक करते रहे। हालांकि, अगर गुस्ल कर लिया गया है तो वाटी हलाल नहीं है।

अगर (दोनों में से किसी मिसाल में) ख़ूनी बहाव तीन दिन के अलावा लगातार रहता है और आदत के पूरा होने तक होता है। वाटी (वैवाहिक रिश्ता) आदत की अवधि के पूरे होने तक हलाल नहीं होता। हालांकि, अगर उसने इबादत के आख़िर तक कोई ख़ून का धब्बा महसूस नहीं किया वह गुस्ल बनाती है और नमाज़ अदा करती है। उसको उस नमाज़ की कज़ा अदा नहीं करनी होगी (जोकि इसने इस बीच अदा नहीं की) अगर ख़ूनी बहाव के खात्मे के दिन के बाद कोई ख़ून बाहर नहीं आता, तो वह रोज़ा रखती है, वह दिन जब यह ख़त्म होता है वह उसकी नई आदत खात्मा है हालांकि, अगर ख़ूनी बहाव दुबारा होता है, तो वह नमाज़ें छोड देती है। और वह रोज़ा जो उसने रख लिया, तो वह रमज़ान के बाद उसकी कज़ा अदा करेगी। अगर ख़ूनी बहाव ख़त्म होता है, तो दुबारा वह गुस्ल करेगी इबादत के करीबी वक़्त तक और अपनी नमाज़ें अदा करेगी। वह रोज़ें रखेगी। वह इस तरह से दस दिन के बीतने तक करती रहेगी दसवें दिन के बाद वह दुबारा गुस्ल के बीच नमाज़ पढ़ेगी जबकि वह ख़ूनी बहाव महसूस करती है, और वाटी (वैवाहिक रिश्ता) गुस्ल के पहले तक हलाल होगा। मगर, वातेय के पहले गुस्ल करना मुस्तहिब है। अगर ख़ूनी बहाव दिन होने से पहले शुरू होता है और अगर सिर्फ इतना वक़्त काफी है कि गुस्ल करके कपड़े पहन लिए जाऐं और फिर दिन होने से पहले, "अल्लाहु अकबर" कहना का भी वक़्त नहीं, वह शुरूआती दिन का रोज़ा रखती है। फिर उसको पिछली रात की इबादत की कज़ा अदा नहीं करनी

होगा। अगर उसको पास यह कहने का भी काफी वक़्त है के, अल्लाहु अकबर, यानी तक्बीर (कहने का) तो उसको रात की इबादत की क़ज़ा अदा करनी होगा। मगर महावारी इफ्तार से पहले शुरू हो जाती है। (यानी सैर-ए-सूरज के डूबने का वक़्त, रोज़ा खोलने का वक़्त,) तो (उसी वक़्त) उसका रोज़ा टूट जाता है। [बराए मेहरबानी **सआदते अदबिया** की चौथी पूलिका के दसवें बाब में देखें इबादत के वक़्त की तफसीली जानकारी के लिए] वह इसकी रमज़ान के बाद क़ज़ा अदा करती है। अगर नमाज़ के दौरान महावारी होती है उसकी नमाज़ टूट जाती है, जब वह साफ़ हो जाती है, (यानी अपनी महावारी के आख़िर में जब वह गुस्ल कर लेती है।) अगर वह फर्ज़ नमाज़ थी तो उसको इसकी क़ज़ा अदा नहीं करनी होगी अगर वह नफिला (ज़रूरत से ज़्यादा) नमाज़ थी तो उसको किसी भी तरह इसकी क़ज़ा अदा करनी होगी। दिन निकलने के बाद जब वह उठती है और अपने खुरसूफ पैड पर ख़ून महसूस करती है, उसी को महावारी उसी वक़्त शुरू हो जाती है। अगर उठने के बाद वह अपने पैड को साफ़ देखती है, तो वह अपनी नींद में महावारी से बाहर आ जाती है, इन दोनों मसलों में (पिछली) रात की इबादत करना फर्ज़ है। नमाज़ों का फर्ज़ होना साफ़ सुथरा होने पर निर्भर है, (यानी महावारी का न होना) उस नमाज़ के आख़िरी मिनट पे कोई औरत अगर यह महसूस करती है के वक़्ती नमाज़ से पहले महावारी में है तो उसको उस नमाज़ की क़ज़ा अदा नहीं करनी।

महावारी की दो अवधियों के बीच **मुकम्मल तहारत** होगी। अगर वह अवधि मुकम्मल अवधि है यह वह है जो **सही तहारत** (क़रार दी गई है) पहले का सीधा ख़ूनी बहाव और बाद का दोनों अलग अलग हैद है यह इस्लामिक उलेमाओं के एक मत से फरमाया गया है। हैद के दस दिन के दौरान ख़ूनी बहाव के बीच तहारत के दिन महावारी माने गए है, इस्तीहादा के दिनों के दौरान दस दिन के बाद के दिन तहारत के दिन माने गए है। अगर कोई लड़की

15 दिनों के बाद 3 दिन के ख़ूनी बहाव में चली जाती है एक दिन के ख़ूनी बहाव के बाद विना किसी ख़ूनी बहाव के तहारत के एक दिन के बाद तीन दिन के ख़ूनी बहाव के ज़रिए, शुरूआत के और आख़िर के तीन दिन जिसमें वह ख़ूनी बहाव महसूस करती है वा हैद की दो अलग अवधियाँ है क्योंकि इसकी आदत तीन दिन के लिए होगी, दूसरा हैद पहले हैद के बीच में एक दिन के ख़ूनी बहाव के साथ शुरू नहीं हो सकता। वह (ख़ूनी बहाव) का एक दिन फ़ासिद से पहले मुकम्मल तहारत बनाता है। मौला हुसराव 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' (d. 885 [1480 A.D.]) के हवाले से फरमाया गया जैसे की इनकी **गुहरेर** शेरनबलाली की तफसीरी में है: "अगर एक लड़की तहारत के चौदह (14) दिन बाद एक दिन के लिए ख़ूनी बहाव में चली जाती है फिर आठ दिन की तहारत के बाद एक दिन का ख़ूनी बहाव सात दिन की तहारत फिर एक दिन का ख़ूनी बहाव तीन दिन की तहारत के तीन दिन फिर एक दिन का ख़ूनी बहाव दो दिन की तहारत के बाद फिर एक दिन का ख़ूनी बहाव, इसके (45) दिन, इन चौदह (14) दोनों में सिर्फ दस दिन महावारी है, और इस्तीहादा (अत्यातर्व) के दूसरे दिन इमाम मुहम्मद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़ इन दस दिनों के बाद एक नई महावारी अवधि नहीं होती तव से कोई मुकम्मल तहारत जगह नहीं लेती। तहारत के वह दिन जो उसके बाद आते है ऐसे क़ुवूल नहीं किए जब ख़ूनी बहाव लगातार होता है, तभी से वह हैद की अवधि में नहीं है। "इमाम अवू यूसुफ 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़ दूसरे अलफ़ाज़ों में, तहारत की अवधि के पहले दस दिन और चौथवें दस दिन हर एक तरफ से महावारी है।" इमाम अबू यूसुफ के मुताबिक़, फ़ासिद तहारत के दिन जोकि उनके बाद आते है यह वह दिन है जब ख़ूनी बहाव को लगातार होता हुआ माना जाता है। और पहले मामले के मुताबिक़, महावारी के दस दिन के बाद बीस (20) दिन तहारत के दिन है और आख़िरी दस दिन (यानी चौथवें दस दिन) महावारी है। अगर ख़ूनी बहाव बीच में बग़ैर तहारत के दिनों

के (15) दिन लगातार रहता है यानी बहाव के हाल में जिसे इस्तेमरार कहते है, यह हिसाब उसकी आदत की बुनयाद पे है। वह, उसकी आदत की शुरूआत है, पिछले महीने की तहारत के दिनों की संख्या के बराबर एक तहारत अवधि और उसके बाद उसकी आदत तक महावारी, ज़रूरी रहेगी।

अगर एक लड़की पे इस्तेमरार रहता है, तो निम्नलिखित (4) हलतों में से कोई एक मामला हो सकता है। यह हक़दार किताबचा **मेनहेल-उल-वारीदीन** में फरमाया गया है।

1- अगर ख़ून बहाव अबीदेस महसूस हो, तो पहले दस महावारी क़ुबूल किए जाएंगे। और उसके बाद के बीस (20) दिन तहारत ही रहेंगे।

2- अगर कोई लड़की सही तहारत की अवधि के बाद एक सही ख़ूनी बहाव की अवधि में होने के बाद इस्तेमरार का तर्जुबा करती है, तो यह लड़की एक पक्की आदत के साथ औरत बन गई है। मिसाल के तौर पर, अगर वह तहारत के चालीस दिनों के बाद पाँच दिन के ख़ूनी बहाव में चली जाती है, तो इस्तेमरार के पहले पाँच दिन महावारी माने जाएंगें और निम्नलिखित चालीस दिन तहारत के दिन ही है। यह नियम बहाव के होने तक लागू रहता है।

3- अगर वह फ़ासिद ख़ूनी बहाव की अवधि में चली जाती है फ़ासिद तहारत की अवधि के बाद, तो कोई भी अवधि महावारी नहीं मानी जाएगी। अगर तहारत फ़ासिद थी क्योंकि यह (15) दिनों से छोटी थी, वह ख़ूनी बहाव जो पहली बार महसूस किया वो उसको (अबीदेद) माना जाएगा यानी यह इस्तिमरार में बदल गया है। अगर तहारत के चौदह (14) दिनों के बाद (11) दिनों का ख़ूनी बहाव और उसके बाद (एक लगातार ख़ूनी बहाव की स्थिती) इस्तिमरार, ख़ूनी बहाव की पहली अवधि फ़ासिद है क्योंकि इसने दस दिन पार कर दिए। ख़ूनी बहाव का ग्यारवाँ दिन और इस्तिमरार के पहले पाँच

दिन तहारत की अवधि में जोड़े जाएंगें, और तहारत के बीस दिनों के बाद अतिरिक्त पाँचवें दिन से यह महावारी के दस दिनों का चक्र बन जाएगा, अगर तहारत पूरी की मगर अब फ़ासिद है क्योंकि ख़ूनी बहाव के दिन इसमें मिल गए है, तो दुबारा, पहला ख़ूनी बहाव इस्तिमरार में बदला हुआ माना जाएगा, अगर तहारत के तमाम दिन और ख़ूनी बहाव के दिन तीस दिन से ज़्यादा नहीं होते। और अगर उसके तमाम दिन तीस से ज़्यादा होते है, तो पहले दस दिन महावारी माने जाएंगें और इस्तिमरार तक के तमाम दिन तहारत के दिन माने जाएंगें, जहाँ तहारत के बीस दिनों के बाद दस दिनों की महावारी क़ायम होगी यह नियम उस हाल में लागू होता है जहाँ तहारत के बीस दिन के बाद ग्यारह दिन का ख़ूनी बहाव होता है और उसके बाद उसका इस्तिमरार शुरू होता है।

4- अगर वह साही ख़ूनी बहाव में चल रही हो और उसके बाद फ़ासिद तहारत में, साही ख़ूनी बहाव के दिन महावारी होगें, और उसके बाद एक तीस दिन की अवधि आएगी जिसे तहारत माना जाएगा, मिसाल के तौर पर, अगर तहारत के चौदह दिन बाद इस्तिमरार पाँच दिन के ख़ूनी बहाव के बाद होता है, तो पहले पाँच दिन तहारत है और उसके बाद के **(25)** दिन तहारत के दिन है। इस्तिमरार के पहले ग्यारह दिन तहारत के दिन माने जाएंगें **25** दिनों के इज़ाफे के तौर पर फिर से, महावारी के पाँच दिन तहारत के **(25)** दिनों में जमा हो जाएंगें इसी तरह, अगर इस्तिमरार तहारत के **15** दिन बाद और तीन दिन के ख़ूनी बहाव के बाद हो, **15** दिन की तहारत और एक दिन के ख़ूनी बहाव के बाद, पहले तीन दिन सही ख़ूनी बहाव के दिन है (महावारी के दिन है) इस्तिमरार तक के तमाम दिन फ़ासिद तहारत के दिन माने जाएंगें। इसी तरह इसके हैद का तीन दिन का चक्र और तहारत के **(31)** दिन होगा। किसी तरह, इस्तेमरार के दौरान, तीन दिन हैद और **27** दिन तहारत के बदले में होगें। अगर तहारत की दूसरी अवधि **14** दिनों की थी, तो इमाम अबू यूसुफ के मुताबिक़ ख़ूनी बहाव लगातार होता हुआ माना जाएगा, जिस मामले

में पहले दो दिन (उन **14** दिनों में से) एक दिन में मिला लिए (**14** दिनों से पहले) जैसे की महावारी की गिनती करना और तहारत के **15** दिनों के बाद, तो फिर, तहारत के **15** दिनों के बाद ख़ूनी बहाव के पहले तीन दिन होगा जोकि सही अवधि है वह आदत मानी जाएगी।

एक औरत जो अपनी आदत का वक़्त भूल जाए उसे **मुहाय्यीरा** या **दाल्ला** कहते है।

निफास मतलब जेर। ख़ून जो श्रण गर्भपात के बाद बाहर आए वह निफास है (जेर, ज़च्चा) अगर पैदा होने वाले बच्चे के हाथ, पैर और सर बन गए है। तो निफास के लिए कोई कम से कम वक़्त का कोई पैमाना नहीं है। जब भी ख़ूनी बहाव होता है, वह गुस्ल करती है और अपनी रोज़ाना की नमाज़ें फिर से शुरू कर देती है। हालांकि वह अपने वैवाहिक संबध फिर से शुरू नहीं कर सकती अपनी आदत के दिनों के बराबर तक इसकी ज़्यादा से ज़्यादा लम्बाई **40** दिन की है। एक बार अगर **40**वां दिन ख़त्म हो जाए, वह गुस्ल करती है और अपनी नमाज़ें अदा करना शुरू करती है चाहे अभी तक ख़ूनी बहाव न रूका हो। वह ख़ून जो **40**वें दिन के बाद बाहर आता है वह इस्तीहादा (अत्यातर्व) है। अगर एक औरत अपने पहले बच्चे के जन्म के **25** दिन में साफ़ हो जाती है, इसकी आदत **25** दिन की है। अगर वह औरत दूसरे बच्चे के बाद **45** दिन ख़ूनी बहाव करती है, तो इसकी निफास **20** दिन की गिनी जाएगी बचे हुए **25** दिन इस्तीहादा है। वह उन **20** दिनों के दौरान छोड़ी हुई नमाज़ों की क़ज़ा नमाज़ अदा करती है। इसलिए निफास के दिनों को भी याद रखना चाहिए। मिसाल के तौर पर, अगर ख़ूनी बहाव होता है, **45** दिनों के बजाए **35** दिनों में, तमाम चालीस दिन निफास है, और इसका निफास **25** दिनों से **35** दिनों में बदल गया है।

अगर, रमज़ान में, कोई औरत सेहरी (सवेरे) के वक़्त बाद महावारी या प्रसवजन्य ख़ूनी बहाव करती है तो वह उस दिन के दौरान कुछ खाती पीती नहीं है। लेकिन (रमज़ान) के बाद वह उस दिन के रोज़े के लिए कज़ा अदा करती है। अगर उसके हैद या निफास सेहरी के वक़्त के बाद शुरू होता है, दोपहर होने के बाद, वह उस दिन खाती पीती है।

हैद या निफास के दिनों के दौरान, चारों मज़हबों में नमाज़ रोज़ा अदा करना हराम है, मस्जिद में जाना, कुरानुल करीम को पढ़ना या पकड़ना, तवाफ करना, (कावा-ए-मुअज़्ज़मा के आस-पास परिक्रमा करना मस्जिद-ए-हराम के अंदर) और रातीक्रिया करना। वह अपने रोज़ों की कज़ा अदा करती है लेकिन अपनी नमाज़ों का नहीं, वह वुज़ू बनाती है और अगर वह नमाज़ अदा करती है तो अपनी जानमाज़ पे बैठती है, और वह ज़िक्र करती है और तसबीह पढ़ती है, वह इतना सवाब कमाती है जितना की उसने सबसे अच्छी नमाज़ अदा करके कमाया हो।

यह हक़दार किताब **जवहरा-त-उन-नीय्यारा** में फरमाया गया है: [हक़दार किताब **सिराज-उल-वाहहाज** की तीसरी जिल्द का मुख़्तसिर वरजन जो अबू बकर बिन अली हदाद-ए-येमेनी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' (d. **800** [**1397** A.D.]) ने **मुख़्तसर-ए-कुदुरी** के तौर पर तफसीर से लिखा। जोकि अबुल हुसैन अहमद बिन मुहम्मद बग़दादी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' (**362** [**973** A.D.] - **428** [**1037**], बग़दाद) के ज़रिए लिखी गई थी।] "एक औरत को अपने शौहर को इकतला कर देना चाहिए कि उसके हैद शुरू हो गए हैं। जब उसका शौहर उससे पूछे। अगर वह नहीं बताती तो यह उस औरत के लिए बहुत बड़ा गुनाह होगा। अगर वह कहती है कि उसके हैद ख़त्म हो गए है और अगर उसकी तहारत चल रही हो तो फिर भी वह बहुत बड़ी गुनाहगार होगी: हमारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: **'एक**

औरत जो अपने शौहर से हैद की शुरूआत और खाला छुपाती है वह एक शापित है'। किसी को अपनी बीवी के साथ गुदा संभोग करना हराम है, उसकी महावारी अवधि के दौरान या अगर वह साफ़ हो। यह एक बहुत बड़ा गुनाह है।" एक शख़्स जो यह गुनाह अपनी बीवी के साथ करता है वह एक शापित है। जबकि लौंडेबाज़ी इससे भी बदतर गुनाह है। इसे **लीवाता** कहते है और इसे **हबीतह** (अत्यधिक गंदा) कहा जाता है। अनबीया सूरा में इसकी सच्चाई है। जैसे की यह **बिरगीवी** की तफसीर में बताया गया है, हमारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: '**अगर तुम बहुत से लोगों में लौंडेबाज़ी के काम में दो लोगों को पकड़ लो, तो दोनों को जान से मार दो!**' कुछ इस्लामिक उलेमाओं के मुताबिक़ दोनों को जला देना ज़रूरी है, दोनों साथी इस घिनौने काम के बाद जुनूब बन जाते है। किसी के पास एक ऐनेमा होना उसको जुनूब नहीं बनाएगा, हालांकि यह उसका रोज़ा (फेज़ीय्या) तोड़ देगा।

अगर किसी औरत को नमाज़ के वक़्त हैद महसूस हो जोकि नमाज़ उसने अभी अदा नहीं की, तो फिर उसको उस नमाज़ की क़ज़ा नमाज़ अदा नहीं करनी होगी। [बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** की चौथी पूलिका का चौथा बाब पढ़े!]

वुज़ू के मुताल्लिक़

हनफी मज़हब में वुज़ू के चार फर्ज़यात (या फर्ज़) हैं, सात फर्ज़यात मालिकी मज़हब में है, और छः फर्ज़यात शहाफी और हनवाली मज़हबों में। जो हनफी मज़हब में हैं वो यह हैं:

1- अपना चेहरा धोना।

2- अपनी कलाई व कोहनी को धोना।

3- गुद्दी पे मसाह बनाना।

4- एड़ी की हड्डियों के साथ, पैरों को धोना।

चार तरह के वुज़ू है: पहली तरह का फर्ज़, दूसरी तरह के वाजिब, तीसरी तरह का सुन्नत और चौथी तरह का मनधुब।

वुज़ू की चार मिसालें जो फर्ज़ हैं: कुरानुल करीम के एहकामों के मुताबिक़ वुज़ू बनाना या पाँचों इबादात को अदा करना जिसे नमाज़ कहते है या नमाज़-ए-जनाज़ा अदा करना- तफसीर से **सआदते अदबिया** की पाँचवी पूलिका के **15**वें बाब में समझाया गया है या तिलावत का सजदा करना- तफसीर से **सआदते अदबिया** की चौथी पूलिका के **16**वें बाब में समझाया गया

वुज़ू जोकि वाजिब है वह तावाफ ए ज़ियारत के लिए बनाया गया वुज़ू है जो की **सआदते अदबिया की 5**वें पूलिका के **7**वें बाब में समझाया गया है।

वुज़ू एक वह सुन्नत जो कुरानुल करीम को पढ़ने के लिए है (बिना पकड़े) या मुसलमानों के कब्रिस्तान की ज़ियारत के लिए, या गुस्ल से पहले वुज़ू बनाना।

एक वुज़ू जोकि मनधुब है यह वह है जो तुम बिस्तर पर जाने से पहले बनाते हो और या उठने के बाद, अगर तुम किसी के बारे में झूठ या अफवाह बताते हो या संगीत की तरफ उत्सुकता, यह मनधुब है उस गुनाह के लिए तौबा या अस्तग़फार करना और फिर वुज़ू बनाना।

यह भी मनधुब है के जब तुम एक इल्म (जानकारी) की एक सभा के लिए वुज़ू बना के जाते हो, या तुम अपने वुज़ू को दुबारा बनाते हो हालांकि

तुमने जो वुज़ू बनाया या वो अभी भी है लेकिन कुछ ऐसा करने के बाद जो बिना वुज़ू के करना मुनासिब नहीं है, (मिसाल के तौर पर तुमने नमाज़ अदा की) अगर तुमने इबादत का वह कर्म अदा नहीं किया (उस वुज़ू के साथ जो तुमने किया था) तो यह मकरूह होगा के अगर तुम दुबारा वुज़ू बनाते हो हालांकि तुम्हारा वुज़ू है।

पानी के मुताल्लिक़

चार तरह के पानी होते है: मा-ए-मुतलख़, मा-ए-मुक्य्याद, मा-ए-मेशहकूक; मा-ए-मुस्तामल। ['मा यानि पानी'।]

1- मा-ए-मुतलख़ की मिसालें बरसात का पानी, समुद्र का पानी, बहता हुआ मोसमी बहार का पानी और कुंए का पानी। इन तमाम पानी में गन्दगी को साफ़ करने की ख़ूबी होती है। और यह किसी भी मकसद के लिए इस्तेमाल में लिया जा सकता है।

2- मा-ए-मुक्य्याद की मिसाल, खरबूज़े का जूस, तरबूज़ का जूस, अंगूर का जूस, फूलों का जूस, वग़ैरह है।

इस तरह के पानी की प्रकिया गन्दी चीज़ को साफ़ करने की होती है लेकिन यह गुस्ल और वुज़ू के लिए इस्तेमाल लायक़ नहीं है।

3- गधे के या ख़च्चर के ज़रिए छोड़ा गया पानी जिसकी माँ गधी हो उसे मा-ए-मेशहकूक कहते है।

गुस्ल और वुज़ू के लिए यह पानी जाइज़ होगा। हर किसी के पास अपनी पसंद होगी एक के बाद एक या दोनों में से किसी एक को करने की।

4- अगर जिस्म के किसी हिस्से को छू कर पानी ज़मीन पर गिर जाए या जब यह जिस्म को छोड़ता है मा मुस्तामल बन जाता है, (यानि, हिस्से धुल गए है,) यह (इस्लामी उलेमाओं) के बीच एक सवाल बन गया है ज़रूर ही, यह बन गया है तभी यह जिस्म को छोड़ता है, (यानि इस इजतीहाद से फतवा मान्य है।) [इजतिहाद लफ़्ज़ **सआदते अबदिया** के छठी पूलिका में कई जगह समझाया गया है, मिसाल के तौर पर, पहली पूलिका के पच्चीसवें में, छब्बीसवें में, सत्ताइसवें बाबों में, और तीसरी पूलिका के दसवें और उन्नीसवें बाबों में] इसी पे अधारित, तीन तरह की अलग-अलग राय है।(यानि बयानात जिसमें मुजताहीद अपने इजतीहाद सामने रखते हैं।) इमाम आज़म (अबू हनीफा) 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़ यह नजासत-ए-ग़लीज़ा (कावा नजासत) है।[नजासत, अपनी तराहियतों के साथ **सआदते अबदिया** के चौथी पूलिका के छठे बाब में समझाया गया है।] इमाम अबू यूसुफ 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़, यह नजासत-ए-खाफीफा है।और इमाम मुहम्मद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़ यह साफ़ है।यह आख़री का मसला लागू हुआ (निर्णायक फतवे के मुताबिक़)

वुज़ू के वुजूब के लिए नौ शर्ते है पूरी करने के लिए, (यानि, ताकि वुज़ू मौजूदा हो:)

1- एक मुसलमान होना।

2- बालिग़ की उम्र तक पहुँचा हुआ होना।

3- होशमंद होना।

4- बग़ैर वुज़ू के होना।

5- वुज़ू के इस्तेमाल के लिए पानी का साफ़ होना।

6- वुज़ू की जानकारी हासिल होना।

7- (औरत के लिए) महावारी में ना होना।

8- (औरत के लिए) जोकि ज़चगी की अवधि में न हो।

9- रोज़ाना की (पाँचों) नमाज़ें, नमाज़ का वक़्त आने पे, [यह नवीं शर्त उस शख़्स पे लागू होती है जो उज़्र के साथ हो, (जो **सआदते अबदिया** के आख़री पेरे में समझाया गया है।)

वुज़ू की सुन्नतें: जिसमें से **25** फरमाई गई है।

1- "आऊज़ु...," कहना (यानि: "आऊज़ु-बिल्लाही-मि-नश-शैतुआनि-र-रजीम।"

2- बिस्मिल्लाह कहना, (यानि "बिस्मिल्लाह-हिर-रहमान-निर-रहीम।") कहना।

3- हाथों को धोना।

4- उंगलियों के बीच ख़िलाल करना, (यानि उंगलियों को एक दूसरे के बीच में डालना जैसे की कंघी के दांत एक दूसरे में फंसा देते है।

5- मुँह में पानी डालना।

6- नाक में पानी डालना।

7- हनफी मज़हब में नीयत करना, सुन्नत है, फर्ज़ नहीं, शाफी मज़हब में मुँह धोते वक़्त नीयत करना फर्ज़ है। और मालिकी मज़हब में हाथों के धोने के दौरान नीयत करना फर्ज़ है।

8- मुँह का क़िब्ले के रूख़ की तरफ होना।

9- दाढ़ी का ख़िलाल करना (अपनी उंगलियों को कंघे के जैसे इस्तेमाल करके) [अगर यह घनी है]।

10- दाढ़ी का मसह करना।

11- सीधे हाथ से शुरू करना।

12- पैर की उंगलियों के बीच उल्टे हाथ की छोटी उंगली से ख़िलाल करना, सीधे पैर की छोटी उंगलियों से शुरूआत करना।

13- सर का मसह करना (पूरे) सर को कवर करते हुए।

14- कानों पे मसह करना और गुद्दी पे, उस पानी को इस्तेमाल करते हुए जो सर का मसह करते हुए बचा है।

15- तरतीब से चलना, (यानि वुज़ू में हिस्सों को तरतीब से धोना।)

16- बीच में ना रूकना यानि वुज़ू में एक के बाद एक हिस्सों को धोना।

17- सर का मसह करते वक़्त माथे से शुरू करना।

18- मिस्वाक का इस्तेमाल करना।

19- पानी को आँखों के किनारे और भंवों तक पहुँचाना।

20- दल्क यानि हाथों से आराम से उन जगहों को मलना जिन्हे धोया हो।

21- किसी ऊँची चीज़ पर खड़े होकर वुज़ू करना।

22- हर हिस्से को तीन बार धोना।

23- जिससे वुज़ू किया हो उस बर्तन (घड़े) को भरकर रखना।

24- वुज़ू करते वक़्त दुनियावी बातें न करना।

25- अपनी नीयत बनाये रखना।

मिस्वाक का इस्तेमाल

मिस्वाक करने के **15** फायदें है। यह फायदें **सिराज-उल-वाहाज** नामक किताब से निकाले गए है (तीन जिल्द में बताया गया है अबू बक्र बिन अली हद्दाद यमनी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' d. **800** [**1397** A.D.], से **मुखासर-ई-कुदूरी** नामक किताब, जो अपनी बारी में अबुल हुसैन अहमद बिन मुहम्मद बग़दादी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि', **362** [**973** A.D.] - **428** [**1037**], बग़दाद के ज़रिए लिखी गई) इस तरह है:

1- मरते समय कलीमा-ए-शहादत नसीब होगा।

2- मसूड़ों को मज़बूत करता है।

3- यह छाती से बलग़म को साफ करता है। (यह बलग़म का सबसे ठीक इलाज है)

4- पित्ते से निकलने वाले ज़्यादा जूस को रोकता है।

5- यह मुँह के दर्द को रोकता है।

6- बदबूदार सांस को रोकता है।

7- अल्लाहु तआला उस इन्सान से ख़ुश होते है जो मिस्वाक करता है।

8- खोपड़ी की नसों को मज़बूत करता है।

9- शैतान दुखी होता है (जब आप मिस्वाक करते है)

10- आपकी आँखे नूर से चमकने लगेंगीं (जब आप मिस्वाक का इस्तेमाल करते है।)

11- यह तुम्हारी नेकियों को बढ़ाता है।(ख़ैर और हसनात)

12- मिस्वाक करके आप सुन्नत अदा करते हो (जब आप मिस्वाक करते है)

13- आपका मुँह एकदम साफ हो जाएगा।

14- तुम्हारी बातें फसीह हो जाएगी।

15- दो रकात नमाज़ पढ़ी गई हुई (मिस्वाक करने के बाद) उन सत्तर रकात नमाज़ों से अफज़ल है जिसमें मिस्वाक नहीं किया हो।

वुज़ू के मुस्तहब

उनमें से छः यह है जो नीचे लिखे हुए है।

1- ज़बान से नीयत कर लेना पर दिल से नीयत ना करना।

2- कानों के वचे हुए पानी से मसह करना (गर्दन के पिछले हिस्से को धोना)

3- क़िब्ले की तरफ पैर करके ना धोना।

4- वुज़ू का बचा हुआ पानी, अगर हो सके तो, क़िब्ले की तरफ खड़े होकर पीना।

5- वुज़ू के वाद कुछ पानी से अपने कपड़ों पर छींटे मारना।

6- अपने धुले हुए हिस्सों को साफ तौलिया से साफ करना।

इब्ने आविदीन अपने बयान में वुज़ू के टूटने पर कहते है: "अगर कोई चीज़ जो तुम्हारे मज़हब में मकरूह नहीं है, दूसरे मज़हब में फर्ज़ है (तीन में से एक मज़हब में) तो तुम्हारे लिए वो करना मुस्तहव है।" इमामे रब्बानी अपने (**286**वें) ख़त में लिखते है: "क्योंकि मालिकी मज़हब में वुज़ू के दौरान हाथों को धीरे से अपने बांहों पर मलना फर्ज़ है। हम (हनफी मज़हवियों) को भी मलना चाहिए।" इब्ने आविदीन ने फरमाया जैसा कि उन्होने तलाक़-ए-रिज़ी में वज़ाहत की है: [एक किस्म का तलाक़। जिसके बारे में **सआदते अबदिया** के छठे एडिशन के **15**वें बाब में बयान है] हनफी मज़हब के मुसलमान का मालिकी मज़हब की नक्ल करना क़ाबिले तारीफ है। चूंकि इमाम मालिकी, इमाम आज़म अबू हनीफा के शागिर्द की तरह है। जब हनफी आलिम कोई

क़ौल हनफी मज़हब में नहीं ढूंढ पाते तो वो मालिकी मज़हब के मुताबिक़ फतवा देते है। बाकी मज़हबों के मुकाबले मालिकी मज़हब, हनफी मज़हब के ज़्यादा करीब है।

वुज़ू के मकरूह

इनमें से **18** कुछ इस तरह है।

1- पानी का मुँह पर तेज़ी से मारना।

2- वुज़ू के इस्तेमाल करने वाले पानी में फूंक मारना।

3- तीन बार से कम अंगों का धोना (तीन बार धोना चाहिए)।

4- तीन बार से ज़्यादा धो लेना।

5- वुज़ू के पानी में थूकना जिसे आप वुज़ू में इस्तेमाल कर रहे है।

6- वुज़ू के पानी में नाक का सिनकना वुज़ू करते समय।

7- पानी का गले में जाना ग़रारा करते समय।

8- क़िब्ले की तरफ पीठ करके बैठना (जब आप वुज़ू बना रहे हो)

9- आँखों को तेज़ी से बन्द करना।

10- आँखें चौड़ी करना।

11- उल्टे तरफ के हाथ से वुज़ू की शुरूआत करना।

12- नाक से पानी निकालते समय सीधे हाथ का इस्तेमाल करना।

13- मुँह में पानी डालते वक़्त उल्टे हाथ से पानी मुँह में डालना।

14- उल्टे हाथ से नाक में पानी डालना वुज़ू करते में।

15- ज़मीन पर पैर पटकना (और फर्श)

16- सूरज से गर्म हुए पानी से वुज़ू करना।

17- मा-ई-मुसतामल पानी इस्तेमाल न करना (इससे पहले लिखे हुए पानी के प्रकारों को देखों)

18- दुनियावी बातें करना।

वुज़ू तोड़ने वाले

इनमें से **24** इस तरह है:

1- पिछले हिस्से से निकलने वाली चीज़े ।

2- अगले हिस्से से बहने वाली चीज़े ।

3- कीड़े और पत्थर या इनके जैसी चीज़ को आगे या पीछे से देना।

4- एक ऐनेमा होना।

5- दवाई जो इन्जेक्शन के ज़रिए औरत की बच्चेदानी में दी गई हो उसका बाहर आ जाना।

6- अगर आप कोई दवाई कान में डालते हो और जो मुँह से बाहर आ जाती है। तो आपका वुज़ू टूट जाता है। [अगर यह पसीजता है आपके कान या नाक से तो आपका वुज़ू नहीं टूटता **(फतवाह-ए-हिन्दीया)**।]

7- एक रूई की बत्ती का एक मर्द के पेशाबगाह से गिला होकर गिर जाना [अगर वो रूई की बत्ती आधी बाहर है और बाहर का हिस्सा सूखा है तो जब तक उसका वुज़ू नहीं टूटेगा जब तक वो निकल कर गिर न जाए।]

8- उस रूई के हिस्से का गिर जाना, अगर वो हिस्सा फिर भी गिला रह जाता है।

9- मुँह भर कर उल्टी। अगर इसमें बलग़म की मात्रा कम है तो आपका वुज़ू एक तरह से नहीं टूटता है। अगरचे किसी इन्सान के मुँह से सोते हुए पानी निकल जाता है, अगर वह पीलापन का हो।

10- बीमारी की वजह से ज़्यादा आँसू से वुज़ू टूट जाता है। किसी ख़ुशी के मौक़े पर आए हुए आँसू से वुज़ू नहीं टूटता और प्याज़ काटने पर आने वाले आँसू से भी नहीं टूटता।

11- ख़ून, पस या पीला पानी किसी की नाक से निकलेगा तो वुज़ू टूट जाएगा अगर चाहे यह बाहर आए या नहीं। नज़ला ज़ुक़ाम के आने पर या बहने पर वुज़ू नहीं टूटता है।

12- थूक के साथ ज़्यादा मात्रा में ख़ून का आना।

13- अगर आप देखते है कि जिस चीज़ को आपने काटा है उसपर ख़ून का दाग है तो आपका वुज़ू टूट जाएगा अगर आपके दांत पर ख़ून का धब्बा होता है। अगर नहीं है, तो नहीं टूटेगा।

14- अगर आप अपने जिस्म के किसी हिस्से से ख़ून रिसता हुआ बहता देखते है और वो फैल रहा हो, चाहे वो थोड़ा हो, आपका वुज़ू टूट जाएगा अगर आप हनफी मज़हब से है तो, और अगर आप मालिकी और शाफी मज़हब से है तो वुज़ू नहीं टूटेगा।

15- मसलन आप विना काठी के घोड़े पर सवार हो; जब वो पहाड़ से नीचे उतर रहा हो उससे गिर जाने पर वुज़ू टूट जाता है।

16- जब तुम्हे शक हो कि तुमने वुज़ू बनाया है कि नहीं, तुम्हारे जान-ए-ग़ालिब यह होना चाहिए कि तुम बिना वुज़ू के हो।

17- अगर कोई आदमी अपनी औरत के वस्त्रहीन स्थिति में गले लगता है (तो उनका वुज़ू टूट जाएगा)।

18- अगर आप वुज़ू करते वक़्त अपना कोई हिस्सा धोना भूल गए हो और आपको पता ना हो कि वो कौनसा हिस्सा है (तो आपका वुज़ू टूट जाता है)

19- अगर आपके किसी हिस्से में छाला लगा है और उसमें से पस और ख़ून और पीला पानी निकलता है, चाहे ख़ुद निकले या ख़ुद नोचले, (तो आपका वुज़ू टूट जाएगा।)

20- मान लीजिए आपके जख़्म है, उसमें नज्स का पानी और पीले रंग का पानी ख़ून और पस है बीच में, तुम्हारे शरीर में, तो आपका वुज़ू टूट जाता है अगर आपके दुरूस्त हिस्से से पट्टी या रूई बन्धी हो नज्स के मामले में। आलिमों ने कहा है कि अगर उस चोट के पानी में कोई रंग नहीं है तो आपका वुज़ू माना जाएगा। यह उन इन्सानों के लिए है जो बीमार रहते है जैसे के खुजली, चेचक और एकज़ेमा है।

21- मान लीजिए कुछ करते में आपकी आँख लग जाती है; (तो आपका वुज़ू टूट जाएगा) अगर आप इतनी गहरी नींद में सो जाते है कि अगर आपके नीचे से कोई तकीया निकाल लेता है फिर भी आपकी आँख नहीं खुलती।

22- नमाज़ के रूकू और सज्दे के दौरान, इतनी ज़ोर से हँसना कि ख़ुद को या तुम्हारे साथ वाले शख़्स को उसकी आवाज़ सुनाई दे, तुम्हारा वुज़ू टूट जाएगा, और जो नमाज़ तुम पढ़ रहे होंगे वो फ़ासिद हो जाएगी।[दूसरे लफ़्ज़ों में इतनी ज़ोर से हँसना कि सिर्फ तुम उसे सुन सको कोई और नहीं सिर्फ तुम्हारी नमाज़ तोड़ता है वुज़ू नहीं।]

23- मिर्गी का दौरा या बेहोशी वुज़ू तोड़ देती है।

24- जब तुम्हारे कान से पस, पीला पानी या ख़ून निकले और वो जिस्म के उस हिस्से तक पहुँच जाए जिसे गुस्ल में धोना ज़रूरी है।(तुम्हारा वुज़ू टूट जाएगा।)

हमसे यूरोप ने सीखा कि लोगों के बीच कैसे ख़ुद को साफ रखते है।
इससे पहले उनके घर ऐसी बदबू मारते थे कि वो एक दूसरे की सांसे सूंघ पाते थे।
यह सिर्फ मुसलमान ही है जिन्होने पूरी दुनिया में सफाई फैलाई,
और इंसानियत को एक कड़वे दुश्मन से बचाया।

वुज़ू के दौरान पढ़ी जाने वाली दुआऐं

वुज़ू शुरू करने से पहले पढ़ो: “बिस्मिल्लाहिल-अज़ीम-वल-हम्दुलिल्लाहि अला दीनिल-इस्लामी व अला तौफिकिल-ईमानी अलहम्दुलिल्लाहिल लज़ी जा अल-अल मा ताहूरन व जा अल-अल इस्लामा नूरान।”

जब तुम पानी मुँह में डालो तो कहो: “अल्लाहुम्मा-मेस्किनी मिन हौदी नब्यियका कैसेन ला आज़माऊ बादेहू आवदन।”

जब तुम अपनी नाक में पानी डालो तो कहो: “अल्लाहुम्मा एरिहनी रयिहतल जन्नती वर-जुक्नी मिन नैमिहा वला तूरीहनी रायिहतन-नारी।”

जब चेहरा धो तो कहो: “अल्लाहुम्मा बाय्यिद वेजही बिनूरिका यौमा तैबयददू वुजूहू अवलियैका वला तुसव्विद वेजही बिजुनूबी यौमा तैसवेददू वुजूहू अदैका।”

जब अपना सीधा हाथ (कुहनी समेत) धो तो कहो: “अल्लाहुम्मा आतिनी किताबी बियेमिनि व हसिबनी हिसाबन यसीरन।”

जब अपना उल्टा हाथ (कुहनी समेत) धो तो कहो: “अल्लाहुम्मा ला तुतूनी किताबी बिशिमली वला मिन वराई ज़हरी वला तुहासिब्नी हिसावन शैदिदान।”

जब तुम मसह करो सिर का तो कहो: “अल्लाहुम्मा हररिम शारी वा वेशारी अलन्नारी वा अज़िललेनी तहता जिल्ली अरशिका यौमा ला जिल्ला इल्ला ज़िल्लुका।”

जब तुम कानों का मसह करो तो कहो: “अल्लाहुम्मा-जअलनी मिनल्ला-ज़िना यशतामि ऊना-ल-कौला फ यत्तैविऊना अहसेनेह।”

जब तुम अपने गर्दन के पीछे का मसह कर रहे हो तो कहो: “अल्लाहुम्मा अतीक रेकावती मिन-अन-नारी वहफ़ज़ मिन- एस-सेलासिली वल-अगलाल।”

जब तुम अपना सीधा पैर धो तो कहो: “अल्लाहुम्मा तहव्वित कदामय्या अल-स-सिराती यौमा तैज़िल्लू फिहिल अक़दाम।”

जब अपना उल्टा पैर धो तो कहो: “अल्लाहुम्मा ला ततरूद कदामय्या अल-स-सिराती यौमा ततरूद कुल्लू अकदामी अदाईका।अल्लाहुम्मा-ज-अल सायी मेशकूरन व जेन्बी मग़फ़ूरन व अमाली मकवूलन व तिजारती लेन तेवूरा।”

जब तुम अपना वुज़ू पूरा कर चुको तो कहो: “अल्लाहुम्मा-ज-अलनी मिन-अत-तेव्वाबिना वज-अलनी मिन अल- मुतेताहरिना वज अलनी मिन इबादिका-स-सालिहिना वज अलनी मिन अल लज़ीना ला खौफुन अलैहिम वाला हुम यहज़ुनून।”

फिर आसमान की तरफ देख के कहो: “सुब्हानाकल्लाहुम्मा व बिहम्दिका अशहदुअन ला इलाहा इल्ला अन्ता वहदका ला शरीका लका व अन्ना मुहम्मदन अब्दुका व रसूलुका।”

फिर सूरह **इन्ना अनज़लना** एक, दो या तीन बार पढ़े, इसे पढ़ने में पहले, "बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम पढ़े।"

मज़हबी तालीम सीखना और अपने परिवार को सिखाना बहुत ज़रूरी है। रोज़े महशर में शौहर की पकड़ होगी अपनी बीवियों के लिए।

तय्यम्मुम के बारे में

हनफी मज़हब में तय्यम्मुम सही है नमाज़ के वक़्त से पहले। यह बाकी के तीन मज़हब में ठीक नहीं है। तय्यम्मुम में तीन फर्ज़ है: वुज़ू के लिए तय्यम्मुम किया जाता है वैसे ही गुस्ल के लिए भी तय्यम्मुम किया जाता है वैसे ही गुस्ल के लिए भी तय्यम्मुम होता है दोनों के लिए नीयत अलग है इसलिए, दोनों को एक दूसरे कि जगह नहीं रखा जा सकता है।

1- पहले नीयत करना, जो बहुत ज़रूरी है।

2- दोनों हाथों से मिट्टी को छूना उसके बाद पूरे चेहरे पर मसह करना, चेहरे को हाथों से छुपा लेना।

3- फिर से दोनों हाथ मिट्टी पर लगा कर पहले सीधे हाथ से उल्टे हाथ पर मसह करना फिर उल्टे हाथ से सीधे हाथ पर मसह करना, (कुहनी तक) यह सब रूकन है (यानि यह सब करना तय्यम्मुम में फर्ज़ है। अगर आप इनमें से कोई एक भी छोड़ देते है, तो आपका तय्यम्मुम शून्य हो जाएगा)

कुराने पाक में सूरह निसा की **43**वीं आयत और सूरह मायदा की छठी आयत इस बात का सबूत है कि तय्यम्मुम फर्ज़ है। मालिकी और शाफी मज़हब में (जिसे आप वुज़ू की जगह इस्तेमाल करते है नमाज़ अदा करने के

लिए) नमाज़ से पहले तय्यम्मुम करना जायज़ नहीं है, और एक से ज़्यादा नमाज़ अदा नहीं की जा सकती एक बार तय्यम्मुम करने पर। (दूसरों शब्दों में, आपको हर एक नई नमाज़ के लिए दुबारा तय्यम्मुम करना होगा, जब तक के मुक़र्रर वक़्त ना हो जाए)

तय्यम्मुम करते में छः चीज़ों को करने की इजाज़त नहीं है, जब उस पर धूल मिट्टी हो। वो छः चीज़ें यह है: लोहा, तांबा, पीतल, टीन, सोना, चांदी और दूसरी धातुएँ, तय्यम्मुम इन चीज़ों को छोड़ कर सब से किया जा सकता है, जो गर्म करने से पिघल जाए: शीशा, जो गर्म करने से नरम हो जाए; घुटा हुआ चीनी मिट्टी के बरतन। जब के इसके माद्दे ज़मीनी होने चाहिए।

मिट्टी वाली ज़मीन जहाँ किसी ने पेशाब कर दिया और वह स्थान सूख गया तो नमाज़ पढ़ी जा सकती है लेकिन तय्यम्मुम नहीं किया जा सकता उस मिट्टी से।

तय्यम्मुम कि इजाज़त जब है, जब आप सब जगह पानी देख चुके हो और पानी ना मिले और आदिल और सालिह मुसलमान से भी पूछ लिया हो (आदिल मुसलमान वो है जिसने कभी कबीरा गुनाह नहीं किया हो और जो कभी आदतन सगीरा गुनाह ना करता हो। एक सालिह मुसलमान जो कि हराम काम से भी बचता है बल्कि जिसमें उसे शक-शुदा चीज़ों से भी बचता है। **सआदते अबदिया** के छठे बाब में शक-शुदा में देखें।)

तय्यम्मुम करते में पाँच चीज़ों को करना ज़रूरी है:

1- तय्यम्मुम के लिए नीयत करना। **2-** मसहा करना। **3-** जिस चीज़ से हम तय्यम्मुम कर रहे है उसका मिट्टी से ताल्लुक होना। अगर वह मिट्टी का नहीं बना हुआ है, तो उस पर मिट्टी की धूल का होना चाहिए। **4-** जिस चीज़ से आप तय्यम्मुम कर रहे है और धूल दोनों का साफ (पाक) होना ज़रूरी

है। **5-** अगर आप सच में पानी का इस्तेमाल नहीं कर पाते है (वुज़ू करने के लिए)। [बीमारी के बाद की कमज़ोरी भी उज़र है, (जिस मामले में आप तय्यम्मुम कर सकते है बिना पानी के वुज़ू किए)। बुढ़ापे में कमज़ोरी के मामले में बैठ कर नमाज़ को अदा कर सकते है।

तय्यम्मुम करते में सात सुन्नतें है:

1- बिस्मिल्लाह का पढ़ना, (इसका मतलब, "बिस्मिल्लाहि-र-रहमानि-र-रहीम," तय्यम्मुम शुरू करने से पहले)। **2-** हाथों को साफ मिट्टी पर रखना। **3-** दोनों हाथों को मिट्टी या जिस चीज़ से आप तय्यम्मुम कर रहे हो धीरे-धीरे घिसना, हाथों को आगे पीछे कर के। **4-** उंगलियों को खोलना। **5-** दोनों हाथों को मिला कर उसकी धूल को छोड़ना। **6-** सबसे पहले मुँह का मसह करना। **7-** दोनों हाथ मिला कर कुहनी तक मसह करना।

पानी ढूंढने के लिए चार शर्ते मुक़र्रर है।

1- तुम्हारी जगह बसी हुई हो।

2- अगर कोई इत्तिला कर दी गई हो पानी होने की।

3- अगर तुम मुतमईन हो कि वहाँ पानी है।

4- अगर तुम किसी डरावनी जगह पर न हो।

अगर कोई शख़्स पानी ढूंढ लेता है और तब पानी की जगह मीलों दूर हो तो (वहाँ जाने के बजाए उस शख़्स का तय्यम्मुम करना जायज़ है।) अगर फासला एक मील से छोटा है और वहाँ पहुँचने तक नमाज़ का वक़्त न निकलेगा तो तय्यम्मुम करना जायज़ नहीं। [एक मील **4000** ज़रा के बराबर है, यानि **0.48 X 4000 = 1920** मीटर हनफी मज़हब में।]

दूसरी तरफ अगर वो पानी ढूंढता है, पर उसे ढूंढने में नाकाम रह जाता है, और तय्यम्मुम करके नमाज़ पढ़ लेता है, और फिर पानी देखता है, वो क्या उसे नमाज़ दुबारा पढ़नी चाहिए? यह सवाल इस्लामी आलिमों में बहस का मुद्दा रहा है। इसका एकमत हल यह निकला कि जो नमाज़ उसने पढ़ी है उसे उसको दुबारा नहीं पढ़ना होगा।

अगर कोई शख़्स पूरा भीगा हुआ है पर फिर भी पानी ढूंढ नहीं पाता वुज़ू के लिए और तय्यम्मुम के लिए भी कुछ नहीं पाता तो उसे मिट्टी के टुकड़े को सुखाकर उससे तय्यम्मुम करना चाहिए। मसलन कुछ लोगों ने तय्यम्मुम कर लिया पर उनमें से किसी एक ने पानी देख लिया तो सबका तय्यम्मुम ख़राब और खारिज हो जाएगा।

अगर कोई शख़्स कुछ पानी लेकर आता है और कहता है कि यह पानी पूरे ग्रुप के वुज़ू के लिए है तो पूरे ग्रुप का किया हुआ तय्यम्मुम फ़ासिद (खारिज) हो जाता है। पर अगर उसने कहा हो कि यह पानी सबके लिए है पर वो पानी सिर्फ एक शख़्स के वुज़ू लिए काफी हो तो बाकीयों का किया हुआ तय्यम्मुम सहीह होगा।

मसलन कोई शख़्स जुनूब [जुनूब ऐसी हालत है जिसमें शख़्स पर गुस्ल वाजिब हो जाता है जैसे संभोग के बाद या मनी निकलने की वजह से। गुस्ल का बाब देखें।] की हालत में हो और एक मस्जिद के सिवा कही पानी न ढूंढ पाए तो पहले वो गुस्ल का तय्यम्मुम करे और फिर मस्जिद से पानी लाए। पर अगर वो मस्जिद में भी पानी न ढूंढ पाए तो उसे एक और तय्यम्मुम करके नमाज़ अदा करनी चाहिए।

मसलन कोई शख़्स मस्जिद में बैठा हो और उसे मनी निकलने जैसा एहसास हो तो वो तय्यम्मुम करे और मस्जिद छोड़ दे।

मसलन एक शख़्स के हाथ नहीं है, वो तय्यम्मुम कर सकता है। पर अगर उसकी मदद करने वाला कोई हो तो इस्तिन्जा न करने से नहीं बच सकता। [इस्तिन्जा के मायने है किसी शख़्स का पेशाब या पखाना करने के बाद अपने उन हिस्सों को पाक करना। **सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन का छठें बाब का आख़िरी हिस्सा देखें।] पर अगर उसकी मदद करने वाला कोई नहीं है तो वो उससे बच सकता है।

अगर किसी शख़्स के पास हाथ और पैर दोनों न हो तो, वो तराफ़ेई न। (यानि इमाम आज़म अबू हनीफा और इमाम मुहम्मद शैबानी) के मुताबिक़ वो नमाज़ पढ़ने से दोष मुक्त हो जाएगा। इमाम अबू यूसुफ के मुताबिक़ उसे फिर भी नमाज़ पढ़नी चाहिए।

दूसरी तरफ जुम्मे की नमाज़ के लिए तय्यम्मुम करना जायज़ नहीं। दूसरे अलफ़ाज़ों में किसी शख़्स के पास इतना वक़्त नहीं कि वो वुज़ू कर सके और उसकी जुम्मे की नमाज़ निकल रही हो तो भी उसके लिए तय्यम्मुम करना जायज़ नहीं। [जिन लोगों कि जुम्मे की नमाज़ छूट जाती है उनके लिए ज़ुहर की नमाज़ होती है। उन्हे ज़ुहर की नमाज़ पढ़नी पड़ेगी।] किताब **दुर्र-उल-मुख़्तार** में भी बयान है कि खजूर के रस जिसे निषेध [**सआदते अबदिया** के छठें एडिशन का तीसरे बाब का ग्यारवां पैराग्राफ देखें] कहते है उससे वुज़ू करना भी जायज़ नहीं है।

अगर किसी सफर के दौरान किसी शख़्स को मनी निकलने का एहसास होता है तो तय्यम्मुम करे और फज्र की नमाज़ अदा करे। फिर वो दोपहर तक अपना सफर जारी रखे। फिर जब वो असर के वक़्त के करीब पहुँच जाए और ज़ुहर का वक़्त बस थोड़ा ही बचा हो तो फिर तय्यम्मुम करे और ज़ुहर की नमाज़ अदा करे। मसलन अगर वो शख़्स असर के बाद पानी खोज लेता है तो क्या उसे फज्र और ज़ुहर की नमाज़ दुबारा पढ़नी पड़ेगी?

इस्लामी आलिम इस सवाल के जवाब तक नहीं पहुँच पाए। एक क़ौल के मुताबिक़ उसे ऐसा करना पड़ेगा और दूसरे क़ौल के मुताबिक़ उसे ऐसा नहीं करना पड़ेगा। शायद यह मसला 'तरतीब' के मामले के बाद बना है (और जिसकी वज़ाहत **सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन के **23**वें बाब के सातवें पैराग्राफ में मौजूद है।)

मसलन एक शख़्स गधे पर कुछ पानी लेकर जा रहा है और अपना गधा खो देता है; यह शख़्स (नमाज़ के वक़्त जब वुज़ू की ज़रूरत हो) तय्यम्मुम करे और नमाज़ अदा करे। जब वो नमाज़ अदा कर रहा हो और अपने गधे की आवाज़ सुने तो उसका वुज़ू टूट जाता है।

मसलन एक शख़्स घोड़े पर सवार हो के जा रहा हो और उसके उतरने की सूरत में उसके साथी उसका इंतिज़ार नहीं कर सकते; वो घोड़े पर ही अपना तय्यम्मुम करे और इमा के साथ अपनी नमाज़ पढ़े।

अगर कोई शख़्स किसी ख़तरनाक सफर पर है ठंडे मौसम में, जिससे गुस्ल करना उसे बीमार बना सकता है, तब वो नमाज़ तय्यम्मुम के साथ पढ़ सकता है।

एक शख़्स जो दूर सफर पर जाता हो उसे हमेशा अपने साथ एक टाईल या ईट रखनी चाहिए। ताकि अगर वो कोई ऐसी जगह पहुँचे जहाँ चीज़ें गीली हो तो ईट से तय्यम्मुम कर सके और नमाज़ अदा कर सके।

मसलन एक शख़्स ईद की नमाज़ पढ़ना शुरू करता है और किसी वजह से उसका वुज़ू टूट जाता है (नमाज़ के दौरान); के तय्यम्मुम करे और अपनी नमाज़ पूरी करे अगर उसे डर हो कि उसकी ईद की नमाज़ छूट जाएगी या भीड़ में फंसा हुआ पाने पर वो तय्यम्मुम करे और अपनी नमाज़ पूरी करे। यह क़ौल इमामे आज़म अबू हनीफा के मुताबिक़ है। इमामैन [इमाम अबू

यूसुफ और इमाम मुहम्मद शैबानी, दो बड़े शागिर्द इमामे आज़म अबू हनीफा के] के कौल के मुताबिक़, उसे वुज़ू करना चाहिए।

[(अहमद बिन मुहम्मद इस्माईल) तहतवी ऐनोटेशन (अबुल इख़्लास हसन बिन अम्मार) शरब्लाली (कम्मेनटेटरी किताब) को **मेराक-उल-फिलाह** में बयान है: "बीमारी एक उज़र है (इस्लाम के तरीक़े से अच्छा बहाना) तय्यम्मुम के लिए (वुज़ू की जगह पर)। एक तन्दरूस्त इन्सान के लिए यह उज़र नहीं कि वो बीमार होने के ख़ौफ से वुज़ू न करे। आलिम जिन्होने कहा कि एक तन्दरुस्त बन्दे का अपना रोज़ा कज़ा (बाद में रखना रोज़ा) करना जायज़ है अगर उसे लगता है कि वो बीमार हो जायेगा वो रमज़ान के महीने में रोज़ा रखता है, उन्होने यह भी कहा है कि उस शख़्स के लिए तय्यम्मुम भी जायज़ है बीमार होने के डर से। 'बीमार हो जाने' के मायने चार है: पानी सेहत के लिए ख़तरनाक हो, हरकत करना ख़तरनाक हो। किसी का पानी न इस्तेमाल कर पाना। और किसी का तय्यम्मुम भी न कर पाना। ख़तरा तब भांपा जाता है जब किसी को ख़ुद महसूस हो रहा या किसी आदिल मुसलमान डॉक्टर या किसी जानकार ने चेतावनी दी हो तो। अगर कोई आदिल मुसलमान डॉक्टर नहीं मिलता तो ऐसा डॉक्टर जिसके गुनाह खुले और आम न हो उसकी बात मान सकते है। अगर कोई शख़्स पानी से ख़ुद वुज़ू नहीं कर सकता तो वो जब तय्यम्मुम कर सकता है जब उसकी मदद करने वाला कोई न हो। अगर उसके बच्चें दोस्त, नौकर उसकी मदद कर सकते है वुज़ू करने में तो दोस्ती के लिए यह लोग वुज़ू कराने में उसकी मदद करेंगे। इमामे आज़म के मुताबिक़ उसे पैसों के बदले किसी से यह नहीं करवाना होगा। जो शख़्स तय्यम्मुम नहीं कर सकता उसे नमाज़ कज़ा के लिए छोड़नी चाहिए। हालांकि शौहर और बीवी वुज़ू में एक दूसरे की मदद नहीं करते न नमाज़ में, पर शौहर को बीवी से मदद के लिए पूछना चाहिए। मसलन एक शहर या गाँव के बाहर का आदमी गर्म पानी नहीं ढूंढ पाता है; और वो तय्यम्मुम कर सकता है इस बात के डर से कि ठंडे पानी

का गुस्ल उसे बीमार कर देगा।[एक फतवे के मुताबिक़ यह कानून शहरी इलाकों में भी लागू है।अगर शख़्स के आधे से ज़्यादा हाथ पैर सूजे हुए हो तो वो वुज़ू की जगह तय्यम्मुम कर सकता है।अगर सूजा हुआ हिस्सा सिर्फ उसके आधे हाथ या पैर पर है तो वो आधे हिस्से पर वुज़ू और बाकी हिस्से पर मसह करे।अगर मसह उसके सूजे हुए हिस्से को नुक़सान पहुँचाता है तो वो पट्टी के ऊपर से मसह करले।अगर यह भी उसे नुक़सान पहुँचाता है तो वो मसह भी न करे।अगर उसके सिर पर कोई चोट है जिससे मसह करने से दोषमुक्त हो जाता है।मसलन कोई शख़्स जिसका चेहरा सूजा हुआ है और हाथों पर चोट है उन जगहों पर जहाँ धोना फ़र्ज़ है तब वो शख़्स तय्यम्मुम नहीं कर सकता; तो वो नमाज़ बिना वुज़ू के पढ़ेगा और उसे वो नमाज़ दुहरानी भी नहीं होगी।अगर उसका चेहरा ठीक है वो चेहरा धोता है।उसके पास कोई मददगार नहीं है तो वो अपना चेहरा मिट्टी पर मलता है।अगर किसी शख़्स का एक हाथ माज़ूर है या कटा हुआ है या चोटिला है तो वो दूसरे हाथ से वुज़ू करता है।अगर उसके दोनों हाथ ऐसे है तो वो चेहरा मिट्टी पर मलता है।अगर उसकी चोट पर कोई महरम प्लास्टर या कवर लगा हुआ होता है चोट को बचाने के लिए जिससे वो उस कपड़े प्लास्टर वग़ैरह पर भी मसह नहीं कर सकता तो वो बस बड़ी जगहों पर मसह करे और उसके बीच में भी जिस जगह चोट नहीं है।अगर मुमकिन हो तो प्लास्टर महरम हटा कर चोट का मसह करना चाहिए और ठीक हिस्से को पानी से धोना चाहिए।यह चीज़ें वुज़ू करने के बाद ज़रूरी नहीं कि लगाई जाये; और न ही इसके इस्तेमाल की कोई आख़िरी हद है।एक चोटीले पैर का मसह करना और दूसरे को धोना जायज़ है।अगर कोई चीज़ जो चोट पर लगी हुई हो और जख़्म सही होने से पहले निकल जाए तो वुज़ू नहीं टूटता उस महरम ही जिसपे मसह किया गया हो, उसे बदला जाए वुज़ू के बाद तो भी वुज़ू नहीं टूटता।अगर कोई महरम टूटे नाख़ून या चोटीले नाख़ून पर लगा हो या किसी के पैर की चोट पर उसे नहीं निकालना चाहिए क्योंकि इसे निकालना

जोख़िम भरा हो सकता है। वो ऐसे हालत में आ जाता है जिसे 'शक' कहते है, जिसमें उसे उस महरम के बाहरी हिस्से धोने होते है। अगर धोना ख़तरनाक हो तो वो उसका मसह करे। अगर मसह भी ख़तरनाक है तो वो मसह भी न करे। [जैसा कि यही कानून बाकी तीन मज़हबों में भी है, तो मज़हब की नक्ल करने का यहाँ तक नहीं है।] यह मरहम, एक पट्टी की तरह है। यह बात इब्ने आबिदीन कि किताब में लिखी है। पर किसी के दांत भरे हुए होना एक अलग मसला है। इसके लिए मालिकी या शाफी मज़हब की नक्ल की जा सकती है। अगर कोई शख़्स बेहोश हो जाता है बिना ख़ुद को कुछ करे और इसी हालत में अगली 6 नमाज़ों तक रहता है तो उसे छूटी हुई नमाज़ों की कज़ा पढ़ने की ज़रूरत नही। (दूसरे लफ्ज़ों में उसे वो नमाज़ें दुबारा नहीं पढ़नी पड़ेगी।) इस बात से बेपरवाह की किताबी नमाज़ें गलत पढ़ी गई इमा के तरीक़े से, उसे अपनी नीयत में यह नहीं जोड़ना पड़ेगा कि इसकी इश्कात भी पढ़नी है।" (इश्कात और दौर के लिए **सआदते अबदिया** के पाँचवें एडिशन का 21वां बाब पढ़े)

इब्ने आबिदीन 'रहमतुल्लाहि अलैहि' फरमाते है: "किसी सेहतमंद इन्सान के लिए अपने हाथ पैर का वुज़ू या मसह किसी दूसरे के ज़रिए कराना मकरूह है। किसी दूसरे शख़्स का उसके लिए वुज़ू का पानी भरके लाना या जब वो वुज़ू करे तो पानी डालना जायज़ है। अगर कोई बतिली गंदगी उसके कपड़ों पर है या उसके बिस्तर पर हर वक़्त रहती हो या उसे बदलना बहुत भारी हो, तो वो अपने नजस के कपड़ों में ही नमाज़ अदा करता है। अगर प्लास्टर, मरहम पट्टी या कपड़ा जो चोट पर बंधा हुआ हो और निकल कर गिर जाए जब चोट ठीक हो चुकी हो तो वुज़ू टूट जाता है। अगर चोट ठीक हो चुकी है पर उसकी मरहम पट्टी नहीं निकाली गई जबकि उसे बिना किसी नुक़सान के निकाला जा सकता था जब भी वुज़ू/गुस्ल टूट जाता है।

अल्लाह तआला बीमारी और दर्द अपने प्यारे बन्दों को उनके गुनाह कम और जन्नत की बरक़तों को बढ़ाने के लिए देता है। वो मुश्किलों में उसकी इबादत करते है। इसके बदले में अल्लाह तआला उनको इस जहाँ में सुकून देता है और रिज़्क में बरक़त देता है। (खाना, पीना और ज़रूरत की चीज़ें जिसका वादा उसने अपने सारे बन्दों से किया है ताक्यामत तक अपने हर बन्दे के बारे में काफी जानकारी **सआदते अबदिया** के छठे बाब में है।) वो वैसा ही रिज़्क और बरक़त उन बन्दों को नहीं देता जो उसकी इबादत को नज़रअंदाज़ करते है। यह लोग बहुत मेहनत, फरेबी और गददारी से कमाते है और अपनी ज़िन्दगी मज़े और अय्याशी में गुज़ारते है जोकि अबदी नहीं है। बाद में यह लोग हस्पताल या जेल में होते है अपनी बाक़ी की ज़िन्दगी दुख में काटते हुए। और आख़िर में मिलने वाला अज़ाब उससे भी कहीं गुना शदीद है।]

इस्तिंजा, इस्तिबरा और इस्तिंका

जाने हुए जिस्मी हिस्सों को धोना इस्तिंजा कहते है। इस्तिबरा के मायने है, पेशाब के बाद, थोड़ी देर चलना या कुछ करना जिससे पेशाब की जगह सूख जाये (वुज़ू करने से पहले)। इस्तिंका के मायने दिल का मुतमईन होना जिस्मानी सफाई से।

इस्तिंजा चार तरह से होता है:

पहले जो फर्ज़ है: अगर कपड़ों या जिस्म पर एक दिरहम से ज़्यादा नजासत हो या उस जगह का जहाँ नमाज़ पढ़नी हो। यह फर्ज़ है कि उस नजासत को पानी से पाक किया जाए। इस्तिंजा फर्ज़ है तब भी जब गुस्ल किया जाए। [एक दिरहम एक मिथकाल के बराबर है। जोकि चार ग्राम और 80 सेंटीग्राम है]

एक वो जो वाजिब है: एक दिरहम के बराबर नजासत पहनना या नमाज़ अदा करने की जगह पर हो तो उसको हटाना वाजिब है।

अगर वो एक दिरहम से कम है तो उसे हटाना सुन्नत है।

एक वो जो मुस्तहब है: अगर नजासत बहुत ही कम है तो उसे हटाना मुस्तहब है। एक वो जो मनदूब है; कूल्हों के गीले होने की शक्ल में जब कोई हवा मारता है तो उसे साफ करना मनदूब है।

सूखे कूल्हों से हवा छोड़ने के बाद धोना बिद्दत है।

इस्तिंजा की सुन्नतें: ख़ुद को एक मिट्टी के ढेले या मिट्टी से साफ करना और बाद में साफ हिस्से को पानी से धोना सुन्नत है।

अगर नजासत पूरे तरीक़े से साफ न की गई हो और एक दिरहम से कम रह गई हो, अगर वो एक दिरहम गुदा के आस पास के हिस्से को गन्दा कर रहा हो, तो उसे पानी से धोना फ़र्ज़ हो जाता है। फिर उस हिस्से को सूखे कपड़े से साफ करना चाहिए या हाथ से अगर कपड़ा न हो तो।

इस्तिंजा करने में सिर्फ एक मुस्तहब है: विषम गिनती में पत्थरों को लेना। दूसरे लफ़्ज़ों में पत्थरों की गिनती तीन, पाँच या सात हो।

[एक शख़्स जो लगातार पेशाब आने की बीमारी में है तो उसे **12X12** c.m का एक कपड़ा अपने साथ रखना चाहिए और उसके कोने पर एक आधा मीटर लम्बी रस्सी बांधनी चाहिए। पेशाबगाह की जगह पर उस कपड़े को बांधना चाहिए और रस्सी उस कपड़े के हिस्से के चारों ओर बांधनी चाहिए यानि पेशाबगाह की जगह पर। इसका बंद हुआ हिस्सा दुगना हो जाता है, दोगुना हिस्सा बंधे हुए हिस्से में से जाना चाहिए और खींचना चाहिए जिससे

कपड़ा मज़बूती से जाना चाहिए और खींचना चाहिए जिससे कपड़ा मज़बूती से लग जाये। इसका ढीला हिस्सा एक लूप में बंधा हुआ हो। जोकि कूल्हों में पिन के सहारे लगा हो। पेशाब के वक़्त पिन खोल कर कपड़ा खोला जाए रस्सी खींचके। अगर पिन से मुश्किल हो तो तार से बांधा जाए जो पिन से जुड़ी हो। कुछ बूंदे लोगों की पेशावगाह सिकुड़ी हुई होती है, तो उनपर कपड़ा बांधना ना मुमकिन हो जाता है। ऐसे लोगों को अपनी पेशावगाह और अंडकोष एक नायलॉन की थैली में रखनी चाहिए और थैली का मुँह बंद कर देना चाहिए। एक हनफी शख़्स जो बेइन्तेहा पेशाब आने की बीमारी में मुब्तिला हो और फिर भी उसके पास कोई अज़्र न हो वुज़ू, गुस्ल और नमाज़ अदा करने के लिए मालिकी मज़हब की नक्ल करता है। **किताबुल-फिक़्ह अलल-मज़हिबि-ल-एरबा** में बयान है जोकि मिस्त्री इस्लामी आलिम की तय्यार की हुई थी अब्दुर्र-रहमान जरीरी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' (d. 1384 A.H.) जमिउल अज़हर के एक प्रोफेसर: "मालिकी मज़हब के दूसरे क़ौल के मुताबिक़, जब एक नाकदिल या बूढ़ा शख़्स इस हालत में आ जाता है जिससे उसका वुज़ू टूट जाए, तो वो उज़्र का शख़्स हो जाता है। जिससे वो वुज़ू टूटने से दोषमुक्त हो जाता है। हनफी और शाफी मज़हब में (एक कड़ी हालत) है जिसमें हराज को इस क़ौल की नक्ल करनी पड़ती है (इजतिहाद)।" [एक हनफी मुस्लिम जिसका पेशाब नमाज़ के दौरान बेकाबू निकल रहा हो वो इस क़ौल से मालिकी मज़हब की नक्ल करे जब हालत सही न हो तो। नियत करके वो उज़्र का शख़्स बनके अपनी नमाज़ पूरी करता है।]

नमाज़ कैसे पढ़े

नमाज़ को चार किस्मों से पढ़ते है: फ़र्ज़ से, वाजिब से, सुन्नत से, मुस्तहब से। हनफी मज़हब में हाथों को कानों तक उठाना सुन्नत है। हथेली

क़िब्ले की तरफ करना सुन्नत है। आदमी के लिए अपने हाथों को कान की लौ से अंगूठे से छूना, और औरतों को अपने कंधे की ऊँचाई तक उठाना और "**अल्लाहु अकबर**" कहना फ़र्ज़ है। अपने हाथों को तक्बीर के बाद बांध लेना सुन्नत है। (तक्बीर यानि अल्लाहु अकबर कहना)। अपना सीधा हाथ उल्टे सीधा पर रखना सुन्नत है। मर्द के लिए अपने हाथ नाभी के नीचे बांधना सुन्नत है और औरतों के लिए अपनी छाती पर। आदमी के लिए अपनी उल्टे हाथ की कलाई पर सीधा हाथ रखना मुस्तहब है, एक पंजे की तरह।

नमाज़ में इमाम के और उन लोगों के लिए जो उसके पीछे नमाज़ पढ़ रहे हो, सुब्हानका [सुब्हानका इस तरह है: "सुब्हानाकल्लाहुम्मा व बिहम्दिका व तबारकस्मु का व तआला जददू का व ला इलाहा ग़ैरूक"] पढ़ना सुन्नत है। (सुब्हानका के बाद) आउज़ु बिल्लाहि मिनश शैत्वाने रजीम कहना सुन्नत है, इमाम के लिए । या उस शख़्स के लिए जो अपनी अलग नमाज़ पढ़ रहा हो (उसके लिए नहीं जो इमाम के साथ पढ़ रहा हो।) बिस्मिल्लाह पढ़ना सुन्नत है। (आउज़ु के बाद)। फातिहा शरीफ पढ़ना वाजिब है (क़ुरान करीम की पहली सूरह); तीन आयतें या एक लम्बी आयत पढ़ना सूरह फातिहा के बाद फर्ज़ है, सुन्नत नमाज़ों की हर रकअत में खड़े होकर एक आयत पढ़ना फर्ज़ है, और वित्र की सारी रकअतों में भी, जब अकेले नमाज़ पढ़ रहे हो, फर्ज़ की आख़िरी दो रकअतों में (जिनमें चार रकअतें होती है।)

कमर के बल रूकू के लिए झुकना फर्ज़ है; इसी हालत में उस वक़्त तक रहना जब तक तुम तीन बार "**सुब्हानल्लाह**" न पढ़ लो वाजिब है। "**सुब्हाना रब्बियल अज़ीम**" तीन बार कहना सुन्नत है। इसे पाँच या सात बार कहना मुस्तहब है। जब तुम रूकू से उठो और सज्दे में जाने से पहले बिना हिले खड़े रहो जब तक तुम "**सुब्हानल्लाह**" न पढ़ लो, इमाम अबू यूसुफ के

मुताबिक़ यह फर्ज़ है और तराफ़ेईन की तरफ से वाजिब। हालांकि कुछ आलिमों के मुताबिक़ यह सुन्नत है, कि वाजिब का क़ौल हावी है।

सज्दे के लिए सिर का ज़मीन पर लगाना फर्ज़ है। और उसी में रहना जब तक कि तुम "**सुब्हानल्लाह**" न कहलो। "**सुब्हाना रब्बियल अज़ीम**" तीन बार कहना सुन्नत और पाँच या सात बार कहना मुस्तहब है।

इब्ने आबिदीन 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने फरमाया: "सज्दा करते वक़्त, पहले दोनों घुटनें, फिर दोनों हाथ, फिर नाक, और आख़िर में माथा, ज़मीन से लगाओ। अंगूठा और कान एक लकीर में होने चाहिए। शाफी मज़हब में हाथ कंधों की लकीर में होने चाहिए। कम से कम एक पैर के पंजे का ज़मीन पर होना फर्ज़ है। ज़मीन इतनी मज़बूत तो होनी चाहिए कि उसमें तुम्हारा सिर न धंस सके। एक चादर, गेहूँ की छाड़ जानमाज़, ज़मीन पर बिछाकर इस मसले को देखा जा सकता है। एक मेज़, सोफा ऐसी चीज़ें ज़मीन के बदले इस्तेमाल की जा सकती है। झूलें, कपड़ें, गलीचा या पेड़ों की बनी चटाई और लटका हुआ चिमड़ा को ज़मीन की जगह इस्तेमाल नहीं कर सकते। बेजान चीज़ें जैसे चावल, बाजरा या पटसन के बीजों पर सज्दा करना सही नहीं है। अगर सज्दा करने की जगह की ऊँचाई आधा ज़रा है यानि बारह उंगलियों के जोड़े के बराबर (25 c.m), घुटने रखने की जगह के मुक़ाबिल तो तुम्हारी नमाज़ सही होगी; पर फिर भी यह मकरूह है। सज्दे के दौरान तुम्हारी कुहनिया जिस्म से दूर रहनी चाहिए और तुम्हारा उदरीय हिस्सा तुम्हारी जांघों से साफ दिखता हो। तुम्हारे पैरों के पंजे क़िब्ले के रूख़ पर हो। रूकू के लिए झुकते वक़्त अपनी ऐड़ियों की हड्डियों को मिलाना सुन्नत है, तो इन्हे सज्दे में भी मिलाना चाहिए।

जब एक औरत नमाज़ पढ़ती है तो वो अपने हाथ कंधों तक उठाती है। उसके हाथ उसकी आस्तीनों से बाहर नहीं होने चाहिए। वो अपनी छाती पर

हाथ रखती है। उसकी सीधी हथेली उल्टे हाथ पर होती है। वो अपना जिस्म, रूकू के लिए हल्का सा झुकाती है। उसकी कमर उसके सिर की लाईन में नहीं होनी चाहिए। वो रूकू करते में अपनी उंगलियाँ नहीं खोलती और न दोनों सज्दों में। वो एक दूसरे से जुड़ी होनी चाहिए। वो अपने हाथ घुटनों पर रखती है जोकि झुके हुए होने चाहिए। वो घुटनों को नहीं जोड़ती। और सज्दे में वो अपने हाथ ज़मीन पर बिछा देती है, जिससे उसकी कुहनियाँ पेट के पास रहती है। उसका पेट उसकी जांघों से मिला होना चाहिए। तशहहुद (बैठने में) में वो अपने दोनों पैर सीधी तरफ को निकाल देती है। उसकी उंगलियाँ घुटनों की तरफ इशारा करती हुई होनी चाहिए। [आदमी भी अपने घुटने नहीं जोड़ते, (जब तशहहुद में बैठते है)] उसकी उंगलियाँ बंद और एक दूसरे को छूती हुई होनी चाहिए। औरतों के लिए आपस में या मर्दो की जमात में नमाज़ पढ़ना मकरूह है। उनके लिए जुम्मे या ईद की नमाज़ पढ़ना फर्ज़ नहीं है। (दूसरे लफ्ज़ों में अल्लाह तआला ने उन्हे यह दो नमाज़ें पढ़ने का हुक्म नहीं दिया (इन दो नमाज़ों की वज़ाहत के बारे में **सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन के **21**वें और **22**वें बाब में बयान है।) कुरबान की ईद में यह **तकबीरे तशरीक** फर्ज़ नमाज़ों के बाद अहिस्ता से पढ़ती है। उनके लिए सुबह की नमाज़ को उसके नये वक़्त पर पढ़ना मुस्तहब नहीं है। वो नमाज़ में पढ़ी जाने वाली दुआऐं तेज़ नहीं पढ़ती।" यहाँ हम अपने इब्ने आबिदीन का तर्जुमा ख़त्म करते है। सय्यद अहमद हमावी बिन मुहम्मद मक्की 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' (d. 1098 [1686 A.D.]) अपनी किताब **उयून-उल-बसैर** में फरमाते है जोकि किताब **एशबाह** (और जोकि जेनुल आबिदीन इब्राहीम इब्ने नुजैम-ए-मिस्त्री 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' 926 A.D. - 970 [1562 A.D.], मिस्त्र की लिखी हुई) की कमेंटरी में बयान है। औरतों के लिए अपने सिर से बालों को हटाना, शेव करके या केमिकल इस्तेमाल करके मकरूह है। [पर यह जायज़ है कि वो कानों तक अपने बाल छोटे कर सके, पर यह ध्यान रहे कि वो मर्दो की

तरह न दिखें।] औरत के लिए अज़ान पढ़ना या इकायात देना मकरूह है।(जिसकी बारे में **सआदते अबदिया** के चौथें एडिशन के ग्यारवें बाब में बयान है।) वो बिना अपने शौहर के या किसी महरम रिश्तेदार के लम्बे सफर पर नहीं जा सकती।[**सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन का **15**वां बाब देखें] उसे हज के दौरान अपना सिर नहीं दिखाना चाहिए।वो एक इबादत नाम साय, सफा और मारवा (हज के दौरान) की पहाड़ियों के बीच अदा करती है चाहे उसकी महावारी ही क्यो न चल रही हो।वो काबा से कुछ दूरी पर तफाव करती है।उसे खुतबा नहीं पढ़ना चाहिए।क्योंकि यह सहीह है कि उसकी आवाज़ अवरत है।वो हज के दौरान मेस्ट पहनती है।औरत को जनाज़े में शामिल नहीं होना चाहिए।अगर वो मुरतद बन भी जाये तो उसे न मारा जाए।वो हद (एक सज़ा) या किसास (जिसके बारे में **सआदते अबदिया** के छठे एडिशन के **10** से **15**वें बाब में ब्यान है।) की अदालत में गवाह नहीं बन सकती।उसे मस्जिद में इतिकाफ कतइ नही करना [इतिकाफ के लिए **सआदते अबदिया** का चौथे एडिशन का नौंवा बाब देखें] उसके लिए अपने हाथ पैर हिना (मेहन्दी) से रंगना जायज़ है।[पर उसे नाख़ूनों पर पालिश नहीं करनी चाहिए।] वो कुछ मामले जैसे विरासत, गवाही और नफाका [**सआदते अबदिया** के छठे एडिशन का आठवां बाब देखें] देने में मर्द की आधी है।एक मुहसिना औरत अदालत में नहीं बुलाई जाती।वकील या उसके किसी बन्दे को उसके घर जाना पड़ता है।(एक मुहासिना या मुहासीन औरत वो है जो शादी शुदा और पाकसाज़ हो।**सआदते अबदिया** के छठे एडिशन के **10**वें बाब के **5**वें और छठे पैराग्राफ पढ़े और हद कज़फ के लिए उनवान के नीचे का भी पैराग्राफ पढ़े।) एक जवान औरत किसी नामहरम मर्द को सलाम नहीं करती या किसी ग़मगीन नामहरम मर्द को तसल्ली देना या किसी के छींकने के (अलहम्दुलिल्लाह कहने के बाद) बाद कुछ कहना या किसी नामहरम मर्द के

कहने पर उसे क़ुबूल करना। वो किसी कमरे में नामहरम मर्द के साथ नहीं रह सकती। यहाँ हम हमावी का तर्जुमा ख़त्म करते है।

क़ज़ा-ए-उला (नमाज़ की पहली बैठक) में बैठना वाजिब है। क़ज़ा-ए-उला आख़िरा (नमाज़ की आख़िरी बैठक) में बैठना फ़र्ज़ है। बैठे हुए दुआ तेहिय्यात पढ़ना वाजिब है।

सवालात पढ़ना सुन्नत है सिर्फ नमाज़ की आख़िरी बैठक में जोकि फ़र्ज़ है और वो जो वाजिब है और जुहर की नमाज़ के पहले की सुन्नतों में और जुम्मे की नमाज़ की शुरू और बाद की सुन्नतों में भी। और दोनों बैठकों में बाकी नमाज़ों के [जैसे चार रकअत सुन्नत असर और रात की नमाज़ों के]। सलाम कहना वाजिब है (यानि अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह) (दोनों तरफ सिर घुमा कर सलाम पढ़ना) सलाम फेरते वक़्त दोनों कंधों को देखना सुन्नत है। और तवज्जो के साथ देखना मुस्तहब है।

नमाज़ की क़ुबूलियत और सहीह होने की शर्तें [तुम्हारा हराम से बचना] है खुशू और तकवा और मालायानी और तरक-ए-केसल और इब्दाद को रोकना। खुशू के मायने है अल्लाह तआला का डर; तक्वा का मतलब अपने नौ आज़ूओं (जिस्म के हिस्से) को हराम और मकरूह से बचाना, मालायानी को रोकने से मुराद उन बातों से है जो न दुनिया और न आख़िरत में फायदा पहुँचाती है; तरक-ए-केसल के मायने है नमाज़ की हरकतों को समझने में हिचकिचाहट दिखाना; इब्दाद के मायने उन चीज़ों को न करना जो तुम करते आये हो और नमाज़ के लिए जल्दी करना जब तुम अज़ाने मुहम्मदी सुनों और उसके साथ बरक़रारी रखना।

नमाज़ के मायने है पढ़ने में खुलूस रखना [जिसका मतलब है सिर्फ अल्लाह की रज़ा के लिए नमाज़ पढ़ना] तफ्क्कुर का मतलब दूसरे मसलों को न

सोचना नमाज़ में, ख़ौफ का मतलब अल्लाह का डर; रोज़ा के मायने है अल्लाह तआला को राज़ी करने की उम्मीद; रूयातल तफ्सीर मतलब अपने आपको कमतर समझना; मुजाहदा मतलब अपनी नफ्स और शैतान से लड़ना।

जब अज़ाने मुहम्मदी पढ़ी जाए तो तुम सोचो जैसे इस्राफील 'अलैहिस्सलाम' सूर फूंक रहे हो; जब तुम वुज़ू के लिए खड़े हो तो सोचो जैसे तुम आख़िरत के दिन अपनी कब्रों से खड़े हो रहे हो, जब मस्जिद के लिए जाओ तो सोचो जैसे महशर के मैदान में जा रहे हो; जब मुअज़्ज़िन इकामत कहे और लोग सफहों में खड़े हो जाए तो सोचो जैसे **120** बड़ी सफहे खड़ी है महशर के मैदान में, उनमें से **80** लाईनें हमारे नबी की उम्मत की होगी और **40** बाकी नबियों की। उसके बाद तुम इमाम के पीछे हो और इमाम सूरह फातिहा कहना शुरू करता है तब तुम सोचो की तुम्हारे सीधे हाथ पर जन्नत, उल्टे पर दोज़ख़ है और इज़राईल 'अलैहिस्सलाम' तुम्हारे पीछे है और बैतुल्लाह तुम्हारे उल्टे और कब्र तुमसे पहले है और पुल सिरात तुम्हारे पैरों के नीचे। अगर (महशर की जगह) तुम्हारी पूछताछ आसानी से हो जाती है तो तुमको ज़रूर ही सोचना होगा, अगर तुम्हारी इबादत सर पे ताज पहना देती है, आख़िरत के सफर में तुम्हारे साथ साथी होगा, और तुम्हारी कब्र में रोशनी होगी या फिर यह तुम्हारे दाँतों में एक पुराने चीथड़े की तरह ख़तरा बन जाएगा।

ओ, तू दुनिया, तमाम बदगुमान तेरा नफा है, और तू बहुत नीच है! मौत की आंधी ने तेरे तमाम शोभा के नाम में प्रस्ताव्ये को तबाह कर दिया है।

अज़ान-ए-मुहम्मदी

निम्नलिखित भाग हक़दार किताब **दुर-उल-मुख़्तार** किताब से तर्जुमा किया गया और इसकी कमेंटरी हक़दार **इब्ने आबिदीन** से:

एक तख़वी इख़्तियार मुसलमान उन ख़ास अलफ़ाज़ों की तिलावत करता है जोकि इस्लाम की तालीमियत के तरीक़ों वाली किताब से सिखाए गए हैं और तख़वी इख़्तियार मुसलमान के ज़रिए पढ़ी गई अज़ान **अज़ान-ए-मुहम्मदी** कहलाती है। दूसरे अलफ़ाज़ों में वह शख़्स जो अज़ान पढ़ने जा रहा है उसे चाहिए के मिनार पर चढ़े और खड़े हो के अरबी अलफ़ाज़ों की तिलावत करे। वह अज़ान नहीं होगी जिसके संस्करणों को किसी दूसरी ज़बान में पढ़ा जाए जबकि चाहे उनके मतलबों से वाकिफ हो। अज़ान पढ़ने का मकसद रोज़ाना की पाँचों इबादत (जिसे नमाज़ कहते है) के वक़्त का ऐलान करना है। यह मर्द के लिए सुन्नत मुअक्कद है कि वह मस्जिद के बाहर किसी ऊंचे चबूतरे पे चढ़ के अज़ान पढ़े। औरत के लिए अज़ान या इकामत पढ़ना मकरूह है। और उनको अपनी आवाज़ को किसी (ना-महरम) मर्द को सुनाना हराम है।

मोअज़्ज़न (यानि वह शख़्स जो अज़ान पढ़ाने जा रहा है,) उसे मस्जिद के बाहर ऊंचे चबुतरे पे चड़ना होगा और अज़ान को इतनी ऊंची आवाज़ से पढ़ना होगा जितना की पड़ोसियों तक उसकी आवाज़ पहुँच जाए इसके लिए यह जाइज़ नहीं है के बहुत तेज़ चिल्लाए। जैसे कि ये, "**ऐकबेर** (या अकबर)" कहता है, यह या तो इसके आख़िर जेज़्म (या जज़्म) की सूरत में ठहराव ले सकता है या (अरबी लिपी की आवाज़ में एक 'आ' को आवाज़ में दिखा सकता है जिसे उसतून कहते है। इसी तरह पढ़ते हुए लगातार रख सकता है। यह अरबी लिपी में यू को आवाज़ में दिखाते हुए नहीं पढ़ता जिसे ओइतरा कहते है। यह हलाल नहीं है कि इसमें आवाज़ी बिंदू लगाए या इसकी आवाज़ को बड़ाए या इसको ध्वन्यात्मक लम्बा कर दे या इसको गाने की धुन में पढ़े, या इस तरह के बदहाल ग़ैर इस्तेमाल लायक़ को सुने। नमाज़ के दौरान अपना सर सीधी तरफ और उल्टी तरफ मोड़ना सुन्नत है और क्रमानुसार 'सलात' और 'फलाह' पढ़ी जा रही हो। पैर और सीना क़िब्ले के रूख़ से दूर ना हटे अज़ान के दौरान या यह मीनार से पढ़ी गई हो; और इस बीच (क़रार

अज़ान देने वाला) मोअज़्ज़न मिनार के घिराव बरामदे में मुड़ता है। सबसे पहली मिनार हज़रत मुआवीया 'रज़ि-अल्लाहु अन्हा' (19 B.H. - 60 [680 A.D.]) के हुक्म पे बनी थी। वहाँ पे रसूलुल्लाह की मस्जिद पे चबूतरा बनाया गया था। बिलाल हबाशी 'रज़ि-अल्लाहु अन्हा' (d. 20 A.H. डमसकस) ने इसकी तामीर की थी, अज़ान देने के लिए। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने बिलाल को हुक्म दिया (अज़ान पढ़ने के दौरान) अपनी उंगलियों को कानों पे रखने का। अज़ान के दौरान बातचीत अज़ान को दुबारा अदाएगी करने पे मजबूर करती है। यह जाइज़ है कि एक शख़्स से ज़्यादा लोग अगर साथ मिलकर अज़ान पढ़े हालांकि, अज़ान सही नहीं होगी अगर उनमें से किसी एक शख़्स के ज़रिए बोले गए अलफ़ाज़ दूसरे लोगों के ज़रिए नहीं बोले गए। बैठ कर अज़ान पढ़ना मकरूह तहरीमी है। मोअज़्ज़न के लिए सालिह मुसलमान होना सुन्नत है। और अज़ान के दौरान के सुन्नती काम जानना व अज़ान के वक़्त जानना, रोज़ाना स्थिरता से व लगातार अज़ान देना, और यह सिर्फ अल्लाह की रज़ा के लिए पढ़ना नाकि पैसों के लिए। हालांकि, यह जाइज़ होगा के उसे वज़ीफा दिया जाए और वह इसे क़ुबूले। कम उम्र व बालिग़ी की उम्र से पहले बच्चे की दी गई अज़ान सही नहीं होगी। इसकी आवाज़ चिड़िया के गाने के समान होगी या एक आवाज़ जोकि किसी गाने बनाने वाली चीज़ से निकाली गई हो। [उस मसले के लिए, अज़ान या इकामत लाउड स्पीकर के ज़रिए पढ़ी हुई सही नहीं होगी। किसी फासिख़ शख़्स के ज़रिए पढ़ी गई अज़ान अस्थिर होगी। और जमात में इमाम के ज़रिए पढ़ी तकबीर उस फासिख़ शख़्स का दोहराना अस्थिर होगा। इसके लिए अज़ान पढ़ना मकरूह है। यह बहुत ज़रूरी है के मोअज़्ज़न अज़ान के मुक़र्रर वक़्त को जानने के बाद अज़ान की शुरूआत करे और दूसरे मुसलमानों को नमाज़ को मुक़र्रर वक़्त पे अदा करने को जानना चाहिए, अगर कोई मुसलमान नमाज़ का वक़्त शुरू होने से पहले ही गैर मुक़र्रर तौर पर नमाज़ की अदाएगी शुरू कर दे। जो नमाज़ यह पढ़ता है

सही नहीं होगी। हालांकि की अगर बाद में यह पता चलता है कि अदा की गई सही नहीं होगी। कलेंडर के सहीपन के मुताल्लिक़ होने के लिए (एक देश की मिआद) दार-उल-हर्ब का इस्तेमाल होना चाहिए। उस मुसलमान शख़्स से ज़रूर पूछना चाहिए जिसका ईमान सालिह है व सीखा हुआ है और इससे सच्चाई सीखनी चाहिए।] मान लीजिए अज़ान एक साथ कई जगह (हक़ीक़ी सुन्नत तरीक़े से) पढ़ी गई और तुमने वह सब सुनी; तुम्हे सिर्फ पहली वाली अज़ान दोहरानी चाहिए जो तुमने सुनी और अगर यह उस मस्जिद से है जहाँ तुम रोज़ाना की नमाज़ अदा करते आ रहे हो, तुम्हे वहाँ जमात के लिए जाना चाहिए। अगर तुम क़ुरानुल करीम पढ़ रहे हो तो इसके बाद तुम्हे इसे दोहराना चाहिए। अगर तुम जमात में नमाज़ पढ़ रहे हो शौचालय में हो या खाना खा रहे हो या अगर मस्जिद में या मज़हबी इल्म सीख रहे या सिखा रहे हो तो तुम्हे इसको दोहराना नहीं होगा। एक अज़ान जो अरबी ज़बान के सिवाए पढ़ी जा रही है या इस तरह की उसकी आवाज़ बिल्कुल गाने बजाने की तरह लग रही है सुन्नत का उल्लंघन है। किसी शख़्स के लिए यह मुस्तहिब है कि वह जब अज़ान होते हुए सुने तो बैठे से खड़े हो जाए या अगर यह चल रहा हो तो चलते हुए रूक जाए। यह निम्नानुसार कसमों से निपटने में कसमे विषय के साथ फरमाया गया है: (मुसलमान) हुकूमत के लिए हर एक क्वार्टर में मस्जिद की तामीर करना वाजिब है। मस्जिदे बेत-उल-माल के पैसे से तामीर कि जाती है। अगर हुकूमत कोई मस्जिद नहीं बनाती तो मुसलमानों को मस्जिद का तामीर करना वाजिब है।

[जैसे की यह देखा जाता है, अगर इस्लाम का पालन हुआ और शहर के हर एक क्वार्टर में मस्जिद की तामीर हुई, अज़ान हर शहर में होगी और हर एक अपने क्वार्टर में अज़ान होती हुई सुनेगा। फिर कोई ज़रूरत नहीं होगी कि मोअज़्ज़न बहुत तेज़ चिल्लाए या लाउड स्पीकर का इस्तेमाल करे। लाउड स्पीकर बिद्दत है जो अज़ान की सुन्नतों के उल्लंघन की वजह बनती है। यह इन

सुन्नतों की ख़ूबसूरती खोने की वजह बनती है। यही वजह है कि सात सौ पन्द्रहवें लेख और **37**वां संकल्प एक कमीशन के साथ मज़हबी कामों की पढ़ाई को (तुर्की में) **1.12.1954** में मज़हबी मामलातों के विदेशालय के आदेश पे मंज़ूर कर लिया गया, निम्नानुसार पढ़े: "(मस्जिद में) मिनारों पे लाउड स्पीकरों की किश्त ख़ास तौर पर मना है। अगर जमात (मुसलमानों का समूह जमाअत में नमाज़ पढ़ाने वालों) में इमाम की तक्बीर सुनी जाए तो यह बहुत अच्छा होगा, फिर कोई एक मोअज़्ज़न और/या शख़्स जो दूर है वह इमाम की आवाज़ दूसरों तक पहुँचा सकता है।" यह हक़दार किताब **अल-फिख-उ-अलल मज़ाहिब-उल-अरबा'अ** में सज्दा-ए-तिलावत के व्यवहार के बाब में लम्बाई से समझाया गया है और **सआदते अबदिया** के आख़िरी आधे के **16**वें बाब की चौथी पूलिका में भी के कुरानुल करीम पढ़ा गया या (उसकी तिलावत की गई) या रेडियो पे अज़ान पढ़ी गई या उसपे टैप रखा लाउड स्पीकर के ज़रिए अदा की गई आवाज़ को आदम की नहीं माना जाएगा, वह उस अज़ान देने वाले की सक्रीय चुंबकिये और बिजली के उपकरणों के ज़रिए बनाई हुई एक आला आवाज़ है, और वह उस शख़्स की आवाज़ जैसी हो सकती है हालांकि यह आदम की असली आवाज़ नहीं है जोकि उत्पादित की वजाहें होती है। इस्लाम के ज़रिए **अज़ान-ए-मुहम्मदी** के आवाज़ एक सालिह मुसलमान की होनी चाहिए। वह आवाज़ जो किसी पाईप से बाहर निकल रही है वह अज़ान नहीं है। एलमली के हामिद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' अफेन्दी, एक समकालीन इस्लामिक उलेमा, अपनी तफसीर की किताब के तीसरे खंड के तेइस्सो इकसटवें सफे पे निम्नानुसार फरमाते है: [जैसे की यह देखा जाता है। सुनने और ख़ामोशी के मुताल्लिक़ हुकूमात किरात मौजूदा तौर पर बनाए गए, जोकि एक भाषाई गतिविधी में बदलता है और बताए जोड़बंदी जगहों को नज़र में रखते हुए इरादे और समझ के साथ व्यक्त। असलियत में जबकि जिबराईल(यानि महादूत जिबराईल) के ज़रिए किए गए कर्म, (कुरानुल करीम को मुहम्मद

'अलैहिस्सलाम' के इलहाम का दौरान) (मुबारक नबी) किरात अदा करने का कर्म था, बजाए ख़ुदी में किरात अदा करने को। (अल्लाह तआला के ज़रिए से) किया हुआ नेक काम, दूसरे हाथ वह तनज़ील (इलहाम) का कर्म था और किरात (के कर्म) की तख़लीक़। इसीलिए आवाज़ जो बददिमाग़ी से हो रही है किरात नहीं कहलाई जा सकती, और ना ही हमें ऐसी आवाज़ कहनी चाहिए जो किरात की जगह से परिलक्षित हुई। यह उस मसले के लिए था जोकि फुकाहा है, (यानि वह इस्लामिक उलेमा जो इस्लाम की शाखा में एहम वा सांइसी शाखा के **फिकह** क़रार,) ने फरमाया के कोई किरात की गूंज होती हुई किरात नहीं कही जाएगी और यह किसी अदाएगी में ज़रूरी नहीं होगी, जैसे की सज्दे की अदाएगी क़रार तिलावत, [बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** की चौथी पूलिका के बाद के हिस्से का 16वां बाब देखें।] जो मुसलमान के लिए बहुत ज़रूरी है जो पढ़ता या तिलावत सुनता है सज्दे की किसी आयत को किसी खास किताब से की हुई सम्पूर्ण रची पढ़ाई किरात की गतिविधी नहीं है, इसी तरह, किसी आवाज़ की गुनगुनाहट गूंज को सुनना या जो किसी चीज़ के ज़रिए बनाई जा रही हो (जैसे की कोई गाने बजाने का यंत्र) बजना किरात की गतिविधी को सही से ना सुनना है। इसीलिए, आवाज़, या ध्वनि किसी रिकोर्ड प्लेयर या रेडियो (या फिर कोई टेलीविज़न व डी.वी.डी प्लेयर) कुरानुल करीम पढ़ते या तिलावत करते हुए किसी आदमी की आवाज़ को असर करना। यह गूंज है और किरात का उत्पादित करना है, ना की अपने आप में किरात, और इसीलिए यह सुनवाई और ख़ामोशी नहीं बनाता जोकि (मुसलमान पे लाज़िम है जो इसे सुनता है) दूसरे अलफ़ाज़ों में, कुरानुल करीम की (आयतों में) जोकि वाजिब (लाज़िम) है उनको चुपचाप से सुनना जिसकी तिलावत किरात के कर्म में कि जा रही है, ना की आयतों की (ध्वनीयां) जो बजाई जा रही है, अभी तक सच है के इसको सुनना वाजिब का काम या मुस्तहिब नहीं है कोई भी हल नहीं निकालना चाहिए के इसको सुनना जाइज़ नहीं है या इसको ना सुनना

वाजिब है, कुरानुल करीम की आयते करीमा (रेडियो वगैराह) पे बजाना और कुरानुल करीम से आयतों को सुनना और तरीके से बजाना दो अलग गतिविधियाँ है। यह ज़ाहिर है कि (रेडियो वगैराह) पे कुरानुल करीम की आयतों को बजाना मुनासिब नहीं है या इसको संगीत के तौर पर देना। हकीकत में, कुरानुल करीम को पढ़ना या तिलावत करना एक कुरबत का काम है, [बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** की पहली पूलिका का पहले बाब का 13वां पैरा देखें।] यह एक गुनेहगारी का काम है के गलत जगहों पर इबादत करना। हालांकि यह गलती का काम (कुछ लोगों के ज़रिए) होता है, इसे ना सुनना बजाए इसे सुनने के एक दूसरी गलती का काम होगा। मिसाल के तौर पर किरात अदा करना गुनाह का काम है, (यानि कुरानुल करीम) को सार्वजनिक स्नान की जगह पढ़ना या तिलावत करना। मगर इसे (दूसरों के ज़रिए) अदा करवाने से यह कोई सवाब (आख़िरत में ईनाम) नहीं कमायेगा इसे ना सुनना, या तो कुछ टोकन के ज़रिए, यह पहले से ही अनिश्चित अनुमान है के कुरानुल करीम की अदाएगी में किरात की गूंज को सुनना पाबंदी नहीं है या यह ज़्यादातर हूबहू उत्पादत ही है किसी रिकोर्ड प्लेयर का बजता हुआ होना या रेडियो पे प्रसारण होता हुआ, इसे ना सुनने के जाली कर्तव्य के तनाव में नहीं आना चाहिए। यह किसी किरात से मिलता जुलता है, हालांकि यह अपने आप में किरात नहीं है। यह कलाम-ए-नफसी के सूचक की तरह है। (यानि अल्लाहु तआला का अलफ़ाज़) इसीलिए, हालांकि यह वाजिब या मुस्तहिब नहीं है जैसे की किरात की ख़ुदी को सुनना। यह सिर्फ जाइज़ ही नही, बल्कि सराहनिय भी है: असलियत में, इसका असम्मान करना किसी तरह भी मुनासिब नहीं है। उस तरह की कोई हालत किसी के लिए बराबर है जिसमें कोई मुसलमान कुरानुल करीम का कोई सफा किसी जगह पड़े हुए देखता है, (यानि पाक चीज़) और उस मसले में उसकी आला इज़्ज़त के लिए यह इसका फर्ज़ होगा के उसको

उठाए और उसकी पाकिज़गी के लिए किसी मुनासिब जगह रखे बजाए नज़र अंदाज़ करके आगे बढ़ने से।"]

यह फिकह की बहुत सी किताबों में लिखा है, मिसाल के तौर पर **कादीखान**: "अज़ान को पढ़ना सुन्नत का काम है। क्योंकि यह इस्लामी मज़हब की एक ख़ुसूसियत अलामत है, अगर किसी ख़ास शहर या क्वाटर के निवासी अज़ान नहीं पढ़ते, तो हुकूमात को फिर से शुरू करने के लिए मजबूर करना चाहिए। कोई मोहज़्ज़ीन, (यानि वह मुसलमान जिसका काम अज़ान पढ़ना है) उसे क़िब्ले का रूख़ और रोज़ाना की पाँचों नमाज़ों का वक़्त पता होना चाहिए। इसे पढ़ना सुन्नत है (यानि अज़ान को) खड़ी स्थिती के साथ क़िब्ले के रूख़ की तरफ शुरूआत से आख़िर तक पढ़ना। अज़ान पढ़ाने का मकसद लोगों को रोज़ाना की पाँचों वक़्त की नमाज़ और इफ्तार के वक़्त का (यानि, वह वक़्त जब मुसलमान रोज़ा खोलते है।) के वक़्त के बारे में इकतला करना है। कोई शख़्स जो नमाज़ के वक़्त नहीं जानता या किसी फासिख़ का अज़ान पढ़ना फितने की वजाहें होती है। यह एक नासमझ बच्चे या किसी शराब पिये हुए या किसी दिमाग़ी हालत के खराब शख़्स से या कोई जुनूब शख़्स या औरत का अज़ान पढ़ना मकरूह है। इस तरह के मसले में मोअज़्ज़न के ज़रिए अज़ान दुबारा पढ़ी जाएगी। [मवलीद को अदा करने से बहुत सारा सवाब मिलता है और या किसी जगह पर मवलीद को सुनने के मकसद से जाने से। औरत के लिए किसी भी तरह अपनी आवाज़ मवलीद पढ़ने के दौरान या अज़ान या गाने के ज़रिए या ज़रूरत से ज़्यादा तेज़ बोलने पर अपनी आवाज़ किसी नामहरम मर्द को सुनाना हराम है। और नामहरम मर्द के लिए उसे सुनना। कोई औरत (जो इस तरह की इबादत करने वाली है) उसे सिर्फ औरतों के बीच करनी चाहिए, और इसे बिल्कुल भी अपनी आवाज़ टेप या रिकोर्ड नहीं करनी चाहिए और उसे ना ही अपनी आवाज़ को रेडियो या टेलीविज़न पे प्रसारित करना चाहिए।] हालांकि यह मर्द के लिए भी मकरूह है वहाँ बैठना या बिना किसी

वुज़ू के या किसी शख़्स को जानवर पे सवारी (जैसे की घोड़ा) किसी शहरी क्षेत्र में अज़ान पढ़ना, या उनमें से किसी के ज़रिए पढ़ी गई अज़ान को दुबारा नहीं पढ़ना होगा। अज़ान जोकि किसी मिनार पे पढ़ी जाती है या (कहीं सीधे) मस्जिद के बाहर। यह मस्जिद में नहीं पढ़ी जानी चाहिए। इसे तेलहीन में पढ़ना मकरूह है, यानि मधुर स्वर में पढ़ना और अक्षरों को लम्बा खींचना ऐसे की अलफ़ाज़ बिगड़ जाए। अज़ान अरबी के अलावा किसी और ज़बान में नहीं पढ़ी जानी चाहिए।" यह **फतवा-ए-हिन्दीया** नामित किताब में फरमाया गया है: मोअज़्ज़न के लिए बहुत ज़्यादा चिल्लाना हत्ता इतना के अपने आप को थका देना मकरूह है (जैसे की यह अज़ान पढ़ता है) **इब्नी आबिदीन** 'रहीमा-हुल्लाहु तआला फरमाते है: "मोअज़्ज़न के लिए यह सुन्नत है कि अज़ान पढ़ाने के लिए किसी ऊँची जगह पढ़े ताकि दूर की जगहों के लोगों तक आवाज़ पहुँच जाए। एक मोअज़्ज़न से ज़्यादा मोअज़्ज़नों का एक साथ अज़ान पढ़ना जायज़ है," जैसे की यह उलेमाओं की राहों से समझा जाता है, के अज़ान का या इकामत का या (जमात में) नमाज़ पढ़ाना लाउड स्पीकर के इस्तेमाल से बिद्दत है, और बिद्दत करना बहुत बड़ा गुनाह है। एक हदीस शरीफ बताती है: "**अगर कोई शख़्स बिद्दत करता है, इसका कोई भी इबादत का काम क़ुबूल होने लायक नहीं होगा,**" हालांकि लाउड स्पीकर के ज़रिए से सुनी आवाज़ इन्सान की आवाज़ से बहुत मिलती जुलती होती है, यह अपने आप में इन्सान की आवाज़ नहीं है। यह एक ध्वनि है जो टुकड़ों-टुकड़ों में चुम्बकत्व के ज़रिए आगे बड़ती है। यह वह आवाज़ नहीं है जोकि शख़्स चबुतरे पे खड़े होकर देता है। गुनाह दो गुना बड़ जाते है जब वह अपने सीधी, उल्टी तरफ या मिनार या छत पे पीछे की तरफ रख देते है, तो वह आवाज़ क़िब्ले के रूख़ में नहीं आती। दूसरे हाथ यह ज़रूरी नहीं है, के आवाज़ दूर वाली जगहों तक जाए या हम लाउड स्पीकर पे एकटक धात्विक चिल्लाए इसलिए यह वाजिब है कि हर क्वार्टर में एक मस्जिद बने, इसलिए अज़ान सभी क्वार्टर में पढ़ी जाएगी और

क्वार्टर की अज़ान तमाम निवासियों के ज़रिए सुनी जाएगी। इसके अलावा, **अज़ान-ए-जावक** कुछ जायज़ है। एक मोअज़्ज़न से ज़्यादा लोगों का एक साथ अज़ान पढ़ना **अज़ान-ए-जावक** कहलाता है। इन्सान की एक मर्मिक आवाज़ अफर से सुनी जाएगी ताज़े लोगों का ईमान, दिल और रूह खिसकेगा। [मोअज़्ज़न अज़ान अदा करता है और इमाम किरात अपनी कुदरती आवाज़ों में इतनी ऊँची के मस्जिद के आस-पास के लोगों के ज़रिए सुनी जाए और इसी तरह से मस्जिद के अन्दर जमात में, इनके लिए यह मकरूह है कि अपनी आवाज़ को इतना खींचना के अफर से सुनी जाए। किसी लाउड स्पीकर का इस्तेमाल निरर्थक व्यपार भी दिखाता है।] मुख़्तसर तौर पर, वह आवाज़ जो हार्न जिसे लाउड स्पीकर कहते है से आती है वह अज़ान नहीं है। **अज़ान-ए-मुहम्मदी** वह है जो मोअज़्ज़न के मुँह से आती है। एक हदीस शरीफ हक़दार किताब **हिलया-त-उल-औलिया** में फरमाई गई और इस्लाम के महान आलिम के ज़रिए लिखी गई जिनका नाम अबू नुयम इसफाहनी (अहमद बिन अब्दुल्लाह) 'रहमतुल्लाहि अलैहि' (336 [948 A.D.] - 430 [1039]) निम्नानुसार पढ़ते है: **"अज़ान की आवाज़ जो की किसी संगीती यंत्र से आती है वह शैतान की आवाज़ है। वह लोग जो अज़ान को अदा करने के लिए लाउड स्पीकर का इस्तेमाल करते है शैतान मोअज़्ज़न है।"**

निम्नानुसार हदीस-शरीफ में फरमाया गया है: "जैसे ही कयामत का दिन कुरानुल करीम के नज़दीक आएगा तो वह मिज़मारों के ज़रिए पढ़ा जाएगा और या तिलावत की जाएगी। इसकी पढ़ाई (या तिलावत) अल्लाह के रहम के लिए नहीं होगी बल्कि ख़ुशी के लिए। "बहुत सारे लोग है जो कुरानुल करीम की तिलावत करते है, मगर कुरानुल करीम उनकी निंदा करता है।" "एक वक़्त आएगा जब मोअज़्ज़न मुसलमानों के माध्य होगें।" "एक वक़्त आएगा जब कुरानुल करीम मिज़मारों के ज़रिए पढ़ा जाएगा। (जो ऐसा करते है) अल्लाहु तआला उन लोगों की निंदा करेंगे।" मिज़मार मतलब संगीती यंत्रों

और पाइपों की तमाम तराहियतें। लाउड स्पीकर मिज़मार है, मोअज़्ज़नों को भी इन हदीस शरीफों से डरना चाहिए और (इबादत के कामों) को लाउड स्पीकर के ज़रिए अदा करने से नज़र अंदाज़ करना चाहिए। कुछ मज़हबी आशक्षित लोग दावा करते है की लाउड स्पीकर इस्तेमाल लायक़ है क्योंकि यह आवाज़ों को दूर जगहों तक पहुँचाता है। हमारे नबी ने फरमाया: "इबादत के कर्म इस तरह अदा करो जैसे की तुम मुझे और मेरे सहाबाओं को अदा करते हुए देखते हो! वह लोग जो इबादत के कर्मो को बदलते है उन्हें अहल-ए-बिद्दत कहा जाता है (बिद्दती लोग, जिन्होने बिद्दत अपनाई)। बिद्दत को अपनाने वाले लोग पक्का ही दोज़ख में जाएगें। उनका कोई भी इबादत का काम क़ुबूल नहीं होगा।" यह कहना सही नहीं है के, "हम इबादत के कर्मो में इस्तेमाल लायक़ चीज़ें जोड़ रहे है।" इस तरह के बयानात मज़हबी दुश्मनों के ज़रिए झूठ है। बस इस्लामी उलेमा, जानते है कि कहाँ कोई बदलाव इस्तेमाल लायक़ होगा। इन महान उलेमाओं को मुजताहिद कहा जाता है। मुजताहिद अपने आप से कोई बदलाव नहीं करते। वह जानते है कुछ अतिरिक्त या बदलाव बिद्दत होगा, यह आम राय है कि 'मिज़मार' के ज़रिए अज़ान पढ़ना बिद्दत है यह किसी शख़्स का दिल है जो उसे अल्लाह तआला का रहम और प्यार हासिल कराता है। जन्म से ही दिल एक साफ आईने की तरह है। इबादत के कर्म इसकी पवित्रता बड़ाते है और चमकाते है। गुनाह और बिद्दतें दिल को सिया कर देती है ताकि यह फयाज़े और नूर जोकि इसपे प्यार की राह के ज़रिए आते है को ज़्यादा दूर तक हासिल ना कर सके। सालिह मुसलमान मरने की इस हालत को एहसास करते है और चिंता में पड़ जाते है। वह गुनाह करना नहीं चाहते, वह इबादत के ज़्यादा कर्म अदा करना चाहते है। रोज़ाना की पाँच वक़्त की नमाज़ों को अदा करने के अलावा, वह ख़्वाहिश करते है कि वह ज़्यादा अदा कर पाते। इन्सानी नफ्स गुनाह करना पसंद करता है; यह ऐसा कुछ महसूस कराती है कि ये इस्तेमाल लायक़ है। तमाम बिद्दतें और गुनाह इन्सानी नफ्स का पोषण

और पक्का कर देते है। जोकि अल्लाह तआला के दुश्मन है। इसका एक उदाहरण लाउड स्पीकर वाली अज़ान है। रऊफ अहमद, ‘अब्दुल्लाह देहलवी के एक वारिस, निम्नानुसार दुर्र-उल-माआरिफ की प्रस्तावना में फरमाते है: “कुरानुल करीम की तिलावत लाउड स्पीकर के ज़रिए करना हराम है या इबादत के ज़रिए अदा करना जिसे मिज़मार कहते है। इसकी एक मिसाल लाउड स्पीकर के ज़रिए अज़ान देना है।

[यह निम्नानुसार शाफी किताबों में फरमाया गया है हक़दार **अल-मुकाद्दीमा-त-उल-हदरमीया** (अब्दुल्लाह बिन अबद-उर-रहमान) और **अल-अनवार-ली अमाल-इल-अबरार** (यूसुफ़ अरदेबीली d. 799 अ।ञ। के ज़रिए): “शाफी मज़हब में सही रहने के लिए, उस इमाम के लिए एक काम जो (जमात में नमाज़ पढ़ा रहा है।) (एक ख़ास मस्जिद में नमाज़ पढ़ाई जाए) किसी मुसलमान के ज़रिए जो उस मस्जिद से बाहर है, तीन हालात होगे जोकि पूरे किए जाए: 1) उसको (इस हालत में होना होगा के) इमाम को देख पाए; 2) उसको इमाम को सुनना होगा; 3) वहाँ तीन सौ ज़रा (300 X 0.42 = 126 मीटर) से ज़्यादा दूरी ना हो इसके और (जमात के) सबसे पिछली लाइन के बीच। ना ही हनफी मज़हब और ना ही शाफी मज़हब में वह नमाज़ सही है जो दूर इमाम को देखते और या सुनते हुए अदा कि जा रही है, और जोकि टी.वी पे देखा जा रहा है। यह बिद्दत का काम है के इबादत के कर्मो में ऐसे तरीकों को जोड़ना जो की सलाफ-ए-सालिहीन के वक़्त के दौरान ताल्लुक़ नहीं रखते थे। जैसे की यह निसा सूरा की 104वीं आयत-ए-करीमा से समझा जाता है लोग जो बिद्दत की कोशिश करते है जैसे कि अज़ान, नमाज़ में रेडियो, टी.वी और लाउड स्पीकरों के साथ, वह दोज़ख़ में जाएगें। वह अज़ान जो लाउड स्पीकरों या रेडियो में सुनी जाती है वह अपने आप में अज़ान नहीं है, लेकिन यह इससे बहुत मिलती जुलती है। कुछ उपलक्ष्यों के ज़रिए, किसी शख़्स की

शीशे या फोटो पे नज़र इसकी ख़ुदी को नहीं दर्शाती, लेकिन दुरूस्ती दिखने के बावजूद यह बहुत मिलती जुलती है।]

नमाज़ के वाजिबात: हनफी मज़हब में नमाज़ के वाजिबात निम्नानुसार है: "सुब्हानाका..." पढ़ने के बाद फिर कुछ ना पढ़ना (जब तुम जमात में नमाज़ पढ़ रहे हो) इमाम के पीछे, इमाम के लिए (जब वह जमात में नमाज़ पढ़ा रहा है।) और किसी शख़्स के लिए जो अपनी नमाज़ पढ़ रहा हो, सूरा का कहना जिसे फातिहा शरीफ कहते है नमाज़ की दोनों रकातों में से (किसी) एक पे जोकि फर्ज़ है और किसी दूसरी तरह की नमाज़ में हर रकात पे। एक अतिरिक्त सूरा कहना जिसे ज़म्मे-सूरा कहते है किसी नमाज़ की पहली दो रकातों में हर एक पे जोकि फर्ज़ और तीन या चार रकातों से ताल्लुक रखते है और किसी भी तरह की नमाज़ की हर एक रकात पे। फातिहा शरीफा को पहली दो रकातों में बाँटना तीन या चार रकातों की नमाज़ में। एक फर्ज़ से दूसरे फर्ज़ पे जाना। ज़म्मे-सूरा को पढ़ने से पहले फातिहा पढ़ना। कज़ा-ए-उला के लिए बैठना (बैठने का पहला आसन)। एक के बाद एक (दो) सज्दे करने। (क़रार इबादत का कहना) (बैठने के आख़िरी आसन में) कज़ा-ए-आख़िरा के दौरान तेहीय्यात। सलाम फैर के नमाज़ को मुकम्मल करना, (यानि "अस्सलाम अलैयकुम वा रहमतुल्लाह का कहना") सलात-ए-वितर के दौरान कुनुत दुआ का पढ़ना। ईद की नमाज़ की अदाएगी के दौरान। अरिरिक्त तकवीरें पढ़ाना। वह दुआएँ पढ़ना (जो नमाज़ के दौरान पढ़नी चाहिए) इकाहफा के साथ, (यानि ज़बान दबाकर कहना) जिस पर उन्हे इकाहफा के साथ कहनी होगी और जेहर का साथ, (यानि स्पष्ठ रूप से) जिसपे उन्हे जेहर के साथ कहना होगा। नमाज़ के वक़्त तुम्हे तादील-ए-अरकान महसूस करना होगा, [जिसका मतलब जैसे के शुरूआती पाठ में समझाया गया है, तुम्हे एक घड़ी तक बिना हिले डुले रहना होगा इतना की तुम "सुब्हानाल्लाह" कह सको। रूकू और कवमा के दौरान, जिसका मतलब रूकू की हालत के बाद की

खड़ी हालत- और दो सज्दों और जलसा के दौरान -जिसका मतलब दो सज्दों के दरमियान बैठी हुई हालत) नमाज़ के दौरान यह स्तब्ध रूख़ तुमानीनत कहलाते है।] तिलावत का सज्दा करना अगर तुम नमाज़ के दौरान तिलावत की एक आयत कहते हो या (जमात में नमाज़) के दौरान तुम इमाम को कोई कहते हुए सुनते हो।(जब लाज़िम हो) सज्दा-ए-साह करना।(सज्दा-ए-तिलावत और सज्दा-ए-साह **सआदते अबदिया** की चौथी पूलिका के 16वें बाब में समझाए गए है) नमाज़ों में जो फर्ज़ और चार रकातों वाली होती हे, तेहीय्यत दुआ पढ़ने के बाद एक दम खड़े हो जाना, कज़ा-ए-उला पे, सुस्ती के बग़ैर।तमाम मामलों में अपने आप को इमाम से मेल बिठाना।एक क़ौल के मुताबिक, फर्ज़ नमाज़ें जमात के साथ पढ़ना सिवाए उज़र की हालत में, (यानि इस्लाम के ज़रिए बताई गई सही वजह) जो तुम्हे ऐसा करने में बाधा डालती है।सारी तैइस नमाज़ों के बाद जो तुम सुबह की नमाज़ अराफा के दिन से पढ़ते हो (जोकि कुरबानी की ईद से एक दिन पहले से लेकर) कुरबान की ईद के चौथे दिन की दोपहरी नमाज़ के बाद तक है (वह आख़िरी नमाज़ **तकबीरे-ए-तेशरीख़** में कहने के लिए शामिल है।जोकि **सआदते अबदिया** की चौथी पूलिका के 22वें बाब में समझाई गई है।)

नमाज़ की सुन्नतें: हनफी मज़हब में नमाज़ की सुन्नतें इस तरह है।

तक्बीरे इफतिताह में (यानि वो तक्बीर जो नमाज़ शुरू करते वक़्त पढ़ते है) और तक्बीरे कुनूत (यानि 'अल्लाहु अकबर' कहना नमाज़ की आख़िरी खड़े होने से पहले) में भी वित्र की नमाज़ में, मर्द का अपने हाथ कानों की लौ तक उठाना और औरत का कंधों की उँचाई तक दोनों के लिए हथेली क़िब्ले की तरफ खोलना कियाम (खड़े होने की हालत) के दौरान उल्टे हाथ की कलाई को अंगूठे और छोटी उंगली से पकड़ना सीधे हाथ की।औरतें अपना सीधा हाथ उल्टे के उपर रखती है।मर्द हाथ नाभी के नीचे बांधता है और

औरतें छाती पर। हर नमाज़ की पहली रकअत में दुआ **'सुब्हानका...,'** पढ़ना - इमाम के लिए भी जमाअत के शख़्स के लिए भी और अकेले नमाज़ पढ़ने वाले के लिए भी। इमाम और अकेले नमाज़ पढ़ने वाले शख़्स के लिए सुब्हानका के बाद आउज़ु और बिस्मिल्लाह पढ़ना पहली रकअत में। इसी तरह इमाम और अकेले पढ़ने वाले के लिए हर रकअत में सूरह फातिहा पढ़ने से पहले बिस्मिल्लाह पढ़ना। इमाम और उसके पीछे पढ़ रहे जमाअतियों के लिए सूरह फातिहा ख़त्म होने पर हल्के से आमीन कहना, जब इमाम **"...वलद दवाल्लीन,"** जोकि कुरान करीम की पहली सूरह का आख़िरी अलफ़ाज़ है और फातिहा है, और हर एक शख़्स पर [जो शख़्स अकेले नमाज़ पढ़ रहा हो], जब वो फातिहा पूरी पढ़ ले। तक्बीर कहना (यानि अल्लाहु अकबर) जब रूकू के लिए झुको कियाम से। अपने हाथ घुटनों पर उंगलियाँ खोल कर रखना। **"सुब्हाना रब्बियल अज़ीम"** रूकू में तीन बार कहना। रूकू में तुम्हारी कमर और सिर एक लाईन में रहना चाहिए। [कुछ कानून सिर्फ मर्दो के लिए है। हम चाहते है औरतें, औरतों की नमाज़ के मुताल्लिक़ **सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन के 14वें बाब का आख़िरी पैराग्राफ पढ़े।] इमाम (जो जमाअत में नमाज़ पढ़ा रहा हो) और अकेले नमाज़ पढ़ रहे शख़्स के लिए रूकू से उठते वक़्त **"समी अल्लाहु लिमन हमीदह"** पढ़ना। मुसलमान जो जमाअत में नमाज़ पढ़ रहा हो या अपनी ख़ुद की वो रूकू से खड़े होने के बाद **"रब्बना लकल हम्द"** पढ़ना। कियाम से सज्दे में जाते वक़्त **"अल्लाहु अकबर"** कहना। सज्दे में 'सुब्हाना रब्बियल आला' कहना। पहले सज्दे से उठते हुए **"अल्लाहु अकबर"** कहना। दूसरे सज्दे में जाते वक़्त **"अल्लाहु अकबर"** कहना। सज्दे में उंगलियों का एक साथ रखना। सज्दे में मर्द के लिए घुटनों का ज़मीन पर रखना और जांघे एक दूसरे से दूर रखना और औरत के लिए दोनों जांघों को पेट के करीब लाना। दूसरे सज्दे से उठते वक़्त **"अल्लाहु अकबर"** कहना। आदमी को अपने उल्टे पैर पर बैठना चाहिए सीधा पैर खड़ा करके। कज़ा-ए-आख़िरा में सलावात

शरीफ पढ़ना। सलाम के लिए अपना सिर दांये बांये घुमाना। अतहिय्यात हालत में दोनों हाथ पैरों पर रखना और उंगलियों की नोकों को घुटनों की लाईन में रखना और उंगलियों को वैसे ही छोड़ देना। सज्दे में अपने हाथ और पैर के पंजों को क़िब्ले के रूख़ पर रखना और उसी वक़्त तुम्हारे हाथों का तुम्हारे कानों की सफ में होना। एक वक़्त में सज्दे में तुम्हारे सात जिस्म के हिस्सों का ज़मीन से लगना। फर्ज़ नमाज़ों में की जिसमें चार रकअतें हो उनमें से आख़िरी दो में सिर्फ सूरह फातिहा पढ़ना। जैसा सुन्नत-ए-शरीफा में बयान है उस तरीक़े से अज़ाने मुहम्मदी पढ़ना। आदमी के लिए फर्ज़ नमाज़ से पहले इकामत पढ़ना, चाहे वो जमाअत में हो या अकेले।

नमाज़ के मुस्तहब: हनफी मज़हब के मुस्तहब इस तरह है:

जमाअत में जब मुअज़्ज़िन कहे 'हय्या अलस सलाह' तो बैठे न रहना जब वो इकामत पढ़े तो (जो मुसलमानों को नमाज़ पढ़ने की दावत की आवाज़ है।) मर्द के लिए जब वो तक्बीरे इफतिताह और तक्बीर कुनूत, वित्र के लिए पढ़के हाथ उठाए तो हाथ के अंगूठे से कानों की लौ का छूना। कियाम के दौरान कलाई को मजबूती से पकड़ना। कियाम के वक़्त सज्दे की जगह पर देखना। रूकू और सज्दे में तस्बीह (यानि **रब्बियल अज़ीम** और **रब्बिय्यल आला**) पाँच या सात बार कहना। जब रूकू करो अपने पैरों को देखना। जब रूकू के लिए जाओ तो पैरों को करीब लाना। जब रूकू से उठ कर वापस कियाम में जाओ तो पैर एक दूसरे से दूर करना। अपना माथा ज़मीन पर रखने से पहले अपनी नाक रखना। सज्दे में अपनी नाक के दोनों तरफ देखना। सलाम फेरते वक़्त अपने कन्धों को देखना। जमाअत में इमाम के पीछे उल्टे हाथ की तरफ के शख़्स को यह नीयत रखना कि वो इमाम को सलाम कह रहा है और हफाज़ा के फरिश्तों को भी। और मुसलमान जो जमाअत में है। [हकीकत किताबेवी, फातिहा इस्तानबुल की किताब **ईमान और इस्लाम** के बाब 'ईमान

की बुनियादों में' **21**वां पैराग्राफ देखें जो **हफाज़ा** जिन्हे **किरामन कातिबीन** भी कहते है उनके मुताल्लिक़ है।] सीधे हाथ पर नमाज़ पढ़ने वाले का यह नीयत करना कि वो हफाज़ा के फरिश्तों और जमाअत को सलाम कह रहे है। वो शख़्स जिसके दांये बांये कोई नहीं है वो नीयत करे कि वो हफाज़ा के फरिश्तों को सलाम कह रहा है। नमाज़ के दौरान आये हुए पसीने को न साफ करना। खांसी से बचना। ऊंघ से बचना। अतहिय्यात में बैठने की सूरत में अपनी जांघों को देखना। इमाम के लिए नमाज़ के बाद अपनी जमाअत की तरफ चेहरा घुमाना।

नमाज़ के अदब

1- अकेले पढ़ने वाले और इमाम के पीछे साथ पढ़ने वालों को सलाम के बाद यह दुआ पढ़े: "**अल्लाहुम्मा अन्तस सलामु व मिन्कस्सलाम तबारकता या ज़ुल ज़लाली वल इकराम।**" उसके बाद तीन बार यह कहे: ' "**अस्तग़फिरूल्लाहि-ल-अजीम- अल-लजी ला इलाहा इल्ला हुवल कय्यूमा व अतूबू इलैहि।**" यह दुआ **इस्तिग़फार** है। इसे बिना वुज़ू के भी पढ़ना जायज़ है।

2- उसके बाद (आयत-ए-करीमा) **आयतल कुर्सी** पढ़े।

3- 33 मरतवा "**सुब्हानल्लाह**" पढ़े।

4- 33 मरतवा "**अलहम्दुलिल्लाह**" पढ़े।

5- 33 मरतवा "**अल्लाहु अकबर**" पढ़े।

6- एक दफा यह दुआ पढ़ना: "ला इलाहा इल्लल्लाहु वहदहू ला शरीका लहू लहुल मुल्कु व लहुल हम्दु व हुआ अला कुल्ली शयीन कदीर।"

7- अपने हाथ सामने की तरफ फैलाकर हाथों को खोलकर अर्श की तरफ करना, जो रहमतों का किब्ला है, और तुम्हे रहमत देता है पुरसुकुन सच्चाई से।

8- अगर तुम जमाअत के साथ हो (यानि अगर तुमने नमाज़ जमाअत में पढ़ी हो) तो दुआ करने का इंतेज़ार करो (जोकि साथ की जायेगी)।

9- "आमीन" कहना दुआ के आख़िर में।

10- अपने हाथ नज़ाकत से अपने चेहरे पर मलना।

11- उसके बाद सूरह **इख्लास** 11 बार पढ़ना, हर बार बिस्मिलाह से शुरूआत करके, जोकि एक हदीस शरीफ का हुक्म है जो **बरीका** किताब के पहले वॉलयूम के आख़िरी पन्ने पर दर्ज है। फिर दो आयतें करीमा जो "**कुल आउज़ु...**" से शुरू होती है उन्हे एक दफा पढ़ना और उसके बाद 67 दफा अस्तग़फिरूल्लाह कहना और इसे 70 तक पूरा करना दुआए इस्तिग़फार तीन बार पूरी पढ़ के, और उसके बाद "**सुब्हानल्लाहि व बिहम्दिही सुब्हानल्लाहिल अज़ीम**" दस दफा पढ़ना। उसके बाद "**सुब्हाना रब्बिका...**" आयत करीमा को पूरा पढ़ना। यह अदब किताब **मेराकिल फेलाह** में बयान है। यह इस तरह हदीस शरीफ में बयान है: "**पाँच वक़्त की नमाज़ के बाद मांगी हुई दुआए कुबूल होगी** (अल्लाह तआला से)।" पर दुआएँ दिल से मांगी जानी चाहिए यानि जिसका तुम्हे पता हो और तुम्हारी खुसफुसाहट में हो। सिर्फ पंच वक़्ता नमाज़ के बाद ही दुआएँ मांगना या किसी खास वक़्त पर या दुआ की जगह कोई गज़ल पढ़ना मकरूह है। दुआ मांगने के बाद हल्के से हाथों को चेहरे पर मलना सुन्नत है। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' अपनी दुआएँ तवाफ से

पहले, खाने से पहले और सोने से पहले भी मांगते थे। इस तरह की दुआओं में वो अपने हाथ बाहर न निकालते थे न ही वो हाथों को मुबारक चेहरे पर मलते थे। इबादत, दुआएँ और दूसरी तरह का ज़िक्र हल्की आवाज़ में होना चाहिए। (**सआदते अबदिया** के पहले एडिशन का **46**वां व **48**वां बाब, दूसरे एडिशन का **20**वां, **23**वां, **37**वां और **46**वां बाब, तीसरे एडिशन का **57**वां बाब और छठे एडिशन का **25**वां बाब, ज़िक्र के लिए पढ़े)। दुआएँ मांगते वक़्त या दूसरी दुआएँ जैसे इस्तिग़फार मांगते वक़्त वुज़ू में होना मुस्तहब है। नाचना, चक्कर करना, तालिया बजाना, ड्रम, बासुरी, म्यूज़िक वाद्य हराम है; ऐसी चीज़ें झूठे तसव्वुफ के लोगों में फैली हुई है; कि यह हराम है इस्लामी आलिमों की एक राय से। जैसा कि देखा गया है, जमाअत में नमाज़ पढ़ने वाले मुसलमान और इमामों का दुआए फुसफुसाहट में मांगना तारीफे क़ाबिल है। अपनी अलग दुआएँ मांगना या बिना दुआ मांगे खड़ा होकर चले जाना भी जायज़ है। **फतवा-ए-हिंदिया** किताब (शेख़ निज़ाम मोईनुद्दीन नक्शबन्दी की सिदारत में एक आलिमों में ग्रुप से बना हुआ) में बयान है: “एक नमाज़ जिसमें आख़िरी सुन्नतें हो (मसलन ज़ुहर, मग़रिब और इशा), इमाम के लिए मकरूह है (जिसमें फर्ज़ नमाज़ जमाअत में पढ़ाई हो) कि वो सलाम के बाद बैठा रहे। उसे उसी वक़्त खड़ा होकर सुन्नत अदा करनी चाहिए थोड़ा दांये, बांये या पीछे होकर। या वो घर जा सकता है और आख़िरी सुन्नतें घर पर पढ़ सकता है। मुसलमान जो जमाअत के साथ जुड़ा हो या जो जमाअत के साथ पढ़ रहा हो वो बैठा रहकर दुआए पढ़ सकता है। यह उनके लिए भी जायज़ है कि वो खड़े होकर पहले सुन्नत अदा करले थोड़ा दांये बांये या पीछे होकर। नमाज़ जिनमें आख़िरी सुन्नतें नहीं होती उसमें सलाम के बाद इमाम का क़िब्ले का रूख़ करके बैठना मकरूह है; और तो और यह एक बिद्दत का काम है। उसे खड़ा होना पड़ेगा और जाना होगा या जमाअत की तरफ रूख़ करके या दांये या बांये रूख़ करके बैठना होगा दुबारा।”

नमाज़ के बाद की दुआए

"अलहम्दुलिल्लाहि रब्बिल आलामीन। अस्सलातु वस्सलामु अला रसूलिना मुहम्मदिन व अला आलिहि व साहबिही अजमाईन। ऐ रब (ऐ मेरे अल्लाह)! जो नमाज़ मैने पढ़ी है उसे क़ुबूल फरमा! मेरे अकीबत (खात्मे) और आख़िरत में ख़ैर फरमा। मेरी आख़िरी सांस में कलिमाए तौहीद पढ़ने का नसीब अता फरमा। मेरे दादा परदादा जो वफात पा चुके उनकी मग्फिरत फरमा। अल्लाहुम-मग़फिर वरहम व अन्ता ख़ैर-उर-राहिमीन। तेवफ्फिनी मुस्लिमान व-अल-हिकनी बिस सालिहीन। अल्लाहुम्मग्फिरली व ली वालिदय्या व ली उस्ताज़िय्या वलिल मुमिनीना वल मूमिनात यौमा याक़ूमुल हिसाब। ऐ मेरे रब मुझे शैतान की बुराईयों से, दुश्मनों की बुराईयों से और मेरी नफ्स-ए-अम्मारा की बुराईयों से बचा! हमारे घरों को बरक़ती और हलाल रिज़्क से नवाज़ दे। अहले इस्लाम (यानि मुस्लिमों) को सलामती अता फरमा। अदाई मुस्लिमीन (मुसलमानों के दुश्मनों) को चुन चुन कर खात्मा फरमा! जो मुसलमान काफिरों के खिलाफ जिहाद कर रहे है उनकी मदद फरमा और उनपर इमदाद-ए-इलाही की बरक़त फरमा! अल्लाहुम्मा इन्नका अफूव्वुन करीमुन तुहिब्बुल अफवा फाफू अन्नी। या रब बीमारों को शिफा अता फरमा, अच्छी सेहत अता फरमा! अल्लाहुम्मा इन्नी असअलुका सिहहता वल आफियता वल अमानत व हुस्नल खुलकी वर रिदा बिल क़दरी बिरहमतिका या अरहमर राहिमीन। मेरे मुबारक वालदैन, मेरे बच्चों, मेरे दादाओं मेरे दोस्तों और मेरे सभी मुसलमान भाईयों की ज़िन्दगियाँ ख़ैर और हुस्ने खुल्क से रौशन कर दे और अच्छी सेहत और रूश्द-उ-हिदायत और इस्तिकामात के साथ, या रब्बी! आमीन। वलहम्दुलिल्लाहि रब्बिल आलेमीन। अल्लाहुम्मा सल्ले अला सय्यिदना मुहम्मदिन व अला आली मुहम्मद कमा बारकता अला इब्राहीम वअला आली इब्राहीमा इन्नका हमीदुन मजीद। अल्लाहुम्मा रब्बना आतिना फिद्दुनिया हसनतन व किना अज़ाब-न्नार

बिरहमतिका-या-अरहमर-राहिमीन। वल-हम्दुलिल्लाहि-रब्बिल-आलामीन। अस्तग़फिरूल्लाह, अस्तग़फिरूल्लाह, अस्तग़फिरूल्लाह, अस्तग़फिरूल्लाहिल अज़ीम अल-करीम अल्लज़ी ला इलाहा इल्ला हुवल हय्यल-कय्युमा वा अतूबू इलैहि।

नमाज़ के मकरूह

1- गर्दन मुड़ते हुए दोनों तरफ देखना।

2- ख़ुद पर की किसी चीज़ से खेलना।

3- (नमाज़ के दौरान) बिना किसी उज़र के अपने हाथ से सज्दे की जगह को साफ करना।

4- मर्द के लिए अपने हाथ छाती पर रखना और सज्दे में भी उन्हे छाती की लाईन में रखना।

5- उंगलिया चटकाना।

6- बिना किसी उज़र के आलती पालती मार के बैठना।

7- सज्दे में अपना कोई भी एक पैर उठाना।

8- नमाज़ में ऐसी चीज़ का पहनना जो तुम अपने आला अधिकारियों के सामने नहीं पहन सकते।

9- किसी के चेहरे के सामने नमाज़ पढ़ना।

10- आग के सामने नमाज़ पढ़ना।

11- तुम्हारे कपड़े या जिस्म पे किसी तस्वीर -फोटो- का होना,

12- बिना उज़र के जम्हाई लेना।

13- आस्तीनों में हाथ दाल कर नमाज़ अदा करना।

14- अपनी पिंडलियों पे बैठना, कुत्तों के तरीक़े से।

15- अपनी आँखें बंद करना।

16- अपने हाथों को क़िब्ले के रूख से दूर मोड़ लेना।

17- जमात में नमाज़ पढ़ने के दौरान उस सफ में नमाज़ अदा करना जहाँ कम से कम (एक शख़्स के) खड़े होने की जगह काफी है। यह तनज़ीही (या तेनज़ीही) केराहत (मकरूह) है के अगर तुम्हारी वाली सफ में एक शख़्स की जगह काफी है और कोई और तुम्हारी तरह पहले वाली सफ को पूरा नहीं कर रहा। दूसरे वाले मसले में, तुम वह छोड़ोगे जोकि वाजिब है: वह गलती सिर्फ दुबारा नमाज़ अदा करके ही ठीक होगी।

18- किसी कब्र के सामने नमाज़ अदा करना या तुम्हारे और कब्र के बीच कोई अवरोध ना होना।

19- नजासत के विरूद्ध नमाज़ अदा करना। (नजासत **सआदते अबदिया** के चौथी पुलिका के छठें बाब में तफसील से बताया गया है।)

20- आदमी और औरत का अलग-अलग नमाज़ें बराबर में पढ़ना।

21- पाख़ाना या पेशाब की हाजत में नमाज़ पढ़ना।

22- रूकू से सीधे खड़े होने के बाद, सज्दा करने के लिए अपने (हाथों को घुटनों से पहले ज़मीन पे रखना) बिना किसी उज़र की मजबूरी के अगर करते हो।

23- एक रूकू में अपने जिस्म के किसी भी हिस्से को दो मरतबा खुजाना (जोकि खड़े होने की अवस्था से शुरू होती है और दूसरी अवस्था के होने तक ख़त्म होती है। अगर तुम अपना हाथ तीन मरतबा से ज़्यादा उठाओगे तो तुम्हारी नमाज़ फासिद हो जाएगी और अगर तीन मरतबा खुजाते हो, उस मसले में तुमको नमाज़ दुबारा अदा करनी होगी।)

24- इमाम से पहले रूकू में झुक जाना, (अगर तुम नमाज़ जमात से पढ़ रहे हो।)

25- इमाम से पहले रूकू से खड़े हो जाना।

26- अपना सज्दा इमाम से पहले करना।

27- इमाम से पहले सज्दे से उठ जाना।

28- अपने आस-पास की किसी चीज़ का सहारा लेकर खड़ा होना, जबतक कोई उज़र मजबूरी ना हो।

29- जैसे ही तुम सज्दे से उठते हो, ज़मीन से (या जानामाज़ से) अपने घुटनों को हाथों से पहले अलग करना।

30- अपनी आँखों और चेहरे पर से धूल पोछना।

31- किसी भी बाद वाली रकात में, उस सूरा के बाद वाली सूरा को (एकदम) छोड़ देना जोकि तुमने पहली वाली रकात के दौरान पढ़ी थी।

32- दोनों रकातों में हूबहू सूरा पढ़ना या किसी एक रकात में एक ही सूरा दो मरतबा पढ़ना। (यह नफ़िल नमाज़ में जायज़ है)

33- किसी बाद वाली रकात में, पहली रकात में पढ़ी गई सूरा को दुबारा पढ़ना।

34- किसी बाद की रकात में, ज़म्म-ए-सूरा में शामिल आयतों से तीन सूरा से ज़्यादा आयत पढ़ना जोकि तुमने पहली रकात में पढ़ी।

35- नीचे झुकना और या खड़े होना अपने आस-पास की किसी चीज़ के सहारे से, जबतक के तुम्हारे को कोई उज़र मजबूरी ना हो, (यानि इस्लाम के ज़रिए बताई गई एक अच्छी वजह) जोकि मजबूरन करनी पढ़ती है।

36- मक्खियों को दूर भगाना।

37- आस्तीनों को मोड़ कर या कंधों, टांगों को खुला छोड़ कर नमाज़ अदा करना।

38- जब तुम बाहर हो अपनी पर्दगी को नज़रअंदाज़ करना।

39- दालान में नमाज़ पढ़ना।

40- रूकू या सज्दे के दौरान अपनी उंगलियों से तसबीह पढ़ना।

41- इमाम का मेहराव के अंदर इतना खड़ा होना के अगर बाहर पर्दा डाला जाए तो डल जाए।

42- इमाम के लिए एक धारा के दर्ज़े से ज़्यादा पे होना जमात से ऊँचा या नीचा होना। अगर वह (उस दर्ज़े पे) अकेला है। (एक धारा तकरीबन आधे मीटर के वराबर होता है।)

43- इमाम का मेहराब से हटकर नमाज़ पढ़ाना।

44- नमाज़ के दौरान आमीन ज़ोर से कहना।

45- क़याम के दौरान जो भी कहा जा रहा हो, उसे पूरा करना, (यानि सूरा फातिहा या ज़म्म-ए-सूरा) रूकू में बैठने के बाद।

46- रूकू के दौरान जो भी कहा जा रहा हो, (यानि "सुब्हाना रब्बिल अज़ीम") के बाद पूरा करना।

47- बिना किसी उज़र ज़रूरी वजह के एक पैर पे खड़ा होना।

48- नमाज़ के दौरान इधर-उधर देखना।

49- किसी ऐसे मक्खी या कीड़े को मारना जोकि काटता ना हो।

50- नमाज़ के दौरान किसी चीज़ को सूँघना।

51- नंगे सर नमाज़ पढ़ना। हाजी सिर्फ एहराम के दौरान ही नंगे सर नमाज़ पढ़ सकते है। (बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** की पाँचवी पुलिका का सातवां बाब देखें, एहराम से मुताल्लिक़ ज़्यादा जानकारी के लिए।)

52- बांहों को खुला छोड़ कर नमाज़ के लिए खड़े हो जाना।

53- पैरों को खुला छोड़कर नमाज़ की शुरूआत कर देना। (एक क़ौल के हिसाब से, किसी औरत के लिए खुले पैर नमाज़ पढ़ना मकरूह है। दूसरे क़ौल के हिसाब से, ऐसा करना इसकी नमाज़ को ख़त्म कर देता है।) यह इब्ने अबीदीन के चार सौ उनतालीसवें (**439**) सफे पे लिखा है के जब तुम मस्जिद में दाख़ला करते हो उस वक़्त अपने आस-पास जूते/चप्पल छोड़ना

मकरूह है। यह **बरीका** के आख़िरी हिस्से में लिखा है के अपने उल्टे हाथ पे कहीं रख देना सुन्नत है, बजाए अपने आगे या सीधे हाथ पे।

यह **तेरग़ीब-अस-सलात** में लिखा है कि फर्ज़ और सुन्नत नमाज़ी हिस्सों के दरमियान 'ऐवराद' के जैसी इबादतों का कहना मकरूह है।

हनफी मज़हब में **नमाज़ का ख़त्म** होना, **55** नमाज़ के ख़ात्मे फरमाए गए है, जो आपकी नमाज़ ख़त्म और ख़ारिज कर देते है, चाहे वह जानबूझ कर हो या गलती से हो:

1- दुनियावी कुछ बोलना।

2- इतनी ज़ोर से हंसना के हंसने वाले या वाली को उसकी हसीं सुनने में आए।

3- कुछ ऐसा करना जो अमल-ए-खातीर कहलाया जाए।

4- (नमाज़) का कोई एक भी फर्ज़ छोड़ना बिना उज़र (मजबूरी) के।

5- जानबूझकर कोई भी फर्ज़ छोड़ना।

6- किसी दुनियावी चीज़ के लिए ज़ोर-ज़ोर से रोना।

7- अपने गले को साफ करना या खांसना बिना किसी उज़र/मजबूरी के।

8- चिंगम चबाना।

9- एक हाथ से अपने किसी अंग को तीन मरतबा खुजाना, या किसी एक रूकू के दौरान अपने हाथों को उठाना और ताली बजाना।

10- नमाज़ के दौरान (किसी से) हाथ मिलाना।

11- इफ्तिताह की तकबीर इतनी ज़ोर से ना कहना है के तुम्हारे कानों तक भी इसकी आवाज़ ना आए।

12- नमाज़ के दौरान सूरतें और दुआऐं इतनी ज़ोर से ना कहना के तुम उनको ना सुन सको।

13- जब तुम्हें कोई बुलाता है, उस वक़्त "**ला हौल वला कुव्वाता ई ल्ला बिल्लाहील अलैहिम अज़ीम**" या "**सुब्हाना अल्लाह**" या **लाईलाहा इल लल्लाह** कहना। तुम्हारी नमाज़ फासिद (ख़त्म या खारिज) नहीं करता, अगर तुम्हारा मकसद उनको यह इकतला करना है कि तुम नमाज़ अदा कर रहे हो, हालांकि यह तुम्हारी नमाज़ तोड़ देगा क्योंकि तुम्हारी नीयत उस शख़्स को जवाब देने की थी।

14- अपनी नीयत से कोई मुवारकवाद क़ुबूलना। (वराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** की तीसरी पुलिका का **62**वां बाब देखें।)

15- अपने मुँह से किसी मीठी चीज़ को चखना और उस का रस गले से नीचे उतार लेना।

16- अगर आप वाहर नमाज़ पढ़ रहे हो और अपना मुँह आसमान की तरफ बारिश, तूफान या इस तरह की किसी चीज़ के लिए खोलते है और कोई चीज़ हलक में चली जाना।

17- (जब तुम सवारी कर रहे हो) जानवर पे तीन मरतबा लगाम तानना।

18- अपना हाथ तीन मरतबा उठाना या मक्खी, मच्छर मारना, या मसलना।

19- एक रूकू के अन्दर तीन बाल तोड़ लेना।

20- ओ शब्द तीन फोनेमीक आवाज़ों में पुकारना, लानत, कश वग़ैरह।

21- जब इस्लाम के हिसाब से घोड़े की पीठ पे नमाज़ की अदाएगी करना, एक पैर से तीन मरतबा प्रोत्साहित करना।

22- एक मरतबा दोनों पैरों से प्रोत्साहित करना।

23- (जमात में नमाज़ पढ़ने के दौरान) इमाम के आगे खड़े होना।

24- बिना किसी उज़र/मजबूरी के दो पंक्तियों से ज़्यादा चलना, (यानि तुम्हारा ऐसा करना मजबूरन हो और इस्लाम भी उसे अच्छी वजह कुबूलता हो।)

25- अपने बालों या दाढ़ी को कंघा करना।

26- आदमियों और औरतों के लिए एक इमाम के पीछे कंधे से कंधा मिलाकर एक सफ़ में नमाज़ अदा करना- जमात वाली नमाज़ में जिसमें इमाम औरतों और आदमियों दोनों की नीयत से नमाज़ पढ़ा रहा है।(यह जायज़ है के अगर वह हूबहू पंक्ति में कंधे से कंधा मिलाकर नहीं पढ़ रहे या अगर इनके बीच कोई पर्दा है।औरतों और जवान लड़कियों को अपने सर और बांहे खुली

रखकर बाहर जाना हराम है। यानि अपने किसी अवरत हिस्से को दिखाते हुए, चाहे उनका मकसद जो भी हो, मस्जिद या और कहीं जा रही हो। इस तरह की इबादत से यह सवाब के बदले गुनाह कमाएगी। [सवाब जोकि आख़िरत का ई नाम होगा।])

27- अपने इमाम के अलावा किसी और इमाम की गलती हल करना (यानि एक इमाम की मदद करना जो दूसरी जमात में नमाज़ पढ़ा रहा है और जो बताई गई आयतों को पढ़ कर खिलवाड़ कर रहा है।)

28- अगर कोई औरत किसी खाली जगह पर इमाम के पीछे खड़ी हो जाती है और इमाम के पीछे नमाज़ अदा करनी शुरू कर देती है और उसके बाद दूसरे आदमी आते है और अलग नई लाइन बना लेते है और वह सब के बीच ढक जाती है जोकि हूबहू नमाज़ पढ़ रही है; तो उनमे से तीन आदमियों की नमाज़ जो उसके दांय बांय और पीछे है उनकी नमाज़ (फौरन) फासिद ख़त्म हो जाएगी।

29- किसी बच्चे को गले से लगा लेना।

30- कुछ चीज़ खाना पीना।

31- कुछ चीज़ जो तुम्हारे दांतों में बची रह गई है कुछ चने के बराबर की उसको निगलना।

32- अपने दोनों हाथों से दोनों कॉलर के किनारे को पकड़ना, या अपने एक हाथ से टोपी उतारना या इसको दुबारा रखना।

33- "**इन्ना-लिल्लाह वा इन्ना इलैहि राजिऊन**" का कहना जब कोई बुरी ख़बर सुनना।

34- किसी अच्छी ख़बर को सुनके "**अलहम्दुलिल्लाह**" कहना।

35- क़ौल के मुताबिक़ छिंकना और उसके बाद "**अलहम्दुलिल्लाह**" कहना।

36- किसी करीबी शख़्स के छिंकने पे, "**या रहमुकल्लाह**" कहना।

37- किसी दूसरे शख़्स के छिंकने पे "**येहदीकुमुल्लाह**" कहना।

38- मर्द का औरत को नमाज़ी हालत में चूमना।

39- नमाज़ के दौरान जब दुआ कर रहे है, उस वक़्त किसी दुनियावी चीज़ के बारे में पूछना, जैसे की सोना, चाँदी।

40- अपने सीने को क़िब्ले के (रूख़ से) मोड़ लेना। क़िब्ले के रूख़ को पहचानने के लिए दो रास्ते है। **1-** क़िब्ले के कोण के ज़रिए। **2-** क़िब्ले के घंटे के ज़रिए। **1-** अगर किसी नक्शे पे शहर और मक्का के बीच सीधी लाइन खींच दी जाए, वह लाइन (उस शहर से क़िब्ले का रूख़ है और इसे) **किब्ले की लाइन** कहा जाता है। यह जुनूब से अलग **किब्ले का कोण** है। **2-** कोई शख़्स जो कलेन्डर पे लिखे **किब्ले के घंटे** के वक़्त (या क़िब्ले के वक़्त) सूरज की तरफ मुड़ जाता है उसे क़िब्ले के रूख़ की तरफ मुड़ना होगा। कुद्दूसी निम्नलिखित वज़ाहत को अपनी (रूब-ए-देयरा) में तशरीह करते है: "जब सुई (तारिख़ के लिए) रब-ए-देयरा की तरफ करे तो यह क़िब्ले की चाप की तरफ चलेगा, कोण की समपूरकता का इशारा (स्ट्रिंग) के ज़रिए किया गया जिसे खाएत कहते है, इस्तानबुल के क़िब्ले के वक़्त की ऊँचाई के चाप फदल-ए-देयर है।" जब किसी घड़ी को आसमान की तरफ मुँह कर के लटका दिया जाए और इसकी घंटे वाली सुई सूरज की तरफ हो, सुई और जुनूब से बारवां

अंक द्विभाजक कोण है। बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** की चौथी पुलिका का नवां बाब देखें।

41- सज्दे के दौरान ज़मीन से (या फ़र्श) से दोनों पैर उठा लेना।

42- कुरानुल करीम की (आयतों को) गलत पढ़ना, उसका मतलब ही बदल देना।

43- औरत का अपने बच्चे को दूध पिलाना।

44- किसी के बोलन से जगह बदल देना।

45- जब तुम सवारी कर रहे हो किसी जानवर को तीन मरतबा कोड़ें मारना।

46- बंद दरवाज़े को खोलना।

47- कम से कम तीन अलफ़ाज़ों में लिखना।

48- अपने ऊपर (कफतन) किसी तरह का कपड़ा डालना।

49- अपनी कज़ा नमाज़ों को याद रखना, (यानि रोज़ाना की नमाज़े जो तुमने उनके मुक़र्रर वक़्त पे अदा नहीं करी,) अगर वह छः से कम है।

50- जब उज़र में कोई फर्ज़ नमाज़ अदा कर रहे हो (पानी के जहाज़ या रेलगाड़ी में) या किसी जानवर की पीट पे जैसे की घोड़ा क़िब्ले के अलावा किसी और रूख़ को मुड़ जाना।

51- जानवर पे बैठने के दौरान उसपे भार डाल देना।

52- अपने दिल से, मुरतद (धर्मवंचित) बनना।

53- जुनूब बन जाना या किसी औरत का महावारी शुरू कर देना।

54- इमाम (जोकि जमात में नमाज़ पढ़ाने जा रहा है) उसका अपने को छोड़कर किसी और को खड़ा कर देना क्योंकि यह सोचता है के इसका अपना वुज़ू टूट गया।

55- कुरानुल-करीम की आयतों को बदल कर पढ़ना इतना के उनके मतलब ही बदल देना।[इब्ने आबिदीन 'रहमतुल्लाहि तआला' ने फरमाया के जैसे ही यह नमाज़ की सुन्नतों पर प्रवचन लगाता है: बताए गए किसी ऐसे शख़्स के ज़रिए अदा की गई नमाज़ सही नहीं होगी।यह इमाम या मुअज़्ज़िन के लिए मकरूह है कि अपनी आवाज़ इतनी ऊँची कर ले के जमात के सुनने लायक़ से ज़्यादा हो जाए।जैसे की जमात में नमाज़ की शुरूआत करने में इमाम और मुअज़्ज़िन का इफितहा की तकबीर कहना।उनके नमाज़ को शुरू करने के लिए नीयत करनी चाहिए।उनकी नमाज़ सही नहीं होगी अगर उनकी नीयत अपनी आवाज़ को जमात को सुनाने की हो, और उनपे अमल कर रहे लोगों की नमाज़ भी सही नहीं होगी, यह मुअज़्ज़िन के लिए मकरूह है कि नमाज़ में तकबीरों को ज़ोर से दोहराए अगर इमाम की आवाज़ सुनाई देने के लिए काफी है।ऐसे करना घिनौनी बिद्दत है।जब इसकी ज़रूरत हो उनका ऐसा करना मुसतहब है।लेकिन मुअज़्ज़िन की नमाज़ फासिद हो जाएगी अगर इसका मकसद किसी लय में गाना है।" इसी वजह से, इमाम और मुअज़्ज़िन अपनी आवाज़ को सुनाने के लिए लाउड स्पीकर का इस्तेमाल करते है वह सिर्फ ना जमात की नमाज़ फासिद करते है बल्कि अपनी नमाज़ को भी सही होने से रोकते है।यह बहुत घिनौना बिद्दती सौदा है।और बिद्दत करना बहुत बड़ा गुनाह है।यह सही नहीं होगा के तुम एक इमाम पे अमल करो जोकि टेलीविज़न या कहीं दूर नमाज़ पढ़ा रहा है।यह प्रलेखन के ज़रिए सबूती ग्रंथों के साथ बारवें मुद्दे के एक लेख में लिखा है, उस वक़्त की तारीख़ **1406** रबीउल-

अव्वल, और 1985 दिसम्बर थी, अवधि **अल-मुआलीम** नामित, हिन्दुस्तानी उलेमाओं के ज़रिए प्रसारित मलाप्पूलम।]

और आपकी किन चीज़ों से नमाज़ ख़त्म नहीं होगी: अगर तुम्हारे आगे की लाइन में जगह ख़ाली है और तुम उधर एक या दो कदम बढ़ाओ या अगर "आमीन" कहो, अगर तुमने किसी को सलाम करते सुन लिया तो उसे जवाब ना देना (यानि कोई "सलामुन अलैकुम" कहता है।), [बराए मेहरबानी सलामों और हलों के मुताल्लिक़ **सआदते अबदिया** की तीसरी पुलिका का (62वां) बाब देखें।] अपनी भवों से इशारे के ज़रिए या आँखों से, अगर तुमसे कोई पूछता है कि तुमने कितनी रकातें पढ़ ली और तुम अपनी उंगली से इशारा कर दो; इन वज़ाहों में नमाज़ के टूटने की कोई वजह नहीं है।

सलात का मतलब अल्लाहु अज़ीम-उश-शान से रहम और अस्तग़फार अपने और फरिश्तों के हिस्से में और ईमान वालों के हक़ में दुआऐं।इसका तकनीकी मतलब अफअल-ए-मालूमा और अरकान-ए-महसूसा है, यानि तुर्की में नमाज़, (और दुआऐं अंग्रेज़ी में।अफअल-ए-मालूमा मतलब वह अमाल जो हम नमाज़ से हटकर करते है, और अरफान-ए-माहसूसा मतलब रकनस (तय की हुई खड़ी अवस्था, बैठा हुआ आसन, घुटने मुड़ी हुई अवस्था, और दुआऐं) नमाज़ के हाल में, और यह तमाम अमाल, नमाज़ को सही करने के है।

एक दिन रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अपने सबसे ख़ास नज़दीकी मुबारक शख़्स से फरमाया, यानि हज़रत अली करीम अल्लाहु वजाहाहू वा रज़िअल्लाहु अन्हा: **"या अली! आप नमाज़ के फर्ज़यात, वाजीबात, सुन्नतें और मुस्तहिबों पे ज़रूर ही ग़ौर फरमाओ।"** इसपर एक अन्सार [जब सबसे आला शख़्स, रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' 622 अ।ड। में मक्का से मदीना हिजरत कर गये तब मदीना के मुसलमानों ने उन्हें बहुत ख़ुशी और सबसे मुबारक नबी के तौर पर अपनाया और फिर उनके

सहाबाओं को भी। हिजरत करने वालों को मुहाजिरीन कहा गया और मदीना के मुसलमान जिन्होने उनकी मदद की उन्हें अन्सार कहा गया।] ने कहा: या रसूलुल्लाह! हज़रत अली पहले से ही यह सब चीज़ें जानते है। हमें फर्ज़, सुन्नत, वाजिब और मुस्तहब का मुशहिदा करने की फज़ीलत बताईए, जिससे हम वैसा ही अमल करें। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: **"ऐ मेरी उम्मत और मेरे सहाबा! नमाज़ वो है जिससे अल्लाह राज़ी होता है। यह वो है जिसे फरिश्तें पसन्द करते है। यह नबियों की सुन्नत है। यह मारिफत का नूर है। यह आमालों में आला है। यह जिस्म के लिए ताक़त है। यह रिज़्क की बरक़त है। यह रूह का नूर है। यह दुआओं के लिए कुबूलियत है। यह मौत के फरिश्ते से सिफारिश करने वाली है। यह कब्र की रौशनी है। यह हज़रत मुनकर और नकीर के सवालों का जवाब है। यह आख़िरत के दिन में तुम्हारे सिर का साया है। यह जहन्नुम और तुम्हारे दरमियान एक पर्दा है। यह पुले सिरात से बिजली की रफ्तार से पार करवायेगी। यह जन्नत में तुम्हारा ताज है। यह जन्नत की चाबी है।"**

जमाअत में नमाज़ की फज़ीलत

मसलन कोई जमाअत में दो रकअत नमाज़ पढ़ता है और अपनी **27** रकअतें अलहिदा पढ़ता है तो वो दो रकअत नमाज़ जो उसने जमाअत में पढ़ी है ज़्यादा सवाब पैदा करेंगी।

एक और रिवायत के मुताबिक़, चाहे उसने अलग से हज़ार रकअत नमाज़ भी पढ़ी हो तब भी जमाअत के साथ पढ़ी गई दो रकअतों में ज़्यादा सवाब हासिल होगा। जमाअत में नमाज़ पढ़ने के कई सवाब है। उनमें से कुछ यह है:

1- जब ईमान वाले साथ आते है तो एक दूसरे से मुहब्बत करते है।

2- ना सीखे हुए लोग दूसरों को देखकर सीखते है।

3- अगर कुछ लोगों की नमाज़ क़ुबूल हो जाती है और कुछ की नहीं तो उनकी नमाज़ भी क़ुबूल हुई नमाज़ियों के सदके में क़ुबूल फरमा ली जाती है।

एक हदीस शरीफ कहती है: "ऐ मेरी उम्मत और मेरे सहाबा! मैने तुम्हारे सामने दो रास्ते रखे है: एक है कुरानुल करीम, और दूसरा मेरी सुन्नत। वो शख़्स जो इनके अलावा कोई रास्ता अपनाता है वो मेरी उम्मत नही!" [अब्दुल ग़नी नबलूसी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' (**1050** [**1640** A.D.], दमसकस **1143** [**1731**]) अपनी किताब हदीका के **99**वें पन्ने पर बयान करते है (जिसकी कमेन्ट्री तरीकते मुहम्मदिया किताब में भी है जिसे इमाम बिरगिवी ने लिखा है): जब अल्लाह तआला अपने कुरान से इस्लाम के एक हिस्से का ऐलान करता था, तब उसको दूसरे हिस्से का ऐलान अपने महबूब रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की सुन्नत से करता था। रसूलुल्लाह की सुन्नतों में उनके अकीदे, बोल, अमल, अख़लाक़ और किसी के अमल या बात पर खामोश दख़ल है। [जोकि उनके अपनाने पर बनी (जो भी हुआ और कहा।)] यह हदीस शरीफ इस्लाम के चार स्रातों अदील्ला-ए-शारीय्या में से दूसरी की तरफ इशारा करती है।]

जमाअत में इमामत

इमाम की पैरवी करने वाले चार तरह के लोग होते है: मुदरिक, मुकतदी, मसबूक और लाहिक।

1- मुदरिक वो मुसलमान होता है जो इमाम के साथ तक्बीरे इफतिताह कहता है।(दूसरे लफ़्ज़ों में, वो, "अल्लाहु अकबर", कहता है तकरीबन हर उस वक़्त जब इमाम कहता है।जिसका मतलब कि उसने इमाम के साथ नमाज़ पढ़नी शुरू कर दी जब इमाम नमाज़ पढ़ा रहा था जमाअत में।)

2- मुसलमान जो तक्बीरे इफतिताह पकड़ने से नाकाम रहता है उसे मुकतदी कहते है।

3- मसबूक वो मुसलमान है जो नमाज़ इमाम के पीछे तब शुरू कर पाता है जब इमाम एक या दो रकातें पढ़ चुका हो।

4- लाहिक वो मुसलमान है जिसने इमाम के साथ तक्बीरे इफतिताह की; पर हदस की हालत में (उसका किसी तरह वुज़ू टूट जाता है) [**सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन का दूसरा बाब देखें 'हदस' के लिए] वो दुबारा वुज़ू बनाता है और इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ता है।जब मुसलमान ऐसे ही नमाज़ पढ़ता है जैसे उसने इमाम के पीछे पढ़ी हो, (यानी वो किरात नहीं करता, पर रूकू सज्दा और तरबीह करता है) अगर वो उस दौरान कोई दुनियावी मामला या बात नहीं बोलता (जब वो मस्जिद छोड़ता है दुबारा वुज़ू करने के लिए) यह ऐसे ही होगा जैसे इसने पूरी नमाज़ इमाम के साथ और उसके पीछे पढ़ी हो।पर, मस्जिद छोड़ने के बाद (वुज़ू दुबारा करने की नीयत से), उसे मस्जिद के करीबी जगह पर वुज़ू बनाना होगा।कुछ इस्लामिक आलिमों की राय है कि अगर वो मस्जिद से ज़्यादा दूर जाता है तो उसकी नमाज़ फासिद हो जाती है।

अगर कोई शख़्स मस्जिद में इस शक्ल में दाख़िल होता है कि इमाम रूकू कर रहा हो, और इमाम को पकड़ने की जल्दी में वो तक्बीरे इफतिताह पढ़के रूकू के लिए झुक जाता है तो उसने इमाम की पैरवी नहीं करी, (यानी वो जमात में नहीं जुड़ा)।पर अगर वो इमाम को रूकू में पाता है, और इमाम

के पीछे नमाज़ पढ़ने की पैरवी करता है, खड़ी हालत में ही तक्बीरे इफतिताह पढ़ता है और जब इमाम रूकू में ही हो तो तस्बीह भी पढ़ता है, तब उसने इमाम के साथ नमाज़ पढ़ी उसी रकाअत में। पर अगर इमाम रूकू से खड़ा हो जाता है और वो शख़्स अभी भी रूकू में है तो वो रकाअत नहीं पकड़ पाया।

नमाज़ में ताज़ीले अरकान

अगर कोई शख़्स नमाज़ की पाँच जगहों पर भूल कर नहीं बल्कि जान बूझकर ताज़ीले अरकान छोड़ देता है तो इमाम अबू यूसुफ 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़ उसकी नमाज़ फासिद हो जाती है। तराफेइन (इमाम आज़म अबू हनीफा और इमाम मुहम्मद) के मुताबिक़, नमाज़ फासिद नहीं होती पर वाजिब की नज़रअंदाज़ करने की वजह से वो नमाज़ दुबारा पढ़ना ज़रूरी हो जाता है। **सज्दा-ए-सहू** तब ज़रूरी होता है जब तुम कुछ भूल जाओ नमाज़ के दौरान। [ईमान के खोने से मुताल्लिक़ बाब इसी किताब में देखें!]

ताज़ीले अरकान को छोड़ना कुछ **26** नुक़सान पैदा करता है:

1- यह ग़रीबी लाता है।

2- आख़िरत के उलेमा तुमसे नफरत करते है।

3- तुम अदालत से गिर जाते हो, यानि तुम कभी गवाह नहीं बन सकते।

4- जिस जगह पर तुमने वो नामुकम्मल नमाज़ पढ़ी है वो जगह रोज़े क़यामत में तुम्हारे ख़िलाफ गवाही देगी।

5- अगर कोई शख़्स बिना ताज़ीले अरकान के नमाज़ पढ़ रहा हो और कोई दूसरा शख़्स जो उसे देखता हो और न समझाए (प्यार से और तरीक़े से) तो वो शख़्स भी गुनाहगार होगा।

6- तुम्हे वो नमाज़ दोहरानी होगी।(जो ताज़ीले अरकान के बग़ैर पढ़ी गई हो।)

7- इससे मौत ईमान पर नहीं होती।

8- यह तुम्हे नमाज़ का चोर बना देती है।

9- जो नमाज़ तुमने पढ़ी हो वो आख़िरत के रोज़ तुम्हारे दांतों में एक पुराने चिथड़े की तरह लटकेगा।

10- तुम अल्लाह की रहमत से महरूम रह जाओगे।

11- तुम अल्लाह तआला से अपनी दुआमें बुरा बर्ताव पेश आओगे।

12- तुम नमाज़ हासिल होने वाले बेशकीमती सवाबों से महरूम रहोगे।

13- इससे तुम्हारे दूसरी की गई इबादतों के सवाब पर भी रोक लगेगी।

14- इससे तुम जहन्नुम के हक़दार बनोगे।

15- जाहिलों के लिए तुम बुरी मिसाल बनोगे जब वो तुम्हे ताज़ीले अरकान की नज़रअंदाज़ी करते देखेंगे तो वो भी वैसा ही करेगे।यह उसी तरह से है, जब किसी ईमान वाले को देख कर दूसरा गुनाह करता है तो उसका बड़ा अज़ाब है।

16- तुम अपने ईमान के ख़िलाफ हो जाओगे।

17- तुम इन्तिकालात की सुन्नतों को छोड़ दोगे।

18- तुम्हे अल्लाह तआला का गुस्सा सहना पड़ेगा।

19- तुम शैतान को ख़ुश करोगे।

20- तुम जन्नत से दूर हो जाओगे।

21- तुम जहन्नुम के नज़दीक हो जाओगे।

22- तुम अपनी नफ्स से ज़ालिमाना हो जाओगे।

23- तुम अपनी नफ्स को गन्दा कर लोगे।

24- तुम अपने दाएं-बाएं के फरिश्तों को तक्लीफ दोगे।

25- तुम रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' को दुखी करोगे।

26- तुम सारी मख़लूक़ को नुक़सान पहुँचाओगे। तुम्हारे गुनाहों की विना पर कोई बारिश नहीं होगी या फसले न उगेंगी, या ऐसी तेज़ बारिश होगी जो फसलों को नुक़सान पहुँचाएगी उनको परवरिश के बजाए।

लम्बे सफर की नमाज़

नीमते इस्लाम (हाजी मुहम्मद जिहनी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' 1262-1332 [1914 A.D.] कुपलुजे-बेयलरबेयी, इस्तानबुल की लिखी हुई:) किताब में लिखा है; हमेशा और हर जगह नफिल नमाज़ें पढ़ना बैठकर या हो सके तो खड़ा होकर पढ़ना जायज़ है। जब तुम बैठ के नमाज़ पढ़ते हो तो रूकू

के लिए अपना जिस्म झुकाओ। सज्दे के लिए अपना सिर ज़मीन पर रखो। पर अगर कोई शख़्स बिना किसी उज़र के बैठ कर नमाज़ पढ़ता है तो उसे खड़े होकर पढ़ने के मुकाबले आधा सवाब मिलेगा। दिन की रोज़ाना पाँच वक़्ता नमाज़ों की सुन्नतें और नमाज़ें तरावीह, नफ़िल नमाज़ों में से है। ('तरावीह' के लिए **सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन का 19वां बाब देखें)। किसी सफर पर, यानि शहर से बाहर के इलाके में, किसी जानवर की पीठ पर बैठे हुए नमाज़ अदा करना जायज़ है। (मसलन घोड़ा)। यह ज़रूरी नहीं कि उसमें क़िब्ले की तरफ रूख़ हो या रूकू या सज्दा हो। इसे इमा (इशारों) से पढ़ा जाता है। दूसरे लफ़्ज़ों में तुम अपना जिस्म थोड़ा झुकाओगे। और सज्दे के लिए थोड़ा सा और झुकाओगे। जानवर पर बहुत ज़्यादा नजासत का होना नमाज़ के लिए नुक़सान देह न होगा। एक शख़्स जो ज़मीन पर नमाज़ पढ़ते हुए थक गया है उसके लिए जायज़ है कि वो एक लाठी या दूसरे इन्सान या दीवार का सहारा लेके नमाज़ पढ़े। ख़ुद चलते हुए नमाज़ पढ़ना सहीह नहीं है। (दूसरे लफ़्ज़ों में ऐसी नमाज़ सही नहीं होगी) जो नमाज़ें फर्ज़ या वाजिब है; सिर्फ जब कोई उज़र हो तो शहर के बाहर किसी जानवर पर पढ़ी जा सकती है। इस मामले में इन चीज़ों का उज़र हो सकता है: डरना कि अगर तुम जानवर से उतर कर नमाज़ पढ़ने लगे तो कही तुम्हारे हमसफर तुम्हें छोड़ के आगे न बढ़ जाए; आस-पास डकैतों का डर, जिससे तुम्हे जान खोने का ख़तरा हो या माल का, या जानवर का; कीचड़ भरा इलाका; दुबारा जानवर पर न चढ़ पाने का डर; और ऐसी ही सूरते हाल। अगर हो सके तो तुम अपने जानवर को क़िब्ले के रूख़ पर खड़ा कर नमाज़ पढ़ो। अगर मुमकिन न हो तो उस तरफ ही नमाज़ अदा करो जहाँ तुम्हारा जानवर चल रहा हो। ऐसा ही किसी बक्से में बैठ के पढ़ने में है जैसे कि जानवर की पीठ की पालकी, यह इसे **सेरीर** यानि एक मेज़ या डब्बे में तब्दील करती है, ताकि नमाज़ ऐसी हो जैसे ज़मीन पर पढ़ी गई

हो। इस मसले में तुम्हे नमाज़ क़िब्ले का रूख़ में करके खड़े होकर नमाज़ पढ़नी होगी।

जब हज़रत जाफर तय्यार [जाफर तय्यार 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के चचा अबू तालिब के चार बेटों में से एक थे। वो हज़रत अली से **10** साल बड़े और हज़रत उकायल से **10** साल छोटे थे। वो हैबर लौटने के दिन अबैस्सीनिया को हिजरत कर गए। हिजरत के आठवें साल में जब आप बायजैनतीन की **3** हज़ार दुश्मनों के ख़िलाफ दमसकस की एक जगह मूता में जंग कर रहे थे तब कई हमले करने के बाद और एक दिन में **70** से ज़्यादा ज़ख्म खाने के बाद शहादत पा गए। आप **41** साल के थे। आप उन सात लोगों में से थे जो रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के काफी नज़दीकी मिलते थे।] अबैस्सीनिया के लिए जहाज़ में बैठ रहे थे तो रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने उनको सिखाया: जहाज़ पर नमाज़ फर्ज़ और वाजिब बिना किसी उज़र के पढ़ी जा सकती है। और जमाअत में नमाज़ भी पढ़ी जा सकती है। एक पानी के जहाज़ में इमा (इशारों) के साथ नमाज़ पढ़ना जायज़ नही, रूकू और सज्दा करना लाज़िम है। साथ ही क़िब्ले की तरफ रूख़ होना भी ज़रूरी है। जब तुम नमाज़ पढ़ना शुरू करो तो क़िब्ले की तरफ रूख़ करो। जब जहाज़ अपना रूख़ बदले तुम भी बदलो। नजासत से तहारत भी ज़रूरी है जहाज़ पर। (**सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन का छठा बाब देखें 'तहारत से नजासत' के लिए।) हनफी मज़हब में बिना किसी उज़र के भी फर्ज़ नमाज़ तक बैठ कर पढ़ना, पानी के चलते हुए जहाज़ के सफर में, जायज़ है।

एक जहाज़ को तब पाल जहाज़ कहते है जब उसका लंगर उठा हुआ हो और जहाज़ काफी तेज़ी से हिल दुल रहा हो। अगर वो हल्के घूम रहा है, यह उस जहाज़ की तरह है जो किनारे पर खड़ा हो। अगर किनारे पर जाना

मुमकिन हो तो जहाज़ पर नमाज़ पढ़ना जायज़ नही। यह ज़रूरी है कि किनारे पर जाए और नमाज़ अदा करे। पर अगर जान का, माल का या जहाज़ के डूबने का खतरा हो तो जहाज़ के ऊपर खड़े होकर भी नमाज़ पढ़ना जायज़ है। यहाँ हम **निमात-ए-इस्लाम** का हवाला पूरा करते है।

यह इब्ने आबिदीन में बयान है: "किसी घोड़ा गाड़ी (दुपहिया) जो बिना जानवर बांधे सीधी खड़ी नहीं रह सकती, जिसपे चलते हुए या रूके हुए एक जैसा हो, उसपर नमाज़ पढ़ना जानवर की पीठ पर नमाज़ पढ़ने जैसा है। एक चार पहिया गाड़ी जब वो न चल रही हो तो सेरीर (मेज) की तरह है। जब वो चलती है तो उजर की बिना पर जैसा कि बिना पर जोकि ऊपर बयान है, उसपर नमाज़ पढ़ना जानवर की पीठ पर पढ़ने जैसा ही है: तुम गाड़ी को रोक कर क़िब्ले की तरफ मुँह करके नमाज़ पढ़ो। अगर तुम उसे रोक ना सको तो ऐसे नमाज़ अदा करो जैसे एक पानी जहाज़ पर पढ़ते हो।" अगर कोई शख़्स जो (लम्बे सफर पर हो और जिसे कहते हो) सफारी वो ज़मीन पर नहीं बैठ सकता। या क़िब्ले की तरफ नहीं रूख़ कर सकता वाहन की वजह से, तो वह शाफी और मालिकी मज़हब की नक्ल करते हुए दो लगातार आने वाली नमाज़ों की जोड़ी बना लेता है जब वो वाहन से उतरता है। [**सआदते अबदिया** के चौथे एडिशन का पन्द्रवां बाव देखें।] अगर कोई शख़्स ज़मीन पर बैठ कर नमाज़ पढ़ सकता है उसके लिए जाइज़ नहीं की वो इमा (इशारे) के साथ कुर्सी पर बैठ कर नमाज़ पढ़े। बस या हवाई जहाज़ पर नमाज़ पढ़ना, वाहन पर नमाज़ पढ़ना जैसा ही है। कोई शख़्स जो तीन दिन के लम्बे सफर की नीयत से निकलता है यानि **18** फेरसाह (पारासंग) = **54** मील [**54 X 0.48 X 4 = 104** किलोमीटर] शहर या गाँव के अहाते से बाहर, सफारी बन जाता है जब वो शहर या गाँव की हद को छोड़ता है। इब्ने आबिदीन एक मील चार हज़ार ज़रा, और एक ज़रा चौबीस चौड़ाई के बराबर है। [एक उंगली की चौड़ाई **2**

सेंटीमीटर है। शाफी और मालिकी मज़हब में, 16 फेरसाह = 48 मील = 48 X 0.42 X 4000 = 80 किलोमीटर।]

आओ नमाज़ पढ़े और अपने दिल की धूल साफ करे,
तुम ख़ुदा के नज़दीक नहीं हो सकते, जब तक न पढ़ोगे नमाज़ !

जब भी नमाज़ पढ़ते हो, गुनाह कम होते है,
तुम अफज़लियत नहीं पा सकते, जब तक न पढ़ोगे नमाज़!

कुरान करीम में हक़ तआला ने नमाज़ की बहुत तारीफ की है,
वो कहता है, "मैं तुझे कभी प्यार नहीं करूंगा, जब तक न पढ़ोगे नमाज़!"

एक हदीस शरीफ है: ईमान ज़ाहिर नहीं होता,
किसी दूसरे शख़्स पर जब तक तुम ना पढ़ोगे नमाज़!

नमाज़ न पढ़ना सारे गुनाहों में से सबसे बड़ा गुनाह है,
तौबा काम न आयेगी जब तक तुम ना पढ़ो छूटी हुई नमाज़!

जो नमाज़ की बेअदबी करता है वो अपना ईमान खो देगा,
वो दुबारा इस्लाम में न आयेगा, जब तक ना पढ़ोगे नमाज़!

नमाज़ दिल को पाक करती है, और जुर्म से रोकती है,
तुम रौशन न हो सकोगे, जब तक न पढ़ोगे नमाज़!

तक़्बीर-इफतिताह का सवाब

जब एक इन्सान इमाम के साथ तक़्बीर इफतिताह करता है तो, उसके गुनाह पतझड़ की हवा के साथ गिरे पत्तों की तरह झड़ जाते है।

एक सुबह रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' नमाज़ पढ़ रहे थे, तभी कोई आया लेकिन उसको सुबह की नमाज़ की तक़्बीर इफतिताह के लिए बहुत देर हो चुकी थी, ह्यइसका मतलब है, कि वो इमाम के साथ तक़्बीर इफतिताह में शामिल न हो सकाह। उसने एक गुलाम को आज़ाद कराया। उसके बाद, उसने रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' से पूछा, "या रसूलुल्लाह (ओ अल्लाह के पैग़म्बर!) आज मैं सुबह की नमाज़ की तक़्बीर इफतिताह नहीं कह पाया। मैने एक गुलाम को आज़ाद कराया। मैं हैरान हूँ कि क्या मुझे ऐसा करके तक़्बीर इफतिताह का सवाब मिल पाएगा?" रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने हज़रत अबू ब़कर 'रज़ि-अल्लाहु अन्हु' से पूछा, **"तुम इस तक़्बीर इफतिताह के बारे में क्या कहते हो?"** अबू ब़कर सिद्दीक़ 'रज़ि-अल्लाहु अन्हु' ने फरमाया या रसूलुल्लाह 'सल्लाहु तआला अलैहि वसलम' अगर मेरे पास चालीस ऊँट होते और वो सभी ज़ेवरात से लदे होते और मैं उन सबको ज़कात के तौर पर ग़रीबों को दे देता तब भी मुझे उतना सवाब नहीं मिलता जितना के इमाम के साथ तक़्बीर इफतिताह कहने पर मिलता।" उसके बाद सबको पैदा करने की वजह पूछी गई, **"या उमर तुम इस तक़्बीर इफतिताह के बारे में क्या कहते हो?"** हज़रत उमर 'रज़ि-अल्लाहु अन्हु' ने फरमाया या रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' अगर मेरे पास मक्का से लेकर मदीना तक के रास्ते के बराबर ऊँट होते और सब ऊँट ज़ेवरात से लदे होते और अगर मैं वो सब ज़कात के नाम पर ग़रीबों को दे देता, तब भी मैं इतना सवाब हासिल नहीं कर पाता जितना कि मैं इमाम के साथ तक़्बीर

इफतिताह करने पर हासिल करता।" उस पर, जब सबसे ज़्यादा नवाज़े गए नबी ने पूछा, **"या उस्मान तुम इस तक्बीर इफतिताह के बारे में क्या कहते हो?"** हज़रत उस्मान बिन नूरएन 'रज़ि-अल्लाहु अन्हु' ने कहा, "या रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम'! अगर मैं रात में एक नमाज़ दो रकातों से पढ़ूँ और हर रकात में पूरे कुरआन अल अज़ीमुश्शान की तिलावत करू तो तब भी मैं वो सवाब हासिल करने में नाकाम रहूँगा जो मैं इमाम के साथ तक्बीर इफतिताह करने में हासिल कर सकता हूँ।उसके बाद, हज़रत अली करीम अल्लाहु वज़ीह से पूछा, **"या अली! तुम इस तक्बीर इफतिताह के बारे में क्या कहते हो?"** आपने ऐसे जवाब दिया, "या रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम'! अगर मग़रिब से मशरिक तक के सारे काफिर मुसलमानों को जड़ से मिटा देने के मकसद से हमला करें और अल्लाहु तआला मुझे इतनी ताक़त दे कि मैं इन काफ़िरों के ख़िलाफ़ जिहाद कर सकूँ और उन्हें काट कर फैंक दूँ तो तब भी मैं वो सवाब नहीं पा सकता जो मुझे इमाम के साथ तक्बीर इफतिताह में शामिल होने पर मिलेगा।" उसके बाद रसूलुलाह 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: **"ओ मेरी उम्मत और सहाबा! अगर सात ज़मीन की परतें और सात जन्नत की परतें कागज़ होती और अगर सारे बहे आज़म सियाही होते और अगर सारे पेड़ कलम होते और अगर सारे फरिश्तें हर बात लिखते और अगर क़यामत तक लिखते रहे तब भी वो सब उस सवाब को लिखने में नाकाम रहेंगे जोकि इमाम के साथ तक्बीर इफतिताह में शामिल होने पर मिलता है।"**

आप कहना चाहते है, "वो सारे फ़रिश्तें जो अल्लाहु अज़ीमुश्शान ने पैदा किए?" (यहाँ इसका जवाब है), मेराज, [मिहरबानी करके 'मेराज' के लिए **सआदते अबदिया** के तीसरे हिस्से का सौलवाह मज़मून देखें] की रात, जब रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' जन्नत की तरफ जा रहे थे, फरिश्तें जन्नत और दोज़ख़ और बैर्तएमामूर (काबा) के चक्कर लगा रहे

थे! रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने पूछा, "**ओ मेरे भाई जिबराईल फरिश्तें बैत-ए-मामूर पर आते है और वापस नहीं जाते। वो कहाँ जाते है?**" जिबराईल 'अलैहिस्सलाम' ने फरमाया, "या हबीब अल्लाह (ओ अल्लाह के प्यारे)! जब से मैं वजूद में आया हूँ, मैने किसी भी फरिश्ते को इस बैत-ए-मामूर पर आने के बाद वापस जाते हुए नहीं देखा। एक बार बैत-ए-मामूर (बैतुलहराम) का तवाफ़ पूरा करके जाने के बाद उनकी बारी दुबारा क़यामत तक नहीं आएगी।"

जब एक शख़्स नमाज़ में अऊजु और बिस्मिल्लाह पढ़ता है तो अल्लाह अज़ीमुश्शान अपने उस बन्दे को उसके पूरे बदन पर जितने बाल है उसके हर एक बाल के बराबर सवाब देता है। जब वो गुलाम बन्दा फातिहाँए शरीफ पढ़ता है तो अल्लाहु तआला उसे वही सवाब देगें जो हज क़ुबूल करने के बाद देते। जब वो बन्दा रूकू में झुकता है तो अल्लाहु अज़ीमुश्शान उसे उतना ही सवाब देगा जितना कि उसे हज़ारों सोने के सिक्के ज़कात में देने पर देता, और जब वो तीन बार तस्बीह कहेगा (यानी जब सुब्हाना रब्बियल अज़ीम कहेगा) जैसा कि सुन्नत में बताया गया है, अल्लाहु अज़ीमुश्शान उसे इतना सवाब देगें जैसे कि उसने चार आसमानी किताबें पढ़ली हों और सौ जन्नत के सुहूफ (छोटे आसमानी किताबचह) जब वो कहेगा, "**समि अल्लाहु लिमन हमिदह।**" (जब वो रूकू से उठेगा) अल्लाहु अज़ीमुश्शान उस बन्दे को अपनी रहमत के सागर (बहे आज़म) से भर देगा (माफी नेमत) जब वो सज्दे में जाता है अल्लाहु तआला उस बन्दे को सब इन्सानों के बराबर सवाब देता है। जब वो तीन बार तस्बीह कहता है यानी जब वो कहता है सुब्हा न रब्बियल आला जैसे कि सुन्नत हुक़्म है कि अल्लाहु अज़ीमुश्शान अपने उस बन्दे को बेहिसाब सवाब दे देता है। उनमें से कुछ रिवायात (औलिया-ए-इस्लाम) की ये है: पहला सवाब है कि अल्लाह अपने बन्दे को अर्श और कुर्सी [मेहरबानी करके **सआदते अबदिया** के छटे हिस्से का इक्किसवाँ मज़मून देखें।] के वज़न

के बराबर भारी सवाब देगा। दूसरा अल्लाहु अज़ीमुश्शान अपने इस बन्दे की मग़फरत (माफ़ी) करेगा। तीसरा सवाब है जब वो बन्दा मर जाएगा तो मीकाई ल 'अलैहिस्सलाम' उसकी क़ब्र पर (बार्बार) क़यामत तक चक्कर लगाएंगे। चौथा, जज़ा के दिन मीकाईल 'अलैहिस्सलाम' उस बन्दे को अपने पंखों पर बिठाकर जन्नत-ए-आला (जन्नत) [वो सारी अच्छी खबरें जो अभी तक दी गई उसमें सारे मुसलमान शामिल है चाहे वो कोई भी जिनस के हों। उ ले जाएंगें।

जब एक शख़्स क़अदा-ए-आख़िरा (आख़िरी बैठने का तरीका) में बैठता है। अल्लाह अज़ीमुश्शान उस शख़्स को उतना ही सवाब देता है जितना कि फुक़रा-ए-साबिरीन को (वो मुसलमान जो ग़रीब और सब्र करने वाले दोनों हों)।

फुक़रा-ए-साबिरीन अग़निया-ए-शाकिरीन से अमीर और शुक्र करने वाले मुसलमान पाँच सौ साल पहले जन्नत में पहुँच जाएगें। जब अग़निया-ए-शाकिरीन अपने से पहले उनको देखेंगे, तो वो कहेंगे, "हम कैसे चाहते थे कि हमारा शुमार फुक़रा-एसाबिरीन में हो।"

क़ब्र में तुम्हारे पास सवाल जवाब करने वाले फरिश्तें आएंगे;
"क्या तुमने नमाज़ सही तरीके से पढ़ी," वो कहेंगे।
"क्या तुमने सोचा था कि मौत तुम्हे बचाने आएगी?
तुम्हारे लिए तकलीफ़ दह अज़ाब तैयार है," वो कहेंगे।

जन्नत-ए-आलियात के बारे में

(जन्नत के ऊँचे बाग़ात)

जन्नत के आठ बाग़ों के आठ दरवाज़ें और आठ चाबियाँ है। सबसे पहला ईमान (यक़ीन) जो मोमिनों के लिए है जो (रोज़ाना पाँच वक़्त की इबादत जिसे कहते है) नमाज़ पढ़ते है। दूसरा बिस्मिल्लाह शरीफ़ है (यानी ये कहो बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम) बाक़ी (आगे के) छः है (पहली सूरत कुरआन-अल-करीम की) फातिहा शरीफ में। आठ जन्नतें (जन्नत के बाग़) ये है:

1- दर-ए-जलाल। **2-** दर-ए-क़रार। **3-** दर-ए-सलाम। **4-** जन्नतुल-खुल्द। **5-** जन्नतुल-मावा। **6-** जन्नतुल अदून। **7-** जन्नतुल फ़िरदौस। **8-** जन्नतुल ना-ईम।

1- दर-ए-जलाल सफेद नूर का है।

2- दर-ए-क़रार याक़ूत का है।

3- दर-ए-सलाम ज़मर्रूद का है। (हरा क़ीमती पत्थर)

4- जन्नतुल खुल्द मूँगे का है।

5- चाँदी से बना जन्नतुल मावा।

6- सोने से बना जन्नतुल अदून (बाग़)।

7- सोने और चाँदी से बना जन्नतुल फिरदोस।

8- याकूत से बना जन्नतुल न ईम।

मोमिन जो जन्नत में दाख़िल होगें हमेशा वहीं रहेंगे कभी बाहर नहीं निकलेंगे। जो हूरें वहाँ होगी उन्हे कभी हैज़ या निफ़ास की हालतों से दोचार नहीं होना पड़ेगा, न ही उनका मन कभी बहकेगा या गलत ख़्वाहिश करेगा। (न ही वो कभी नाराज़ होगी) जिस खाने या पीने की ख़्वाहिश करेंगे वही उनके सामने हाज़िर होगा। वो हर तरह की परेशानियों जैसे खाना बनाना या उठाना से दूर होंगे। उनके सरों पर मुर्ग उड़ते फिरेंगे। मोमिन उन्हे ऐसे देखेंगे जैसे वो अपने मकानों में बैठकर देख रहे हों। "अगर हम दुनिया में होते और तुम मेरे इतने पास होते तो मैं तुम्हें भून कर खा जाता।" जैसे ही उनके मन में ये ख़्वाहिश उठी उनके सामने एक थाल में नूर से बना हुआ भूना मूर्ग खाने के लिए आ गया। मुर्ग को खाने के बाद मोमिन ने उसकी हड्डियाँ एक जगह ढेर कर दी और दिल में ख़्वाहिश उठी कि ये हड्डियाँ फिर से मुर्ग बन जाए। जिस लम्हे उसके दिल में ये ख़्वाहिश उठी आनन फानन उसी वक़्त वो हड्डियाँ दोबारा पहले जैसा मुर्ग बन गई और वो नया मुर्ग उड़ कर चला गया।

जन्नत की मिट्टी ज़ाफरेन से बनी है और मकानात की एक ईट चाँदी की और एक ईट सोने की बनी है और उसका गारा मुश्क का होगा।

हर मोमिन को जन्नत में सौ आदमियों की ताक़त दी जाएगी। हर एक को कम से कम सत्तर हूरें और दो दुनियावी औरतें दी जाएंगी।

जन्नत में चार नहरे होगीं जो एक ही जगह से फूटेंगी, लेकिन चारों के बहने में और ज़ायकों में फ़र्क होगा। उनमें से एक मीठे शीरीन पानी की होगी, दूसरी ख़ालिस दूध की होगी, तीसरी जन्नत की शराब होगी और चौथी विना मिलावट के शहद की होगी।

जन्नत में ऊँचे मकान होगें। वो झुक जाएंगे और मोमिन उनपर चढ़ कर जहाँ जाने की ख़्वाहिश करेंगे (जा सकते है) वो उन्हे वहाँ ले जा सकते है। (उनकी मुशब्बह दुनिया में आज के चलते हुए ज़ीने और जहाज़ों की सी है।)

जन्नत में एक पेड़ है जिसको 'तूबा' कहते है। इस पेड़ की जड़ें बहुत ऊँचाई पर है और उसकी टहनियाँ और शाखें नीचे झुकी हुई है। उसकी मिसाल दुनिया में चाँद और सूरज की तरह है।

जन्नत के लोग खाने और पीने का पूरा मज़ा लेते है और उस खाने और पीने के ज़ायकों को महसूस करेंगे, लेकिन फिर भी उन्हे न पेशाब आएगा, न पाख़ाना, वो इन्सानी ज़रूरतों और परेशानियों से दूर होगें।

अल्लाह तआला जन्नत में अपने मोमिन बन्दों से मुख़ातिब होगा, "ओ मेरे बन्दों इससे ज़्यादा क्या तुम मुझसे और भी कुछ मांगते हो आगे बढ़ो और नेमतों और राहतों का मज़ा लो।" बन्दे जवाब देगें, "या रब्बी! तुमने हमें दोज़ख़ से आज़ाद किया और अपनी जन्नत में दाखिल किया, और कितनी सारी हूरें, ख़ादिम और बिवियाँ दी, ये हमारे लिए बहुत परेशानी वाली बात है कि हम और ज़्यादा मांगे।" उसके बाद ख़बी-उल-आलमीन ने उनको दोबारा मुख़ातिब किया और इर्शाद फरमाया, "ओ मेरे बन्दों वहाँ पर कोई ऐसी चीज़ है जो तुम मुझसे मांग सकते हो, जो इन सब चीज़ों के अलावा हो।" तब बन्दों ने कहा या रब्बी हम किस मुंह से तुझ से कुछ और मांग सकते है हमें मालूम ही नहीं कि इसके अलावा हम तुझ से और क्या मांग सकते है।" रब्बी-उल-आलमीन ने उनसे पूछा, "ओ मेरे बन्दों! तुम जब दुनिया में किसी उलझन का शिकार हो जाते थे, तो क्या इस्तेमाल करते थे?" उन्होंने जवाब दिया कि वो इस्तेमाल करते थे पूछते थे 'उलेमा' (इस्लामी आलिमों) से और वो सुनते थे और उनके मसले हल हो जाते थे। हज़रत हक़ सुबहानहु व तआला ने फरमाया,

"अब भी वही करो और 'उलेमा' के साथ मिलो और मशवरा करो।" तो 'उलेमा' ने मोमिनों से कहा, "क्या तुम लोग जमालुल्लाह के बारे में भूल गए? जब तुम दुनिया में थे तो दीदार (अल्लाह को देखने की) की दुआ करते थे, और कहते थे, आख़िरत में हमारा रब जो हमसे दूर है अपना (हुस्न) दिखाएगा। उसी को तुम अब मांगो।" उसके बाद वो रूयते जमाललुल्लाह (अल्लाह का हुस्न देखेंगे) और अल्लाह अज़ीमुश्शान आज़ाद उस जगह से दूर, अपना जमाल-ए-बकमाल दिखाएंगे। जब वो हक़ तआला का जमाल-ए-पाक देखेंगे तो उसके नूर का असर उनपर हज़ारों साल तक रहेगा।

जब मोमिन अपने मकान में बैठा होगा, तो उसके चारों तरफ और खिड़की के सामने फल होगें। जब वो सोचेगा, "चलो में अपना हाथ बाहर निकाल कर उस शाखा तक पहुँचाऊ, और फल तोड़कर खा लूँ", उसको अपनी जगह से उठने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। अभी जो शाखा उसे चाहिए वो वही है जहाँ वो बैठा है, वो फल तोड़ेगा और मुंह में रखेगा। इससे पहले कि उसका ज़ायका उसके गले तक पहुँचे एक दूसरा फल उस पहले वाले फल की जगह पर लग जाएगा। जब वो फल मुंह में रखेगा तो वो पके हुए और मज़ेदार होगें। इस वजह से रब्बी उल इज़्ज़त एक ताज़ा फल उगा देता है।

अगर तुम सच्चे हो, नमाज़ पढ़ते हो तो तुम्हारे लिए ख़ुशियों का ताज है। तुम्हारी नमाज़ की जानकारी मोमिन की 'मेराज' है।

वक़्त पर इबादत ना करना

(कज़ा नमाज़ें)

एक नमाज़ जो अपने बताए हुए वक़्त पर पढ़ी जाए उसके बहुत ज़्यादा सवाब है। उनमें से कुछ बयान हैं (औलिया-ए-इस्लाम के):

1- इसका पहला सवाब है कि नमाज़ी का चेहरा नूर (रौशन) से भर जाता है।

2- नमाज़ी की उम्र में बरकत होती है।

3- जो भी दुआँए नमाज़ी माँगता है अल्लाहु तआला उसे क़ुबूल करता है।

4- नमाज़ी ख़ैर वाला बन्दा बन जाता है।

5- नमाज़ी हर मोमिन का चहिता बन जाता है।

एक नमाज़ बिना किसी उज़र के छोड़ी जाए जैसे कि जो वक़्त उसके लिए बताया गया है उसके बाद पढ़ी जाए बग़ैर किसी वजह के जो कि इस्लाम ने वाजिब की है अगर ऐसा करता है तो पन्द्रह अज़ाब हराम में गिरफ्तार होगा। पाँच हराम दुनिया में, तीन उनमें से मौत के वक़्त पर, उनमें से तीन क़ब्र में और चार 'अरसात' (अराफ़ात) के मुकाम पर जाते हुए।

उसके पाँच हराम अज़ाब दुनिया में ये है:

1- उस शख़्स के चेहरे पर कोई नूर नहीं होगा।

2- उसकी उम्र में कोई बरकत नहीं होगी।

3- उसकी इबादतें और दुआएँ क़ुबूल नहीं होगी।

4- जो ख़ैरात, नज़र, नियाज़ वो अपने मुसलमान भाई पर करेगा वो अल्लाहु तआला क़ुबूल नहीं करेगा।

5- जो वो नेकी का काम करेगा उसका सवाब व अज़्र न मिलेगा।

उसके तीन हराम सकरात-ए-मौत के वक़्त (मौत की तकलीफें) है:

1- वो भूखा मरेगा।

2- वो प्यासा मरेगा।

3- वो ख़्वार और ज़लील मरेगा। बेशुमार खाना भी उसकी भूख नहीं मिटा सकता, चाहे कितना भी पानी हो उसकी प्यास नहीं बुझेगी।

तीन हराम क़ब्र में ये है:

1- उसकी क़ब्र उसे इतना दबाएगी कि उसकी हड्डियाँ आपस में मिल जाएंगी।

2- उसकी क़ब्र में हर तरफ आग होगी।

3- एक अज़दहा उसके ऊपर गिरेगा। इस अज़दहे का नाम अक़रा है। एक हाथ में उसने चाबुक ले रखा होगा। एक चाबुक का झटका उसको ज़मीन की गहराइयों में पहुँचा देगा। वो हण्टर से मार खाने के लिए वापस आएगा। ये हण्टर की मार क़यामत तक चलती रहेगी ताकि वो हिसाब किताब के दिन तक सख्तियों में मुब्तला रहे।

चार हराम अरसात के मुकाम पर ये है:

1- वो सख़्त आज़माइशों से गुज़रेगा।

2- उसपर अल्लाहु अज़ीमुश्शान का क़हर नाज़िल होगा।

3- वो दोज़ख़ में जाएगा।

4- उसकी पेशानी उसके माथे पर तीन इबारतें लिखी होगी:

पहली इबारत: इस शख़्स पर अल्लाह की मार है।

दूसरी इबारत ये होगी: इस शख़्स ने अल्लाहु तआला का हक़ बेकार किया।

तीसरी इबारत में कहा गया: जिसने अल्लाह का हक़ (ज़िकरे इलाही न किया) बेकार किया वो अल्लाहु तआला की नेमतों से बहुत दूर मेहरूम हो गया।

नमाज़ इस्लाम का अहम रूकन (मस्तूल) है। अगर एक शख़्स अपनी नमाज़ (रोज़ाना पाँचों वक़्त की) अदा करता है तो वो अपने ईमान के बादबान (मस्तूल) को सीधा रखता है। जिसके ज़रिए वो एक साएंबा बनाता है जिसमें वो पनाह लेता है।

अगर एक शख़्स जानबूझकर एक भी नमाज़ छोड़ता है और उसकी कज़ा भी नहीं पढ़ता (यानी अगर बाद में भी नहीं पढ़ता) तो तीनों मस्लकों में उसको क़त्ल कर देने का फ़तवा जारी किया हुआ है। हनफ़ी मस्लक के मुताबिक़ ऐसा ज़रूरी नहीं है कि उसे क़त्ल किया जाए। हालांकि उसने एक बहुत बड़ा गुनाह किया है जिसे अकबर-ए-कबीर कहते है। ये बहुत ज़रूरी है कि उसे क़ैद किया जाए और उसे जेल में रखा जाए जब तक की वो (अपनी रोज़ाना की नमाज़) नमाज़ पढ़नी शुरू न कर दें। एक शख़्स जो नमाज़ छोड़ता है क्योंकि वो नमाज़ की अच्छाईयों को एहमियत नहीं देता और क्योंकि वो नमाज़ की इस सच्चाई को नहीं जानता (एक मोमिन की) कि नमाज़ हमारा बुनयादी फर्ज़ है तो वो काफिर बन जाता है।

अगर एक शख़्स कोई भी एक (रोज़ाना की पाँचों वक़्त की नमाज़) नमाज़ जानबूझकर छोड़ देता है और उसके बाद कज़ा पढ़ लेता है (यानी जैसे उसने बाद में पढ़ने के बाद अपना कर्ज़ उतार दिया) तब भी वो दोज़ख़ की

आग में एक लम्बे अरसे तक जलता रहेगा जिसे हुक़्बा कहते है। यानी अस्सी साल तक। सख़्तियों से बचने के लिए उसे तौबा और माफ़ी मांगना होगा ताकि अल्लाह उसे माफ़ कर दें।

(यहाँ पर एक दिन दुनिया के एक हज़ार साल के बराबर है। यहाँ पर सालों का शुमार इसी के मुताबिक़ समझा जाएगा।) मुहम्मद अमीन इबने आबिदीन 'रहमतुल्लाहि अलैहि' ने अपनी किताब जिसका मज़मून **रज़ू-उल-मोहतर** है में इर्शाद फरमाया जैसा कि इर्शाद हुआ (औलिया-ए-इस्लाम) ने नमाज़ सब मज़हबी फिक्कोंह में सबसे अहम मज़हबी हुक़्म है। आदम 'अलैहिस्सलाम' (रोज़ाना) देर दोपहर में नमाज़ अदा करते थे। याकूब 'अलैहिस्सलाम' (रोज़ाना) शाम में (सूरज छुपने के बाद) नमाज़ अदा करते थे। और युनुस 'अलैहिस्सलाम' (रोज़ाना) रात में नमाज़ अदा करते थे। जैसा कि ईमान का एक उसूल है इस बात को मानना के कौनसा काम फर्ज़ है कौन सा हराम है। इसी तरह ईमान का उसूल है इस बात को मानना कि ये एक फर्ज़ है, एक कर्ज़ है (रोज़ाना पाँच वक़्त की) नमाज़ को अदा करना हालांकि ये ई मान का उसूल नहीं है कि नमाज़ अदा करो।

नमाज़ हर मुसलमान आक़िल, बालिग़, मर्द और औरत पर फर्ज़ है कि वो पाँच वक़्त की नमाज़ रोज़ाना पढ़ें, अगर उनके पास कोई उज़र न हो (यानी कोई चीज़ जो उन्हे इस ज़िम्मेदारी से बचाए) मेराज की रात पाँच वक़्त की नमाज़ फर्ज़ कर दी गई। (एक इस्लामी हुक़्म) **मुकद्दिमा उस सलात** और **तफसीर-ए-मज़हरी** और **हालाबिए-कबीर** किताबों में हदीस शरीफ से रिवायत है जो कि ऐसे पढ़ी जाएगी: "**जिबराईल 'अलैहिस्सलाम'** (और मैं एक साथ नमाज़ पढ़ रहे थे और जिबराईल 'अलैहिस्सलाम') **लगातार दो दिन से काबे के दरवाज़े के बराबर में हम दोनों के लिए नमाज़ की इमामत कर रहे थे। हम दोनों ने इबादत करी सुबह सादिक के वक़्त दोपहर होने से पहले इबादत की जबकि**

सूरज बीच से ढल रहा था सूरज ढलने के बाद की इबादत जब हर चीज़ का साया असली साये के अलावा दो मिस्ल हो गया तब पढ़ी शाम की इबादत सूरज डूबने के बाद की [यानी जब सूरज गुरूब हो गया] **और रात की इबादत अंधेरा होने के बाद की। दूसरे दिन सुबह की नमाज़ हमने अच्छी तरह उजाला होने पर पढ़ी दोपहर की नमाज़ जब हर चीज़ का साया उस चीज़ से दुगना हो गया दोपहर के बाद की इबादत उसके फौरन बाद शाम की इबादत रोज़ा खोलने के वक़्त पर और रात की इबादत एक तिहाई रात में। उसके बाद उन्होंने फरमाया ओ मोहम्मद ये नमाज़** (रोज़ाना की पाँच नमाज़ों का वक़्त) **के औकात है तुम्हारे लिए और तुम्हारे से पहले आए पैग़म्बरों के लिए। अब तुम्हारी उम्मत इन पाँचों नमाज़ों को उन दोनों वक़्तों के बीच में पढ़ेगी जैसा कि हमने हर नमाज़ पढ़ी है।**" हम पर हुक्म नाज़िल हुआ है कि हम रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़े। ये हर माँबाप पर लाज़िम (ज़रूरी) है कि जब बच्चा सात साल का हो जाए तो उसे नमाज़ पढ़ने का हुक्म दे और जब वो दस साल का हो जाए तो उसे हाथ मार कर नमाज़ पढ़वाएँ। किसी को तीन बार से ज़्यादा मारने की इजाज़त नहीं है और न ही उसे लकड़ी से मारा जाए। रोज़े के लिए (रमज़ान के महीने में) या नशीली चीज़ों से बचाने के लिए बच्चे पर यही मार का तरीका लागू/नाफिज़ होता है। एक शख़्स जो इस बात से इंकार करता है कि नमाज़ अदा करना एक फर्ज़ है और ये एक मुसलमान का बुनयादी फर्ज़ है तो वो इस्लाम को न मानने वाला (काफिर) बन जाता है। अगर वो मुक़र्रर वक़्त की वजह से नमाज़ नहीं पढ़ सका जबकि उसे पता है कि ये फर्ज़ है तो वो **फ़ासिक** मुसलमान बन जाता है। उसको क़ैद में रखा जाए जब तक कि वो नमाज़ न पढ़ने लगे। ये सब बग़ैर किसी ज़बरदस्ती या माफ़ी के होना चाहिए। अगर वो (रोज़ाना पाँच वक़्त की) नमाज़ पढ़ना शुरू नहीं करता है, तो उसे मरते दम तक क़ैद में रखा जाए। ऐसे भी इन्सान है जो कहते है इसको तब तक मारा जाए जब तक इसका ख़ून न निकल आए। शाफ़ई और मालिकी

मस्लक में, एक शख़्स जो एक नमाज़ छोड़ता है वो काफिर नहीं बन जाता लेकिन उसको सज़ा के तौर पर क़त्ल कर देना चाहिए।एक रिवायत है (औलियाओं की) हनफ़ी मस्लक में वो दोनों है वो काफिर भी है उसे क़त्ल भी कर दिया जाए।शाफई मस्लक में भी कुछ उलेमा इस 'इजतीहाद' को मानते है।अगर एक शख़्स जमात के साथ नमाज़ पढ़ता है तो उसे मुसलमान क़रार देना चाहिए।दूसरों के लिए पहले कोई रूकावट नहीं थी कि वो नमाज़ जमात से पढ़े अल्लाह को मानने वाले अपने आप नमाज़ पढ़ सकते थे।दूसरा इबादत का तरीका जो उनको अदा करना था वो था हज (ज़ियारत) क्योंकि नमाज़ इबादत का ऐसा तरीका है जिसे जिस्मानी तौर पर अदा किया जाता है।एक ई मान वाला दूसरे ईमान वाले के लिए नमाज़ नहीं पढ़ सकता।क्योंकि ज़कात इबादत का ऐसा तरीका है जो जाएदाद के ज़रिए अदा होता है तो एक शख़्स बिना किसी उज़र के दूसरे शख़्स को अपने बदले ज़कात देने का इख़्तियार दे सकता है और उसके लिए पहले शख़्स की उसी की जाएदाद का इस्तेमाल करेगा।क्योंकि हज (ज़ियारत) ऐसा फरीज़ा है जो जिस्मानी और माली दोनों तरह से अदा किया जाता है इसलिए एक शख़्स को अगर कोई उज़र है यानी कोई चीज़ उसके हज करने में रूकावट बने तो वो किसी दूसरे शख़्स को अपनी जगह हज करने भेज सकता है।यानी पहले वाला अपने पैसों से उसे हज्जे बदल करा सकता है।एक बहुत बूढ़ा शख़्स जो अब सारी ज़िन्दगी रोज़े नहीं रख पाएगा वो किसी ग़रीब मुसलमान की जाएदाद जिसे फ़िदया बोलते है हर एक रोज़े (का जो वो रखने में नाकाम रहा) देना पड़ेगा।नमाज़ के बदले फिदया देने की इजाज़त नहीं है।अगर कोई शख़्स नमाज़ अदा करने से क़ासिर रहे तो ये अच्छा है कि उसके मरने के बाद उसकी छोड़ी हुए जाएदाद में से उसकी इबादतों के कर्ज़ो का फ़िदया अदा कर दिया जाए।अगर जो जाएदाद वो छोड़ कर मरा है इस्कात के लिए पूरी नहीं है तो **डाउर** अदा किया जा

सकता है। रोज़े के लिए वैसे भी इस्क़ात वाजिब है। [मेहरबानी करके **सआदते अबदिया** के पाँचवे हिस्से का इक्सिवाँ मज़मून देखिए]

गर्मियों में शुमाली मुल्कों में कुछ जगहों पर जहाँ फज्र (सुबह का वक़्त) शाम के बिल्कुल अंधेरे में डूबने से पहले हो जाए जिसका मतलब रात और सुबह की नमाज़ों का वक़्त कभी शुरू न हो इन दोनों इबादतों को अदा करना ज़रूरी नहीं है। हनफ़ी मस्लक के मुताबिक़। आला मुजतहिद इमाम शाफ़ई 'रहमतुल्लाहु तआला' ने इस इजतीहाद शरीअत को नकारा कि दोनों नमाज़ें पढ़नी चाहिए। हालांकि बहुत सारे उलमाए इस्लाम के मुताबिक़ यानी जो लोग ऊपर बताए हुए हालात से गुज़र रहे है सुबह और रात की नमाज़ पढ़नी नहीं चाहिए। न ही उनको उसकी क़ज़ा अदा करनी चाहिए। दूसरे लफ़ज़ों में उनको बाद में भी दोनों नमाज़ों में से कोई भी नमाज़ नहीं पढ़नी चाहिए इसके लिए, किसी भी नमाज़ के लिए मुक़र्रर वक़्त शुरू नहीं हुआ। ये एक फ़र्ज़ नहीं है कि एक नमाज़ जिसका वक़्त शुरू नहीं हुआ वो पढ़ली जाए। रोज़े के साथ भी ऐसा नहीं है। जब एक मुल्क में चाँद निकल आता है, तो सब मुल्कों में रमज़ान हो जाता है।

जब तुम कोई फ़र्ज़ अदा कर रहे हो और उसमें **हरज** आ जाए या कोई ऐसे काम को नज़र अदांज़ कर रहे हो जोकि हराम है, तुम दूसरे मस्लक की नक़ल को अपना रहे हो (यानी, तीनों मस्लक़ों में से एक) जिसमें हरज मौजूद नहीं होता। हरज का मतलब है कोई चीज़ मुश्किल के साथ करना या फिर सिरे से उसको करने के लायक न होना। अगर तीनों मस्लक़ों में कोई भी एक हरज से आज़ाद नहीं है और अगर हरज दरूरत [एक ज़रूरत सामवी है (वेइरादाह जो तुम्हें कुछ करने के लिए मजबूर करे या जो इसे छोड़ने के लिए नामुमकिन बना दे यानी एक हालत जो तुम्हारी इच्छा से परे हो।] के बदले पैदा हुआ तो फिर तुमको उस फ़र्ज़ को अदा करने से छूट मिल जाएगी या फिर उस

हराम से बचो अगर उसकी मौजूदगी दरूरत (ज़रूरत) के बदले नहीं है तो तुम्हें उस हरज से निकलना होगा मेहरबानी करके **सआदत-ए-अबदिया** के चौथें हिस्सें का चौथा मज़मून देखिए!

एक मुसलमान जिसको सुबह की नमाज़ की देर हो गई (सुन्नत की) तो वो सुन्नत को छोड़ सकता है ऐसा न ही उसकी (सुबह की नमाज़ पढ़ने से) जमात छूट जाए। वो वाजिब तौर पर सुन्नत छोड़ सकता है (सुबह की नमाज़ का हिस्सा) ऐसा न हो वो वक़्त गंवा है। (जिस वक़्त में सुबह की नमाज़ अदा की जाए) अगर वो (अदांज़ा लगा लिया) जमात के साथ नमाज़ पढ़ सकता है तो वो सुन्नत मस्जिद (के) बाहर एक खम्बे के पीछे (मस्जिद के अंदर-अंदर) पढ़ सकता है। अगर वहाँ पर कोई ऐसी जगह नहीं (सुन्नत पढ़ने के लिए) तो वो सुन्नत को छोड़ सकता है। फिर पढ़ सकता है (जहाँ मुसलमान पढ़ रहे है) जमात के पास। मकरूह से बचने के लिए सुन्नत को छोड़ना होगा।

फर्ज़ नमाज़ें जो किसी उज़र की वजह से छूटी उन्हें **फ़ौत** हो जाना कहते है जिसका मतलब है (फर्ज़) नमाज़ें जोकि तुम पढ़ने में नाकाम रहे। (बताए हुए वक़्त पर) नमाज़ें आलस की वजह से और बग़ैर किसी उज़र के छोड़ी गई उन्हें **मकरूहात** कहते है जिसका मतलब है जो बग़ैर वजह के छोड़ी गई। फ़िकाह के आलिमों ने उन नमाज़ों को जो (किसी उज़र की विना पर भूल गए) क़ज़ा फ़ौत (ख़त्म हो जाना) कहा है बजाए छोड़ी हुई नमाज़ों के। उसके लिए ये बड़ा गुनाह है के नमाज़ बिना किसी उज़र के उसके बताए हुए वक़्त पर न पढ़े। ये गुनाह (सिर्फ) क़ज़ा अदा करने से माफ नहीं होगा (यानी बाद में अदा किया और कर्ज़ दे दिया) इसके साथ ये ज़रूरी है के तौबा की जाए और एक हज्जे मबरूर किया जाए। जब क़ज़ा नमाज़ पढ़ी जाए (यानी जब बाद में छोड़ी हुई नमाज़ पढ़ी जाए और कर्ज़ अदा किया जाए।) जो एक गुनाह माफ़ किया जाएगा वो आपकी नमाज़ छोड़ने की वजह से

नागवार हो जाएगा न के नमाज़ को (बताए हुए वक़्त में) पढ़ने की वजह से। बग़ैर कज़ा अदा किए तौबा मांगी जाए (यानी कर्ज़ दिये बग़ैर) सही नहीं है (यानी ये तौबा जायज़ नहीं है) तौबा के लिए (किसी ख़ास गुनाह) ये शर्त लागू होती है के जिस गुनाह में शामिल हो उसे पूरी तरह छोड़ दो।

पाँच 'उज़र' है (इस्लाम ने अच्छी वजूहात दी है) जिनसे नमाज़ को बताए गए वक़्त से आगे बढ़ाया जा सकता है। अगर दुश्मन घेर ले, तो एक शख़्स चाहे वो क़िब्ले की तरफ से अलग बैठा है या पीठ मोड़ा हुआ है तो वो नमाज़ नहीं पढ़ सकता, अगर एक मुसाफ़िर (यानी एक शख़्स लम्बी यात्रा पर रवाना हुआ) सफ़र पर है उसको रास्ते में चोर, डाकूओं या लूटेरों के ज़रिए पकड़ें जाने का खौफ़ हो, अगर एक दाई को माँ या उसके बच्चे के मर जाने का अंदेशा हो तो इन लोगों (तीनों) के लिए ये एक उज़र है के वो नमाज़ को मुल्तवी कर दें। चौथा उज़र है भूलना और पाँचवा उज़र है अगर वो सो जाए। ये एक **अदा** (या ईदा) [एक ख़ास नमाज़ को **अदा** करने का मतलब है उसको उसके मुक़र्रर किए गए वक़्त में पढ़ना। **कज़ा** पढ़ने का मतलब है के उसके वक़्त ख़त्म होने के बाद पढ़ना।] है। हनफ़ी मस्लक में तक़्बीर इफतिताह को पूरी तरह से किया जाए और शाफ़िई मस्लक में बताए गए वक़्त के होने से पहले एक रकात (नमाज़ की) पढ़ली जाए।

सब (फर्ज़) नमाज़ों की कज़ा पढ़ना फर्ज़ है और वाजिब की कज़ा वाजिब है। अगर कोई शख़्स सुन्नत की कज़ा नमाज़ पढ़ता है तो वो (इस नमाज़ की) सुन्नत के लिए सवाब कमाता है। ये ज़रूरी है के रिवायत के हुक़्म को माना जाए जब पाँच वक़्त की नमाज़ की इबादतों के फर्ज़ और वित्र को अदा किया जाए और साथ में उनकी कज़ा भी पढ़ी जाए। ये उसूल उस वक़्त लागू नहीं होता जब नमाज़ का वक़्त बिल्कुल ख़त्म होने वाला हो। दूसरे लफ़्ज़ों में, जो मौजूद नमाज़ का वक़्त है, उसे कज़ा (यानी छोड़नी) नहीं चाहिए, जो

पिछली नमाज़ें छोड़ी हुई है उनको पढ़ने के लिए (यानी वो नमाज़ पढ़ना जो पहले इवादत वाले वक़्त की और जो तुमने छोड़ दी थी।) एक और वाक्या जो इस उसूल को कमज़ोर करता है, तुम्हारे लिए के तुम भूल जाओ फ़ौत नमाज़ों को (यानी नमाज़ें जो तुम्हारी रह गई या छूट गई।) या फिर फ़ौत नमाज़ों का नम्बर छः बन गया। तरतीब (यानी पाँच नमाज़ों का उसूल) तब तक नहीं आएगी जब तक के नम्बर छः से नीचे न गिर जाए। हालांकि फर्ज़ नमाज़ें बिना तरतीब के पढ़ी जाए तो फ़ासिद हो जाती है (जिसका मतलब है टूट जाती है) अगर उनका नम्बर छः हो जाता है तो सारी सही (लागू) हो जाती है जब पाँचवी नमाज़ का वक़्त पूरा हो जाता है। मिसाल के तौर पर मान लिजिए एक शख़्स जिसने सुबह की नमाज़ नहीं पढ़ी लेकिन जुहर की, और अस्र की, और शाम की और रात की और वित्र की नमाज़ें पढ़ी। (बिना सुबह की नमाज़ पढ़े।) हालांकि उसे याद है, उसने सुबह की नमाज़ नहीं पढ़ी, उनमें से कोई एक भी सही नहीं, जब सूरज निकलता है (दूसरी सुबह) तो तब तक सब सही हो जाता है।

जितनी जल्द हो सके फ़ौत नमाज़ों की कज़ा पढ़ लेनी चाहिए। उनको टालने (मुल्तवी) की सिर्फ उस वक़्त तक इजाज़त है जब तक कि तुम अपने खानदान के ज़िन्दा रहने के लिए कुछ हासिल न करलो और रोज़ाना की पाँच नमाज़ों की सुन्नत को अदा न करलो और नमाज़ों में दुआ और तस्बीह (या अल्लाह की बड़ाई) और तहीयातूल मस्जिद [ये सारी इबारतें **सआदते अबदिया** के छठे फैसिकल में बताई गई है।] न पढ़ लो। इब्ने आबिददीन ने उस हिस्से में जहाँ वुज़ू की सुन्नतों के बारे में लिखा है उन्होंने उसमें इर्शाद फरमाया है इजाज़त का मतलब है बंद नहीं किया हुआ। एक रूकन जो के मकरूह तन्ज़ीही है (उस काम को कहते है जिसको छोड़ने से सवाब है और करने में अज़ाब तो नहीं लेकिन एक तरह की बुराई है।) वो (औलिया-ए-इस्लाम के ज़रिये) वाजिब है। यहाँ ये ज़रूरी है के उन चीज़ों को न किया जाए जो जायज़ बताई

गई है फिर भी क़ज़ा नमाज़ों को पढ़ने में देर नहीं करनी चाहिए ऐसी सुन्नत नमाज़ों को पढ़ने के लिए। रमज़ान में जो रोज़े तुम रखने में नाकाम रहे उनकी क़ज़ा करने में कोई जल्दी मत करो।

एक शख़्स जो इस्लाम को अपनाता है (काफिरों के देश में) दारूल-हरब में तो उन्हें क़ज़ा नहीं अदा करनी पड़ेगी (फर्ज़ इबादतों की जैसे) नमाज़, रोज़ा और ज़कात की जो उसने बताए हुए वक़्त पर अदा नहीं की क्योंकि उन्हें मालूम नहीं था। हालांकि उन लोगों के लिए जो (मुसलमान मुल्क) यानी दारूल-इस्लाम में रहते है उन कामों को न जानना जो फर्ज़ है या हराम है ये कोई उज़र वाली बात नहीं है। अगर एक मुरतदीद (यानी काफिर जिसने इस्लाम को छोड़ दिया) फिर दोबारा ईमान ले आया तो उसने जो नमाज़ें अपनी मासियत के दौरान नहीं पढ़ी थी उनकी उसे क़ज़ा नहीं पढ़नी क्योंकि इस्लाम ख़ुद काफिरों से कलाम नहीं करता। अगर एक साबे (एक बच्चा जो अभी नाबालिग की उम्र में है उस पर इस्लाम का फरमान लागू नहीं होता) रात की नमाज़ पढ़ता है (उसके बाद सो जाता है और) और फिर एहतिलाम की हालत हो जाता है उसके बाद फज्र (सुबह) में उठता है, तो उसको क़ज़ा (पिछली रात की) नमाज़ अदा करनी होगी (यानी, रात में जो नमाज़ उसने पढ़ी) जो नमाज़ उसने पढ़ी थी (पिछली रात) वो नफ़िलें थी। (जुमा से पहले और उसके बाद की इबादतें) वो उसके लिए फर्ज़ बन गई क्योंकि वो सो गया था। अगर ऐसी नमाज़ें है जो सेहतमंदी में नहीं पढ़ी तो तुम पर वाजिब है के बीमारी की हालत में तय्यम्मुम [**एण्डलैस बिलिस** के पाँचवें बाब के चौथे फ़ैसिकल में तयम्मुम के बारे में पूरी जानकारी है। पाक मिट्टी या किसी ऐसी चीज़ से जो मिट्टी के हुक़्म में हो बदन को नजासत हुकमिया से पाक करने को तयम्मुम कहते है।] करके ई मा [इसका मतलब है इशारों से नमाज़ अदा करना।] (इशारे से) के साथ उन नमाज़ों की क़ज़ा अदा करे। एक चार रकात की नमाज़ क़ज़ा के लिए रह गई तो उन चारों रकातों की तुम्हें क़ज़ा पढ़नी पढ़ जाएगी चाहे तुम (लम्बी यात्रा में

हो) सफ़र में हो। सफ़र के दौरान में (लम्बी दूरी की यात्रा) अगर दोपहर की नमाज़ की चार रकात फर्ज़ कज़ा के लिए रह गई तो कज़ा हो गई तो चाहे तुम मुक़ीम (ठहर जाओं) हो जाओं तुम्हे उसकी दो रकात कज़ा ही अदा करनी पड़ेगी। जब तुम (शुरू करते हो) दोपहर की नमाज़ की फर्ज़ अदा करते हो तो नीयत करते हो, कि, "आज की दोपहर की फर्ज़ (नमाज़) या, सिर्फ "दोपहर की फर्ज़ नमाज़ अदा करता हूँ।" अगर एक से ज़्यादा कज़ा नमाज़ें (छोड़ी हुई) है (तो उनकी एक-एक करके कज़ा अदा की जाएगी), तुम्हें अपनी नीयत इस तरह करनी होगी, "जितनी ज़ुहर की फर्ज़ नमाज़ों की कज़ा बाक़ी है उनमें से सबसे पहली कज़ा नमाज़ (यानी जो मुक़र्रर वक़्त में नहीं पढ़ी गई)" या फिर "ज़ुहर की जितनी आख़िरी नमाज़ों की कज़ा बाक़ी है उनमें से सबसे आख़िरी फर्ज़ नमाज़ की कज़ा पढ़ता हूँ।" इसी तरह तुम हर कज़ा को अदा (शुरू) करो, दूसरी तरफ कई दिनों के रमज़ान के रोज़ों की कज़ा भी एक-एक करके करनी चाहिए, उनमें वक़्त की पाबंदी करना कोई ज़रूरी नहीं है।

जैसे ही तुम कज़ा नमाज़ें (जो तुमने बताए गए वक़्त में नहीं पढ़ी बग़ैर किसी जायज़ वजह या उज़र के और जिसे) मकरूह (छोड़ी हुई, ख़त्म की हुई) नमाज़ भी कहते है, वो तुम्हें किसी को पता नहीं लगने देनी है, क्योंकि नमाज़ उसके बताए गए वक़्त पर न पढ़ना गुनाहे अज़ीम बहुत बड़ा गुनाह है। ये भी अपने आप में एक गुनाह है के दूसरों को अपने इस गुनाह के बारे में बताना। दूसरा गुनाह से भरा हुआ काम ये है के पिछली रात में जो गुनाह तुमने किया उसे दिन में दूसरे लोगों को बताना। यहाँ इब्ने आबिदीन से जो तर्जुमा हमने लिया वो ख़त्म होता है।

जैसा कि देखा गया है हनफ़ी मस्लक में फ़ौत नमाज़ों की कज़ा जल्द से जल्द अदा कर दी जाती है। यही उसूल शाफ़िई मस्लक में भी लागू होता है। शम्स-उद-दीन 'रहमतुल्लाहि अलैहि' शाफ़िई मस्लक के इस्लामी मौलवी ने

अपनी फ़तवों की किताब में फरमाया: "अगर एक शख़्स को किसी उज़र की वजह से नमाज़ें नहीं पढ़नी है तो ये उसके लिए कोई गुनाह की बात नहीं है। ये कोई गुनाह नहीं है के रमज़ान के बीच में तरावीह की नमाज़ पढ़े और रमज़ान के बाद अपनी फ़ौत नमाज़ों की कज़ा अदा कर ले। हालांकि ये उस शख़्स के लिए गुनाह वाली बात है के वही चीज़ करने के लिए वो बग़ैर उज़र के नमाज़ें छोड़े।" छोड़ी हुई नमाज़ों के लिए जल्द से जल्द कज़ा अदा कर लेनी चाहिए। शाफिई मस्लक में इस्लामी मौलवियों ने खुले तौर पर फरमाया है, बिना उज़र के छोड़ी हुई नमाज़ की कज़ा अदा करने से पहले अगर सुन्नत नमाज़ें जैसे तरावीह पढ़ली तो ये एक गुनाह है। हनफ़ी मस्लक में भी यही उसूल लागू होता है। हनफ़ी मस्लक का उसूल भी इस बात को जायज़ क़रार देता है के तुम अपनी फ़ौत नमाज़ें (बताए हुए वक़्त में पढ़ने में नाकाम) रहे उनकी कज़ा किसी उज़र की वजह से अदा करने में देरी कर सकते हो। ये इस सच्चाई को बतलाता है के ये अच्छा रहेगा जो तुम उनकी कज़ा अदा करने में देरी नहीं करोगे। इजाज़त के लिए (का मतलब है) यहाँ उस पर कोई रोक/बंदीश नहीं है। इब्ने आबिदीन 'रहमतुल्लाहि तआला' ने इर्शाद किया है: "...इजाज़त (जायज़) है के बेहते हुए पानी को इस्तेमाल करके खूब जाया करो," क्योंकि "ये मकरूह तनज़ीही (या तनजीही) है...।" जबके ये अच्छा है के जो कज़ा नमाज़ें तुमने किसी उज़र की वजह से छोड़ी है उन्हें पढ़ने में जल्दी करो ये लाज़िम है के सुन्नत रोज़ाना की पाँचों नमाज़ के बदले तुम उन नमाज़ों को पढ़ लो जो तुमने बिना किसी उज़र के छोड़ी है। इब्ने आबिददीन 'रहमतुल्लाह तआला' ने फरमाया: "जब तुम वुज़ू करते हो धोते हो तो ये सुन्नते मुअक्किदा है धोना (वुज़ू में जिस्म के हर हिस्से को धोना) तीन बार। महंगा पानी, ठंडा पानी और पानी हाजत या क़िल्लत के उज़र की वजह से इस सुन्नत को छोड़ देना मकरूह नहीं है।" ये इस सच्चाई की तरफ इशारा करता है, के इस ख़तरनाक गुनाह की हालत से निकलने के लिए तुम्हे छोड़ी हुई नमाज़ों की कज़ा

अदा करनी होगी (रोज़ाना की पाँचों नमाज़ों की) सिवाए फज्र की नमाज़ के। सुन्नतों के बदले क़ज़ा नमाज़ें कैसे अदा करें ये नमाज़ की एहमियत के आख़िरी बाब में बताया जाएगा।

मैय्यत की इस्क़ात नमाज़ें

[नमाज़ की इस्क़ात (ख़त्म) होने का मतलब है के मरने वाले को उसकी नमाज़ों के कर्ज़ों से छुटकारा दिलाना। इसको करने के लिए उसकी (छोड़ी हुई या छुटी हुई) नमाज़ों का कफ़्फ़ारा [बराए मेहरबानी कफ़्फ़ारे की तफ़सीर के लिए **सआदते अबदिया** के छठे गुन्चे के तेरवेंह बाब को जाँचिए।] देना होगा। इस कफ़्फ़ारे की अदाएगी के लिए ज़रूरी है के मरने वाले ने अपनी वसीयत में ये इच्छा ज़ाहिर की हो और उसे पूरा करने के लिए अच्छा ख़ासा सरमाया छोड़ा हो। दूसरे लफ़्ज़ों में जो उसने अपने पीछे जाएदाद छोड़ी है वो एक तिहाई जाएदाद से कम नहीं होनी चाहिए जो रक्म कफ़्फ़ारे के लिए चाहिए उससे कम नहीं होनी चाहिए। कफ़्फ़ारा या तो मरने वाले का वली या जिसे मरने वाले ने अपनी वसीयत सौंपी है और अपनी जाएदाद का करता धरता बनाया है या फिर उसको जो वारिस है वो अदा कर सकते है। इस्लाम में चार तरह के वली (सरपरस्त) है। मरने वाले (मैय्यत) का वली, एक यतीम (अनाथ) का वली, उस औरत का वली (जिसकी शादी) निकाह (और जो **सआदते अबदिया** के पाँचवे गुन्चे के बारवें बाब में खोल कर बताया गया है) होना है और एक बन्दे या जारिया/दासी का वली, आख़िरी (चौथा) वली को **मौला** कहते है। इन चार वलियों के अलावा भी वली है। अल्लाहु तआला के वली जिन्हें अल्लाहु तआला बहुत चाहता है। इस चाहत को पाने के लिए उन्हें अपनी बातों में, हरकतों में, उसूलों में अल्लाहु तआला और मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की ताबेदारी करनी होगी और उनकी तालिमात पर चलना

होगा। ये सारी तालिमात एक सच्चे मौलवी से हासिल की जा सकती है। एक शख़्स जो किसी इस्लामी मौलवी को ढूढने में नाकाम रहे तो वो ये सब उन किताबों से सीख सकता है जिन्हे अहले सुन्नत के मौलवियों ने लिखा है। **इब्ने आबिददीन** 'रहमतुल्लाहु तआला' ने इर्शाद फरमाया: "अगर एक शख़्स की फ़ौत नमाज़ें रहती है यानी वो नमाज़ें जो उसने किसी उज़र की वजह से न पढ़ी हो उनके हुक़्म दे सकता है (अपनी आख़िरी वसीयत में) के उनका कफ़्फ़ारा अदा कर दिया जाए। आधा सेर **[2.1** लीटर**]** या **520** दरहम **[1750** ग्राम**]** गेहूं या गेहूं का आटा गरीबों में बाँट दिया जाए, इन फर्ज़ या वाजिब नमाज़ों का, ये सब सिर्फ एक गरीब आदमी को दे दिया जाए। ये अच्छा है के इसकी क़ीमत (सोने या चाँदी) में दे दी जाए। अगर वसीयत करने वाले ने अपने पीछे कोई जाएदाद नहीं छोड़ी या एक तिहाई जाएदाद जो छोड़ा वो कफ़्फ़ारे की अदाएगी के लिए पूरा नहीं है या कम है या फिर वो बग़ैर वसीयत किए मर गया और उसके वली (सरपरस्त) एक छोटी सी रक़्म कफ़्फ़ारे के तौर पर अदा करते है और क्योंकि जो रक़्म एक रोज़ के हिसाब से बनी है वो **1750** X **6** = **10500** ग्राम या साढ़े दस किलो **[10.5]** किलोग्राम गेहूँ पूरे साल की क़ीमत = **3780** के.जी. गेहूँ [या, -पहले से साढ़े दस किलो गेहूँ की क़ीमत एक ग्राम सोने के बराबर है- सोने के सिक्के इसकी क़ीमत के बराबर यानी **52**।**5** सोने के सिक्के या **60** सोने के सिक्के असली या दूसरी सोने की चीज़े उसके वज़न के बराबर **[432]** ग्राम] जैसे- कंगन, अंगूठियाँ और उसके जैसा समान] इस बात को भी नज़र में रखा जाए के (मरने वाले ने) जो नमाज़ें पढ़ी गई है पूरी तरह से, उनमें से बचपने के दिन बारह साल आदमी के लिए और नौ साल औरत के लिए घटा दिए जाए और उसके बाद उन सालों का हिसाब लगाया जाए जिनके लिए मरने वाला मुकल्लफ़ (यानी नमाज़ पढ़ने योग्य) था। क्योंकि रोज़ की नमाज़ों का नंबर जिनके लिए कफ़्फ़ारा अदा करना है वो छः है। उसने **[3780** किलोग्राम**]** गेहूँ या साठ सोनें के सिक्कें खरीदें जो अच्छी

पसंद है जोके शम्सी साल के कफ़्फ़ारों के लिए ज़रूरी है। वो इसे किसी गरीब मुसलमान को दे सकता है क्योंकि उसने (मैय्यत की) ख़त्म हुई नमाज़ों का कफ़्फ़ारा अदा करने की नीयत की है। जो ग़रीब आदमी है वो एक समझदार, अकलमंद, सालिह (पाक) और मर्द मुसलमान हो। ये ग़रीब शख़्स कहेगा, "**मैं कुबूल करता हूँ,**" और लेता हूँ। उसके बाद वो उसे तोहफे की तरह वारिस को दे देगा। वारिस उसको लेगा और उसे या तो उसी ग़रीब को दे देगा। यही सिलसिला इन सालों में कई बार चलेगा जिसमें मैय्यत मुकल्लफ़ (नमाज़ें पढ़ने के लायक़) थी। अगर जो सोना खरीदा गया वो ज़्यादा है (बताई गई रक्म से) तो जो दौर (वक़्त) चलेगा वो एक दूसरे के हिसाब से तब्दील हो जाएंगे। अगर सोने के सिक्के मौजूद नहीं है, तो जो वली है वो किसी औरत से सोने के ज़ेवर जैसे कंगन, अंगूठी खरीदेगा उसका वज़न करके अलग कर ले। (जिन सालों में उसने नमाज़ नहीं पढ़ी उसे 7.2 ग्राम से गुणा कर दें) और उस अलग की हुई रक़्म को एक रूमाल में बाँधकर रख दे, इस तरह मैय्यत ने जितने साल की नमाज़ अदा नहीं की उसने सोने के सिक्के उसमें रखे हो। उस नंबर को साठ से गुणा करके जो हासिल हो उसे ग़रीब लोगों में तकसीम कर दें। जो इस दौर में हिस्से ले रहे हो और हर फेरे को पूरा कर रहे है अगर जो सोना मौजूद है वो कम है, तो पहले वाली हालत में आधे सोने को तोला जाएगा। फिर दो बार फेरे लगाए जाएगें। जो अदमी साठ साल की उम्र में मरा तो 60 X 48 X 7.2 = 20736 ग्राम सोना एक ग़रीब आदमी को देना चाहिए। एक साल की इस्क़ात नमाज़ों के लिए साठ सोने के सिक्कों का खर्चा है। तीस दोर 100 ग्राम सोना और सात ग़रीब लोगों से मिलकर बनेगा। या 43 दोर 70 ग्राम सोना और सात ग़रीब लोगों से मिलकर बनेगा। जब दोर पूरा हो जाएगा तो आख़िरी शख़्स वली (सरपरस्त) को तोहफे में सोना देगा, जो अपनी बारी में उसका कर्ज़ अदा करेगा। उसके बाद रोज़े, कुरबानी और कसमों का दौर चलेगा। इस तरह कम से कम एक कसम का दोर पूरा करने के कोई

दस लोगों की ज़रूरत पड़ेगी और हर दिन के हिसाब से एक शख़्स को आधे सेर से ज़्यादा न दिया जाए। हालांकि, यहाँ पर एक शख़्स को कई नमाज़ों के कफ़्फारे एक दिन में अदा करने है न के एक वक़्त में। अगर मैय्यत ने अपनी वसीयत में ज़कात का कफ़्फारा अदा करने का हुक़्म नहीं दिया है तो उसे अदा नहीं किया जाएगा। मरने वाले ने अपनी वसीयत में इसका हुक़्म दिया हो। हालांकि ये शर्त रोज़ों में भी लागू नहीं होती तो वली के लिए ये अच्छा है के वो ज़कात का कफ़्फारा चाहे तो अपनी जाएदाद में से दे दे। सारे दोर पूरे होने के बाद वारिस अपनी थोड़ी सी जाएदाद या दौलत उस ग़रीब शख़्स (जिसने कफ़्फारों में हिस्सा लिया) को तोहफे के तौर पर दे सकता है।

"अगर मरने वाले ने अपने कफ़्फारे पूरे करने के लिए जो एक तिहाई जाएदाद वसीयत के तौर पर छोड़ी है वो उसके सारे कफ़्फारें फराइज़ अदा करने के लिए पूरी नहीं है तो वली (सरपरस्त) बग़ैर वारिसों की इजाज़त के इन कफ़्फारों को अदा करने के लिए एक तिहाई से ज़्यादा (मैय्यत ने जो जाएदाद छोड़ी है) जाएदाद खर्च नहीं कर सकता। अगरचे एक तिहाई जाएदाद कफ़्फारे अदा करने के लिए काफ़ी है और अब तक मरने वाला का कर्ज़ बाक़ी है तो कर्ज़ की अदाएगी कफ़्फारे अदा करने से पहले वाजिब है। चाहे सरपरस्त ने उसे इस्क़ात नमाज़ों के लिए क्यों न दे दिया हो। सरपरस्त के सब बकाया अदा करने के बाद, वो किसी को (वापस) तोहफा नहीं दे सकता ताकि कफ़्फारा अदा किया जा सके। कफ़्फारा (पूरा करने के लिए) तभी सही होगा जब वारिस अपनी जाएदाद दान में दे दे। अगर एक मरने वाला (मैय्यत) अपनी सारी ज़िन्दगी की नमाज़ों का कफ़्फारा अदा करने का हुक़्म अपनी वसीयत में दे दे और अभी तक ये पता नहीं लगा के वो कितना जिऐगा तो (उसका वही हिस्सा) उसकी वसीयत बातिल (बेकार) हो जाएगी। हालांकि, अगर एक तिहाई रक़्म उस नापी हुई रक्म से कम हो जो उसकी सारी ज़िन्दगी के लिए काफ़ी है, तो वो हुक़्म दे सकता है कि पूरी एक तिहाई जाएदाद दे दी

जाए, इस हालत में (उस हिस्से के लिए) उसकी वसीयत में एक रक्म तए कर दी जाए (उस हिस्से के लिए) जिसके लिए उसकी वसीयत सही (जायज़) हो जाएगी।

"[फिर भी मरने वाला अगर अपनी वसीयत में हुक्म दे (के कफ़्फ़ारे अदा किए जाए), ये वली [यानी वारिस या वसी (काम को पूरा करने वाला) के ऊपर वाजिब नहीं है के वो दान करके कफ़्फ़ारे अदा करे।] ये मैय्यत के लिए वाजिब है के वो अपने पीछे इतनी जाएदाद छोड़ जाए जिसमें से एक तिहाई उसके कफ़्फ़ारे अदा करने के लिए काफ़ी हों और वो अपने वसीयतनामें में ये ताक़ीद करे के उसके कफ़्फ़ारे उसी एक तिहाई में से अदा किए जाए। अगर वो ये हुक्म देता है के एक हिस्से से उसका कफ़्फ़ारा अदा किया और बाक़ी उसके वारिसों या दूसरे लोगों में बाँट दिया जाए तो वो वाजिब की हद को फलांगता है जो के एक गुनाह का काम है। इस मामले में ये सही नहीं है के कहा जाए इस एक तिहाई में से एक हिस्सा कफ़्फ़ारे अदा करने में और बाक़ी हिस्सा कुरआन-उल-करीम के ख़त्म और तहलीलो पर लगाया जाए। इसके अलावा कुरआन-उल-करीम को पैसे के बदले पढ़ना (क़िरअत) करना सही नहीं है। जो पैसा दे रहा है और जो पैसा ले रहा है वो दोनों शख़्स गुनाहगार है। अगरचे ऐसा बयान किया गया है (कुछ आलिमों के ज़रिए) के कुरआन करीम को पैसे लेकर सिखाने की इजाज़त है लेकिन ऐसा किसी ने नहीं कहा (यानी किसी भी आलिम ने) पैसें लेकर कुरआन को पढ़ने या उसकी क़िरत करने की इजाज़त है।

"अगर मैय्यत अपनी वसीयत में हुक्म दे के उसकी नमाज़ें (यानी वो जो उसने नहीं पढ़ी) उसका वारिस पढ़ दे तो ये सही (जायज़) नहीं है के वारिस उसकी (यानी, मरने वाले की) कज़ा नमाज़ें पढ़े। हालांकि, ये सही है के एक शख़्स नमाज़ पढ़े या रोज़ा रखे और उसका सवाब जो उसे मिलेगा वो

मरने वाले को तोहफे के तौर पर पहुँचा दे। इसकी भी इजाज़त नहीं है के एक आदमी मरते वक़्त या बिस्तरे-मर्ग पर अपनी नमाज़ों का फ़िदया अदा करे।" यहाँ इब्ने आबिददीन से जो हवाला लिया गया वो ख़त्म होता है।

अहमद तहतवी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' ने अपनी (किताब जिसका नाम है) **मीराक़-इल-फ़लाह** की तफसीर में इर्शाद फरमाया है: "नास में फरमाया गया है (यानी साफ मायनों में आयते करीमा और हदीस शरीफ़ें) के जिन रोज़ों को (बताए गए वक़्त) में रखने में नाकाम रहे उनका कफ़्फ़ारा अदा करने के लिए फ़िदया अदा किजिए।" सारे उल्माए दीन ने इसके बारे में एक राए होकर इर्शाद फरमाया है। "चूंकि नमाज़ रोज़े से ज़्यादा अहम है इसलिए नमाज़ पर भी वही उसूल लागू होता है।" इसलिए इर्शाद हुआ, "नमाज़ों की इस्क़ात ऐसे है जैसे कोई चीज़ बैग़र बुनियाद के", उसके ऊपर (जो शख़्स) मज़हबी है उनके लिए ये जहालत की रसीद है। ये ऐसा इर्शाद है जो उलेमाओं की सामूहिक राए के सच को झूठलाता है।

अगर एक शख़्स लेटकर सिर के इशारे से भी नमाज़ नहीं पढ़ सकता तो वो उनका अपनी वसीयत में फरमान जारी नहीं कर सकता चाहे वो (रोज़ाना) की पाँच नमाज़ों से भी कम हों। इसी तरह अगर एक शख़्स रोज़ा रखने में नाकाम रहा क्योंकि (लम्बे सफ़र में था) या बीमार था और इक़ामत (यानी एक जगह पर मुक़ीम होना) का वक़्त नहीं मिला था हालते सेहत की वजह से रोज़ों का कर्ज़ अदा नहीं हुआ तो उसकी इस्क़ात वो अपनी वसीयत में नहीं कर सकता। वसीयत (यानी अपने वसीयत नामें में फरमान) जारी करे वाजिब है, सदका-ए-फितर (जो देने में नाकाम रहा) बीवी के खर्चे पानी की जो जुर्म किए हज के लिए एहराम बाँधने के बाद, ज़कात जो क़सम के कफ़्फ़ारे के लिए दी जाए। अगर एक शख़्स बग़ैर वसीयत जारी किए मर जाता है तो इनशाहअल्लाह उसके वारिसों को या दूसरे किसी भी शख़्स को इजाज़त

होगी के उसके लिए दान करे। अगर एक शख़्स मैय्यत अपनी वसीयत में हज करने के लिए कहे तो उसका वकील (नाईब) मैय्यत के शहर से या जहाँ से वो एक तिहाई माल जो उसने छोड़ा है वो खर्च कर सकता हो बहरहाल ये दानी के ऊपर है के वो अपनी जगह पसंद या तए कर सकता है के कहाँ से हज पर जाया जाए। ये सही नहीं है के कोई भी शख़्स मरने वाले की नमाज़ पढ़ले या उसके रोज़े रखले चाहे पैसे से या मुफ़्त में क्योंकि खालिस बदनी इबादतें यानी रोज़ा नमाज़ कोई भी किसी दूसरे की तरफ से अदा नहीं कर सकता। हाँ उनका फ़िदया दे सकता है। इस सिलसिले में जो हदीस शरीफ है वो सब मनसूख है। इस मौके पर ज़कात जो कफ़्फ़ारे के तौर पर दी जा रही है उससे अल्लाहु तआला मैय्यत के सारे कर्ज़ माफ़ कर देता है (इबादत के मुताबिक़ जो काम है) शाफ़िई की किताब **अनवार** में बयान है: "मरने वाले पर छोड़ी हुई नमाज़ों का फ़िदया वाजिब नहीं है। अगर फ़िदया दे दिया जाता है तो फिर वो इस्क़ात नहीं होती। मालीकी या शाफ़िई मुसलमान हनफ़ी मस्लक की नक़ल करते हुए दोर अदा करते है।

अगर जो जाएदाद की रक्म मैय्यत ने अपनी वसीयत में फरमाई है वो कफ़्फ़ारे अदा करने के लिए पूरी नहीं है या अगर एक तिहाई जाएदाद/तरका जो उसने छोड़ा है वो पूरा नहीं है या वो बिना वसीयत किए मर गया, उस छोटी सी जाएदाद से जो किसी ने दान की है उसका दोर बनाया जाएगा ताकि उसके कर्ज़ो का इस्क़ात पूरा हो सके। ये छोटी सी रक्म इस्कात की नीयत से एक ग़रीब आदमी को दे दी जाती है। वो ग़रीब आदमी उसको लेने के बाद, वली को या किसी दूसरे ग़रीब आदमी को तोहफे में दे देता है, जो अपनी बारी में इस पर कब्ज़ा करता है यानी इसे हाथ में लेता है, उसके बाद वो मैय्यत के कर्ज़ो की इस्क़ात की नीयत से (उन सब इबादतों जैसे नमाज़ और रोज़े) दूसरे ग़रीब आदमी को ज़कात के तौर पर दे देता है। यहाँ हम तहतवी 'रहमतुल्लाह अलैहि' की तफ़सीर का हवाला ख़त्म करते है।

जुमे का अहतमाम

जुमे की नमाज़ सही होने के लिए सात शर्ते है:

1- जहाँ जुमे की नमाज़ होती है उस जगह का शहर की तरह बड़ा होना।

2- खुत्बा (तहरीरी तक़रीर) का पढ़ना।

3- नमाज़ से पहले खुत्बा पढ़ना।

4- जुमे की नमाज़ के लिए जुहर का वक़्त होना।

5- जमाअत का मौजूद होना।(वो ये के इतने लोगों का होना के जमाअत बन सके [मुसलमानों का इकट्ठा होना] जुमे की नमाज़ जमाअत से पढ़ने के लिए) इमामे आज़म और इमाम मोहम्मद 'रहमतुल्लाह अलैहि तआला' ने इमाम के लिए फरमाया के वो ऐसा शख़्स हो जो (बालिग़ हो और अकलमंद हो, कम से कम वहाँ पर तीन लोग हो और इमाम अबू यूसुफ़ 'रहमतुल्लाह अलैहि तआला' के मुताबिक़ इस नवंर में दो लोगों के साथ इमाम भी शामिल है।तराफ़ैन का क़ौल ज़रूरी है।(इमाम आज़म अबू हनीफ़ी और उनके नवाज़े गए शार्गिद इमाम मुहम्मद को 'तराफ़ैन' कहा जाता है।

6- सबको अज़ादी होना जुमे की नमाज़ में शरीक होने की।

फत्वे की किताब **हिन्दिया** में इर्शाद है: "जुमे की नमाज़ आज़ाद बालिग़ समझदार सेहतमंद और मुकीम (जो सफ़र में न हो) मर्दो पर फर्ज़ है।इसी तरह मुसाफ़िरों (लम्बी यात्रा करने वाले), नाबालिग़ों और औरतों पर जुमे की नमाज़ फर्ज़ नहीं है।उन आदमियों पर भी ये फर्ज़ नहीं है जो

ख़तरनाक बारिश में फँसने के डर से बाहर न निकलें या सरकारी अफ़सरों से पकड़े जाने के डर से। हाक्मि या आला अफ़सर अपने नीचे काम करने वालों को जुमे की नमाज़ पढ़ने से नहीं रोक सकते। वो उनकी रोज़ की आमदनी में से पैसा काट सकते है। अगर जो इमाम जुमे की नमाज़ पढ़ा रहा है वो फ़ासिक [फ़ासिक उसे कहते है जो खुले तौर पर हराम काम करे जैसे के शराब पीना, ज़िना करना आदि।] है और उसको नमाज़ पढ़ाने से रोकने में नाकाम है तो उल्माए दीन की यही हिदायत है के जुमे की नमाज़ छोड़ने के बजाए उसके पीछे नमाज़ पढ़ लो। किसी और वक़्त में (मिसाल के तौर पर रोज़ाना की पाँच नमाज़ें) तुम बजाए इसके के तुम किसी फ़ासिक इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ो तुम्हे चाहिए के किसी ऐसी मस्जिद में जाकर नमाज़ पढ़ो जहाँ सुल्हा इमाम जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ा रहे हों। एक औरत का जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने के सबब मस्जिद में जाना मकरूह है। चाहे वो कोई भी औरत हो और कोई सी भी नमाज़ उसे पढ़नी हो।

इमाम मुहम्मद 'रहमतुल्लाह तआला' के मुताबिक़ अगर एक शख़्स जुमे की नमाज़ की दूसरी रकाअत के रूकू में इमाम के साथ शामिल हो जाता है तो वो (दिन की) दोपहर की नमाज़ अदा कर लेता है। इमाम-आज़म और इमाम अबू यूसुफ 'रहमतुल्लाह तआला' के मुताबिक़ वो जुमे की नमाज़ पढ़ लेता है चाहे वो (इमाम के साथ देर से) शामिल हुआ हो या आख़िरी क़अदा (बैठकर) तशहहुद पढ़ा हो। अगर एक शख़्स नफ़ीले (जुमे से पहले या उसके बाद की इबादतें) अदा करता है जबकि ख़तीब (पढ़ता है या किरअत करता है) ख़ुत्बा बयान कर रहा है तो उसने सिर्फ दो रकाअतें ही अदा की है उससे ज़्यादा नहीं। अगर वो जो नमाज़ पढ़ रहा है वो (शुरू की) जुमे की इबादत की सुन्नत है उसके लिए उलेमाओं की कोई सामूहिक राए या शहादत नहीं है के दो रकाअतें पढ़नी है और उसके बाद सलाम फेरना चाहिए या फिर चारों रकाअतें पढ़नी है। हालांकि ये ज़रूरी है के वो चारों रकाअतें अदा करे।

जुमे में पाँच वाजिबात का ध्यान रखना चाहिए:

1- आज़ान के वक़्त सारे काम धंधे रोक देने चाहिए।(दोपहर की नमाज़ के लिए)

2- नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद में चलकर जाना इसे 'सई' (यानी, हज में सफ़ा और मरवा के दरमियान चलने के बराबर है) कहते है।(इसे **सआदते अबदिया** के पाँचवे गुन्चे के सातवें बाब में खुलकर बताया गया है।)

3- जब इमाम यानी ख़तीब ख़ुत्बा बयान कर रहे हों उस वक़्त नफ़िल नमाज़ न पढ़ी जाए।

4- दुनियावी बातों से बचना।

5- ख़ामोश रहना।

जुमे में छः मुस्तहबात का ध्यान रखना:

1- रहीय्या-ए-तैय्येबा (जिसका मतलब है इत्र लगाना या छिड़कना)

2- मिस्वाक का इस्तेमाल करना (जो के इरक पेड़ की डाली से बनी है।) [बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के चौथे हिस्से के दूसरे बाब के तेरवेंह पैरा को वुज़ू के आदाब के मज़मून में देखें या गुगल में जाईए और मिस्वाक लफ्ज़ को लिखिए और देखिए किस तरह इस्लाम हमें पढ़ाता है, चौदह सौ साल पहले, किस तरह अपने दांतों, मुँह और खाने की नली की सफाई रखते थे।]

3- साफ कपड़े पहनना।

4- तबकीर [जिसका मतलब है जुमे की इबादत के लिए मस्जिद जल्दी जाना।उस वक़्त (सदी में) जिसे 'ज़माना-ए-सआदत' (यानी जो

इंसानियत का सबसे अच्छा दौर था, जिसमें हमारे रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' और आपके चार सबसे अव्वल ख़लीफ़ा हज़रत अबू बकर और हज़रत उमर और हज़रत उस्मान और हज़रत अली 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम अजमाईन' रहते थे) सहाबा 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम अज्मईन' सुबह (जुमे वाले दिन) की नमाज़ पढ़कर जाया नहीं करते थे, वो जुमे की नमाज़ पढ़ने के बाद ही जाते थे। पहले जो इस उम्मत (यानी मुसलमानों) ने भूल की थी वो था उनका बरताव जोके सुन्नत है और जिसे तबकीर कहते है।]

5- गुस्ल करना, (**सआदते अबदिया** के चौथे गुन्चे के चौथे बाब में इसको समझाया गया है।)

6- अल्लाह की नयमतों यानी सलवात का ज़िक्र करना (जो हमारे पाक नबी 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' पर इर्शाद हुआ और जो इस तरह पढ़ा जाता हैः "**अल्ला हुम-म सल्लि अला सय्यैदिन मुहम्मदिन व अला [आलिही व अस्हाबीही] अज्मईन।"**)

जुमे में पाँच मकरूहात से बचना:

1- सलाम करना (यानी इस्लामी तरीक़े से स्वागत करना) जबकि ख़तीब ख़ुतबा बयान कर रहा हो। (इस्लाम के स्वागत करने के तरीक़े **सआदते अबदिया** के तीसरे गुन्चे के बासठवें बाब में खोलकर बताया गया है।)

2- कुरआन मजीद (पढ़ना) की तिलावत करना (जबके इमाम ख़ुतबा कह रहे हो।)

3- जब किसी शख़्स को छींक आए तो "**यारहमुकल्लाह**" कहना (और उसके बाद, अल्हमदुलिल्लाह) कहना जबके इमाम ख़ुतबा पढ़ रहे हों।

4- खाना पीना करना जुमे की नमाज़ और ख़ुत्बे के वक़्त।

5- ऐसा काम करना जो मकरूह हो।[इस समय मकरूह वाली बात ये भी है के ख़तीब ख़ुत्बे के नाम पर ज़रूरत से ज़्यादा लम्बी तक़रीर कर दें।]

जुमे की पहली अज़ान के बाद, जो मिनार पर पढ़ी जाए (जो मस्जिद के बाहर हो) ख़तीब जुमे की इबादत की पहली सुन्नत मिम्बर के पास अदा करेगा। उसके बाद वो मिम्बर के सामने आ जाएगा और छोटा सा ख़ुत्बा पढ़ेगा क़िबले की तरफ खड़ा होकर, मिम्बर पर बैठे, जमाअत की तरफ मुंह करके बैठे और दूसरी आज़ान सुने। उसके बाद वो खड़ा होकर ख़ुत्बा पढ़े।[लोग कहते है के वहाबी अहले सुन्नत के मज़हब के नहीं है। उनका कोई पक्का मज़हब नहीं है। उनको **वहाबी या नजदीस** कहा जाता है। अंग्रेज़ों की साज़िशों से वहाबी मस्लक़ वजूद में आया। उन्होंने इसको क़ायम करने में अब्दुल वहाब के बेटे जिसका नाम मुहम्मद था जोके मज़हब से बिलकुल अनजान था उसका इस्तेमाल किया। वो अपनी किताबों में ग़ैर वहाबी मुसलमानों को काफ़िर कह कर बुलाते है। वो लिखते है के ग़ैर वहाबियों को क़त्ल करना और उनकी बिवियों और बेटियों को माले ग़नीमत बनाने की उनकी इजाज़त है। खुले तौर पर वो अनजान ग़ैर मज़हबी लोगों को रिश्वत देते है ताकि वो मज़हब से फिर जाए और उनको वहाबी मस्लक में शामिल करके उनको वहाबी मरकज़ों में भेजते है, जिनको **राबीता-त-उल-आलम-इल-इस्लामी** कहते है और जो दुनिया के कई देशों में क़ायम है। उलेमाए इस्लाम ने एकजुट होकर जो 'फ़तवे' जारी किए है उनको उन्होंने दूसरी ज़बान में इस्लाम मुख़ालिफ इशायत के ज़रिये सारे मुस्लिम देशों में भेजा। और हज के दौरान मुफ़्त में हाजियों (मुस्लिम तीर्थ यात्री) को भी बाँटते है। उनमें से एक में उन्होंने लिखा है: "औरतों पर जुमे की नमाज़ फ़र्ज़ है।" वो ज़बरदस्ती औरतों को जुमे की नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिदों में भेजते है। वहाँ वो मिले जुले ग्रुप में जहाँ मर्द और औरतें जमाअत में एक साथ

नमाज़ पढ़ते है। उनकी दूसरी इशाअत में कहा गया है के: "जुमे और ईद का खुत्वा (मुसलमान बना सकते है) जमाअत की ज़बान के मुताबिक् पढ़ा जाए। उसको अरबी में नहीं पढ़ना चाहिए।" मुसलमान देशों के सही उलेमाए दीन ने उसका सही हिस्सा सबूत के साथ आगे भेजा और उनके फ़तवों को ख़ारिज किया। उनमें से कुछ सही तहरीरें वो फतवे है जो अहल-ए-सुन्नत के आलिमों ने भारत के कई हिस्सों (जगहों) में जारी किए। मिसाल के तौर पर अल्लामा हिवर-उन-नीहरीर-वा-ई-फ़ेहम्मा साहिब-उत-तक़रीर व तहरीर, मौलाना मुहम्मद तेमीमी विन मुहम्मद मदरसी नव्वर अल्लाहु मरक्ज़; मदरसे के मुफ़ती ने इर्शाद फरमाया:

अरवी ज़वान के सिवा खुत्वे को बयान करना (यानी पढ़ना, किरअत करना या कहना) या फिर दोनों यानी अरवी में या उसकी तर्जुमा की हुई ज़बान में पढ़ना मकरूह है। पूरे खुत्वे को अरबी ज़वान में पढ़ना वाजिब है क्योंकि हमारे रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने सारे खुत्वे अरबी में कहे थे। **बहर-उर-राज़िक** नाम वाली किताब में ईद की नमाज़ों का बयान है: "तरावीह और कुसूफ़ की नमाज़ों को छोड़कर बाक़ी सारी नफ़िलें ग़ैर मुअक्किदा नमाज़ें जमाअत में नहीं पढ़ी जाती। क्योंकि ईद की नमाज़ हमेशा जमाअत के साथ पढ़ी जाती है, वो वाजिब है नफ़िल नहीं।" ये देखा गया है के जो इबादत के काम रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने हमेशा किए वो वाजिब है। अल्लामा ज़ेबीदी 'रहमतुल्लाहु तआला' **इहया-उल-उलूम** में नशर किया है: जो काम रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने पाबंदी के साथ किए है वो सब वाजिब है। ये ज़रूरी नहीं है के वो फर्ज़ काम हों। अल्लामा मुफ़ती अबू सुऊद ईफेन्दी 'रहमतुल्लाह तआला' ने अपनी किताब जिसका नाम **फ़तेह-उल्लाह-इल-मूईन** है में इर्शाद फरमाया: "रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने जो इबादत के काम लगातार किए है वो सब वाजिब है।" इब्ने आबिददीन 'रहमतुल्लाह तआला' ने अपनी 'वुज़ू की सुन्नतें' के मज़मून में इर्शा

द फरमाया: "किसी भी इबादत के काम को अगर रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने बिना छोड़े लगातार किया हो तो वो सुन्नत मुअक्किदा है। अगर आपने न सिर्फ़ नज़रअदांज़ नहीं किया लेकिन अगर किसी को छोड़ते हुए देखा तो उसके विचार को बदला तो वो वाजिब बन गया। विचार न बदलने के लिए (एक शख़्स इसे छोड़ने से) उसका मतलब ये लगाया के उसे छोड़ने की रज़ामंदी मिल गई। इस मसले के लिए अबू सुऊद इफेन्दी ने फरमाया के जिन इबादतों कामों को हमारे नवाज़े गए नबी ने बिना छोड़े पाबंदी के साथ किया वो सब वाजिब है।" मकरूहात-ए-नमाज़ के आख़िरी हिस्से में ये समझाया गया है के दोनों में से किसी एक को भी छोड़ना मकरूह तहरीमी है। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने हमेशा अपने ख़ुत्बे अरबी ज़बान में दिए ये इस सच्चाई की निशानदही करते है के ख़ुत्बे को अरबी ज़बान में अदा करना वाजिब है। तब से ख़ुत्बे को अरबी ज़बान के अलावा किसी दूसरी ज़बान में या अरबी और उसका तर्जुमा दोनों चीज़ें मकरूह तहरीमी है। पहले वाली हालत में, के ख़ुत्बा अरबी में होना चाहिए इस उसूल को तोड़ा जाता है। और बाद की हालत में के ख़ुत्बा सिर्फ़ अरबी ज़बान में होना चाहिए उस उसूल को तोड़ा जाता है। दोनों हालतों में रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने जो काम लगातार अदा किए उनसे इंकार किया गया। उसी तरह, तक़्बीर कहना (इफतिताह की यानी "अल्लाहु अकबर") अरबी ज़बान में। जब नमाज़ शुरू करने के लिए हो और बीच में "अल्लाहु अकबर" कहना दोनों अलग चीज़ें है दोनों में से कोई एक भी छोड़ना मकरूह तहरीमी है। इसलिए ये वाजिब हो गया है क्योंकि रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' हमेशा "अल्लाहु अकबर" कहते थे और इसी वजह से ऐसा न करना मकरूह तहरीमी बन गया। इब्ने आबिददीन 'रहमतुल्लाह तआला' ने **रसूल-उल-मुअत्तर** में इर्शाद फरमाया: "मकरूह का मतलब ऐसी चीज़ (उदाहरण काम या बरताव) जिसके करने या न करने से वाजिब या सुन्नत से इंकार किया जाए। पहले (यानी उस

चीज़ से इंकार करना जो वाजिब है) वाला मकरूह तहरीमी है और बाद वाला (यानी सुन्नत से इंकार करना) (मकरूह) तन्जीही (या तन्ज़ीही) है।" **हलाबी कबीर** [इबराहीम बिन मुहम्मद हल्लाबी (866, हालेब [अलिप्पो] 956 [1549 A.D.] में इस किताब में मंदरजाज़ेल लिखा हुआ है: "किसी सुन्नत को छोड़ना (या इन्कार) करना मकरूह तन्जीही है। जो चीज़ वाजिब है उसको छोड़ना मकरूह तहरीमी है।" **फ़त्व-ए-सिराजिया** (जिसे अली उसी बिन उस्मान 'रहमतुल्लाह तआला अलैहि' (d. 575 [1180 A.D.] ने लिखा है) में लिखा हुआ है के "खुत्बे को फ़ारसी (परशीयन) ज़बान में अदा करने की इजाज़त है।" ये बातिल (बेअसर) हो जाता है बिना किसी सबूत के इस बयान को शामिल करना और इस फ़त्वे पर बहस करना के अरबी ज़बान के अलावा किसी दूसरी ज़बान में खुत्बा देना सही है और ये के न तो ये मकरूह है और न ही तहरीमी न ही तन्ज़ीही। सिराजिया में इस बयान का मतलब है के ये सही (ज़रूरी) है। इसका मतलब ये नहीं के ये "मकरूह नहीं" है। इब्ने आबिददीन 'रहमतुल्लाह तआला' ने **रसूल-उल-मोहतर** में इर्शाद फरमाया: "उनका (यानी अली उशिस) कहना के ये सही है ये इस बात को नहीं दिखलाता है के ये मकरूह नहीं है।" मुहम्मद अब्दुल-हई लक़नवी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने अपनी किताब **उम्मत-उर-रिआया** में फरमाया: "ये इर्शाद के अरबी ज़बान में खुत्बा कहना कोई शर्त नहीं है जोके पूरी की जाए (जुमे की नमाज़ सही होने के लिए) खुत्बे को फ़ारसी में या किसी और ज़बान में अदा करने की इजाज़त है, इससे ये ज़ाहिर होता है के (जुमे) की नमाज़ अदा करने की इजाज़त है। दूसरे लफ़्ज़ों में जुमे की नमाज़ के सही होने के लिए खुत्बे की शर्त को पूरा करना चाहिए। इससे ये ज़ाहिर नहीं होता के जो खुत्बा अदा किया वो बिला कराहत (यानी ऐसी चीज़ जो इसे मकरूह बनाए) जायज़ है। क्योंकि रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' और सब सहाबा 'रज़ि-अल्लाहु अन्हु' ने हमेशा और हर जगह खुत्बा सिर्फ अरबी ज़बान में दिया। उनकी बात के ख़िलाफ़

जाना मकरूह तहरीमी है।" इसी तरह ताबईन और ताबे ताबईन 'रहिमा-हुमुल्लाह तआला' हमेशा और हर जगह ख़ुत्बा अरबी ज़बान में अदा करते थे। यही नहीं के वो अरबी ज़बान के अलावा और किसी ज़बान में इसको अदा नहीं करते थे बल्कि उनमें से कोई भी अरबी ज़बान और उसका तर्जुमा (दूसरी ज़बान में) दोनों में से किसी में अदा नहीं करते थे। [यही हालत एशिया और अफरीका के देशों में भी थी जहाँ पर लोग उनके ख़ुत्बे सुनते थे लेकिन ये नहीं समझ पाते थे के वो अपने ख़ुत्बों में क्या कह रहे है क्योंकि उन्हें अरबी नहीं आती थी। हालांकि ये उनके लिए ज़रूरी था के वो अपने ख़ुत्बों का तर्जुमा उन्हें बताए ताकि नए मुसलमानों को इस्लाम के बारे में बता सकें वो ऐसा ख़्याल नहीं करते थे के ख़ुत्बों के लिए अरबी ज़बान के अलावा किसी दूसरी ज़बान की इजाज़त है। ख़ुत्बों के अलावा वो और दूसरे मौकों पर उन्हें इस्लाम के बारे में बताते थे। वो उनको मश्वरा देते थे के ख़ुत्बों को समझने के लिए और इस्लाम को अच्छी तरह सीखने के लिए अरबी को सीखिए। इस सिलसिले में हम उन उलेमाओं का उदाहरण ले सकते है।]

ये **बिदअत** है के उनके ख़िलाफ़ जाकर अरबी ज़बान के अलावा दूसरी ज़बानों में ख़ुत्बे अदा करना। ऐसा करना मकरूह तहरीमी है। पहले वाली हालत को तहरीमी कहना और बाद वाली हालत को तन्ज़ीही कहना बातिल है। मकरूह तन्ज़ीही का मतलब है जो काम सुन्नत है उसे छोड़ना क्योंकि रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' हमेशा अपने ख़ुत्बे सिर्फ अरबी ज़बान में अदा करते थे, पूरा ख़ुत्बा अरबी ज़बान में पढ़ना वाजिब है। जो काम वाजिब है वो किस तरह छोड़ने से तन्ज़ीही बन सकता है? जो चीज़ मकरूह तहरीमी है उसका इंकार करना वाजिब है। मौलाना बहर-उल-उलूम 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने **अरकान-उल-अरबा** में ऐसे इर्शाद फरमाया है: "ये वाजिब है के वो काम न किया जाए जो मकरूह तहरीमी है। उस मकरूह वाले काम को

करने का मतलब है के (एहकाम जो कहे गए उनकी) वाजिब की नाफ़रमानी करना।"

एक शख़्स जो हमेशा ऐसा काम करता है जो मकरूह तहरीमी है वो एक आदिल मुसलमान नहीं है। इब्ने आबिददीन 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने इब्ने नजय्यम 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के अधिकार पर ऐसे इर्शाद फरमाया जब उन्होंने अपनी किताब **रसूल-उल-मोहतर** में वुज़ू की सुन्नतों पर बातचीत शुरू की: "ये एक मुआफी लायक़ गुनाह है अगर कोई काम ऐसा हो जाता है जो मकरूह तहरीमी है। इन मुआफी लायक़ गुनाहों को अगर करता रहे तो एक मुसलमान अपनी अदालत [बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** के पाँचवे हिस्से का दूसरा बाब जाँचिए।] को छीन लेता है (दूसरे लफ़्ज़ों में बहुत सारे मुआफी के लायक़ गुनाह अगर हो जाते है या कुछ मुआफी लायक़ गुनाह बहुत बार हो जाते है तो वो एक बहुत बड़ा गुनाह बन जाता है। और खुले तौर पर बड़ा गुनाह करने की वजह से मुसलमान अपनी अदालत खो देता है इस कारण अब वो एक आदिल मुसलमान नहीं रह पाता।)" इस मसले के लिए खातिब जो अपने तर्जुमे में खुत्बे देते है वो अपनी अदालत खो देते है और फ़ासिक मुसलमान बन जाते है। (एक फ़ासिक मुसलमान वो मुसलमान है जो बड़े गुनाह खुले तौर पर करे। कबीरा गुनाह के कुछ उदाहरण है जैसे: बिना किसी उज़र के इस्लाम के एहकामों में से किसी एक को अदा न करना या फिर खुले तौर पर जो काम (हराम) मना है उन्हें करना।) ये मकरूह तहरीमी है, उन लोगों के पीछे नमाज़ पढ़ना (यानी फ़ासिक की जमाअत में शामिल होकर नमाज़ पढ़ना।) **नूर-उल-अज़ाह** किताब में ये लिखा है (जो अब्बुल इख़्लास हसन बिन उम्मार शरनबलाली 'रहमतुल्लाह तआला अलैहि' ने **994-1069 [1658 A.D.]** मिस्र में लिखी) और **इब्ने आबिददीन** ने "ये मकरूह है गुलाम या गाँव वाले के लिए या नाबालिग़ लड़के के लिए अगर वो जाहिल है और बिदअती चाहे वो कितना ही आलिम क्यों न हों वो इमाम नहीं बन सकता (और जमाअत

में नमाज़ नहीं पढ़ा सकता) ये बहुत गुनाह की बात है के उनको इमामत करने दी जाए (और उनको उस जमाअत में नमाज़ अदा करने दी जाए।)" अल्लामा इब्राहिम हल्लाबी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने **हल्लाबी-ए-कबीर** में इर्शाद फरमाया: "वो मुसलमान जो फ़ासिक लोगों को इमाम बनने देते है (और जमाअत में नमाज़ें पढ़ाने देते है) वो एक गुनाह कर रहे है (ऐसा करके)।एक फ़ासिक शख़्स को इमाम बनाना मकरूह तहरीमी है।**मैराक़-इल-फल्लाह** में लिखा है "किसी फ़ासिक शख़्स को इमाम बना देना मकरूह है।(और जमाअत में नमाज़ पढ़ाए) चाहे वो आलिम ही क्यों न हो (इस्लाम में) इस्लाम को अपनाने में वो ढीला पढ़ चुका है।ये वाजिब है के उसको बेइज़्ज़त किया जाए।उसको इमाम बनाए रखने का मतलब है उसकी इज़्ज़त करना।अगर तुम उसको जमाअत की नमाज़ पढ़ाने से रोक नहीं सकते तो तुम जुमे की नमाज़ और सारी दूसरी नमाज़ें किसी और मस्जिद में जाकर पढ़ो।" जैसा के अल्लामा तहतवी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने इस तहरीर को समझाया है- उन्होंने कहा: "ये मकरूह तहरीमी है (मुसलमानों के लिए) के एक फ़ासिक आदमी को इमाम बनाया (और उनकी नमाज़ों की जमाअत अदा कर रहा है।)" तुम ख़तीब को अरबी के अलावा किसी और ज़बान में खुत्बे पढ़ने का बाइस मत बनो।ये गुनाह का बाइस है।इब्ने आबिददीन 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने **रसूल-उल-मुऊतर** में इर्शाद फरमाया: (जमाअत में) "नमाज़ फ़ासिक इमाम के पीछे नहीं पढ़नी चाहिए।तुम्हें ऐसे इमाम को देखना चाहिए जो फ़ासिक न हो।जुमे की नमाज़ का अलग मसला है।हालांकि, फिर भी जुमे की नमाज़ फ़ासिक इमाम के पीछे पढ़ना मकरूह है जबके वो शहर की कई और मस्जिदों में भी पढ़ाई जा रही हो।इस हालत में ये मुमकिन है के किसी दूसरे इमाम के पीछे नमाज़ अदा की जाए।**फ़त्ह-उल-कदीर** [इब्ने हुमाम 'रहमतुल्लाह तआला अलैहि' (730 [1388 A.D.] - 861 [1456] ने अपनी **हिदाया** की तफ़सीर में इसे लिखा था, जो पहले बुरहानऊददीन मरघीनानी 'रहमतुल्लाह तआला अलैहि' (593

[1197 A.D.] जिन्हे चंगेज़ खान के आदमियों ने शहीद कर दिया था) ने लिखी थी] किताब ने भी इसी बात पर ज़ोर दिया है।" इसलिए तुम किसी ऐसे इमाम के पीछे नमाज़ मत पढ़ो जो खुत्बा सिर्फ अरबी ज़बान में नहीं बल्कि उसका तर्जुमा दूसरी ज़बान में भी करे और तुम ऐसे इमाम को ढूँढो जो खुत्बा सिर्फ अरबी ज़बान में पढ़े और उसी इमाम के पीछे जुमे की नमाज़ पढ़ो (यानी तुम वही नमाज़ पढ़ो जिसकी जमाअत की नमाज़ वो इमाम पढ़ा रहा हो।) तफ़सील के लिए **इत-तहक़ीकात-उस-सैनिय्या-फी-कराहत-इल खुत्बा-ती-बे-ग़ैरिल-अरबिया-व-किरआतिहा-बि-ल-अरबीयात-ए-मआ-तर्जिमातेहा-बे-ग़ैरिल-अरबीयाती**। इस नाम की किताब को पढ़िए। यहाँ अल्लामा मुहम्मद तेमीमी मदरासी की तहरीरों से जो तर्जुमा हमने लिया वो ख़त्म होता है।

ऊपर जो तहरीर है जिसे 1349 [1931 A.D.] में हिन्दुस्तान में अरबी में लिखा गया। जिसे हिन्दुस्तान के सबसे आला तेराह इस्लामी आलिमों ने माना और अपनी रज़ामंदी की मोहर ज़बत की। इस तारिखी फ़त्वे के साथ साथ **देऊबंद** और **बाक़ीयात-उस-सुआलिहात** और **मदरास** और **हैदराबाद** के हिन्दुस्तानी आलिमों के अरबी के फ़त्वे इस्तानबुल तुर्की में 1396 [1976 A.D.] में छपे थे। दुनिया के हज़ारों मशहूर गहरी समझ बुझ रखने वाले उसमानिया के इस्लामी मौलवियों ने और शेख़-उल-इस्लाम 'रहीमा-हुमुल्लाहु तआला' ने लोगों की मदद करने के लिए ऐसे बहुत से रास्ते ढूँढे ताकि जो खुत्बे वो सुन रहे है उनको समझ आ जाए। वो कोई भी ऐसा सबूत ढूँढने में नाकाम रहे जिससे तुर्की ज़बान में खुत्बों का खुलासा शामिल करने की इजाज़त हो। उन्होंने उसके लिए कोई इजाज़त नहीं दी। जमाअत के बारे में और ज़्यादा जानकारी का मक़सद है (मुसलमानों को बताने के लिए) जुमे की तालिमात को जुमे की नमाज़ के बाद सब मस्जिदों में बताकर हासिल किया गया और उन लोगों को छः सौ साल से 'फ़त्वे' के जो मक़ासिद थे उसके बारे में बताया गया

और इस तरह इस्लाम की तालिमात की बाहरी सरहद की किसी भी नुक़सान से हिफाज़त की गई।]

ईद की नमाज़ (यानी वो नमाज़ जो दोनों ईदों के पहले दिन सुबह में पढ़ी जाती है) में नौ (तक़्बीरें है जिन्हें कहा जाता है) **तक़्बीर-ए-ज़वाएद** है। उनमें से एक फर्ज़ है, दूसरी उसमें सुन्नत है। सात उसमें से वाजिब है। तक़्बीर-ए- इफतिताह फर्ज़ है। पहले रूकू की तक़्बीर सुन्नत है। ज़वाएद की तक़्बीरे वाजिब है। दूसरी रकअत की रूकू की तक़्बीर वाजिब है जो एक ही वक़्त में दूसरी वाजिब तक़्बीर से मिल रही है। (दूसरे लफ्ज़ों में ये है के एक ही समय में आख़िर की सात तक़्बीर-ए-ज़वाएद वाजिब है।)

नमाज़ की अदाएगी

नेमत-ए-इस्लाम में ऐसे लिखा हुआ है: हर मुसलमान आक़िल और बालिग़ को रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़ना फर्ज़ है। कोई किसी के बदले नमाज़ नहीं पढ़ सकता। एक शख़्स अपनी नमाज़ या और किसी इबादत का सवाब चाहे तो किसी भी शख़्स (ज़िन्दा या मुर्दा दोनों सूरतों में) को दे सकता है। उनमें से हर एक (यानी जिन लोगों को सवाब बख़्शा गया) को उतना ही सवाब मिलेगा जैसा के बख़्शने वाले को और बख़्शने वाले के सवाब में से कुछ काटा नहीं जाएगा।] इस बात की इजाज़त नहीं है के नमाज़ अदा की जाए और अपने मक़ासिद या भरोसे का सवाब किसी को बख़्श दिया जाए एसे वो अपने फ़राइज़ से हाथ खीचं लेगें। एक शख़्स जो इस बात पर ईमान रखता है के (रोज़ाना की पाँच नमाज़ें) नमाज़ फर्ज़ है और उसके बावजूद बिना किसी 'उज़र' के उसको अदा नहीं कर पाता तो वो काफ़िर नहीं बन जाता वो (एक) फ़ासिक (मुसलमान) बन जाता है। [ये इर्शाद है (इस्लाम की पक्की दलीलों में) के एक नमाज़ छोड़ने पर सत्तर हज़ार साल की जहन्नुम की आग की सज़ा

है।] (एक शख़्स जो अपने रोज़ की नमाज़ रोक देता है) वो क़ैद में भेजा जाएगा और तब तक वहाँ रहेगा जब तक के वो दोबारा नमाज़ पढ़नी शुरू न कर दें। जब एक बच्चा सात साल का हो जाता है तो उसके (माँ-बाप) उसे नमाज़ पढ़ने का हुक़्म दें, अगर दस साल तक भी वो नमाज़ न पढ़े तो उसे हाथों से मारा जाए। तीन बार से ज़्यादा उसे थपका न जाए। न ही डंडे से मारा जाए। डंडे से उस शख़्स को पीटा जाता है जिसने किसी इंसान का क़त्ल किया हो और उसे अदालत का फैसला चाहिए हो। एक शख़्स अपनी बीवी को डंडे से नहीं मार सकता। [इस बात की इजाज़त नहीं है के किसी ज़िन्दा इंसान को सर पर या चेहरे या सीने पर या सामने या पेट में] मारा जाए। किसी कमज़ोर के लिए भी ये फर्ज़ है के वो अपनी अच्छी जानकारी और ताक़त के हिसाब से नमाज़ अदा करे। (**सआदते अबदिया** का आख़िरी हिस्सा ज़्यादातर नमाज़ से जुड़ा हुआ है।)

उज़र के साथ होना

अगर किसी के जिस्म से लगातार कोई चीज़ बहती रहे तो उसे **उज़र** कहते है, (और एक शख़्स जो इस निकलने को महसूस करे उसे कहेंगे के वो 'उज़र' के साथ है।) एक शख़्स को लगातार कतरा-कतरा करके पेशाब निकलने की बीमारी या (बॉल बिस्तरी) या लगातार दस्त होना या लगातार रीह आना, नाक से ख़ून बहना या किसी ज़ख्म से ख़ून बहना आदि, पीप निकलना किसी चोट या अल्सर से आँख दुखने की वजह से पानी बहना और एक औरत का (कसरते हैज़) **इसतीहादा** से पीड़ीत होना इस को कहा जाता है **लोगों का उज़र के साथ होना**। ये लोग 'उज़र' की वजह को कुछ तरीक़े इस्तेमाल करके ख़त्म कर सकते है जैसे के बहाओ को बंद करना, ध्यान लगाकर और नमाज़ बैठकर या इशारे से पढ़ना। [एक आदमी जिसे पेशाब निकलने की बीमारी हो

वो जो के दाने के बराबर कुदरती रूई की बत्ती बनाकर पेशाब की नाली में उसे घुसा सकता है। अगर रेश्मीन रूई इस्तेमाल की जाएगी तो उसके रेशे गुर्दो में फैलकर बीमारी पैदा कर सकते है। पेशाब के दौरान वो बत्ती अपने आप बाहर निकल आएगी। अगर मसाने से ज़रूरत से ज़्यादा पेशाब एकदम बाहर निकल आए तो जो ज़ाएद बहाओ है वो बत्ती से होता हुआ बाहर टपकने लगेगा जो एक शख़्स के वुज़ू टूटने का सबब बनेगा। पेशाब टपकने से जाँघिया गंदा नहीं होना चाहिए। इससे बचने के लिए पेशाब के अज़ू के चारों तरफ एक कपड़ा लपेट दे फिर कपड़े के एक कौने को धागे से कसकर सी दें फिर उसे जाँघिए के साथ सेफ्टी पिन से बाँध दें। अगर पेशाब अब भी तेज़ी से बह रहा है, तो कपड़े के अन्दर कुछ रूई रख सकते है। अगर धागे की गाँठ को सेफ्टी पिन से अलग करना मुश्किल हो, तो एक पेपर किलिप सेफ्टी पिन से जोड़कर गाँठ को उसके ऊपर टांग सकते है। गाँठ को इस तरह आसानी से खोला जा सकता है, ताकि कपड़े को हाथ धोने वाले तश्ले में तीन बार धोया जा सके। एक शख़्स को जिसका मसाना कमज़ोर है यानी पेशाब निकलता रहता है उसे तीन से पाँच कपड़ों के टुकड़े अपनी जेब में रखने चाहिए। एक कपड़े के टुकड़े को धागे के साथ बाँधने के लिए कपड़े के टुकड़े के एक कोने को (12X15) cm. से माप कर मोड़ दें और 50 cm. लम्बे धागे से दूसरे सिरे पर बाँध दें। बूढ़े और कुछ कमज़ोर लोगों की उज़ू-तनासल धीरे-धीरे कम हो जाता है सो जो कपड़ा उसके चारों तरफ लपेटा होता है ढीला हो जाता है, ऐसे लोगों को रूमाल के बराबर बड़े कपड़े का टुकड़ा एक छोटी थैली (मोम जामे) में रखना चाहिए उस थैली में उज़ू तनासल को रखकर उस थैली का मुँह बंध कर देना चाहिए। अगर कपड़े के ऊपर जो पेशाब है वो एक दरहम (4.80 ग्राम) से ज़्यादा है तो कपड़ा बदल देना चाहिए। जब नमाज़ का वक़्त निकल जाता है तो उस 'उज़र' के साथ उस शख़्स का वुज़ू बेकार हो जाता है। अगर जो पहले से उज़र मौजूद है, उसके साथ दूसरे 'उज़र' का मक़सद आ जाता है नमाज़ का वक़्त ख़त्म

होने से पहले तो उनका वुज़ू उस (नए) सबब की वजह से नमाज़ का वक़्त ख़त्म होने से पहले टूट जाता है। मिसाल के तौर पर समझ लो के तुमने वुज़ू किया जब तो तुम्हारे एक नथने से (लगातार) ख़ून जारी है तो तुम्हारा वुज़ू टूट जाता है अगर तुम्हारे दूसरे नथने से भी ख़ून आने लगे। हनफी और शाफिई मस्लक़ों में एक उज़र वाले शख़्स का नमाज़ के पूरे वक़्त में वुज़ू बेअसर हो जाएगा। मान लिजिए अगर एक शख़्स के आरज़ी रूप से ख़ून निकलना बंद हो गया और दोबारा शुरू नहीं हुआ जब तक के उस शख़्स ने वुज़ू करके उस वक़्त की नमाज़ अदा करली तब वो शख़्स 'उज़र' वाला बन गया तो वो बना रहेगा तमाम नमाज़ों के वक़्त जब तक के उसका उज़र बार-बार उस वक़्त में न आए। जैसे कहा जाए ख़ून सिर्फ उस नमाज़ के बीच में निकला एक बार निकला, चाहे वो एक कतरा ही क्यों न हो। अगर नमाज़ के वक़्त बार-बार ख़ून जारी नहीं हुआ तो वो शख़्स अब 'उज़र' वाला नहीं रहा। अगर एक दरहम से ज़्यादा नजासत [कोई भी चीज़ जैसे ख़ून, पेशाब, शराब वग़ैरा का नमाज़ की पढ़ने की जगह से धोना या कपड़ों पर से साफ करना। बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के चौथे हिस्से के छठे बाब को तफ़सील से देखें।] जिसकी वजह से 'उज़र' हो उस शख़्स के कपड़ों पर फैली हुई हो तो ये मुमकिन है के उस पर और नजासत लगे हिस्से को धो लिया जाए। **अल-फ़िकह-उ-अला-ल-मस्लक-इल-अरबा** किताब में ऐसे इर्शाद किया गया है: "वहाँ पर दो क़ौल है मालिकी मस्लक के उसूलों के मुताबिक़ एक बीमार को 'उज़र' के साथ वाला शख़्स मान लिया जाए। पहले क़ौल के मुताबिक़ कोई चीज़ जो वुज़ू को बेअसर करती है वो नमाज़ के आधे वक़्त से ज़्यादा चले और उसका पता न चले के कब शुरू हुई और कब ख़त्म हुई। दूसरे क़ौल के मुताबिक़ बीमार एक उज़र के साथ वाला शख़्स बन जाता है (हर हालत में होता है) जब कतरा-कतरा करके कोई चीज़ बहती है, फिर भी पहले क़ौल में दोनों शर्ते मौजूद नहीं है। बीमार का वुज़ू बेकार नहीं होता अगर जो इसका पता

चल जाए के बहना कब रूका तो ये उस बीमार के लिए मुस्तहब हो जाता है के वो नमाज़ शुरू करने से पहले वुज़ू कर ले। एक ज़ईफ बीमार या बड़े शख़्स जो हनफ़ी और शाफिई मस्लक़ों में 'उज़र' के साथ वाले शख़्स नहीं है (दोनों मस्लक़ों के मुताबिक़) ये मालिकी मस्लक के दूसरे क़ौल की पैरवी करता है।"]

अगर एक शख़्स को इस बात का डर हो के वुज़ू करने से वो बीमार हो सकता है या उसकी बीमारी और ज़्यादा बढ़ सकती है या उसका ढेर हो सकता है तो उसको तयम्मुम कर लेना चाहिए। ये डर उस शख़्स के अपने तर्जुबे या एक मुसलमान और आदिल डॉक्टर की सलाह की रोशनी में समझ बुझ वाला लगता है। एक डॉक्टर की सलाह इसलिए मानी जा सकती है के वो खुले गुनाहगार की तरह बदनाम नहीं है। कुछ बीमारियों के सही कारण ये है: ठंडा मौसम और कोई रहने की जगह न होना, पानी गरम करने के लिए कुछ भी ढूँढने में नाकाम होना या हमाम में नहाने के लिए पैसा न होना। हनफ़ी मस्लक में तुम एक तयम्मुम के साथ जितनी चाहे फर्ज़ नमाज़ें अदा कर सकते हो। शाफ़िई और मालिकी मस्लक़ों में तुम्हे हर फर्ज़ नमाज़ के लिए एक नया तयम्मुम करना पड़ेगा।

अगर एक शख़्स के आधे अज़ू पर ज़ख्म रिस रहा है जहाँ तक वुज़ू करना है (यानी वो हिस्सा जब वुज़ू किया जाए तो उसका धूलना ज़रूरी है) तो उसे तयम्मुम कर लेना चाहिए (वुज़ू के बदले में) अगर आधे से भी कम अज़ू हो (वुज़ू वाले हिस्सों पर) तो तब वो शख़्स जो हिस्सा सेहतमंद है उसे धोएगा और ज़ख्मों पर मसह करेगा। गुस्ल में पूरा जिस्म एक अज़ू की तरह से ख़्याल किया जाता है, तुम्हारा आधा बदन रिसने वाले ज़ख्मों से ढका हुआ है ऐसी हालत में तुम तयम्मुम कर लो। अगर जिस हिस्से में ज़ख्म रिस रहा है वो आधे से भी कम है (पूरे बदन के मुकाबले), तब तुम सही हिस्सों को धो लो और ज़ख्मों पर मसह करलो। अगर ज़ख्मों पर मसह करना नुक़सान पहुँचाए तो उस

वक़्त पट्टी या फाये पर मसह करना चाहिए। अगर मसह करने से भी नुक़सान होता है तो तब तुम्हे मसह भी छोड़ देना चाहिए। अगर जब वुज़ू में या गुस्ल में सर का मसह करने से नुक़सान हो तो सर का मसह नहीं करना चाहिए। एक शख़्स जो हाथ धोते वक़्त हाथों को पानी से नहीं धो सकता या पानी का प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि उसके हाथों में ख़राबी है (एकज़ीमा या ज़ख्म रिसने की) तो उस पर तयम्मुम कर लेना चाहिए ऐसा करने के लिए उसे अपने चेहरे और कोहनी को ज़मीन पर आहिस्ता से रगड़ना चाहिए (या चूने, पत्थर या मिटटी की दीवार पर) मान लिजिए अगर एक शख़्स के न हाथ है न पैर और उसके सारे चेहरे पर ज़ख्म रिस रहे है तो उसे नमाज़ बिना वुज़ू के पढ़ लेनी चाहिए। एक शख़्स जिसे वुज़ू कराने के लिए कोई नहीं मिलता तो उसे तयम्मुम कर लेना चाहिए। उसके बच्चे या उसका गुलाम या और कोई शख़्स जिसे उसने पैसे देकर मदद के लिए बुलाया (वुज़ू कराने के लिए) उसे वुज़ू करा सकते है। वो दूसरों से भी मदद ले सकता है। हालांकि दूसरे उसकी मदद नहीं कर सकते। मिया और बीवी वुज़ू करने में एक दूसरे की मदद नहीं कर सकते।

मान लो एक शख़्स पट्टी इस्तेमाल कर रहा है [या मरहम, या रूई या फाये पर प्लास्टर बाँध रहा है] ख़ून निकलने की वजह से या जोंक लगवाने या ज़ख्म रिसने या फोड़ा या टूटी हुई या चोट लगी हुई हडडी पर, अगर वो उस (नाज़ुक) हिस्से को ठंडे या गरम पानी से भी धोने में कासिर हो इस वजह से उस हिस्से का मसह भी न कर पाए तो तब वो वुज़ू या गुस्ल की तरह आधे से ज़्यादा उस हिस्से पर मसह करे। इस सिलसिले में अगर पट्टी को हटाना नुक़सान दे सकता है तो उसके नीचे के साफ हिस्सों को धोने की ज़रूरत नहीं है। जो ख़ाल का साफ हिस्सा पट्टी के अन्दर से नज़र आए उसपर मसह करना जायज़ है। पट्टी लगाने से पहले ज़रूरी है वुज़ू में होना। मसह करने के बाद अगर पट्टी बदली जाए तो उस नई पट्टी पर मसह करना ज़रूरी नहीं है। चाहे उसके बाद दूसरी पट्टी उसपर बाँधी जाए।

बीमारी के दौरान नमाज़

अगर बीमार में बिल्कुल खड़े होने की ताक़त न हो या खड़ा होने से मर्ज़ के बढ़ जाने का खतरा हो तब वो अपनी नमाज़ बैठकर पढ़ सकते है, रूकू के लिए वो अपने बदन को थोड़ा झुकाए और बैठने के बाद वो फर्श पर अपना सज्दा कर सकते है (यानी नाक और माथे को ज़मीन पर रखें) तब वो उस तरह बैठे जैसे उन्हें आराम मिले। ये उनके लिए जायज़ है के वो घुटनों के बल या टाँगों को मोड़कर या कूल्हों के बल बैठकर बाज़ू बिल्कुल अपने बदन के पास लगाकर रखें। सिरदर्द या दांत दर्द और आँख का दर्द ये सब बीमारियाँ ख़्याल की जाती है। दूसरा 'उज़र' (इस सिलसिले में) ये डर होना के कही दुश्मन न देखले। इसके अलावा अगर एक शख़्स को ये डर हो के खड़े होने से उसका वुज़ू जाता रहेगा तो वो बैठकर नमाज़ पढ़ सकता है। एक शख़्स किसी चीज़ का सहारा लेकर झुककर खड़ा हो सकता है तो वो इसी तरह झुककर नमाज़ पढ़ सकता है। एक शख़्स अगर इतनी देर खड़ा नहीं हो सकता तो वो तकबीर इफतिताह (यानी "अल्लाहु अकबर" कहकर नमाज़ शुरू करे) खड़े होकर कहे और जब उसे तकलीफ महसूस हो तो बैठकर (अपनी नमाज़) नमाज़ जारी रखे।

एक शख़्स जो फर्श (या ज़मीन) पर सज्दा नहीं कर सकता तो खड़े होकर (आयतों को) पढ़े और फिर रूकू और सज्दे को इशारे से अदा करने के लिए बैठ जाए (ऐसा करने के लिए) उन्हें रूकू के लिए अपने आपको थोड़ा झुकाना होगा और किसी न किसी तरह से थोड़ा सा ज़्यादा सज्दे के लिए। लोग अपने आपको या अपने सर को झुकाने में नाकाम रहते है। ये ग़ैरज़रूरी है (ऐसे लोगों के लिए) के वो किसी चीज़ पर सज्दा करें। जो सज्दा वो किसी चीज़ पर करेंगे तो उनकी नमाज़ सही होगी अगर उनका झुकना सज्दे के लिए

रूकू के मुकाबले ज़्यादा है तो, इसके बावजूद वो मकरूह का काम कर रहे है। (किसी ऐसी चीज़ पर सज्दा करना जो सज्दे की जगह को उसके माप से ऊँचा कर दें) ये जायज़ नहीं है के लेट कर इशारे से नमाज़ पढ़े जबके बैठकर और टेक लगाकर (किसी चीज़ के सहारे) नमाज़ पढ़ना मुमकिन है। हमारे नवाज़े गए रसूल 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने एक बीमार को देखा जो तकिया अपने आगे रखकर सज्दा कर रहा था, आपने तकिया उठाया और परे फेंक दिया। उसपर उस शख़्स ने लकड़ी की कोई चीज़ अपने सामने रखली। सबसे ज़्यादा मुबारक ज़ात ने उसको भी परे फेंक दिया और इर्शाद फरमाया: "**ज़मीन पर इसको अदा करो** [यानी अपना माथा ज़मीन पर रखो]! **अगर तुम ऐसा करने में नाकाम हो तो इशारे से काम लो, रूकू और सज्दे के इशारे सर झुकाकर करे और रूकू के इशारे से सज्दे के इशारे में सर को ज़्यादा झुकांए।**" जैसा के **बहर-उर-राईक** नाम की किताब में इर्शाद है (और इसको लिखा है जैनुल-आबिददीन इब्ने नुजयम-ए-मिस्री 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' **926-970** [1562 A.D.] मिस्र में एक किताब पर टिप्पणी की गई जिसका नाम है **कैन्ज़-उद-देकाईक** जिसको लिखा है अबुल-बराकात-हफ़ीज़-उद-दीन अब्दुल्लाह बिन अहमद नेसेफ़ी (या नसाफ़ी) 'रहमतुल्लाह तआला अलैहि' ने d-710 [1310 A.D.] बग़दाद में) इसका मतलब सुरह अल इमरान की एक सौ इक्यानवीं आयत-ए-करीम में बताया गया है के "वो जो पढ़ सकता है नमाज़ खड़े होकर, वो जो बैठकर नमाज़ नहीं पढ़ सकता और वो जो दोनों में से कोई भी नहीं कर पाए वो लेटकर नमाज़ अदा करे।" जब इमरान बिन हुसैन 'रज़ि-अल्लाहु तआला' बीमार पड़े तो रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: "**पढ़ो** (नमाज़) **खड़े होकर! अगर तुम ऐसा नहीं कर सकते कोई भी तब एक करवट या कमर के बल लेटकर नमाज़ अदा करे।**" [जैसा के देखा गया है, एक बीमार जो खड़े होकर नहीं पढ़ सकता वो बैठकर पढ़ ले। एक जो किसी भी तरह न बैठ पाए वो लेटकर नमाज़ पढ़े। ये उस

शख़्स के लिए जायज़ नहीं है जो ज़मीन (या फ़र्श) पर बैठ सकता है या फिर वो किसी बस में सफ़र कर रहा है या जहाज़ में है और हथ कुर्सी पर पैर लटका कर नमाज़ पढ़ रहा है अगर एक शख़्स मस्जिद में जमाअत में खड़े होकर नमाज़ नहीं पढ़ सकता तो वो घर में खड़े होकर अदा करे। वहाँ पर बीस उज़र मौजूद है (कोई भी एक) जो तुम्हें बाहर जाने से रोके (मस्जिद को) जमाअत के लिए (यानी जमाअत में नमाज़ पढ़ने के सबब) नीचे बताई गई हालते वो 'उज़र' है जिनमे तुम जुमे की नमाज़ के लिए अपनी जगह न छोड़ पाओ: बारिश, झुलसा देने वाली गर्मी, या बहुत जाड़ा, दुश्मन का खौफ़ होना के कही वो तुम्हारी जान या माल लेने के लिए हमला न कर दें, इस बात का डर होना के कही सफ़र में साथी तुम्हें अकेला छोड़कर न चलदे, गुप अंधेरा होना, अंधे, लूले लंगड़े (केवल) एक पाँव का होना (दूसरा) कट गया हो, रास्ते में ज़्यादा कीचड़ होना, बहुत बूढ़ा होना, फिकहा पर ऊँचा ओहदा खोने का डर, मनपसंद खाने का न मिलने का डर, सफ़र की खानगी का वक़्त करीब आ जाना, बीमार की ख़िदमत करने वाला जिसकी जगह कोई और हाज़िर न हो, रात में आँधी तूफ़ान का होना, पेशाब (या पाख़ाना) की हाजत होना, ऐसे बीमार जिनको डर हो के उनकी बीमारी और ख़राब या बढ़ जाएगी या बीमार की ख़िदमत करने वाला जिसको डर हो के उनका बीमार बिना देखभाल के रह जाएगा। ज़्यादा उम्र होने की वजह से चलने में परेशानी होना। जुमे की नमाज़ के लिए गाड़ी के बजाए पैदल मस्जिद चलकर जाना और आना बहुत मरतबे वाली बात है। ये जायज़ नहीं है के मस्जिद में किसी कुर्सी या हथ कुर्सी पर बैठकर इशारे से नमाज़ पढ़ना। किसी भी इबादत को इस्लाम के हुक़्म के मुताबिक़ न करना **बिदअत** है और ये फिकह की किताबों में लिखा है ये बहुत बड़ा गुनाह है के ऐसे काम को करना जो बिदअत है।]

एक शख़्स जो बहुत ज़्यादा बीमार है (नमाज़ पढ़ने को) किबले की तरफ मुँह करके तो वो किसी भी तरफ मुँह करके नमाज़ अदा कर सकता

है। अगर बीमार कमर के बल चित लेटे और सर के नीचे कोई (नर्म) चीज़ रखे ताकि उनका मुँह किबले की तरफ हो। घुटने खड़े रखें। अगर एक शख़्स (इतना बीमार है के) सर से इशारा भी न कर सके तो उसके लिए जायज़ है के वो नमाज़ कज़ा के लिए छोड़ दे (जिसका मतलब है के नमाज़ का वक़्त पूरा होने तक उसे मुल्तवी कर देना) एक शख़्स अगर नमाज़ के बीच में बीमार हो जाता है तो वो जिस तरह चाहे नमाज़ अदा कर सकता है। अगर एक बीमार जो बैठकर नमाज़ पढ़ रहा है अगर नमाज़ के बीच में अच्छा हो जाता है तो उसे अपनी नमाज़ खड़े होकर अदा करनी होगी। एक शख़्स जो दीवाना हो या दीवानी हो वो नमाज़ नहीं पढ़ सकता/सकती अगर पाँच नमाज़ों के वक़्त पूरे होने से पहले उनकी हालत सुधर जाती है तो उन्हें पाँच कज़ा नमाज़ें पढ़नी लाज़िम होगी। अगर छः नमाज़ों का वक़्त निकल गया तो उन्हें कोई कज़ा नहीं अदा करनी होगी।

ये एक फर्ज़ है के जो नमाज़ तुम उसके ठीक वक़्त पर पढ़ने में नाकाम रहे तो उसकी कज़ा में जल्दी करो, चाहे इशारे के साथ ही क्यों न हो। अगर एक शख़्स अपने को बिस्तरे-मर्ग पर पाता है और अपनी कज़ा नमाज़ें अदा नहीं कर पाता तो ये उसके लिए वाजिब नहीं है के वो अपनी वसीयत में ये हुक़्म दे के जो नमाज़ें उसने नहीं पढ़ी उनकी इस्क़ात के लिए जो माल उसने छोड़ा है उसमें से उन नमाज़ों का फिदया अदा कर दिया जाए। हालांकि ये उस पर वाजिब है के अगर उसकी हालत सुधरती है और उसकी ताक़त इतनी लम्बी रही के काफ़ी वक़्त था कज़ा नमाज़ें पढ़ने का तो वो उनको अदा करे। अगर उसने अपनी वसीयत में ये हुक़्म नहीं दिया तो उलेमाओं के इर्शाद के मुताबिक़ ये जायज़ है उसके वली के लिए या किसी बाहर वाले के लिए के वो अपनी जाएदाद में से उसकी इस्क़ात अदा करे। यहाँ हम उस तहरीर को ख़त्म करते है जो हमने 'नयमत-ए-इस्लाम' से ली थी।

हदीस शरीफ में ऐसे इर्शाद हुआ है: यहाँ चौबीस काम है जो एक शख़्स पर गरीबी लाते है।

1- ज़रूरत के बग़ैर खड़े होकर पेशाब करना।(एक ज़रूरत ऐसी हालत है जिसमें तुम कोई मदद नहीं कर सकते और न ही किसी को काम करने या न करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते।)

2- उस वक़्त खाना ख़ाना जब तुम जुनूब (इस हालत में हो) (यानी जब तुम्हे गुस्ल की ज़रूरत हो)

3- रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े करके फ़ेकना और उनके ऊपर चढ़ना।

4- प्याज़ और लहसुन के छिल्के जलाना।

5- अपने बड़ों से आगे चलना।

6- अपने माँ-बाप को नाम से बुलाना।

7- अपने दांतों को पेड़ या झाडू के तिंके/डाली से कुरेदना।

8- अपने हाथों को मिटटी से धोना।

9- देहलीज़ पर बैठना।

10- जहाँ पेशाब करते है वहाँ वुज़ू करना।

11- बिना धुले बर्तन या कड़ाही में खाना रखना।

12- कपड़े को पहने पहने सीना।

13- जब भूख हो तो प्याज़ खाना।

14- अपने चेहरे को अपने ही लेहगें से सुखाना।

15- अपने घर में मकड़ीयों को रहने देना।

16- (जमाअत में) सुबह की नमाज़ जल्दी पढ़कर मस्जिद से बाहर आना।

17- बाज़ारी जगह पर जल्दी जाना और देर से वापस आना।

18- एक गरीब शख़्स से रोटी खरीदना।

19- अपने माँ-बाप को कोसना बुर्राभला कहना उनसे गलत बात करना।

20- नंगे सोना।

21- बर्तनों और कटोरियों को बिना ढक्कन लगाए रखना।

22- रौशनी को फुक मारना जैसे के मोमबत्ती।

23- बिना बिस्मिल्लाह कहे सारे काम करना।

24- अपनी शलवार को खड़ा टागंना।

अगर एक शख़्स बिस्तर पर जाने से पहले सुरह "**इन्ना-आ-तयना...**," पढ़ले और उसके बाद दुआ मांगे, "या रब्बी (ओ मेरे अल्लाह)! मेहरबानी करके मुझे कल सुबह की नमाज़ पढ़ने के लिए जल्दी उठा दे।" बी-इज़नील्लाही तआला वो शख़्स सुबह की नमाज़ के लिए वक़्त पर उठेगा।

नमाज़ की एहमियत

इशाअत-उल-लेमाअत नाम की किताब (और लिखी है **अब्दुल-हक़-बिन सैफ़ऊददीन देहलवी** 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' ने **958** [**1551** A.D.]- **1052** [**1642**] देहली में) में नमाज़ की एहमियत पर बहुत सारी हदीस शरीफ है। ये किताब टिप्पणी पर मुबनी है जो फारसी ज़बान में लिखी गई है हदीसों पर। जिसका नाम है **मिश्कात-उल-मेसाबीह** (और जिसे लिखा है वली-उद-दीन-खातिब-ए-तबरेज़ी मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' d. **749** [**1348** A.D.] ने ये टीप्पणी करी है और तारीफ़ भी की है उस किताब की जिसका नाम है **मेसाबीह** (जिसे लिखा है इमाम बेगवी हुसैन बिन मसूद-मुहीउस-सुनना 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' d. **516** [**1122** A.D.] में) इशात-उल-लेमात ऐसी किताब है जिसके चार हिस्से है। उसकी नवी इशाअत **1384** [**1964** A.D.] में लखनऊ हिन्दुस्तान में छपी।

नमाज़ को अरबी ज़बान में **सलाअत** भी कहते है और सलाअत का असली मतलब है इबादत, रहमत (हमदर्दी, मुआफ़ी) और इस्तग़फ़ार (अल्लाह से मुआफ़ी की भीख माँगना) के, क्योंकि नमाज़ में ये तीनों मतलब आते है इसलिए नमाज़ को **सलाअत** कहा जाता है।

1- अबू हुरेरा 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हु' से रिवायत है रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' इर्शाद फरमाते है: "रोज़ाना की पाँच नमाज़ें और जुमे की नमाज़ अगले जुमे तक काफारा हे जो गुनाह तुम करोगे वो सब गुनाह मुआफ हो जाएंगे और रोज़े (तीस दिन के) रमज़ान में अगले रमज़ान तक के सारे गुनाह धुल जाएंगे। नमाज़ और रोज़े मुआफी का सबब है जो छोटे गुनाह मुसलमानों ने किए है और बड़े गुनाहों को करने से बचना चाहिए।" वो मुआफी के लायक गुनाहों को ख़त्म कर देते है जो इस बीच होते है और इंसानी

हुकुक़ इसमें शामिल नहीं है। उन मुसलमानों के साथ जिनके मुआफी के लायक़ गुनाह सब मुआफ हो गए और उसमें से कुछ भी नहीं बचा, वो (यानी जुमे की नमाज़ और रमज़ान के रोज़े) उनके बड़े गुनाहों को भी ख़त्म करने का सबब बनते है। बड़े गुनाहों की मुआफी के लिए चाहिए के वो तौबा करे अपने गुनाह की जिसका मतलब है अपने गुनाहों पर पछताना और अल्लाह से गिड़गिड़ा कर तौबा करना के ये गुनाह दोबारा नहीं करूँगा/करूँगी और अल्लाह से वादा करना के ये गुनाह दोबारा नहीं करूँगा। अगर एक मुसलमान कोई बड़ा गुनाह नहीं करता है तो वो अपने ज़मीर को साफ रखता है। ये हदीस शरीफ सही मुस्लिम नाम की किताब में लिखी हुई है। जुमे की नमाज़ उन मुसलमानों को मुआफी दिलाती है जिनकी पँच वक़्ता नमाज़ें खराब है। अगर उनकी जुमे की नमाज़ भी ख़राब है तो फिर रमज़ान के रोज़े उसको मुआफी दिलाएंगे।

2- अबू हुरेरा 'रज़ि-अल्लाहु अन्हु' ने दोबारा बयान में कहा रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: **"मान लो किसी घर के दरवाज़े के आगे से नहर बह रही है और वो शख़्स रोज़ाना पाँच वक़्त उस नहर में नहा रहा है तो क्या उसके ऊपर कोई मैल, कूड़ा रह जाएगा?"** "नहीं वहाँ पर कोई कूड़ा नहीं रह पाएगा, ओ अल्लाह के पैग़म्बर, सहाबा ने जवाब दिया। उसके बाद रसूलुल्लाह ने कहा: **"यही रोज़ाना की पाँच नमाज़ों के साथ है। अल्लाहु तआला सब बड़े गुनाह मिटा देता है उस मुसलमान के जो रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़ते है।"** ये हदीस शरीफ **सही-बुख़ारी** के साथ-साथ **सही मुस्लिम** में भी लिखी हुई है।

3- अब्दुल्लाह इब्ने मसूद 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' ने एक किस्सा बयान फरमाया: किसी ने एक औरत को चूमा जो उसके लिए नामहरम थी। या फिर इसकी तफ़सील ऐसे है, अन्सार में से एक शख़्स था जो खजूरे बेचता था। एक औरत उसके पास खजूरे खरीदने आई। उसकी ख़ूबसूरती को देखकर उसके

दिल में शैतानी ख़्याल आया, “मेरे पास घर में इससे अच्छी खजूरे है। मेरे साथ चलो ताकि मैं तुम्हें अच्छी खजूरे दे सकूँ।” उसने कहा। जब वो दोनों उसके घर पहुँचे तो उसने उसे गले लगाया और चूमा। “तुम क्या कर रहे हो? अल्लाह से डरो,” औरत ने उसकी मुख़ालफ़त की। उसको अपनी ग़लती का एहसास हुआ। वो रसूलुल्लाह ‘सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम’ के पास आया और उसने जो किया था वो बताया। रसूलुल्लाह ‘सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम’ ने उसको कोई जवाब नहीं दिया और अल्लाहु तआला की तरफ से ‘वही’ नाज़िल होने का इंतेज़ार करने लगे। उसके बाद उस शख़्स ने नमाज़ पढ़ी। अल्लाहु तआला ने एक सौ चौदहवी सूरह हूद की आयात (अपने नवाज़े गए पैग़म्बर को) हमारे प्यारे नबी को भेजी। उन आयत-ए-करीमा का मतलब है: “**दिन के दोनों तरफ पाबंदी से नमाज़ अदा करो और जब रात बढ़ने लगे तब भी। ताकि जो पाक है वो बुराई गंदगी को ख़त्म कर दें या मिटा दें;...**।” दिन को दोनों तरफ का मतलब है दोपहर से पहले और दोपहर के बाद। तो, यहाँ नमाज़ों का मतलब है सुबह और दोपहर के बाद की इबादतें। और रात की तरफ बढ़ने वाली नमाज़ों का मतलब है शाम की और रात की इबादतें। इस आयत-ए-करीमा ने बताया के रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ें अदा करने से गुनाहों की मुआफी मिलती है। (गुनाह मुआफ हो जाते है) उस शख़्स ने पूछा: “या रसूलुल्लाह (ओ अल्लाह के पैग़म्बर)! क्या ये सिर्फ मेरे लिए अच्छी ख़बर है? “**ये मेरी पूरी उम्मत के लिए है** (मुसलमानों के लिए)**,**” प्यारे नबी ने फरमाया। ये दोनों हदीसे शरीफ ‘सही’ नाम की किताबों में लिखी हुई है, (यानी सही-ए-बुख़ारी में और सही-ए-मुस्लिम में) [बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** के दूसरे हिस्से का छठा बाब देखिए।]

4- उनसे बिन मलिक ‘रज़ि-अल्लाहु अन्ह’ (ने बयान फरमाया) से रिवायत है: कोई शख़्स हमारे रसूलुल्लाह ‘सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम’ के पास आया और बोला: “मुझसे एक जुर्म हो गया है जिसमें मुझे हद [बराए

मेहरबानी **सआदते अबदिया** के छठे हिस्से का दसवाँ बाब देखिए।] की सज़ा मिलनी चाहिए।मुझे इस हद के लिए कोड़ों से मारा जाए।" रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने उससे नहीं पूछा के तुमने क्या गुनाह किया है।जब नमाज़ का वक़्त हुआ तो हम सबने एक साथ नमाज़ अदा की।जब रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' नमाज़ पूरी कर चुके तो वो शख़्स खड़ा हुआ और बोला: "या रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम'! मैने एक गुनाह किया है जिसकी मुझे हद का जुर्माना अदा करने की सज़ा मिलनी चाहिए।मुझे वो सज़ा दिजिए जिसका हुक्म अल्लाहु तआला ने अपनी किताब में दिया है!" "**क्या तुमने हमारे साथ नमाज़ अदा नहीं की,**" सब पैग़म्बरों से आला ने पूछा।उसके बाद उसने कहा: "हाँ, मैने पढ़ी।" "**उदास मत हो।अल्लाहु तआला ने तुम्हारा गुनाह माफ कर दिया**" ये अच्छी ख़बर अल्लाहु तआला के प्यारे नबी की तरफ से आई।ये 'हदीस शरीफ' हदीसों की दोनों की बुनियादी किताबों में है।वो शख़्स ये बात मान रहा था के उससे एक बहुत बड़ा गुनाह हुआ है जिसकी वजह से उस पर हद आएद होता है।नमाज़ पढ़ने की वजह से उसको माफ किया जा सकता है इससे ये ज़ाहिर होता है के ये क़ाबिले माफी गुनाह था।या, फिर "हद" कहने से उसका मतलब हो 'ताज़ीर' जो क़ाबिले माफी गुनाह के बदले आएद किया गया हो।वो ज़रूर यही सिलसिला रहा होगा, बहरहाल उसने ये नहीं कहा, "मेरे ऊपर हद लगाओ", अपनी दूसरी छानबीन में।

5- अब्दुल्लाह इबनी मसूद 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' से रिवायत है: मैने रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि व सल्लम' से पूछा अल्लाह तआला को कौन सा काम सबसे ज़्यादा पसंद है। "**सही वक़्त पर पढ़ी गई नमाज़**", सबसे ज़्यादा प्यारे नबी ने जवाब दिया।असल में, किसी हदीस-ए-शरीफ ये इर्शाद है के अल्लाह तआला "**पसंद करता है एक नमाज़ को जो अव्वल वक़्त मे पढ़ली जाए।**" मैने पूछा क्या काम है जो अल्लाहु तआला को दूसरे नंबर पर पसंद

है। "**वालदैन के साथ अच्छा रहना,**" आपने कहा। मैने पूछा तीसरे नंबर पर 'अल्लाहु तआला' को क्या पसंद है, और अल्लाहु तआला के प्यारे नबी ने जवाब दिया: "**अल्लाह की राह में जिहाद करना।**" ये हदीस-ए-शरीफ भी 'सही' की दोनों किताबों में लिखी हुई है। एक और हदीस-ए-शरीफ में रिवायत है: "**सब कामों से अफज़ल है किसी को खाना देना।**" एक और में: "**सबसे अच्छा काम है ऐसे तरीके को फैलाना जिसमें मुसलमान एक दूसरे को खुशआमदीद कहें।**" (बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के तीसरे हिस्से का बासठवाँ बाब देखें) एक दूसरी में: "**सबसे अच्छा काम है आधी रात को नमाज़ पढ़ना जब सब लोग सो रहे हो।**" एक दूसरी हदीस-ए-शरीफ में: "**सबसे क़ीमती काम है (इस तरह बरताव करना) के किसी को तुम्हारे हाथों से नुक़सान न हो,** (यानी तमीज़) **और ज़बान से,** (यानी बातें)।" एक दूसरी हदीस-ए-शरीफ में: "**जिहाद सबसे क़ीमती काम है।**" एक दूसरी हदीस-ए-शरीफ में ये इर्शाद हुआ है: "**सबसे क़ीमती काम है हज-ए-मबरूर।**" हज-ए-मबरूर का मतलब है एक हज जो बिना कोई गुनाह किए पूरा हो गया हो। एक और हदीस-ए-शरीफ में आया है के सबसे क़ीमती काम है "**अल्लाह तआला का ज़िक्र करना।**" और एक दूसरी में इर्शाद है के: "**एक अमल जो मुसलस्ल अदा किया जाए।**" जवाब में जो मतभेद है वो लोगों के ज़रिए पूछे गए अलग-अलग सवालों के मुताबिक़ है। या, अलग जवाबों के लिए अलग वक़्त का होना। मिसाल के तौर पर इस्लाम के फैलने के शुरू के दिनों में जिहाद को सबसे ज़्यादा क़ाबिल काम समझा जाता था। [हमारे वक़्त में सबसे ज़्यादा क़ाबिल काम है उन काफिरों और लोगों को इशाअत और नशरयात के ज़रिए गलत साबित करना जो मज़हब से फिर गए हों, और उन तालिमात को फैलाना जो (उलेमाओं ने) अहल-अस-सुन्नत ने बताई हों। लोग जो जिहाद के बहादुरों की माली और/या ज़कात के ज़रिए और/या जिस्मानी मदद करते है, वो जो भी सवाब कमाते है उसमें उनका भी हिस्सा होता है। आयत-ए-करीमा और हदीस-

ए-शरीफ से ये ज़ाहिर होता है के नमाज़ ज़कात या दूसरी किसी भी ख़ैरात से ज़्यादा क़ीमती है। क्या चीज़ नमाज़ अदा करने से भी क़ीमती है वो है, कोई चीज़ किसी को देना जो मरने वाला हो और इसकी वजह से उनको मौत से बचा लिया जाए।]

6- जाबिर-बिन अब्दुल्लाह 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' बयान फरमाते है: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**आदमी और कुफ्र** (काफिर) **के बीच की हद है नमाज़ को ख़त्म कर देना।**" इसके लिए नमाज़ एक पर्दा है जो आदमी को कुफ्र के रावते में आने से बचाता है। एक बार ये परदा बीच से हट जाए, तो गुलाम (बन्दा) कुफ्र में धसता चला जाता है। ये हदीस-ए-शरीफ **सही मुस्लिम** में लिखी हुई है। इस हदीस-ए-शरीफ के ज़रिए से ये ज़ाहिर होता है के नमाज़ को नज़रअदांज़ करना कितना खतरनाक है। ज़्यादातर सहावा-ए-कराम ने फरमाया के जो शख़्स विना किसी उज़र के नमाज़ छोड़ता है ऐसा करने से वो विना ईमान वाला (काफिर) वन जाता है। शाफ़िई और मालिकी मस्लक़ों के मुताविक़ वो शख़्स काफिर नहीं वन जाता, लेकिन तव उसको मौत दे देना वाजिव हो जाता है। हनफ़ी मस्लक में उसको क़ैद में रखो और मारो और तव तक जेल में रखो जव तक के वो दोवारा नमाज़ पढ़नी शुरू न कर दें।

7- उवेद-विन सावित 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' से रिवायत है: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**अल्लाहु तआला ने हुक्म दिया (हमें) पाँच वक़्त (रोज़ाना) की नमाज़ पढ़ने का। अगर एक शख़्स अच्छे तरीक़े से वुज़ू करता है और सही वक़्त पर अदा करता है और पूरे दिमाग़ के साथ रूकू और ख़ुशूअ करता है, तो अल्लाहु तआला ने वादा किया है के वो उस शख़्स को माफ कर देगा। उसने ये वादा उन लोगों के लिए नहीं किया जो ये सब चीज़ें नहीं करते। वो या तो उन्हें माफ कर देता है या उन्हें परेशानियों में**

डाल देता है, ये उसकी मरज़ी पर है।" ये हदीस-ए-शरीफ इमाम अहमद, अबू दाऊद और नसाई की रिवायत है। ऐसा देखा गया है, के नमाज़ के लिए जो ज़रूरी है जैसे उसके रूकू और सज्दे उनको पूरे दिमाग़ के साथ अदा करना। अल्लाहु तआला कभी अपनी बातों से नहीं फिरता। वो पक्के तौर पर मुसलमानों को माफ कर देता है जो नमाज़ सही ढ़ग से अदा करते है।

8- अबू-इमामा-ए-बहिली 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' से रिवायत है रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**(रोज़ाना) अदा करो अपनी पाँच वक़्ता नमाज़ ! (रमज़ान में) एक महीने के रोज़ें रखो! अपनी जाएदाद की ज़कात अदा करो! अपने हाकिमों का कहना मानो। अपने रब के बाग़ में दाखिल हो जाओ।**" ऐसा देखा गया है, एक मुसलमान जो रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़ता है और रमज़ान में रोज़े रखता हो और माल की ज़कात देता हो और हाकिमों के जो ज़मीन पर अल्लाहु तआला के ख़लीफा है उनके इस्लामी शरीअत के एहकाम को मानता हो। वो जन्नत में दाखिल होगा। इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला इमाम अहमद और तिरमुज़ी ने दिया।

9- बरदा-ए-इस्लेमी 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' जाने माने सहाबियों में से एक, ने फरमाया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**नमाज़ तुम्हारे और हमारे बीच एक मुआहिदा/समझौता है। वो जो नमाज़ को ख़त्म करे वो काफिर बन जाता है।**" ऐसा देखा गया है, एक शख़्स जो नमाज़ पढ़ता है वो मुसलमान साबित कर दिया जाता है। अगर एक शख़्स नमाज़ की तरफ ध्यान नहीं देता और नमाज़ नहीं पढ़ता क्योंकि वो ये नहीं मानता के नमाज़ एक बुनियादी फरीज़ा है, वो काफिर (बिना ईमान वाला) बन जाता है। इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला इमाम अहमद ने, तिरमुज़ी ने, नेसई ने और इबनी माजा ने दिया (चार सबसे बड़े हदीसों के आलिम।)

10- अबुज़र-ए-गफ़्फ़ारी 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' से रिवायत है: पत्तझड़ के एक दिन में रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' और मैं बाहर चले गए। पत्ते झड़ रहे थे। आपने एक पेड़ में से दो टहनियाँ उठाई उसमें से एक साथ सारी पत्तियाँ झड़ गई। **"या अबुज़र! जब एक मुसलमान अल्लाह की रज़ा के लिए नमाज़ पढ़ता है, उसके सारे गुनाह इन टहनियों के गिरे हुए पत्तों की तरह झड़ जाते है,"** आपने फरमाया। इस हदीस शरीफ की रिवायत इमाम अहमद ने दी है।

11- ज़ैद बिन ख़ालिद जुहेमी की रिवायत है: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने इशार्द फरमाया: "जब एक मुसलमान एक नमाज़ की दो रकाअतें सही तौर पर और ख़ुशूअ के साथ पढ़ता है, उसके पिछले गुनाह माफ कर दिए जाते है।" वो है, उसके सारे क़ाबिले माफी गुनाह माफ कर दिए जाते है। ये रिवायत इमाम अहमद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' की हदीस-ए-शरीफ की है।

12- अब्दुल्लाह बिन अमिर इबनी आस 'रज़ि-अल्लाहु तआला' अन्हुमा से रिवायत है: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने इर्शाद फरमाया: **"अगर एक शख़्स नमाज़ पढ़ता है, वो नमाज़ एक नूर (रोशनी) बन जाती है और एक बुरहान (सबूत) और उनके लिए निजात का सबब बनती है। अगर वो नमाज़ को नहीं बचा पाते, वो उनके लिए न तो नूर बनेगी और न ही बुरहान, तो वो निजात हासिल नहीं कर पाएंगे। वो एक साथ रखे जाएंगे कारून के साथ, फिरओन के साथ, हम्मान के साथ और उवेए बिन खलेफ़ के साथ।"** ऐसा देखा गया है, अगर एक मुसलमान अपनी नमाज़ पूरे दिमाग़ के साथ उसके फर्ज़, वाजिब, सुन्नत और अदब अदा करता है, वो नमाज़ उनको हशूर के दिन नूर अता फरमाएगी। अगर वो इस तरीक़े से नमाज़ अदा नहीं करते, तो कयामत के दिन उनका शुमार ऊपर बताए गए काफिरों के साथ

होगा।वो ये, के दोज़ख़ में उनको बहुत तकलीफे उठानी पड़ेंगी।उबेए बिन खलेफ़ अपनी राए को न बदलने वाले मक्का के काफिरों/मुशरिकों में से एक था।जंग ओहोद में रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने उसको अपने मुबारक हाथों से ख़ुद दोज़ख़ में भेजा।इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला इमाम अहमद ने, इमाम बेएहकी, और दरीमी (अब्दुल्लाह बिन अबद-उर-रहमान हाफिज़ अबू मुहम्मद) ने दिया है।

13- अब्दुल्लाह बिन शक़ीक 'रहीमा-हुल्लाहु तआला', ताबिईन में सबसे अफज़लों में से एक ने इर्शाद फरमाया: "सहाबाए कराम 'रज़ि-अल्लाहु अनहुम' ने सब इबादतों में से सिर्फ नमाज़ ही है जो अपने नज़रअदांज़ करने वाले को काफिर (अल्लाह का दुश्मन) बना देती है।" ये जानकारी दी है (मुहम्मद बिन ईसा) तिरमुज़ी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' ने।इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला अब्दुल्लाह बिन शकीक ने (सहाबी जैसे के) उमर, अली, उसमान और आएशा 'रज़ि-अल्लाहु अन्हुम' की इजाज़त से दिया।उन्होंने हिजरा के एक सौ आठवें साल में रहलत फरमाई।

14- अबु-बी-दरदा 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने इर्शाद फरमाया: मेरे सबसे प्यारे मुबारक ने मुझसे फरमाया: "चाहे तुम टुकड़ों में काट दिए जाओ या आग में जला दिए जाओ, कभी किसी को अल्लाहु तआला का शरीक न बनाओ! कभी फर्ज़ नमाज़ न छोड़ो! एक शख़्स जो फर्ज़ नमाज़ें छोड़ता है वो इस्लाम से बाहर हो जाता है।कभी शराब मत पियो।शराब सब बुराइयों की चाबी है।" ऐसा देखा गया है, एक शख़्स जो बिना दिमाग़ के फर्ज़ नमाज़ अदा करे वो काफिर बन जाता है।एक शख़्स जो नमाज़ छोड़े आलस की वजह से वो काफिर नहीं बन जाता, लेकिन फिर भी ये बहुत बड़ा गुनाह है।ये कोई गुनाह की बात नहीं है के नमाज़ अदा नहीं कर पाना, इस्लाम के बताए गए पाँच उज़रों में से किसी एक की वजह से।शराब और दूसरी सभी नशीली चीज़ें

दिमाग़ को बंद कर देती है। एक शख़्स जिसका दिमाग़ बंद है वो कोई भी बुरा काम कर सकता है।

15- अली 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान फरमाया। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "या अली! वहाँ पर तीन चीज़ें है जिन्हे तुम टाल नहीं सकते: जब नमाज़ का वक़्त आ जाए, उस नमाज़ को जल्दी से पढ़लो। जब एक जनाज़ा (एक मरा हुआ मुस्लिम जिसे दफ़नाना हो) तैयार हो (दफ़नाने के लिए), जनाज़े की नमाज़ जल्दी से पढ़ लेनी चाहिए, जब तुम अपनी बेटी के लिए कुफव को ढूँढ लो, उसकी फौरन शादी कर दो।" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला तिरमुज़ी 'रहिमा-हुल्लाहु तआला' ने दिया। एक जनाज़े की नमाज़ फिर भी पढ़ लेनी चाहिए तीन वक़्तों के दौरान जब नमाज़ पढ़ना मकरूह होता है। (तीन वक़्तों को किराहत कहते है, और जो सआदत अबदिया के चौथे हिस्से के दसवें बाब के आख़िरी हिस्से में तफ़सील से बताया गया है।)

[ऐसा कहा गया है, एक औरत या लड़की की उसके कुफ़ के साथ शादी कर देनी चाहिए, यानी उस आदमी के साथ जो उसके लायक़ हो। कुफ़ होने का मतलब है एक सालिह मुस्लिम जो अहल-अस-सुन्नत को मानता हो, पाँच वक़्त की रोज़ाना नमाज़ पढ़ता हो, नशीली चीज़ें न पीता हो, यानी इस्लाम को मानता हो, और इतनी आमदनी का होना जो नफ़का (वो ये, के वो एक खानदान को चलाने लायक़ हो) के लिए काफ़ी हो, वालदैन जो एक आदमी को सिर्फ उसके अमीर होने से या उसके बड़े घरों से जाँचते है वो अपनी बेटियों को बरबादी की तरफ धकेल देते है और उन्हें दोज़ख़ में धक्का दे देते है। और लड़कियों को नमाज़ पढ़नी चाहिए (पाँच वक़्त की रोज़ाना) बाहर अपने सर और बाज़ुओं को खुला न रखें, और अकेले में नामहरम के साथ न बैठे, चाहे वो उसके रिश्तेदारों में से कोई एक क्यों न हो।]

16- अब्दुल्लाह इबनी उमर 'रज़ि-अल्लाहु अन्हुमा' ने बयान फरमाया रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**अल्लाहु-तआला उन लोगों से बहुत ख़ुश होता है जो अपनी नमाज़ अव्वल वक़्त में ही पढ़ लेते है। और वो माफ कर देता है उनको जो उसको देर से अदा करे।**" ये रिवायत तिरमुज़ी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' की हदीस-ए-शरीफ से है।

शाफ़िई और ह़नबाली मस्लक़ों में ये बात क़ाबिले तारिफ है के हर नमाज़ को उसके अव्वल वक़्त पर पढ़ लिया जाए। मालिकी मस्लक भी करीब करीब इसी बात को मानता है। हालांकि, एक बहुत गरम मौसम में अकेले नमाज़ पढ़ने वाले के लिए ये अच्छा है के वो अपनी दोपहर की नमाज़ देर से पढ़ले। हनफ़ी मस्लक में ये बात मानी जाती है के सुबह और रात की नमाज़ें देर से पढ़ी जाए, और दोपहर की नमाज़ तब पढ़ी जाए जब मौसम ठंडा हो जाए उन महीनों में जब बहुत गरमी हो। [बिहरहाल, ये अच्छा है और पहले से हिफाज़त कर ली जाए, दोपहर की नमाज़ असर के वक़्त के शुरू होने से पेहले पढ़ली जाए तराफईन क़ौल के मुताबिक़, और दोपहर के बाद वाली और रात की नमाज़ें उनके वक़्त शुरू होने के बाद पढ़ी जाए। इमाम-ए-आज़म अबू हनीफ़ा के क़ौल के मुताबिक़ (नमाज़ों के वक़्त की तफ़सील के लिए बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** के चौथे हिस्से का दसवां बाब देखिए।) लोग जो तक्वा के साथ है (अल्लाहु-तआला का डर) वो हर काम जो भी करते है पूरी हिफाज़त के साथ करते है।]

17- उम्मे-फरवा 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने कहा: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने पूछा सबसे ज़्यादा तारीफ़ के क़ाबिल कौन सा काम है। उन्होंने कहा: "**सबसे ज़्यादा तारीफ़ के क़ाबिल काम है नमाज़ जो के वक़्ते अव्वल मे पढ़ली जाए।**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला इमाम अहमद ने, तरमीज़ी ने और अबू दाऊद 'रहीमा-हुमुल्लाहु तआला' ने दिया। नमाज़

सबसे आला इबादत का काम है। ये और भी ज़्यादा अफ़ज़ल हो जाता है जब इसे वक़्त शुरू होते ही जल्द से जल्द अदा कर लिया जाए।

18- 'आईशा 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने फरमाया: "मैंने कभी रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि व सल्लम' को एक नमाज़ को दोबारा उसके वक़्त के बाद पढ़ते हुए नहीं देखा।"

19- उम्मे-हबीबी 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने फरमाया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**अगर एक मुसलमान गुलाम** (अल्लाहु तआला का) **बारह रकअतें नमाज़ की पढ़े** तैताव्वु **के तौर पर रोज़ाना की फर्ज़ नमाज़ों के अलावा, तो अल्लाहु तआला जन्नत में उसका एक महल बना देते है।**" ये हदीस-ए-शरीफ **सही मुस्लिम** में लिखी हुई है। ऐसा देखा गया है, रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' सुन्नत नमाज़ों को जो फर्ज़ नमाज़ों के साथ रोज़ाना पढ़ी जाती है उन्हें 'तैताव्वु' कहते है, जिसका मतलब है नफ़िल (फर्ज़ नमाज़ के अलावा) नमाज़ें।

20- अब्दुल्लाह बिन शक़ीक 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ताबईन के अफज़लों में से एक है: मैने पूछा हज़रत आईशा 'रज़ि-अल्लाहु अनह' से रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' की तैताव्वु की नमाज़ों के बारे में, जो के नफ़िल (फर्ज़ नमाज़ के अलावा) नमाज़ें है। हमारी नवाज़ी गई माँ ने कहा: "वो चार रकअते दोपहर की नमाज़ के फर्ज़ वाले हिस्से से पहले पढ़ते है और दो रकअते उसके बाद, (यानी, फर्ज़ो के बाद,) दो रकअतें शाम की नमाज़ के फर्ज़ वाले हिस्से के बाद, दो रकअतें रात की नमाज़ के फर्ज़ वाले हिस्से के बाद, और दो रकअते सुबह की नमाज़ के फर्ज़ हिस्से से पहले। ये जानकारी मुस्लिम और अबू दाऊद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने दी है।

21- आईशा 'रज़ि-अल्लाहु अन्हा' ने फरमाया: "नफ़िल नमाज़ की इबादत के अलावा, सुबह की नमाज़ की सुन्नतें ऐसी थी जो के रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' बहुत जल्दी अदा करते थे।" ये हवाला (सही-ए-) **बुख़ारी** और (सही-ए-) **मुस्लिम** में लिखा हुआ है। आईशा 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने सुन्नत नमाज़ों को जो रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ों को जो रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ों के साथ पढ़ी जाती है उन्हे नफ़िल नमाज़ कहा।

[इमाम रब्बानी मुजदीद-ए-अलीफ़-सानी अहमद बिन अबद-उल-आहद-फ़ारूकी सिरहंदी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' एक बड़े इस्लामी उलेमा, अहले-सुन्नत के ताकतवर माहिर,बिदअती और ला-मज़हबी लोगों के मुख़ालिफ, एक बड़े मुजाहिद जिन्होने उस मज़हब को फैलाया जो अल्लाहु तआला ने चुना और जिन्होने बिदअत को ख़त्म किया, अपनी किताब जिसका मज़मून है **मकतूबात**, उसके पहले हिस्से के उन्नतीसवें पैग़ाम में, उसके जैसा लिखा हुआ इस्लामी मज़हब में नहीं मिलता उसमें ऐसे इर्शाद फरमाया:

अल्लाहु तआला को जो काम पसंद है वो काम है फ़र्ज़ और दूसरे इबादत के काम (नफ़िल)। नफ़िलों का जब फ़र्ज़ के साथ मवाज़ना किया जाता है तो उनकी कोई क़ीमत नहीं होती। एक फ़र्ज़ नमाज़ को उसके बताए गए वक़्त पर अदा कर लेना बहुत एहमियत रखता है उन नफ़िल इबादतों से ज़्यादा जो के लगातार हज़ार साल तक अदा की गई हो। ये उसूल हर क़िस्म की नफ़िल इबादतों पर लागू होता है, मिसाल के तौर पर नमाज़, ज़कात, रोज़ा, उमरा, हज, ज़िक्र और फ़िक्र (मुराक़्बा/ध्यान)। असल में जब नमाज़ अदा की जाती है जो के फ़र्ज़ है, और उसकी सुन्नत और अदाब अदा करना ये सब दूसरे नफ़िलों के मुकाबले ज़्यादा एहमियत रखते है। एक दिन, जब अमीर-उल-'मोमिनिन' उमर-अल-फारूक 'रज़ि-अल्लाहु अनह' सुबह की नमाज़ जमाअत से पढ़ा रहे थे, उन्होंने ग़ौर किया के कोई शख़्स जिसे वो जानते थे वो

नमाज़ में मौजूद नहीं था उन्होंने पूछा (जो मुसलमान वहाँ मौजूद थे उनसे) वो शख़्स यहाँ क्यों नहीं है। "वो हर रात नफ़िल नमाज़ें अदा करता है। हो सकता है वो सो गया हो और जमाअत में आने में नाकाम रहा हो", उन्होंने समझाया। उसके बाद नवाज़े गए ख़लिफ़ा ने इर्शाद फरमाया: "ये ज़्यादा अच्छा होता है के वो सारी रात सोता और सुबह की नमाज़ जमाअत से अदा करता।" ऐसा देखा गया है, जब तुम कोई इबादत का काम करते हो जो के फ़र्ज़ है (मिसाल के तौर पर, रोज़ाना की पाँच वक़्त की नमाज़ों के फ़र्ज़) अदाब (या मंज़ब) को मानना या इसके किसी भी मकरूह को नज़रअंदाज़ करना ये लाताअदाद वक़्त से ज़्यादा क़ीमती है बजाए इसके कोई भी एक काम करना (ख़ुद की नफ़िलें) इबादत का जैसे ज़िक्र, फ़िक्र और मुराक़िबा में जाना। ये सही है के अलग से जो काम इबादत के किए जांए वो बेशक बहुत फायदेमंद है अगर पूरे अदाब का ख़्याल रखा जाए और मकरूह को नज़रअंदाज़ किया जाए। तब तक इनकी कोई अच्छाई नहीं जब तक के ये बग़ैर किसी इबादत के अलग से अदा की जाए। उसी तरह, किसी को देना (तुर्की) लीरा ज़कात के तौर पर, (जो के मुसलमानों के लिए फर्ज़ है **सआदत अबदिया** के पाँचवें हिस्से के पहले बाब में तफ़सील से समझाया गया है,) ये अच्छा है उससे के हज़ारों लीरा ख़ैरात के नाम पर बाँट दिए जो के फर्ज़ से अलग है। दरअसल, अदाब को ध्यान से देखना (ज़कात के) जब तुम लीरा दे रहे हो यानी अपने करीबी रिश्तेदार [ये बिना कहे बात है, के करीबी रिश्तेदारों में जिनको तुम सहारा दे रहे हो, इसमे तुम्हारी बीवी, बच्चे, वालदैन शामिल नहीं होते।] वो किसी भी नफ़िल इबादत से अच्छा है। [यहाँ से, जो लोग आधी रात में तहज्जुद (या तेहज्जुद) पढ़ना चाहते है उनको चाहिए वो क़ज़ा नमाज़ें पहले अदा करें। अल्लाहु तआला के हुक़्मों को **फ़र्ज़** (या **फर्द**) कहा जाता है, और उसकी मना की हुई बातों को **हराम** कहा जाता है। हमारे रसूल के हुक़्मों को **सुन्नत** कहा जाता है, और जो काम आपने करने से मना किए है

उन्हें **मकरूह** कहते है। ये सब चीज़ें, मिलकर **अहकाम-ए-इस्लामिया** कहलाती है। ये फर्ज़ है के हम अपना रवैय्यह ख़ूबसूरत रखें और लोगों के साथ अच्छे से पेश आए। एक शख़्स इंकार करता है या नफ़रत करता है किसी अहकाम-ए-इस्लामिया के उसूल को मानने से तो वो **बिना ईमान (काफिर),** एक **दग़ाबाज़ (मुरतदीद)** बन जाता है। एक शख़्स जो अहकाम-ए-इस्लामिया, को मानता है वो पूरे तौर पर एक **मुस्लिम** कहलाता है। एक मुस्लिम जो अहकाम-ए-इस्लामिया की नाफ़रमानी करता है अपने आलस की वजह से वो **फ़ासिक** मुस्लिम बन जाता है। एक फ़ासिक मुस्लिम वो है जो अल्लाह के हुक़्मों या मकरूह कामों की नाफ़रमानी करे वो दोज़ख़ में जाएगा। कोई भी अच्छा काम और सुन्नतें जो एक फ़ासिक मुस्लिम करेगा वो क़ुबूल नहीं किया जाएगा और न ही उसका कोई सवाब उसको दिया जाएगा। अगर एक शख़्स ज़कात अदा नहीं करता, चाहे वो (तुर्की) लीरा, हो उनका कोई भी ख़ैरात या दान का काम क़ुबूल नहीं किया जाएगा। चाहे उन्होंने मस्जिदों और या स्कूलों और या अस्पतालों के बनने में अपना कितना ही पैसा लगाया हो या किसी ख़ैराती अदारे/तंज़ीम को दान दिया हो उनको किसी भी चीज़ का सवाब नहीं मिलेगा। एक शख़्स ने तरावीह की नमाज़ पढ़ी लेकिन उसने रात की नमाज़ अदा नहीं की तो वो नमाज़ क़ुबूल नहीं की जाएगी। वो इबादत के काम जो फर्ज़ या वाजिब के अलावा किए जाए उन्हें नफ़िल (अलग से की गई इबादतें) कहा जाता है। सुन्नतों को अलग से की गई इबादतें कहते है। इस मतलब की रौशनी में, एक शख़्स जो क़ज़ा नमाज़ अदा करता है उसे साथ में सुन्नत नमाज़ें भी पढ़नी होगी। एक फर्ज़ को अदा करने का या एक हराम को नज़रअंदाज़ करने का जो सवाब (कमाया जाएगा) उसे मिलेगा वो उस सवाब से कही ज़्यादा है जो दस लाख नफ़िल इबादतों से उसे हासिल होगा। एक शख़्स जो फर्ज़ को छोड़ता है या कोई हराम काम करता है वो दोज़ख़ में आग में जलाया जाएगा। उनकी नफ़िल इबादते उनको दोज़ख़ से नहीं बचा पाएंगी। इबादत के

कामों में रददोबदल करने को **बिदअत** कहते है।कोई भी इबादत का काम करते हुए अगर एक बिदअत का काम हो जाए तो वो हराम है और वो इस इबादत के काम को ख़राब कर देता है।[बराहमहबानी उस बाब पर नज़रसानी करिए जो 'अज़ान-ए-मुहम्मद' के बारे में है।] हदीस-शरीफ में इर्शाद है: **"एक शख़्स ने बिदअत की उसका कोई भी इबादत वाला काम जो उसने अदा किया वो क़ुबूल नहीं होगा।"** एक शख़्स जो फ़ासिक है, मिसाल के तौर पर, उसकी बीवी और बेटी अपने आपको सही तरीक़े से ढक्कर बाहर नहीं जाती; या उसने बिदअत की; मिसाल के तौर पर, अगर उसने मस्जिद में लाऊड स्पीकर का इस्तेमाल किया; तुम उसके पीछे नमाज़ नहीं पढ़ोगे; (दूसरे लफ्ज़ों में, तुम उसकी जमाअत में नमाज़ अदा नहीं करोगे;) तुम उसकी धोखेबाज़ी वाली तक़रीरें नहीं सुनोगे न ही उसकी किताबें पढ़ोगे।बहरहाल, तुम सबके साथ मुस्कुरा कर मिलोगे, दोस्त और दुश्मन के साथ एक जैसा बरताव करोगे, और सबके साथ तमीज़ से बात करोगे, तुम्हारा किसी के साथ कोई मतभेद नहीं होना चाहिए।हदीस-ए-शरीफ में इर्शाद है: **"मुर्ख की बात का जवाब नहीं देना चाहिए।"** इबादत दिल की पाकी को बढ़ाती है।गुनाह दिल को काला करता है, तो इसलिए उसको कोई फैज़ नहीं मिल पाता।हर वाहिद मुस्लिम के लिए ई मान और फराइज़ और हराम की ज़रूरी बातों को याद करना फर्ज़ है।उनको न जानना कोई सही 'उज़र' नहीं है।वो ये के वो उन्हे जानते है लेकिन बराबरी से अदा नहीं करते।[**मकतूबात** मज़मून के नाम से किताब अरबी ज़बान में है।उस किताब का तर्जुमा यहाँ पर ख़त्म होता है।हज़रत इमाम रब्बानी ने **1034 [1624 A.D.]** में हिन्दुस्तान के शहर सरहिंद में रहलत फरमाई।]

अब तक जितना लिखा गया है उससे ये समझ आता है के रोज़ाना की पाँच नमाज़ों की सुन्नतें नफ़िल (अलग से इबादत के काम) नमाज़ों में शुमार की जाती है और फर्ज़ हिस्सों की कमियों को पूरा करने के लिए पढ़ी जाती है, इसलिए ये और दूसरी ग़ैर मुअक्किदा नमाज़ों से ज़्यादा एहमियत की

हामिल है। एक मुस्लिम जो एक फर्ज़ नमाज़ को उसके बताए हुए वक़्त पर नहीं पढ़ पाता बिना किसी (कोई ख़ास वजह जिसे कहते है) उज़र के हालांकि वो नमाज़ को बहुत ऊँचे मकाम पर रखता है और उसे अपना सबसे बुनियादी फ़रीज़ा समझता है, वो ऐसा करके बहुत बड़ा गुनाह करता है। वो दोज़ख़ में फिरओन और हम्मान के साथ होगा। ग़ैर मुअक्किदा, यानी सुन्नतों का हिस्सा (पाँच नमाज़ों का) उसे बहुत बड़े गुनाह सख़्त परेशानियों को झेलने से बचा नहीं पांएगे। इस मसले के लिए, ये ज़रूरी के छोड़ी हुई फर्ज़ नमाज़ों की कज़ा अदा करें। ये सख़्त अज़ाब की बात है के उनकी कज़ा को टाला जाए। कभी भी बढ़ना और कभी भी पैदा होने वाला गुनाह ख़त्म कर देना चाहिए। तब से कज़ा नमाज़ को अदा करना फर्ज़ है, ऐसा करके उसे हज़ार बार से ज़्यादा सवाब मिलेगा बनिस्बत सुन्नत अदा करने के। इसलिए, और तब से इसकी इजाज़त है के किसी उज़र, की वजह से सुन्नतें छोड़ सकते है, हर मुस्लिम को चाहिए के जो फर्ज़ नमाज़ें उसने बिना किसी उज़र के और चार सुन्नतों के बदले भी रोज़ाना की चार इबादतें जो उन्होंने छोड़ी है उसकी कज़ा अदा करे। क्योंकि यहाँ पर इस्लामी उलेमाओं ने कहा सुबह की इबादत की सुन्नत वाजिब है, सुबह की नमाज़ की सुन्नत के बदले कज़ा अदा नहीं की जाएगी। इसलिए जितनी जल्दी हो सके हमेशा कज़ा नमाज़ें अदा कर लें ताकि इस सख़्त गुनाह से बचा जा सके। जब सारी कज़ा अदा कर ली जाए, तो रोज़ाना की पाँच नमाज़ों की सुन्नतें लगातार पढ़ लेनी चाहिए। इसके वास्ते, ये एक क़ाबिले माफी गुनाह है के क़ायम रहना के बिना उज़र, के (दूसरे को भी इनके अदा करना से रोका जाए) सुन्नत को अदा न किया जाए। और एक शख़्स जो सुन्नत को मामूली समझता है वो काफिर बन जाता है।

हालांकि ये ज़रूरी है के जितनी जल्दी हो सके जो (फर्ज़) नमाज़ें तुमने छोड़ी है, यानी जो तुम वक़्त मुक़र्रर पर पढ़ने में नाकाम रहे किसी 'उज़र' की वजह से उसकी कज़ा पढ़ लो, हनफ़ी मस्लक के उलेमाओं ने कहा है के

इसकी इजाज़त है के तुम इनकी कज़ा देर से अदा कर सकते हो, जब तक के तुम सुन्नत (रोज़ की पाँच नमाज़ों की) अदा कर लो, क्योंकि ये कोई गुनाह नहीं है के फर्ज़ नमाज़ को उसके मुक़र्रर वक़्त में पढ़ने में नाकाम रहे किसी उज़र की वजह से। हालांकि उनके (एक राय) इस इर्शाद का मतलब ये भी नहीं है के इसकी इजाज़त है के फर्ज़ नमाज़ को बिना किसी उज़र के देर से अदा किया जाए। इसके अलावा, 'इजाज़त' है कहने का मतलब ये नहीं है के कहना 'वाजिब' या 'अच्छा' है। यहाँ पर बहुत सारे काम ऐसे है जिनको 'जायज़' कहा गया है और उसी समय उसे 'मकरूह' भी कहा गया है। मिसाल के तौर पर इसकी इजाज़त है के **सदका फ़ितर** किसी ज़म्मी काफिर को दे दिया जाए, फिर भी ऐसा करना मकरूह है। (बराए मेहरबानी सदक़ा-ए-फितर के लिए **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से के तीसरे बाब को देखिए। ज़म्मी का मतलब है एक ग़ैर मुस्लिम जो एक मुस्लिम देश में रहता है।)

नमाज़ पढ़ो, और अपने हाथों को किसी हराम को मत छूने दो;
लम्बी ज़िन्दगी की उम्मीद मत रखो, या फिर अनमिट दुनिया की!
पाँच वक़्त की नमाज़ों को मज़बूती से पकड़ो, के तुम अब तक जवान हो!
जो कुछ तुम यहाँ बोओगे, वो तुम दूसरी दुनिया में पाओगे।

दो लोग कभी भी मौत को याद नहीं रखते:
एक जो हराम करे, दूसरा जो नमाज़ छोड़े!
एक दिन ये हाथ कुछ पकड़ने के क़ाबिल नहीं रहेंगे;
ज़बान जो नहीं कहती "अल्लाह", बोलने से क़ासिर हो जाएंगी!

ज़कात देना

इस बात की सच्चाई के (अदा करना) ज़कात का एक फर्ज़ है इसका लिखा हुआ सबूत है सूरह बक़रा की तेंतासिवीं और एक सौ दसवी आयत-ए-करीमा में।

यहाँ पर बारह लोग है जिन्हे ज़कात देना जाइज़ नहीं है:

एक दीवाने को; मैय्यत के कफ़न (कपड़े) के लिए; एक काफिर (ग़ैर मुस्लिम) को; एक मालदार आदमी को; अपने अस्ल (अजदाद) को और फुरू (औलाद) को; अपनी बीवी को; अपने गुलाम को; अपने मुकातबा को [गुलाम जो एक तय की गई क़ीमत दे कर आज़ाद कराया गया हो]; किसी मुदब्बेरा को [गुलाम जो अपने मालिक के मरने के बाद आज़ाद हो गया हो] एक बीवी का अपने ख़ाविन्द/पति को ज़कात देना ये ग़ौर तलब बात है (इस्लामी उलेमाओं के बीच में); ज़रूरी है, के ऐसा न किया जाए।

मान लिजिए आप सोच रहे है ये शख़्स मेरा रिश्तेदार नहीं है और तभी वो शख़्स आपके बच्चों (वारिसों) में से एक निकल आता है, या उस आदमी या औरत में से एक काफिर निकल आता है हालांकि तुम सोच रहे हो के वो मुस्लिम है; ये लोग ज़कात के लायक़ नहीं है; लेकिन अगर तुमने बिना जाने बुझे किसी ऐसे शख़्स को ज़कात दे दी, दोबारा से ज़कात देना ग़ैर-ज़रूरी है।

मंदरजाज़ेल आठ लोगों को ज़कात देना वाजिब है:

1- एक शख़्स जो के 'मिस्कीन' है इस्लामी माइनों में।(एक मुस्लिम जिसके पास एक दिन से ज़्यादा का अस्बाव नहीं वो 'मिस्कीन' है;)

2- गरीब मुस्लिम जिसके पास कुरबानी के निसाब से भी कम माल हो। (निसाब का मतलब है हद/सीमा इसका मतलब है इस्लामी मआनो में गरीबी और अमीरी के बीच की सीमा। कुरबानी के लिए निसाव और ख़ास ख़ैरात जिसे फ़ितर कहते है वो ज़कात से अलग है। बराए मेहरबानी इसकी ख़ासियत जानने के लिए **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से के **1, 3** और **4** बाब देखिए;)

3- एक कर्ज़दार मुस्लिम;

4- एक मुस्लिम जिसके ऊपर इलज़ाम हो ज़कात का माल और 'उधर' (मज़दूरी का पैसा) जमा करने का;

5- एक मुस्लिम जो अपनी मौजूद जगह पर गरीब हो, घर वापस जाते ही अमीर हो जाएगा;

6- एक मुस्लिम जो जिहाद या हज के लिए जाते हुए रास्ते में गरीब हो जाए;

7- एक गुलाम जो अपने मालिक को कुछ रक्म अदा करे और बदले में अपनी आज़ादी हासिल करे;

8- ग़ैर-मुस्लिम जिन्हे मुअल्लफ़ा-ए-कुलूब, कहा जाता था, जो अब मौजूद नहीं है;

एक शख़्स जिसके पास एक दिन से ज़्यादा का माल हो लेकिन निसाब की क़ीमत के बराबर नहीं तो वो 'गरीब' कहलाया जाएगा (इस्लामी मआनों में)। हर शहरी नौकर को जिसे अपने खानदान को पालने में मुश्किलों का सामना करना पड़ता है, चाहे उसे कितना ही वेतन मिलता हो, वो ज़कात लेने का हक़दार है, और उसपर कुरबानी करना या फितरा अदा करना वाजिब नहीं

होता। एक मुस्लिम जो पढ़ा रहा हो या सीखा रहा हो इस्लाम के बारे में उसे ज़कात लेना वाजिब है चाहे उसके पास इतना माल या पैसा क्यों न हो जो चालीस साल तक उसकी देख-रेख के लिए काफ़ी हो। ज़कात का पैसा मस्जिद की तामीर, जिहाद के लिए, या फिर एक मैय्यत के लिए कफ़न का कपड़ा खरीदने में नहीं लगाया जा सकता। ज़कात का पैसा तुम किसी मालदार आदमी की नाबालिग़ औलाद, या अपने वालदैन, या बच्चों या बीवी को नहीं दे सकते। इसका सवाब तब ज़्यादा मिलता है जब अपने भाई बहन को दिया जाए, बहु, दामाद, सास, ससुर, फूफी, चाचा, मामा और खाला को दिया जाए। एक गरीब मुस्लिम को निसाब की क़ीमत से कम दिया जा सकता है। हालांकि, अगर उसके एक बीवी और बच्चा है, तो कुल क़ीमत ज़्यादा होगी (निसाब से) इस शर्त पर के परिवार में किसी भी फर्द को निसाब की क़ीमत से ज़्यादा न मिले। ज़कात ऐसे शख़्स को नहीं देनी चाहिए जिसने अपना माल फुज़ूल खर्च कर दिया हो या इस तरह खर्च किया हो जो हराम हो। सैयदों को भी ज़कात दे सकते है क्योंकि अब उनको ग़नीमत में से सही हिस्सा नहीं मिलता। (बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से के पहले बाब के आख़िरी हिस्से में 'बैतुलमाल' को ध्यान से देखिए।)

यहाँ पर छः शर्ते है जो एक शख़्स को पूरी करनी चाहिए ताकि ज़कात फर्ज़ (उसपर) हो जाए देने के लिए:

1- मुस्लिम होना;

2- बालिग़ उम्र का होना;

3- आक़िल होना;

4- आज़ाद होना;

5- ज़कात का माल हलाल होना ज़कात के लिए निसाब का होना;

6- निसाब का अपनी असली ज़रूरतों से ज़्यादा और कर्ज़ से बचा हुआ होना।

एक शख़्स पर ज़कात फर्ज़ होने के बाद भी वो इतना लम्बा अरसा किसी गरीब को ज़कात नहीं देता, तो वो एक कर्ज़दार की तरह समझा जाएगा, और इसलिए उसका कोई भी सदके का काम जैसे दान और ख़ैरात, सिर्फ उसे अकेले सवाब दिला सकता है साथ में वो गुनाह भी कमाएगा। ये उसके लिए फर्ज़ है के वो ज़कात दे या कर्ज़ अदा करे अगर उसका कोई है। जैसा के लिखा हुआ है **हदीका** के दूसरे हिस्से के छः सौ पैंतीसवें **(635)** सफ़े पर और **बरीका** के तैराह सौ उनत्तर **(1369)** सफ़े में, इसकी इजाज़त नहीं है के [ज़कात देना और उसको] ख़ैरात देना उस शख़्स को जिसने अपना माल हराम जगहों पर खर्च किया या जिसने अपना पैसा फ़ुज़ूल खर्च किया। क्योंकि, किसी हराम चीज़ को सहारा देना भी हराम है।]

ऐसा ज़रूरी नहीं है के जो शख़्स ज़कात दे रहा है उसे उसका फायदा होता रहे। अगर एक ख़ाविन्द/पति और बीवी में से कोई एक दूसरे को ज़कात देता है, इसका फायदा उस दल को होगा जिसने अदा किया ये पूरे तौर पर ख़त्म नहीं होगा। जैसा के हर इबादत में होता है, नीयत (इरादे) का होना ज़रूरी है ज़कात देने के लिए। ज़कात के माल का अपने कर्ज़ (ज़ों) से ज़्यादा होना और **हाजत-ए-अस्लिया** (असली ज़रूरतों) से ज़्यादा होना, और (उसकी क़ीमत) माल की ज़्यादा होना **निसाब के माल से**। इस तरह से (उसकी क़ीमत) सोने के लिए निसाब **20** मीतक़ल है, [जो के बराबर है **96** ग्राम के या **13.3** सोने के सिक्कों के।] चाँदी के लिए निसाब **200** दरहम है **[672** ग्राम]। इसलिए फर्ज़ है एक शख़्स के लिए ज़कात देना, जब ज़कात का माल निसाब की क़ीमत के बराबर हो जाए और वो उसका मालिक रहे एक हिजर

(हिजराल) साल तक। इमाम मुहम्मद के मुताबिक़, ये मकरूह है, के अदा करना एक (कानूनी चाल जिसे कहते है) हिर्लाएशारीआ (हिजरी) साल के ख़त्म होने से पहले ऐसा न हो के ज़कात फर्ज़ हो जाए। इमाम अबू यूसुफ के मुताबिक़ ये मकरूह नहीं है। इस तरह से साबिक ने समझाया: इस वजह से, जब एक बार ये फर्ज़ बन जाएगा, तो उसकी नाफ़रमानी करना गुनाह हो जाएगा। और गुनाह को नज़रअंदाज़ करना **ताअत** है। इस तरह से इमाम मुहम्मद के क़ौल से फ़तवा रज़ामंद है। (फ़तवा जारी करना आख़िर में इसमें माने हुए इस्लामी उलेमा मुसलमानों के सवालों के जवाब देते है। वो फ़तवे के ज़रिये इसमें जुड़े हुए है। जिनको अधिकार मिला हुआ है उन इस्लामी उलेमाओं के बारे में हमारी इशाअत/पब्लिकेशन, **ईमान और इस्लाम, सुन्नी रास्ता,** और **सआदत अबदिया** में समझाया गया है [दूसरे हिस्से के तैतिस्वें बाब में और तीसरे हिस्से के दसवें बाब में]।)

ज़कात के माल से मुराद है जो बढ़े, गुणा हो जाए। चार क़िस्म के ज़कात के माल होते है: चौपाए जानवर जो आधे से ज़्यादा साल से मिले जुले झुंड में चरागाह में घास चर रहे हों, या सिर्फ मादाए, और जिन्हे **साइमा** कहा जाता है; जाएदाद खरीदी और बेची जाए तिजारत के मक़सद से; सोने और चांदी का सामान; ज़मीन से खाने की पैदावार हासिल होना। सिर्फ नर जानवरों के या गधों या खच्चरों के मालिक जो आज़ादाना तौर पर चरागाहों में घूमते है उनपर कोई ज़कात नहीं है; यानी ज़कात उनपर फर्ज़ नहीं है। जब जानवरों के बच्चे जैसे के ऊँट, मवेशी और भेड़ अपने बड़ों के साथ होते है, तो उनको ज़कात की गिनती में जमा कर लिया जाता है। जाएदाद के बदले जो अदा की जाएगी ज़कात के तौर पर, अश्र, के तौर पर, कफ़्फ़ारे के तौर पर, (जो के बताई गई है पाँचवें हिस्से के छठे बाब में, और छठे हिस्से के तेरहवें बाब में **सआदत अबदिया** में,) और सदका फ़ितर के तौर पर, इसकी इजाज़त है के उसकी क़ीमत के बराबर अदा किया जाए। शाफ़िई मस्लक़ ऐसा करने की

इजाज़त नहीं देता। अगर किसी का माल बरबाद हो गया ज़कात फर्ज़ (अदा करने का) होने के बाद, उसकी ज़कात उसके ज़िम्मे से उतर गई; (यानी, अब ये कोई फर्ज़ नहीं रहा के इसको अदा करो। ये उतरती नहीं है अगर इसका मालिक आगे माल भेजता है; (यानी, इस माल की ज़कात देना अभी भी फर्ज़ है।)

एक (चाँद) का साल जब एक आक़िल और बालिग़ मुस्लिम का ज़कात का माल अपने निसाब की क़ीमत को पहुँचने के बाद, अगर ये उनकी पूरी जाएदाद है और वो इसे हलाल तरीक़े से कमाते है, तो ये उनके लिए फर्ज़ हो जाता है के अपने उस माल में से कुछ रक्म वो किसी एक को या उन आठ मुस्लिम समूह में से कुछ को अदा करे; ये (ज़रूरी) अदाएगी ज़कात कहलाती है। जिस शख़्स को ज़कात दी जाए वो मुस्लिम होना चाहिए। अपनी पूरी जाएदाद से मुराद है वो जाएदाद जो आपके लिए मुमकिन भी हो और जिसकी इस्तेमाल करने की इजाज़त भी हो। जाएदाद जो आप खरीदते है वो आपकी जाएदाद बन जाती है एक बार जब उस पर रज़ामंदी हो जाती है; फिर भी बाँटने से पहले ये पूरी जाएदाद आपकी नहीं हो सकती, पहले से इसको इस्तेमाल करना मुमकिन नहीं है। जाएदाद जो हासिल की जाए धमकी देकर जुल्म करके, ताक़त से, चोरी से, सूद से, रिश्वत से, जुए से या कमाई जाए कोई संगीत का साज़ बजाकर, या गाना गाकर या नशीली चीज़ें बेचकर, इन सबको **ख़बीस जाएदाद** कहते है। ख़बीस जाएदाद के लिए ज़कात अदा नहीं की जाती। इसलिए, वो जाएदाद आपकी नहीं है (अपनी जाएदाद को कहते है) मिल्क: (दूसरे लफ़्ज़ों में, ये आपकी अपनी जाएदाद नहीं है।) ये इसके मालिक को वापस कर दी जाए, या मरे हुए मालिक के जानशीन (नो) या, जानशीन न होने की सूरत में, गरीब मुसलमानों को दे दी जाए। अगर जाएदाद (जो तुमने ऊपर बताए गए हराम तरीकों से हासिल की है) उसे तुम दूसरे हराम माल के साथ या अपने हलाल माल के साथ मिला दो, तो वो तुम्हारी मिल्कियत

बन जाएगी, (यानी तुम्हारी अपनी जाएदाद;) अब इस बार **मिल्क-ए-हबीस** (ख़बीस जाएदाद) बन जाएगी, जो किसी और को देना हराम है या उसे किसी भी तरह इस्तेमाल करना, और इसकी ज़कात भी नहीं दी जाएगी क्योंकि ये पूरी तुम्हारी मिल्क नहीं है। मालिकों को हरजाना देने के बाद अपनी हलाल ज़कात की जाएदाद में से इस कदर (कोई चीज़) ख़बीस माल में से, या इसकी क़ीमत अगर इसकी मौजूद नहीं है, ये तुम्हारे लिए हलाल हो जाएगा मिल्के ख़बीस को इस्तेमाल करना और तुम उसे अपने निसाब की गिनती में जोड़ सकते हो। अगर तुम्हारे पास इतना हलाल माल नहीं है के तुम अपना कर्ज़ चुका सको, तो तुम उसे अदा कर सकते हो उधार लेकर (अपने किसी जान पहचान वाले से)। हालांकि ये हराम है मिल्क-ए-हबीस को इस्तेमाल करना या किसी और को देना; अगर तुम उसे बेच दो या किसी को तोहफ़े के तौर पर दे दो, तो जो शख़्स इसे खरीदेगा या तोहफ़े के तौर पर क़ुबूल करेगा उसके लिए ये हराम नहीं होगी। अगर मालिक या मालिक के जानशीन जाने पहचाने नहीं है, या अगर हराम चीज़ें अलग तोहफ़े अलग लोगों से जमा करके आपस में एक दूसरे से मिला दी है और उसकी वजह से वो मिल्क-ए-ख़बीस बन गई है, तब पूरी मिल्के ख़बीस गरीब मुसलमानों को ख़ैरात के तौर पर बाँट देनी चाहिए।

अगर एक गरीब मुस्लिम कोई चीज़ जो उसे ख़ैरात के तौर पर मिली थी वो उसे तोहफ़े के तौर पर वापस कर सकता है, तब उस शख़्स को जिसने इसे दी थी उसे इजाज़त है वो वापस उसे ले सकता है।

सोना और चाँदी अपनी खालिस शक्ल में इस्तेमाल नहीं किया जाता। अगर वो पचास फ़ीसद से ज़्यादा ख़ालिस है, उनकी ज़कात हर हाल में अदा की जाए और उनका वज़न करके उसके हिसाब से निसाब लगाया जाए। अगर उनमें से दो क़िस्म के बाहर बाज़ार में निकल आए और वो थीमन के तौर पर इस्तेमाल हो, एक बहुत ज़्यादा खालिस जिसे जेईद कहेगें और एक

जो थोड़ा कम ख़ालिस उसे जुयूफ़ कहेगें। अगर उनकी ख़ालिस्ता पचास फ़ीसद से कम है और वो तिजारत में इस्तेमाल की जा रही है और जब उनकी क़ीमत अलग-अलग सोने और चाँदी के निसाब तक पहुँच जाए तो उनकी ज़कात ज़रूर दी जाए।

चाहे अगर जो ज़मीन से पैदावार हुई है जिसकी सिचांई बारिश के पानी या झरने के पानी से हुई है वो कम है या उसकी सब्ज़ियाँ और फल ख़राब हो जाती है या मिट्टी हो जाती है बहुत जल्दी, तो दस में से एक हिस्सा उन कर्मचारियों को दे देना चाहिए जो 'उश्र' वसूल करने पर लगे हुए है। उसके बाद ये कर्मचारी 'उश्र' को बेच देते है जो उन्होंने जमा किया और उसका पैसा खज़ाने के महकमे में जिसे **बैतुलमाल** कहते है उसमें जमा करा देते है। (बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से के पहले, उनतीस्वें और सैतिसवें बाब को तफ़सील से देखिए।) यहाँ पर उलेमाओं ने बयान करते हुए फरमाया के फल जब निकल आए या जब पक जाए या जब कटने लगे तो उसकी 'उश्र' देना फर्ज़ हो जाता है। फसल का बीस में से एक हिस्सा दे देना चाहिए जब उसकी सिचांई जानवर के ज़रिये हो या पम्प के साथ हो या इंजन से या किसी और मशिनरी से हो। इस पर जो भी खर्चा आया है वो सब काटने से पहले इसको अदा करना चाहिए। सरकार को इसकी इजाज़त नहीं है के वो 'उश्र' को उसको दान कर दें जो जाएदाद का मालिक है या उसे भूल जाए या बंद कर दें। जो शहद पहाड़ों से हासिल हो रहा है या उस ज़मीन से जो 'उश्र' के साथ है उसके लिए भी 'उश्र' अदा करना चाहिए।

ज़म्मी को ज़कात नहीं देनी चाहिए। उनको सदका-ए-फितर और मन्नत वाली चीज़ें या दूसरी ख़ैरात दे सकते है। (ज़म्मी ग़ैर मुस्लिम लोग होते है जो मुसलमानों के मुल्क में रहते है।) एक ग़ैर मुस्लिम जो ज़म्मी नहीं है उसको ख़ैरात नहीं देनी चाहिए जो के फ़र्ज़ हो या वाजिब या नफ़िल (ज़ाइद

फराइज़), चाहे वो मुस्त-ए-मीन क्यों न हो, (यानी, एक ग़ैर मुस्लिम जो मुसलमानों के देश में आरज़ी तौर पर रह रहा हो), या एक हरबी, (यानी वो जो ग़ैर मुस्लिमों के देश में रहता है।) (बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से के छयालिसवें बाब को ग़ौर से देखिए।) अगर एक गरीब मुस्लिम जिस पर कोई कर्ज़ नहीं है, उसको ज़कात इतना ज़्यादा देना या निसाब से ज़्यादा देना मकरूह है। अगर एक गरीब शख़्स के पास अपना परिवार है पालने के लिए, यानी बीवी और बच्चें, तब ये इजाज़त है के उसे जो पैसा दिया जाए उसको जितने उसके परिवार के लोग है उनमें ऐसे तकसीम किया जाए के जो भी क़ीमत हो वो निसाब से कम हो।

इसकी इजाज़त है के जाएदाद बेच दी जाए फुलुस के बदले जो भी बाज़ार में मौजूद भाव हो। फुलुस का मतलब है पैसे वाले सिक्के जो धातु के बने हो बजाए सोने और चाँदी के, या कागज़ के पैसे; क्योंकि ये चलन के मुताबिक़ थीमेन (पैसा) के तौर पर इस्तेमाल होते है। इसको ताईन बना लेना ज़रूरी नहीं है; ये ज़रूरी नहीं है के इसको दिखाने के लिए, इसका संकेत बाहर दिया जाए। अगर ये क़ासिद बन जाए, वो थे, अब अगर ये बाज़ार में मौजूद नहीं है, तो उसको बेचना (जो बनाया गया है) बातिल (कमज़ोर) हो जाएगा इमाम आज़म अबू हनीफ़ा 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़। (दूसरी तरफ,) इमामईन, यानी इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला', के मुताबिक़ बेचना बातिल नहीं बन सकता। उसके बराबर की क़ीमत का रूपया देना चाहिए। अगर फुलुस, (यानी, धातु या कागज़ी पैसा,) कासिद, बन जाती है, (तो बाज़ार में वो रूपया नहीं रह पाता,) इमाम आज़म के मुताबिक़ खरीदने के बाद इसकी मिथ्ल, यानी फुलुस जितनी उसकी क़ीमत है ख़रीदी हुई उसको दोबारा, अदा किया जाए। इमामईन के मुताबिक़, बहरहाल, रूपया, (यानी, सोना या चाँदी।) जिसकी खरीदी हुई क़ीमत उसके निसान के बराबर हो उसे दोबारा अदा करे। बेचने के लिए जो फुलुस इस्तेमाल नहीं हो रही उसके

ज़रिये खरीदने और बेचने के लिए फुलुस के 'ताईन' की ज़रूरत है, यानी उसको दिखाने की। उस जाएदाद को जिसे ताईन बनाया गया है वो तऐयुन (की ख़ासियत) रखती है। (बराए मेहरबानी जो नामकरण यहाँ इस्तेमाल हुए है उनकी राए हासिल करने के लिए तो **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से का उन्नतीसवाँ बाब देखिए।) कहने का मतलब ये हुआ के एक बार कोई जायदाद अगर ताईन बना दी जाए (यानी, दिखा दी जाए,) तो वो जाएदाद दे देनी चाहिए (लेन-देन में ले लेनी चाहिए)। इसका रद्दोबदल नहीं दिया जा सकता। मान लो एक शख़्स ने पैसे भुनाने वाले को चाँदी दी जिसका वज़न एक दरहम है और उससे कहा के आधे दरहम की फुलुस दे दो और चाँदी जिसका वज़न एक हब्बा कम है आधे दरहम से जो उसका बाक़ी बचा हुआ है तो ये बेए (बेचना) फ़ासिद बन जाता है। इस कारण से, ये फैज़ या (फ़ैध) का काम हो जाता है। आधी दरहम चाँदी को बेचना उस चाँदी के बदले जिसका वज़न आधे दरहम से कम है। (हब्बा मिज़ान की एक मिकदार/तौलने की एक इकाई है जो बाजरे के एक दाने के बराबर है।) अगर वो कहे, "मुझे इसके आधे की फुलुस दे दो और आधे बचे हुए की चाँदी जिसका वज़न एक हब्बा कम हो इस आधे दरहम से वो मुझे दे दो", इस तरह फुलुस का बेचना सही (जाइज़) माना जाएगा। अगर वो कहे, "मुझे फुलुस दे दो जिसका वज़न आधा दरहम है और चाँदी जिसका वज़न एक हब्बा आधे दरहम से कम है इस एक दरहम चाँदी के बदले", तब दोनों फरोख़्त सही है। इस तरह, चाँदी जिसका वज़न एक हब्बा कम है वो बराबर के वज़न के साथ उस चाँदी के बदले बेची गई और एक दरहम का आधा फुलुस उस चाँदी के बदले बेचा गया जो एक हब्बा ज़्यादा है उस आधी दरहम चाँदी से। हालांकि फुलुस और चाँदी जो इसके बदले दी गई वो वज़न से अलग है, उनकी तिजारत की इजाज़त है क्योंकि वो दोनों क़िस्म के ऐतबार से अलग है।

इस किताब जिसका नाम **बेदाई-उस-सनाई फी तरतीब-इश-शेराई** [अबू बकर बिन मसूद अलाऊददीन शाशी काशानी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' (d. 587 [1191 A.D.]) अलेप्पो) ने इस किताब को **तुहफा-त-उल-फुक़्काहा** नाम की किताब के लिए नशरयात के तौर पर लिखा, जो उसके बाद उनके उस्ताद अलाऊददीन मुहम्मद बिन अहमद समरकंदी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' (d. 540 [1145 A.D.]) ने लिखी।] जो माल ज़कात में दिया जाए वो उसी क़िस्म का माल हो जिसकी ज़कात बनती है, या ज़कात के माल की कोई और क़िस्म भी हो सकती है।[इसकी इजाज़त नहीं है के किसी गरीब को सोने के बदले कपड़े, जूते, गेहूँ, चिकनाई, या इसी क़िस्म की दूसरी चीज़ें दे दी जांए] ज़कात का माल कोई सा भी एक हो सकता या तो 'आइन' होता है या फिर दाइन।ज़कात का माल जो आइन है वो किसी एक के ज़रिए नापा जा सकता है वज़न के ज़रिए या भारी पन के ज़रिए, या जो कोई चीज़ नापी न जा सके।अगर ये कोई चीज़ नापी नहीं जा सकती, वो या तो साईमा जानवर है, या तिजारती 'उरूस', (यानी जानवरों के अलावा आसानी से ले जाया जाने वाला कियामी माल।) (बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से का उन्नतीसवें बाब का सतरवाह पैरा 'कियामी' के लिए देखिए।) अगर ये एक साईमा जानवर है; जब ये जानवर ख़ुद, जैसा के सूरह नास में बताया गया है (आयत-ए-करीमा और हदीस-ए-शरीफ में साफ माऊनी के साथ) दिया जाए, तो बीच का देना चाहिए।जब एक पतला दुबला दिया जाए, तो बीच वाले इसका फर्क सोना और चांदी देकर भी किया जा सकता है उसके फर्क की क़ीमत के बराबर जब एक जानवर की क़ीमत दी जाए तो बीच वाले की क़ीमत।दोबार अदा की जाए।जब दुबले पतले की क़ीमत अदा की जाए।तब उसका फ़र्क सोना और चाँदी जोड़कर बराबर किया जा सकता है।दो बीच की दो भेड़ों के बदले, इसकी इजाज़त है के उनकी क़ीमत के बराबर एक मोटी भेड़ दें दी जाए।इस वजह से, उन क़ीमतों को महत्व दिया

जाता है जिनके माल फ़ैज़ (सूद) से असर पज़ीर होते है। तिजारती 'उरूस' के लिए, चालीस में से एक हिस्सा सूरह नास में इर्शाद है के उसके माल को (ज़कात के तौर पर) दे दो। अगरचे दूसरा माल उसी क़िस्म का दिया जाए, अदाएगी की जाए कोई चीज़ की जो बीच की हो या कम गुण वाली हो उसका बराबर का फ़र्क ज़रूरत के हिसाब से (गुण और क़ीमत) के साथ रखा जाए। इस वजह से, उरूस का मतलब वो जाएदाद जो न तो वज़न में तोला जा सके और न उसकी गुंजाईश के मुताबिक़ तोला जा सके। उरूस के साथ, मिकदार में जो फ़र्क है उसकी वजह से फ़ैज़ नहीं होता। मिसाल के तौर पर, एक अच्छी क़िस्म के सूट के बदले, दो हल्की क़िस्म के कपड़े के सूट दिए जा सकते है। जब दूसरी जाएदाद मुख़्तलिफ़ क़िस्म के पैसे दिए जाए, तो कुछ चीज़ के जो पैसे दिए जांए वो उसकी फर्ज़ की क़ीमत से कम हों, उसके फ़र्क को बराबर करने की ज़रूरत है। जब ज़कात का माल कोई भी हो जिसे वज़न के ज़रिए या गुंजाईश के ज़रिये तोला जाए, तो उस माल का चालिस्वें हिस्से के पैसे दे दिए जांए। अगर एक शख़्स ज़कात का माल मुख़्तलिफ़ क़िस्म का दे रहा है, तो उसको उनकी क़ीमत के मुताबिक़ पैसे देने होगें। अगर एक शख़्स दूसरा माल भी एक ही क़िस्म का अदा कर रहा है, तो उसको एक जैसा पैसा देना होगा, न के एक जैसी क़ीमत का पैसा, शैख़यान, (यानी, इमाम आज़म अबू हनीफ़ा और उनके शार्गिद इमाम अबू यूसुफ़,) 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के मुताबिक़। मिसाल के तौर पर, मान लिजिए दो सौ किलोग्राम अच्छी क़िस्म के गेहूँ की क़ीमत दो सौ दरहम चाँदी के है, इसकी इजाज़त है के ज़कात के तौर पर हल्की क़िस्म के पाँच सौ किलोग्राम गेहूँ अदा कर दिए जाए। इसी तरह, पाँच दरहम जेय्यद (ऊँची क़िस्म की) चाँदी के बदले, पाँच दरहम ज़ुयूफ (नीची क़िस्म की) चाँदी दी जा सकती है, दो सौ दरहम जेय्यद चाँदी की ज़कात के तौर पर। ये उसूल नज़र के मामले में लागू किया जाता है। (बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के पाँचवें बाब को देखिए 'नज़र' के लिए।)

"सोना और चाँदी पूरी तरह **थेमनस** (क़ीमतें) है। उनको थेमनस की तरह बनाया गया है। उनका इस्तेमाल लोगों की ज़रूरयात को मुतमईन करने की वजह से नहीं हो सकता। उनका मतलब है लोगों की अहम ज़रूरतों को खरीदना। दूसरी चीज़ें, दूसरी तरफ, बनाई गई है दोनों थेमनस की तरह और चीज़ो की तरह अपने ख़ुद के इस्तेमाल के लिए।" यहाँ हम **बेदाई** से लिया गया तर्जुमा ख़त्म करते है।

चीज़ें जो आदमी के लिए ज़रूरी है ताकि वो अपनी ज़िन्दगी आरामदह और इस्लाम की सहमती के मुताबिक़ गुज़ार सके उन्हें **ख़ास ज़रूरतें** कहते है। बराए मेहरबानी इस्लाम के उसूल अख्लाक नाम की किताब का दसवाँ बाब जाँचिए! ख़ास ज़रूरतों का बदलना निर्भर करता है रियास्तों पर, हालात पर और वक़्त पर जहाँ लोग रह रहे हो। फ़ालतू चीज़ें जो आरामदह ज़िन्दगी के लिए ज़रूरी नहीं है और जो सिर्फ ख़ुशी के लिए या ज़ेवर के तौर पर या अपनी हैरत को जगाने के लिए इस्तेमाल की जाती है उन्हें सजावटी चीज़ें (ज़ीनत, या ज़ीनेत) कहा जाता है। सोना और चाँदी ख़ास ज़रूरतों में शामिल नहीं होती, ये सजावट की चीज़ें है। सजावटी चीज़ों का इस्तेमाल करना मुबाह (इजाज़त) है और आदमियों को इजाज़त है के वो घर में और बाहर इसका इस्तेमाल कर सकते है और औरतें सिर्फ जब वो घर में होती है।

ऐसा देखा गया है, फुलुस जो खाँ है वो हमेशा तिजारती जाएदाद है। जब उसका दाम निसाब की क़ीमत तक पहुँच जाता है, इस बुनियाद पर सबसे कम ख़ुशी वाले सोने के सिक्के जो बाज़ार में इस्तेमाल होते है, तो उनके लिए फर्ज़ हो जाता है के उनके लिए ज़कात दे। तिजारती माल के लिए जो उसका निसाब जमा करके बताया गया है, इमामईन के मुताबिक़ (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद 'रहीमा-हुल्लाहु तआला', दो माने हुए शार्गिद इमाम आज़म अबू हनीफा 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' के), वो सोने या चांदी के साथ,

उसको ज़्यादा फ़ौकियत मिली है जिसका तिजारती लेन देन में ज़्यादा इस्तेमाल होता है। और उस माल की ज़कात या तो पैसो से, (यानी सोने या चाँदी से,) अदा कर दी जाए जिस बुनियाद पर उसका निसाब क़ायम किया गया है या चालिस्वाँ हिस्सा माल में से दिया जाए। गरीब लोग इसको अपनी ख़ास ज़रूरतों के लिए इस्तेमाल करते है। फ़ुलुस का मतलब है सोने और चांदी के अलावा पैसा। ये धातु के सिक्के है जो तांबे और पीतल को मिलाकर बने होते है या दूसरे मेल से, या काग़ज़ी बिलों से। इसका मतलब है कहना के काग़ज़ी बिल फ़ुलुस होती है। इनके लिए ज़कात देनी चाहिए। हालांकि, उनकी क़ीमत, सोने और चांदी की तरह, **असली क़ीमत** नहीं होती। ये **आरज़ी क़ीमत** होती है। ये सरकार से बंधी हुई क़ीमतें होती है। ये अपने बनाने को ख़ुद ख़त्म कर सकते है। जब आरज़ी क़ीमत (फ़ुलुस की) चली जाती है, तो ये फिर थेमन (क़ीमत) नहीं रहती। ये ज़कात के माल के तौर पर अपना काम खो देती है। इबने आबिदिन ने इर्शाद फरमाया: "तिजारती माल की सोने या चांदी के सिक्को से क़ीमत लगाओ जिनको टकसाल की रूपये की इकाई माना जाए और जिनको अक्सर तिजारत की ग़रज़ से इस्तेमाल किया। मान लो कुछ माल की क़ीमत बराबर है दो सौ और चालीस दरहम चांदी के जब उसका हिसाब चांदी और वीस माशा सोना के जब उसका हिसाब सोने के साथ किया जाए, उसका दाम दोनों हालतों में निसाब की क़ीमत है; बहरहाल, वो माल चांदी की बुनियाद पर जाँचा जाए। उस माल के मालिक के लिए है के वो छः दरहम चाँदी या आधा माशा सोना, जो के पाँच दरहम चाँदी के बराबर है, और जो गरीब आदमी के लिए कम मुनाफ़े वाला है (ज़कात देने के लिए) [इसके लिए, चूंकी वीस माशा सोना और दो सौ दरहम चाँदी एक जैसी (क़ीमत) है निसाब की, वो एक जैसे है क़ीमत में।] एक सोने का सिक्का जिसका वज़न एक माशा है उसे **दीनार** कहेंगे। [सब तुर्कीश लीरा सोने की उनका वज़न है डेढ़ मिथकल। माशे के, वो है, **7.2** ग्राम हर एक।] ये वाजिब है के सिक्के की ज़कात अदा करना जिसे

फुलुस कहा जाता है [सोने और चांदी में] जो इस्तेमाल किया जाता है उसके निसाब की क़ीमत का हिसाब लगाने के लिए।" इसका मतलब ये हुआ के काग़ज़ी बिलों का निसाब लगाने के लिए उसका हिसाब सबसे कम क़ीमत वाले सोने के लीरा जो तिजारती मक़सद के लिए इस्तेमाल किए जाते है और उनकी ज़कात सोने में अदा की जाए।इस वास्ते, चाँदी अब सिक्के के तौर पर इस्तेमाल नहीं होती।काग़ज़ी बिलों की ज़कात दी जाती है धातु में यानी सोने में, जो निसाब (क़ीमत की) का हिसाब लगाने के लिए इस्तेमाल की जाती है।चालिस्वें हिस्से की क़ीमत काग़ज़ी बिलों में अदा नहीं की जाती।इस सबब, काग़ज़ी बिल अपने आप ख़ास ज़रूरत के लिए इस्तेमाल नहीं किए जाते।ये फ़ुज़ूल खर्ची है के रद्दी काग़ज़ों के बदले जो के मौजूद है काग़ज़ी बिलों का इस्तेमाल किया जाए।और फ़ुज़ूल खर्ची, अपने आप में हराम है।नाहीं इसकी इजाज़त है के काग़ज़ी बिलों को काग़ज़ के बिलों की ज़कात देने के लिए इस्तेमाल किया जाए ताकि वो सिक्के के तौर पर इस्तेमाल हो सके।इसके लिए, यहाँ पर सोना है, हमेशा क़ीमती रहने वाली और ख़ालिस सिक्के, जो ज़कात देने के लिए हमेशा फोकियत दिए जाते है।

सोना दिया जाता है, न सिर्फ सिक्कों के शक्ल में लेकिन और किसी भी शक्ल में।ये हमेशा और हर जगह मिलता है।मान लिजिए एक मुस्लिम को जिस शहर में वो रहता है वहाँ सोना नहीं मिलता; तब वो अपने एक दोस्त को काग़ज़ी बिल भेजेगा वहाँ जिस शहर में सोने से बना सामान मिलेगा उसे लिखेगा के इस पैसे से सोना खरीदकर उसकी तरफ से ज़कात दे दे।उसके लिए इसकी इजाज़त है के बाद में उस काग़ज़ी बिलों से वो अपना कर्ज़ अदा कर सकता है।इसके साथ ये आसान हो गया है के काग़ज़ी बिलों की ज़कात देना, ये कोई इंसाफ की बात नहीं है के सोने को देने से मना किया जाए काग़ीज़ी बिलो की वजह से आरज़ी और काम चलाऊ मुख्य क़ीमत के साथ, अफोररिओरी जब होता है जब इस्लाम की किताब की फिक्कह [बराए मेहरबानी **सआदत**

अबदिया के दूसरे हिस्से के तेंतीसवें बाब को ज़रूर देखिएगा और तफ़सील से जानकारी लिजिएगा।इस्लामी तालीमात की जिसे 'फिक्कह' बोलते है।] में जो हुक़्म दिए गए है उनकी नाफ़रमानी की जाए उनको फ़ौकियत देने के चक्कर में।लोग जो बिना मरज़ी के इस्लाम की तालीमात जो फिक्कह की किताब में बताई गई है उन्हें अपने मुताबिक़ अपनाते है और इबादत के काम अपने नतीजे के मुताबिक़ अदा करते है कुरआन और आयत-ए-करीम को उन्हे **ला मज़हबी** लोग, (यानी, लोग बिना किसी मज़हब के,) या **बिदअती** कहा जाता है।हमारा जवाब ऐसे बिदअतियों के लिए ये होना चाहिए: "मैने अपनी इबादत के काम तुम्हारे नतीजों के मुताबिक़ जो तुमने कुरआन करीम और हदीस-ए-शरीफ से निकाले है उनके मुताबिक़ नहीं अदा किए, लेकिन उन (चारों) मस्लक़ों के इमामों ने जो समझाया और बताया है उसपर रज़ामंदी दी है।" मस्लक़ों के इमामों 'रहीमा-हुल्लाहु' ने जिन तालीमात को किताबों के ज़रिए समझाया है उन्हें **फिक्कह की किताबें** कहा जाता है।

किताब-उल-फ़िक्कह अलल मज़ाहिब-इल-एरबिआ, जिसको मुदर्रिसिन (मोअलिमों) ने मदरसे (युनीवरसिटी) **जामिया-उल-इज़हर** के एक गिरोह ने प्रोफ़ेसर अबद-उर-रहमान जेज़िरी की सदारत में फ़िक्कह की तालिमात को चार अलग मजमूओं में पेश किया, हर मजमूए में चारों मस्लक़ों की अलग तालिमात है।पूरी किताब, पाँच हिस्सों में 1392 हिजरी [1972 A.D.] में काहेरा में छपवाई गई।इसमें 'ज़कात' नाम के बाब में जो ओराक़-ए-मालिया (बेंकों के नोटों का) के लिए है ऐसे इर्शाद है: "फिक्कह के आलिमों ने इर्शाद फरमाया है के ओराक़-ए-मालिया, यानी, काग़ज़ी बिलों के लिए ज़कात देना ज़रूरी है।क्योंकि वो तिजारत में सोने और चांदी के बदले इस्तेमाल की जाती है।वो हमेशा सोने और चांदी के साथ आसानी से बदली जा सकती है।एक शख़्स को जिसके पास बहुत सारा रूपया/काग़ज़ी बिल है उसको अपने सोने और चांदी के साथ उसकी क़ीमत का हिसाब नहीं लगाना चाहिए, जब वो

ज़कात की क़ीमत के निसाब का हिसाब लगा रहे हों, और उसकी वजह से ज़कात नहीं देनी चाहिए, इंसानी दिमाग़ इसे क़ुबूल नहीं करता। इस मसले के लिए, फ़िक्कह के आलिमों ने तीन मस्लक़ों में एक राए होकर ये इर्शाद फरमाया के काग़ज़ी बिलों/रूपये के लिए ज़कात देना ज़रूरी है। सिर्फ एक मस्लक़ जो इस मुतफ़िक/सामूहिक राए से इतेफ़ाक नहीं रखता वो है हनबली मस्लक। हनफ़ी मस्लक़ों के आलिमों ने कहा है के रूपया/काग़ज़ी बिल **दैन-ए-क़ौल** है और वो ये के उन्हे अपनी रज़ा से और जल्दी सोने और चांदी के साथ बदल देना चाहिए। (बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के पाँचवें हिस्से के पहले बाब को 'दैन-ए-क़ौल' के जाँचिए।) उन्होंने आगे कहा इस मसले के लिए उनके लिए ज़कात को जल्दी अदा कर देना चाहिए। इस वजह से, एक कर्ज़ा जो अदा करना बाक़ी है वो फर्ज़ बन जाता है जब सोने और चांदी को अपनी तहवील में ले लिया जाता है। अगरचे ज़कात उनपर फर्ज़ हो जाती है उसका कब्ज़ा लेने से पहले ही, लेकिन ये फर्ज़ नहीं बन जाता के उसे अदा भी करो।" इस सिलसिले में, तुम्हारे पास दो इख़्तियार है: या तो तुम इंतेज़ार करो जब तक उसे जमा न कर लो या साथ के साथ पिछले सालों की भी ज़कात दे दो, या फिर साल के साल उनकी ज़कात दे दो, जो आइन सोना और चाँदी तुम्हारे पास से उसमें से। तुम्हारे पास जो नोट अमानत के रखे हुए है उसमें से तुम अपने सोने के सिक्कों की ज़कात नहीं दे सकते; जब तुम इतने सोने और चांदी के सिक्के जमा करलो जो अमानत वाले नोटों पर कर्ज़ देने वाले के लिखे हुए है, तो ये फर्ज़ बन जाता है तुम्हारे लिए के तुम उनमें से चालिसवां हिस्सा अलग करलो हर गुज़रे साल का और गरीबों में बांट दो। उन्ही सिक्को से, रूपये की ज़कात नहीं दी जा सकती। करना ये चाहिए के पैसे बदलने वाले से सब से कम क़ीमत के सोने के सिक्के खरीद लेनी चाहिए और चालिस्वाँ हिस्सा उसमें से खर्च कर देना चाहिए और जो सिक्के तुमने खरीदे है, या सोने की अगूँठी सिक्को के वज़न के बराबर उसे गरीबों में बाँट देना चाहिए।

इस की इजाज़त नहीं है के तुम अपने कर्ज़दार को उसके कर्ज़ से बरी कर दो ज़कात के बदले में जो तुम एक तरीक़े से उसे दोगे जबके ज़कात और कर्ज़ एक दूसरे के ख़िलाफ बराबर कर दी गई है, तो न तो वो (असल में) तुम्हे अपना कर्ज़ देगा न तुम (असल में) उसे ज़कात अदा कर पाओगे। तुमको (असल में) गरीब शख़्स को ज़कात देनी होगी, और उसके बाद वो अपना कर्ज़ अदा कर पाएगा जो कुछ भी दिया गया है उसे वापस करके। एक साहूकार के लिए जो ये नहीं मानता के उसके कर्ज़दार को जो कुछ दिया गया वो उसने वापस कर दिया, यहाँ पर एक तरीका तजवीज़ किया गया है जो **फतवा-ए-हिंदिया** नाम की किताब की छठी ज़िल्द के आख़िरी हिस्से में है। ये कहा गया: "साहूकार अपने कर्ज़दार को एक आदमी को दिखाएगा जिस पर उसे भरोसा है और कहेगा, इस शख़्स को अपना नाएब बना लो ज़कात लेने के लिए जो मैं तुम्हे अदा करूँगा और तुम मुझे अपना कर्ज़ अदा करना। इस वजह से गरीब कर्ज़दार उस शख़्स को अपना नाएब बना लेगा। जब वो शख़्स ज़कात ले लेगा, तो जो माल उसने लिया है (ज़कात के तौर पर) वो गरीब शख़्स की जाएदाद बन जाएगी। उसके बाद वो उस माल को अमीर आदमी को वापस कर देगा, और इस तरह उस गरीब शख़्स का कर्ज़ा अदा हो जाएगा। मान लो एक गरीब शख़्स को दो अलग लोगों के कर्ज़ देने है और उनमें से एक शख़्स इस गरीब आदमी को अपने कर्ज़ से बरी करना चाहता है इतना ज़कात देकर जितना उस गरीब शख़्स को उसका कर्ज़ देना है; तब वो उसका बकाया उस गरीब शख़्स को दान कर देगा ख़ैरात के तौर पर। इस तरह वो इस गरीब शख़्स को हलाल तरीक़े से कर्ज़ से बरी कर देगा। उसके बाद वो गरीव शख़्स वापस कर देगा (सोना जो उसे अदा किया गया) ज़कात के तौर पर वो उस अमीर आदमी को तोहफे के तौर पर दे देगा। या, वो गरीब शख़्स अपने कर्ज़ के बराबर सोना खरीदेगा किसी से और अमीर आदमी को तोहफे के तौर पर दान कर देगा, जो अपनी बारी में उस गरीब शख़्स को वो सोना ज़कात अदा करने की नीयत से

वापस कर देगा, और उस गरीब शख़्स को उसके कर्ज़ से आज़ाद कर देगा, वो ये, के वो अपना कर्ज़ माफ कर देगा। उसके बाद वो गरीब शख़्स उस सोने को जो उसे ज़कात के तौर पर मिले है (अमीर आदमी के ज़रिये) वो उसे सोना उधार देने वाले को दे देगा। (माल जो अदा हुआ है) ज़कात के तौर पर (या कस्म खाया ज़मानती माल) वो किसी नेक काम या दान (ज़कात के बदले में अदा करना [या ज़मानती/कस्म खाये माल को अदा करना।]) में खर्च नहीं किया जा सकता। ऐसा करने के लिए वो तुम्हें उनको अदा करना होगा (ज़कात के तौर पर [या कस्म खाई चीज़ों की तरह]) उस गरीब शख़्स को जिसे तुम जानते हो, और वो शख़्स इस ख़ैरात के नाम किए गए कामों को आगे बढ़ाए।" जैसा के इन मिसालों से नतीजा निकला है, रूपये में ज़कात अदा करने का इंतेज़ाम करने के लिए, तुम्हें सोने के ख़ूबसूरत ज़ेवरात खरीदने होंगे जिनका उतना ही वज़न हो जितने सोने के सिक्के तुम रूपये के बदले अदा करना चाहते हो अपनी बीवी से या किसी भी एक जानकार से। तुम ये सोने के ज़ेवरात ज़कात की नीयत से अपने किसी भी एक जानने वाले को या रिश्तेदार को दे सकते हो। अब तुम अपने रूपये की ज़कात दो (सोने की चीज़ें देकर जिनका वज़न उन सोने के सिक्कों के बराबर है जो के क़ीमत में उन हिसाब लगाए हुए रूपये के निसाब के बराबर है जो ज़कात के तौर पर दिए जाएंगे)। उसके बाद वो गरीब शख़्स इन सोने के सिक्कों को तुम्हें तोहफे के तौर पर दे देगा, और तुम बदले में अपना कर्ज़ अदा करोगे इन सोने की चीज़ों को उधार देने वाले को देकर। चूंकी ज़कात अदा हो चूकी है, तुम, इस तरह से अमीर आदमी हो, कुछ रूपया उसमें से जो तुम्हारी तहवील में है दे दो और जिसे तुमने बचाकर रखा है गरीब शख़्स को ज़कात देने के मक़सद से। तुम बचा हुआ खर्च कर सकते हो सब तरह की ख़ैरात करके जिस तरह तुम चाहो। अगर गरीब शख़्स की भी इच्छा हो के इस सवाब में से उसे कुछ हिस्सा मिल जाए जो इस ख़ैरात को करके हासिल हो रहा है, तो वो अपने सोने के

सिक्के जो उसे ज़कात के तौर पर मिले है उन्हें बेच सकता है। उसके बाद वो रूपया तुम्हें वापस कर देगा और तुम्हें अपना नाएब मुक़र्रर करेगा ताकि तुम उसकी तरफ से ख़ैरात बाँट सको।

सैय्यद अब्द-उल-हक़ीम अरवसी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' (**1281** [**1865** A.D.], बास्कले, वान, तुर्की - **1362** [**1943**], अकांरा) चारों मस्लक़ों की तालिमात के माहिर, ने इर्शाद फरमाया: "काग़ज़ के पैसों की क़ीमत एक आमिल क़ीमत की तरह है। जब इसमें तबदिलियाँ की जाती है, तो ये अपनी क़ीमत खो देते है। इसलिए, इस बात की इजाज़त नहीं है के फितरा काग़ज़ी पैसों में की जाए। जो ज़कात तुम काग़ज़ी पैसों में अदा कर चुके हो उसकी तुम्हें क़ज़ा अदा करनी होगी, (यानी दोबारा अदा करनी होगी) सोने के साथ दौर के ज़रिये। सारे माली क़िस्म के इबादत के काम, हज को छोड़कर, नाकी सब की दौर के तरीक़े से क़ज़ा अदा की जाएगी।" (बराए मेहरबानी दौर के लिए **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से के इक्किसवें बाब को देखिए।)

ऐसा कहा गया है जैसा के माना गया है दुर-उल-मुख़्तार में: "अगर बाग़ी, यानी मुस्लिम जो सरकार के खिलाफ बग़ावत करते है और ताक़त छीन लेते है, और ज़ालिम मुस्लिम हाकिम जानवरों की ज़कात और फसल की ज़कात (जिसे 'उश्र' कहते है) वो जमा करता है और उन्हे बाँटता है (इस तरह और) उन जगहों पर जो अल्लाहु तआला ने हुक्म फरमाई है। तो जो माल जमा किया गया है (मुसलमानों से) वो ज़कात बन जाता है (और 'उश्र') (उन मुसलमानों की)। अगर, इस तरह, जो बताया गया माल है उसे बाँटा (दूसरी तरह और) दूसरी जगहों पर, तो वो माल जो जमा किया गया वो ज़कात (या 'उश्र') नहीं समझा जाएगा। उस माल के मालिकों को ज़कात (या उश्र) दोबारा देनी होगी गरीब मुसलमानों में बाँटकर। अगर पहले बताए गए हाकिम तिजारती माल के लिए ज़कात जमा करते है और पैसों की ज़कात के लिए, तो इस्लामी

आलिमों की अकसरीयत के मुताबिक़, ये ज़कात की तरह नहीं मानी जाएगी। जो फतवा इसके लिए दिया गया वो इसके इजतिहाद को मानता है। दूसरे इस्लामी आलिमों के मुताबिक़, क्योंकि ये ज़ालिम हाकिम जिन्होने इसे जमा किया वो मुस्लिम है (उसी वक़्त में) और जो माल जमा किया गया वो हक़ के हिसाब से लोगों का है, उनको गरीब लोग माना गया है, और इसलिए जो माल उनको ज़कात की नीयत (इरादे) से दिया गया वो ज़कात माना जाएगा।" **इबने आबिदीन** का अदांज़ा इस मसले में ऐसे माना गया: "ये कानून उस माल और पैसों में भी लगाया जाएगा जो लगान या महसूल या किसी और फ़ेहरिस्त के तौर पर जमा किए जाते है। सबसे आम दानिश्वराना बहस है के माल जो जमा किया जाए वो ज़कात नहीं माना जाए, चाहे आपकी नीयत सही क्यों न हो। दूसरे लफ़्ज़ों में, ज़ालिम मुस्लिम हाकिमों को ये हक़ नहीं है के वो लोगों के माल के लिए ज़कात जमा करे।" जो फतवा इस इजतिहाद से रज़ामंद है **तेहतवी** की तफसीर में लिखा हुआ (पहले वाली किताब तक) है। ऐसा देखा गया है, ज़कात जो जानवरों के लिए और उश्र (फसल के लिए) अदा की जाती है वो सही है (इस्लाम में जाइज़ है) अगर जो सरकार उसे जमा कर रही है वो मुस्लिम सरकार है और उन लोगों में बाँटे जिनको रियास्ती खज़ाने जिसे **बैत-उल-माल** कहा जाता है उसके चारों महकमों से बकाया लेना हो। कोई भी लगान सरकार को अदा नहीं की गई, बहुत से इस्लामी आलिमों के मुताबिक़, वो माल और पैसों के लिए ज़कात मानी जाएगी। यहाँ आलिमों की एक ख़बर में इर्शाद है के इसकी इजाज़त है इस शर्त पर के जो सरकार जमा कर रही है वो मुस्लिम सरकार हो और माल और पैसा सब ज़कात की नीयत से दिया जाए। इस ख़बर का ज़रिया, हालांकि, दाईफ़ (कमज़ोर) है (बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** के दूसरे हिस्से का छठां बाब जाँचिए 'दाईफ़' के फनी मानी जानने के लिए।)

आ जाओ, ओ मेरे भाई, वजह जानिए और पाइए काबू इस सख़्त दिली पर!
तुम्हारी ज़िन्दगी बहुत क़ीमती है, इसको बरबाद मत करो फालतू!

बचाओ अपने दिल को अपने नफस की इच्छाओं के खिलाफ!
अपने अंदर को, अपने बाहर की तरफ साफ होने दो!

जब सोना तांबे के साथ मिलता है,
क्या पैसे-बदलने वाला इसे ख़ुशी से लेता है?

मत घमंड करो अपने हाई स्कूल के डिपलोमा पर!
बोलने से पहले सोचो, ऐसा न हो अजीब हालत में शामिल हो जाओ!

ढूँढ़ो एक शख़्स को जो मआरीफ हो और ध्यान से उसे सुनो!
इस तरह हक़ से हासिल करो नरमाई बहुत सारी!

हकीकत के समुंदर में जाओ और ग़ोता लगाओ,
और ऊपर आओ ऐसी चीज़ के साथ जो आला हो ख़ासियत में!

एक अनजान ग्रेजुएट तुम्हें गुमराह न कर पाए!
पहले के आलिमों ने तुम्हें पाकी का रास्ता दिखाया!

रोज़े पे सबक़

यहाँ पर रोज़े के तीन फराइज़ है:

1- नीयत (इरादे) का करना

2- नीयत का करना रोज़े का वक़्त शुरू होने के बीच से और ख़त्म होने तक।

3- रोज़े की मंसूख़ बातों को नज़रअदांज़ करना नहार-ए-सहरी के दौरान (इस्लाम के मुताबिक़ सुबह का वक़्त), और सूरज छूपने से ख़त्म होता है। इमसाक का वक़्त वो होता है जब सफ़ेदी जिसे फज्र सादिक़ कहते है वो जल्दी से ज़ाहिर होती। उफ़क-ए-ज़ाहिरी (उफ़क पर ज़ाहिर होना) की सतह पर एक शख़्स जो सारी नाजाइज़ बातों से बचा रहे शाम तक बिना रोज़े की नीयत (इरादे) किए (इस्लाम के बताए गए मुक़र्रर वक़्त तक) तो उस दिन का रोज़ा न होगा। उसे सिर्फ उस दिन का कज़ा रोज़ा रखना होगा।

एक शख़्स के लिए रोज़ा फर्ज़ होने की यहाँ पर सात शर्ते है:

1- एक मुसलमान होना। **2-** बालिग़ उम्र तक पहुँच जाना। **3-** एक बच्चे का रोज़ा रखना सही है। **4-** आक़िल उम्र को पहुँच जाना। **5-** एक मुसलमान जो दार-उल-हरब में रहता हो उसका सुनना के रोज़े रखना फर्ज़ है (रमज़ान में)। **6-** मुक़ीम होना (एक जगह पर होना, यानी लम्बे सफ़र पर न जाना। बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** के चौथे हिस्से के पन्द्रहवें बाब को देखिए।) **7-** (एक औरत या एक लड़की के लिए) हैज़ (माहवारी) की हालत में न होना। **8-** (एक औरत के लिए) निफ़ास (ज़च्चह, ज़च्चगी) की हालत में न होना।

यहाँ पर छः मकरूहात है रोज़े के: खाना खा लेना पीने के लिए कोई चीज़ पीना; हैज़; निफास, मुँह भर कर उल्टी होना। झूठ बोलना, ग़ीबत करना, नेमिमा, यानी मुसलमानों के बीच कहानी सुनाने वाला, और हल्फ लेते वक़्त गलत बयानी करने वाला रोज़े के मकरूहात में शामिल नहीं है। बहरहाल, ऐसे काम रोज़े के ज़रिए कमाए गए सवाब को ख़त्म कर देते है।

सात लोग (नामज़द है) रोज़ा बंद करने के लिए:

1- एक नाबालिग़; **2-** एक मुसाफ़िर; (एक शख़्स जो लम्बी यात्रा पर जाता है यानी सफ़र पर उसे मुसाफ़िर कहते है। उसको एक सफ़री शख़्स भी कह सकते है, बताए गए मुकिम शख़्स के बरअक्स।) **3-** (एक औरत जो महावारी से गुज़र रही हो जिसे कहते है) हैज़; **4-** एक औरत (अपनी ज़च्चगी की हालत में यानी) नीफ़ास; **5-** एक हामला औरत, अगर वो बहुत कमज़ोर हो रोज़ा रखने के लिए; **6-** एक औरत का दूध पिलाने की हालत में होना, अगर उसके रोज़े से बच्चे को नुक़सान पहुँचता हो; **7-** एक (शख़्स जिसे कहते है) पीर-ए-फ़ानी (और जो रोज़ा रखने के लिए बहुत ज़्यादा बूढ़ा और कमज़ोर हो)।

ये ज़रूरी है के रोज़े की रोज़ाना नीयत (इरादा) किया जाए। ये **फ़त्वा-ए-हिंदिया** में लिखा हुआ है: "नियत दिल से करनी चाहिए। उठना (देर रात के खाने के लिए जिसे कहते है) सहरी के लिए जिसका मतलब है नीयत करना।" यहाँ पर दो तरह के रोज़ें की नीयत है: पहली वाली क़िस्म की नीयत वो नीयत है जो रमज़ान के महीने में रोज़ की जाती है, या एक रोज़े के जो नफ़ली है (सुन्नत) या ऐसे रोज़े के लिए जो किसी क़स्म को पूरा करने के लिए रखा जाए जिसकी नीयत रात से करे या सुबह को आधे दिन से पहले तक जो **दहवा-ए-कुबरा** है। दहवा-ए-कुबरा का मतलब है शरीअत के मुताबिक़ दिन यानी रोज़ाना के रोज़े का आधा दिन जिसको नीचे लिखे हुए अज़नी वक़्त के मुताबिक़ हिसाब लगाया गया:

$$\text{फज्र} + \frac{24 - \text{फज्र}}{2}, \text{ या फज्र} + 12 - \frac{\text{फज्र}}{2} = 12 + \frac{\text{फज्र}}{2}$$

इसका मतलब ये हुआ के दहवा-ए-कुबरा का वक़्त जो आधा नम्बर है फज्र के वक़्त से अज़नी वक़्त की शक्ल में। ज़व्वाल (आधे दिन) से पहले जितना भी फर्क आधे शरीअत के दिन के वक़्त में और सूरज के दिन के वक़्त

में मुक़र्रर वक़्त के मुताबिक़; वो फर्क आधे हिस्स-ए-फज्र के बराबर है, जो फज्र और सूरज उगने के बीच के वक़्त की मुददत है, या इम्साक का वक़्त। तुम दहवा-ए-कुबरा के देर वक़्त तक अपने रोज़े की नीयत कर सकते हो- अगर तुमने न कुछ खाया और न कुछ पिया हो (इम्साक के वक़्त के बाद)। दहवा के वक़्त पर तुम नीयत नहीं कर सकते। जो नीयत फज्र से पहले की जाए वो इस तरह से हो: "मैं कल का रोज़ा रखने की नीयत करता हूँ" जबके फज्र के बाद नीयत की जाए वो इस तरह हो: "मैं आज के रोज़े की नीयत करता हूँ।"

दूसरी क़िस्म की नीयत कज़ा या कफ़्फ़ारे के लिए या नज़रे मुऐयन के लिए है। इन तीनों क़िस्म के रोज़ों के लिए एक जैसी नीयत की ज़रूरत है, यानी दूसरी क़िस्म की नीयत की। इसका सबसे पहला वक़्त है पिछले दिन के सूरज छुपने का, और सबसे आख़िरी वक़्त है फौरन फज्रे सादिक से पहले का, यानी उफ़क पर सुबह की सफ़ेदी नमदार होने से पहले। सहर का वक़्त ख़त्म होने के बाद नीयत करना- इन तीनों क़िस्म के रोज़ों में से किसी एक के लिए- इसकी इजाज़त नहीं है। इबने आबिदीन के आख़री हिस्से के बाब में लिखा हुआ है जहाँ कज़ा नमाज़ का बयान है उसके साथ, वो ये के तुम कई दिन के कज़ा रोज़े रख रहे हो पिछले साल के रमज़ान के महिने के रोज़े जो तुम नाकाम रहे थे रखने में तुम्हें उन दिनों की या नाम लेकर या सिलसिलेवार नीयत करना ज़रूरी नहीं है। यहाँ पर तीन रोज़ों के दर्जे है, जो लोग रोज़े रख रहे है उन पर मुनहसिर करता है: जाहिल लोगों के रोज़े; आलिमों के रोजे; और अंबिया (पैग़म्बरों) के रोज़ें और औलियाओं (वो रहमती लोग जिनको अल्लाहु तआला का प्यार मिला) के रोज़े। जब जाहिल लोग रोज़ा रखते है, वो न कुछ खाते है या पीते है या सुहबत भी नहीं करते। लेकिन वो सारे बुरे काम करते है। आलिम लोग कोई भी बुरा काम नहीं करते। इसी तरह अंबिहा और औलिया भी हर सन्देह वाले काम से बचते है जब वो रोज़ा रखते है।

यहाँ पर तीन क़िस्म की 'ईद' है, उन लोगों पर निर्भर करता है जो इसे मनाते है रोज़ों के बाद: जाहिल लोगों की ईद; आलिम लोगों की इर्द, और अंबिया और औलिया की ईद। जाहिल लोग (अपना रोज़ा खोलते है और) लेते है (खाना जिसे कहते है) इफ़्तार शाम में, खाते है और पीते है जो कुछ भी उनको पसंद होता है, और कहते है, "ये हमारी ईद है।" आलिम लोग भी इसी तरह शाम में अपना इफ़्तार करते है, लेकिन वो कहते है, "ये हमारी ईद है अगर अल्लाहु अज़ीम-उस-शान हमारे रोज़ों से ख़ुश हो जाए।" और वो उदास होकर सोचते है, "हमारा क्या होगा अगर वो हमारी इबादत से ख़ुश नहीं हुआ तो!" अंबिया और औलिया की ईद रूयेतुल्लाह है। वो अल्लाहु अज़ीम-उस-शान की रहमत के मुस्तहीक होते है।

यहाँ पर पाँच क़िस्म की ईद है सब ईमान वालों के लिए:

सबसे पहली जब फरिश्तें ईमान वाले के उल्टे हाथ में कोई गुनाह का काम ढूँढ नहीं पाते।

दूसरी जब, ईमान वाला मौत की तकलीफ़ में होता है (शुक्रातुल मौत), फ़रिश्तें ख़ुशी की बशारत देने वाले उसके पास आते है और उसे मुबारक बाद देते है और ये ख़ुशी की ख़बर सुनाते है के तुम एक ईमान वाले हो जिसे जन्नत दी गई।

तीसरे नम्बर की जब एक ईमान वाला अपनी क़ब्र में आता है और अपने आपको जन्नत के बाग़ात में पाता है।

चौथे नम्बर की जब एक ईमान वाला रोज़े महशर में अपने आपको अंबिया और औलिया और उलमा और सुलेहा के साथ अरश-उर-रहमान के साए में बैठा पाएगा।

पाँचवे नम्बर की जब एक ईमान वाला सब सवालों के जवाब दे देगा जो उससे सात जगहों पर पूछे जाएंगे पुल 'सिरात' को पार करते हुए, जो बाल से ज़्यादा बारीक होगा, तलवार से ज़्यादा धारदार, और रात की तारीकी से ज़्यादा अंधेरा होगा, और जो हज़ार सालों का नीचे उतरने का रास्ता है, एक हज़ार सालों का ऊपर चढ़ने का, और एक हज़ार सालों का हमवार रास्ता है। अगर वो सवालों के जवाब देने में नाकाम रहा, तो वो हर नाकामी के लिए एक हज़ार साल तक सख़्त अज़ाब में मुबतिला रहेगा। सात सवालों में से सबसे पहला सवाल 'ईमान' पर होगा, दूसरे नम्बर का नमाज़ पर होगा, तीसरे नम्बर का रोज़े पर होगा, चौथे नम्बर का हज पर होगा, पाँचवे नम्बर का ज़कात पर होगा, छठे नम्बर का बन्दों के हकूक पर होगा, और सातवें नम्बर का उसके गुस्ल, इस्तिंजा, और वुज़ू पर होगा (इस्तिंजा का मतलब है पेशाब या पाख़ाना करने के बाद अपने आगे या पीछे को साफ करना, ये **सआदत अबदिया** के चौथे हिस्से के छठे बाब में तफ़सील से समझाया गया है।)

अगर एक शख़्स जानबूझकर अपना रोज़ा तोड़ दे ,(सूरज छुपने से पहले) जिसके लिए उसने इमसाक से पहले नीयत की थी, तो उसको कफ़्फ़ारा और कज़ा दोनों अदा करने होगें। (तोड़ना) एक नफ़िल रोज़े को या एक कज़ा रोज़े को (फ़ासले के अंदर) तो उसका कफ़्फ़ारा नहीं है।

कफ़्फ़ारे के लिए, एक गुलाम को आज़ाद करो। एक शख़्स अगर ऐसा नहीं कर सकता तो उसे लगातार साठ दिन के रोज़े रखने होगें रमज़ान के दिन और जो पाँच दिन रोज़ा रखने के लिए हराम है उनको छोड़कर। इसके साथ, वो रोज़े रखे कज़ा रोज़ों की नीयत के साथ उतने दिन के जितने दिन के उसने रोज़े तोड़े (पूरे होने से पहले)। [ये हराम है के रोज़ा रखना रमज़ान की ईद के दिन या कुरबानी की ईद के चारों में से किसी एक दिन में भी।] एक शख़्स जो इसकी ताकत नहीं रखता, वो या तो, साठ गरीब लोगों को एक दिन

के लिए दो वक़्त का खाना खिला दे या एक गरीब शख़्स को साठ दिन तक दो वक़्त का खाना खिला दे। या वो उनमें से हर एक को इतना माल दे दे जो फ़ितरे की क़ीमत के बराबर हो।

एक दिन के रोज़े की कज़ा के लिए, तुम्हे एक दिन का रोज़ा रखना होगा।

पाँच लोगों के लिए कफ़्फ़ारा नहीं है। पहला है एक बीमार आदमी। दूसरा है एक मुसाफ़िर, (यानी वो जो लम्बे रास्ते की यात्रा पर हो जिसे सफ़र कहते है।) तीसरा है एक औरत जो दूध पिला रही हो और जो रोज़ा नहीं रख सकती क्योंकि ये नुक़सानदह हो सकता है। चौथा है एक पीर-ए-फ़ानी। पाँचवा है एक शख़्स जिसे भूख और प्यास से मरने का डर हो।

जब उनका उज़र बिल्कुल बाक़ी न बचे, तो इन लोगों को एक दिन का कज़ा रखना होगा सिर्फ एक दिन के लिए।

योम-ए-शक़ [इसका मतलब है शक़ वाला दिन, लुख़्वी मानो में। इस्लाम के शब्दों के मुताबिक़ इसका मतलब है एक दिन जिसके बारे में पक्के तौर पर पता नहीं है के वो रमज़ान का पहला दिन है या शाबान का आख़री दिन है।] की नियत, यहाँ कई क़िस्म की है: योम-ए-शक के लिए इसकी इजाज़त है, बहरहाल किराहत के साथ, नीयत करना (रोज़े की) एक दिन की रमज़ान में या फिर दूसरे रोज़े के लिए जो वाजिब है या फिर नीयत करना एक दिन के रोज़े की रमज़ान में, अगर वो रमज़ान हो, या फिर रोज़ा रखना जो के नफ़िल हो (इबादत से ज़ाइद) या फिर जो वाजिब नहीं है, अगर वो (एक दिन) रमज़ान का नहीं है। दूसरी क़िस्म की नीयत वो है जो बग़ैर किराहत के हो और जो अलग से रोज़े के लिए या फिर (एक रोज़ा) शाबान में, जिसका मतलब है एक नफ़िल रोज़े के लिए नीयत करना। (किराहत का

मतलब है कुछ चीज़, मिसाल के तौर पर- एक आदत, एक वक़्त जबके ये हमारे मुबारक पैग़म्बर 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' न तो पसन्द किया और न इसका मश्वरा दिया, के किसी ख़ास काम को अदा किया इबादत के काम के तौर पर। अगर वो काम नफ़ली है, तो उसे किराहत के वक़्त में नहीं करना चाहिए। अगर वो काम फर्ज़ है और जिसे तुमने नहीं किया हालांकि वो उसके मुक़र्रर वक़्त के पूरा होने से पहले कर लेना चाहिए था, तुम्हें उसको कर लेना चाहिए चाहे किराहत के साथ कुछ करके भी तुम्हें करना पड़े। बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के चौथे हिस्से के दसवें बाब के आख़िर में 'किराहत का वक़्त' देखिए।)

एक क़िस्म का रोज़ा जिसकी कभी इजाज़त नहीं होती वो इस तरह नीयत करके अदा किया जाता है: "मैं नीयत करता हूँ रोज़े की अगर ये महीना (हम जिस में है) रमज़ान का है; अगर नहीं तो मैं एक नीयत के बग़ैर हूँ।"

मान लिजिए एक शख़्स ने फज्र के बाद तक रोज़े की नीयत नहीं करी, यानी मशरिकी उफ़क पर सफ़ेदी नमूदार होने के बाद तक, रमज़ान में, और दोपहर होने से पहले कुछ खा लिया; इस शख़्स को कफ़्फ़ारा अदा करने की ज़रूरत नहीं है, (जिसका मतलब है रमज़ान के बाद लगातार साठ दिन के रोज़े रखने,) इमाम आज़म अबू हनीफा के मुताबिक़। इमामईन के मुताबिक़, बहरहाल इस शख़्स को कफ़्फ़ारा अदा करना होगा। इसके लिए, उसने खा लिया जबके उसके लिए मुमकिन था के वो नीयत करता और अपना रोज़ा रखता। अगर वो दोपहर के बाद खाता, तो उसे कफ़्फ़ारा अदा करने की ज़रूरत नहीं है- इजतीहाद की एक राए के मुताबिक़।

मान लिजिए एक शख़्स हाल के दो या तीन रमज़ान के महीनों का उल्लंघन करता है, अपने रोज़े पहले से इन हर एक बरकती महीनों के छोड़ दे, तो क्या उसको हर रोज़े का अलग कफ़्फ़ारा अदा करना होगा, या फिर उसको

दो या तीन रोज़ें छोड़ने का एक ही कफ़्फ़ारा अदा करना काफ़ी होगा? ये तनाज़े वाला मसला है (मुस्लिम आलिमों के बीच में)। ये अकलमंदी वाली बात है हर रोज़े का कफ़्फ़ारा अलग से अदा किया जाए। मान लिजिए एक शख़्स पर रमज़ान के रोज़े का कर्ज़ है; कुछ आलिमों के इर्शादत के मुताबिक़, वो शख़्स गुनाहगार हो जाता है अगर एक साल गुज़र जाने के बाद भी वो छोड़े गए दिन (नों) के रोज़ों के कर्ज़ (र्ज़ों) को अदा न करे।

मान लिजिए साल की दो ईदों में से कोई एक, यानी रमज़ान शरीफ की ईद या कुरबानी की ईद, एक शख़्स के कफ़्फ़ारा करते वक़्त आ जाए, यानी- वो साठ दिन के लगातार रोज़े रख रहा है कफ़्फ़ारे के,- ऐसा जाना जाता है के ईद के दिनों के रोज़ें रखना हराम है, कोई सा भी सबब हो रोज़ों का- उसको अपने रोज़ों का कफ़्फ़ारा दोबारा से अदा करना होगा शुरू से, उसके पिछले रोज़ें उसमें शामिल नहीं होगें (साठ दिन के रोज़ें पूरे करने के लिए)।

अगर एक शख़्स अपना रोज़ा सफ़र (लम्बे-रास्ते की यात्रा) की नीयत किए बग़ैर तोड़ देता है और उसके बाद नीयत करता है सफ़र की और चला जाता है, तो उसको कज़ा और कफ़्फ़ारा, (यानी उसको उस छोड़े हुए रोज़े का रोज़ा रखना पड़ेगा और लगातार साठ दिन के रोज़ों का जुर्माना भी कफ़्फ़ारे के तौर पर अदा करना होगा।) एक लम्बे रास्ते का सफ़र इसे मुबाह (एक इजाज़त दिया हुआ काम) नहीं करता रोज़ा तोड़ने के लिए। जब एक शख़्स सफ़र पर निकलता है, तो ये उसके लिए वाजिब है के वो उस दिन का रोज़ा न छोड़े। अगर एक मुसाफ़िर अपनी नीयत करता है (रोज़े के लिए) रात में या किसी भी वक़्त दहवा-ए-कुबरा के वक़्त से पहले, ये उसके लिए हलाल नहीं है के उस दिन के दौरान रोज़ा तोड़े। अगर वो अपना रोज़ा तोड़ता है, तो उसको उसकी सिर्फ कज़ा अदा करनी होगी, (यानी उसको रमज़ान के मुबारक महीने

के बाद एक दिन का रोज़ा रखना पड़ेगा।) कैसा एक लम्बे रास्ते का सफ़र मुबाह बताता है: एक (रोज़ाना) के रोज़े को शुरू न करना।

अगर एक शख़्स रमज़ान के दौरान अपना दिमागी तवाज़ुन खो दे, जिसकी वजह से वो रोज़े न रख पाए, और उसके बाद तन्दरूस्त हो जाए, तो उसे उन दिनों की कज़ा रखनी पड़ेगी जो रोज़े उसने छोड़े। अगर वो पूरे रमज़ान तन्दरूस्त नहीं होता, इसकी वजह से उसका दीवानापन देर तक रहता है, तब उसे रमज़ान के रोज़ों से खलासी मिल जाती है।

अगर एक शख़्स भूल जाता है के उसका रोज़ा है और वो अपना रोज़ा तोड़ देता है, उसका रोज़ा फ़ासिद (बेकार) नहीं होता। अगर उसे याद हो के उसका रोज़ा है लेकिन वो खाए पिए जाए ये सोचकर के उसका रोज़ा फ़ासिद हो चुका है, तब उसको उसकी कज़ा अदा करनी होगी (रमज़ान के बाद)। कफ़्फ़ारा वाजिब नहीं है। बहरहाल, अगर वो खाना खाता रहे अगरचे उसे पता है के उसका रोज़ा फ़ासिद नहीं हुआ, तब उसे कज़ा और कफ़्फ़ारा दोनों अदा करने होगें।

अगर एक रोज़ेदार शख़्स अपना ही पसीना निगल ले या रंगा हुआ धागे का टुकड़ा चबाले और तब रंगाई वो निगल ले या किसी और का थूक निगल ले या अपना ही थूक निगल जाए उसे बाहर निकालने के बाद मुंह से या दातों के बीच में फंसे हुए खाने को निगलना जो चने के दाने से बड़ा हो या अपने आपको सीरिंज में दवाई भर कर इंजेक्शन लगवाना, उसका रोज़ा फ़ासिद हो जाता है और उसको उसकी सिर्फ कज़ा अदा करनी होती है।

अगर एक शख़्स एक काग़ज़ का तुकड़ा खा ले या मुट्ठी भरके नमक खाले या एक कच्चे गेहूँ का दाना या चावल का, तो उसका रोज़ा फ़ासिद हो जाता है। बहरहाल, उसको उसकी सिर्फ कज़ा अदा करनी होगी। इसके लिए,

ये दस्तूर के मुताबिक़ नहीं है के मुट्ठी भर नमक खाना, न तो खाने के तौर पर, न ही दवाई की तरह। ये मुट्ठी भर मिटटी की तरह है। दूसरी तरफ, अगर नमक जो खाया गया वो मिकदार में थोड़ा है, तब भी कफ़्फ़ारा लाज़मी है। ये **एशबाह** नाम की किताब में लिखा हुआ है। इसके लिए, नमक की थोड़ी मिक़दार दोनों तरह से इस्तेमाल की गई हो खाने की तरह और दवाई की तरह।

अगर एक काम करने वाले को मालूम है के वो बीमार हो सकता है क्योंकि वो जिंदा रहने के लिए काम करता है, उसे (तब भी) इस बात की इजाज़त नहीं है के वो बीमार पड़ने से पहले अपना रोज़ा छोड़े। अगर वो अपना रोज़ा (इफ़्तार के वक़्त से पहले) तोड़ता है, तो उसको कफ़्फ़ारा अदा करना पड़ेगा। कफ़्फ़ारे से बचने के लिए (अदा करने से), उसको पहले एक काग़ज़ का टुकड़ा निगलना होगा, (यानी कुछ खाने से पहले।) अगर एक हामला औरत या एक दूध पिलाने वाली औरत जिनको बहुत ज़्यादा कमज़ोरी महसूस हो (-भूख के साथ, प्यास के साथ, आदि,- अपने रोज़े के फ़ासले के साथ) खाना (या पीना), उसे सिर्फ कज़ा अदा करनी होगी। एक शख़्स जो खुले तौर पर खाता है और पीता है बिना किसी 'उज़र' के रमज़ान वाले दिन तो वो मुरतदीद (फासिक, मुश्रिक़) बन जाता है। (फ़त्वा-ए-फैज़ीया)

अगर एक शख़्स सिर्फ एक तिल का दाना चबाता है, उसका रोज़ा फ़ासिद नहीं होता। अगरचे, अगर वो उसे निगल लेता है, चाहे उसने उसे चबाया हो या नहीं, उसका रोज़ा फ़ासिद हो जाएगा। ये लाज़मी हो जाएगा के उसकी कज़ा अदा की जाए।

यहाँ पर पन्द्रह क़िस्म के रोज़े है: तीन उनमें से फर्ज़ है, तीन उनमें से वाजिब है, पाँच उसमें से हराम है, चार उनमें से सुन्नत है। रोज़ें जो फर्ज़ है वो है: रमज़ान में रोज़ें, कज़ा के लिए रोज़ें, और कफ़्फ़ारे के लिए रोज़ें।

रोज़ें जो वाजिब है वो है: नज़र-ए-मुऐयन के रोज़ें, नज़र-ए-मुत्लक़ के रोज़ें, और नफ़ली रोज़ा जो तुम तब तक रखते हो जब तक सूरज छुप नहीं हो जाता।

रोज़ें जो हराम है वो ये है: रमज़ान के ईद के दिन का रोज़ा रखना और कुरबानी की ईद के चार दिनों में से किसी एक दिन में भी। इन पाँचों दिनों में रोज़ा रखना हराम है।

रोज़ें जो सुन्नत है वो ये है: अयाम-ए-बैदही के रोज़ें हर (अरबी) महीने में, उन दिनों में रोज़ें रखना जिन्हे सोम-ए-दाऊद कहते है, पीर का रोज़ा, जुमेरात का रोज़ा, आशूरे का रोज़ा, अरफा का रोज़ा और दूसरे मुबारक दिनों का। चौदहवीं और पन्द्रहवीं और सोलवींह ये अरबी महीनों के दिन है जिन्हें **अयाम-ए-बैदही** कहा जाता है। हर दूसरे दिन के रोज़ें, और साल में बीच के दिनों में रोज़ा न रखना, इसे **सौम-ए-दाऊद** कहते है। (**आशूरे का दिन** मुहर्र म का दसवां दिन होता है जो पहला अरबी महीना भी होता है। **अरफा का दिन** अरबी महीने के ज़िलहज का नवां दिन होता है, यानी कुरबानी की ईद के पहले दिन से पिछला दिन।)

यहाँ पर रोज़ा रखने के ग्यारह फायदे है:

1- ये आपको दोज़ख़ से बचाता है।

2- ये दूसरे इबादत के काम भी करता है (जो तुम अदा करते हो) जो (अल्लाहु तआला) क़ुबूल करता है।

3- ये एक ज़िक्र है जो जिस्म अदा करता है।

4- ये एक शख़्स के किबर को तोड़ता है (घमण्ड को, गुरूर को, ग़लत ख़्याल को)।

5- ये एक शख़्स के उजब को तोड़ता है (अना परस्ती, अपने इबादत के कामों पर इतराना)।

6- ये ख़ुशुअ को बढ़ाता है (अल्लाहु तआला का डर)।

7- इससे जो सवाब हासिल होगा वो मिज़ान पर होगा (एक शख़्स के ज़रिए जो अच्छे काम किए गए है उनको बाद में वज़न के लिए तोला जाएगा)।

8- अल्लाह अपने (रोज़ेदार) गुलाम से बहुत ख़ुश होता है।

9- अगर एक शख़्स ईमान के साथ मर जाए, ये (यानी उसका रोज़ा) उसे जल्दी जन्नत में दाख़िल कराएगा।

10- एक शख़्स का दिल नूर से चमकीला हो जाएगा।

11- एक शख़्स का दिमाग नूर की रोशनी से जगमगा उठेगा।

शाबान की उनत्तीस्वी तारीख़ को रमज़ान का चाँद देखना और मग़रीबी उफ़क पर ढूंढना वाजिब है।जब एक शख़्स जो के आदिल हो, यानी जिसने कोई बड़ा गुनाह न किया हो, और जो अहल-अस-सुन्नत के मज़हब में हो, वो नया चाँद देख लेता है अबर वाले आसमान में, तो उसकी इतलाह वो कानूनी जज को या गर्वनर को दे सकता है।एक मुस्लिम के चाँद देख लिए जाने के बाद ही रमज़ान शुरू होता है।एक शख़्स जो बिदअती है या जो फ़ासिक है उसके ज़रिए दी गई गवाही को क़ुबूल नहीं किया जाता।अगर मतला साफ हो तो कई लोगों की गवाही ज़रूरत है (इतनी आंखों देखी गवाही

जो रमज़ान के शुरू करने के लिए ज़रूरी है)। अगर नया चाँद नज़र न आए, तो शाबान का (मौजूदा साल का) महीना तीस दिन का माना जाए, और उसके बाद वाला दिन, मान लिया जाए, (महीने का पहला दिन) रमज़ान का। रमज़ान की शुरूआत कैलेंडर या जौतिष के हिसाब से नहीं लगाई जा सकती। ये **बेहर-उर-राईक** और **फत्वा-ए-हिंदिया** और **क़ादीखान** नाम की किताबों में लिखा हुआ है: "अगर एक बन्दा **दार-उल-हरब** में रहता है और रमज़ान के शुरू होने से अनजान है तो वो कैलेंडर की मालूमात का इस्तेमाल कर सकता है और एक महीने के रोज़ें रख सकता है, वो रमज़ान के एक दिन पहले से अपना रोज़ा रख सकता है या उसके दूसरे दिन या बिल्कुल रमज़ान के पहले दिन वो अपना रोज़ा रख सकता है। पहले वाले मामले में वो रमज़ान से एक दिन पहले रोज़ा रख रहा है और रमज़ान के आख़री दिन वो ईद मना रहा है। दूसरे मामले में उसने रमज़ान के पहले दिन रोज़ा नहीं रखा, और ईद वाले दिन उसने रोज़ा रख लिया ये इरादा करके के वो रमज़ान के आख़री दिन रोज़ा रख रहा है। इन दोनों मामलों में वो रमज़ान के अठाइस्वें दिन का रोज़ा रख रहा है; इसलिए उसको ईद के बाद दो दिन का रोज़ा रखना होगा क़ज़ा की नीयत से। तीसरे मामले में, ये बात संदेह वाली है के क्या पहला और आख़री दिन एक महीने का जिसमें उसने रोज़े रखे वो रमज़ान के अनुसार थे। इसलिए जो इन संदेह वाले दिनों में रोज़े रखे गए रमज़ान के अंदर वो सही नहीं है, उसको इस मामले में भी दो दिन के रोज़ें क़ज़ा रखने होगें।" बहरहाल, जो लोग रमज़ान के रोज़ों की शुरूआत करते है बिना चाँद को आसमान में देखे लेकिन पहले से तैयार कैलेंडर के मुताबिक़ तो उनको रमज़ान की ईद के बाद दो दिन के रोज़ें रखने होगें क़ज़ा की नीयत से। रमज़ान के पहले दिन का हिसाब किस तरह लगाया जाता है ये बहुत तफ़सील से **सआदत अबदिया** के चौथे हिस्से के दसवें बाब में समझाया गया है।

[इबनी आबिदिन 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने इर्शाद फरमाया: "जब मतला साफ न हो/आसमान पर गुबार हो तो इफ़्तार नहीं करना चाहिए, (यानी रोज़ा नहीं खोलना चाहिए,) जब तक के आप मुतमईन न हो जाएं के सूरज छुप चुका है, चाहे आज़ान अगर (शाम की इबादत का एलान करना [और अफ़्तार का]) अदा कर दी जाए (यानी कही जाए।) जब तक एक शख़्स इफ़्तार करता है इशतीबाक-उन-नुजूम (इस वक़्त को कहा जाता है), यानी उस वक़्त तक बहुत सारे सितारें आसमान में निकल आते है, एक शख़्स को मुस्तहब काम जिसे 'ताजील' कहते है (और जिसका मतलब है इफ़्तार के लिए जल्दी करना) कर लेना चाहिए।जब सूरज छुप जाए और कुछ जगहों पर इफ़्तार हो जाए, एक शख़्स जो एक बुलंद जगह पर हो, मिसाल के तौर पर वो मिनार पर हो, उसे जब तक ये पता न चल जाए के सूरज छिप गया है तब तक वो इफ़्तार न करे।ये उसूल सुबह की नमाज़ और सहरी के लिए भी आईद होता है।" इल्मे फ़लकियात/खगोल विज्ञान की किताब **तमकीन** के नक्शे की फहरिस्त में, बुलंद वक़्त की लम्बाई के तबदील पज़ीरों में से एक है जिसे तमकीन कहते है जो **सआदत अबदिया** के चौथे हिस्से के दसवें बाब में तफ़सील से तारीफ़ की गई है और समझाया गया है।) जैसे के सारे इबादत के वक़्त का हिसाब लगाया जाता है, एक वाहिद तमकीन का वक़्त है जिसे कुछ जगहों के लिए इस्तेमाल किया जाता है, यानी तमकीन का वक़्त उस मकाम की सबसे ऊँची जगह के मुताबिक़ किया जाता है।(बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के चौथे हिस्से में शामिल तमकीन की फहरिस्त को देखिए।) कैलेंडर जो तमकीन के अरसे का हिसाब किताब लगाए बग़ैर तैयार किए गए वो सूरज छुपने के वक़्त को कुछ लम्हों पहले दिखाते है (सूरज छुपने की निसबस से उसका हिसाब करने में तमकीन के अरसे को क़ाबिले ग़ौर समझा गया।) सूरज नहीं निकलता गुरूब होने के लिए सूरज के छुपने के वक़्त पर (उन कैलेंडरों पर

लिखा हुआ है) लोग रोज़ें रखते है और इफ़्तार करते है कैलेंडर के साथ बग़ैर तमकीन के तो वो फ़ासिद हो जाता है।]

यहाँ पर तीन शर्ते है जो कुरबानी (को अंजाम देने) के लिए पूरी होनी चाहिए:

1- एक आक़िल और बालिग़ मुस्लिम होना।

2- मुक़ीम होना (एक जगह होना, यानी सफ़री न हो)।

3- इतने माल का रखना जो निसाब की क़ीमत को अदा करने के लिए काफ़ी हो।

रूकन (बुनयादी उसूल) के लिए (जो जानवर मारा जाए ऐसे) कुरवान करो चाहे एक भेड़ या एक बकरी या एक ऊँट या एक मवेशी वाला जानवर (जैसे के एक साँड या एक गाय या एक बैल), एक ऊँट या एक साँड (या गाय या बैल) सात कुरवानी के लिए सही है, जिसका मतलब है सात लोग एक बैल (या साँड या गाय) को कुरबानी के तौर पर मार सकते है उन सातों के लिए। अगर एक और शख़्स कहता है, "मुझे भी शामिल कर लो," उस आठवें शख़्स की कुरवानी के लिए निसाब वैसा ही है जैसे के फितरा के लिए निसाब है, (जो के **सआदत अबदिया** के पाँचवें हिस्से के तीसरे बाब में बहुत तफ़सील से पेश किया गया है।)

[जैसे के इबनी आबिदिन 'रहीमा-हुल्लाहु तआला', ने इर्शाद फरमाया है, अगर उनमें से किसी एक का हिस्सा सात में से एक हिस्सा भी कम हुआ तो उन सातों लोगों की कुरबानी की इजाज़त नहीं होगी। इसलिए, सात लोगों के

बजाए कुछ लोगों को इजाज़त है के वो एक साथ आए और मिलकर आम कुरबानी करें। ये सही (जाइज़) है के खरीदारी करने के दौरान उसमें शामिल हो। हालांकि ये सही है के खरीदारी के बाद भी उसमें शामिल हुआ जाए, एक शख़्स भागीदारी में कुरबानी कर सकता है एक दूसरे शख़्स के साथ एक में से सातवें से लेकर छः में से सात हिस्से तक साँड की (या गाय या बैल) पहले वाला उन सबका मालिक हो। वो गोश्त को बाँटेंगे उसी सीधे अनुपात की तरह भागीदार के हिस्से तक। अगर उनमें से कोई एक भागीदार मर जाता है, तो ये सही है के उसके वारिस उससे कहे के (दूसरे भागीदार से), "उसके तरफ से और अपनी तरफ से तुम कुरबानी करो।" इसलिए, ये है (एक काम) कुरवत का के मरने वाले मुस्लिम की तरफ से कुरबानी की जाए। अगर वारिस ये न कहें तो, मरने वाले के भागीदार की कुरबानी कुरबत नहीं कहलाएगी और किसी भी भागीदार की कुरबानी सही नहीं होगी। अगर भागीदारों में से एक मुशरिक है या उसने साझेदारी (सिर्फ) गोश्त के लिए की है, तो किसी भी साझेदार की कुरबानी की इजाज़त नहीं है। इसलिए, हर साझेदार को कुरबत की नीयत करनी होगी। एक काफिर की नीयत बातिल है (बेकार और बेअसर)। अपनी नीयत खाने के लिए बनाना, दूसरी तरफ, कुरबत का (एक काम) नहीं है। इसी तरह, अगर एक साझेदार मौजूदा साल के लिए नीयत करता है कुरबानी की, और दूसरे अगले साल की कुरबानी की नीयत करते है, तो दूसरें की नीयत बातिल (बेकार और बेअसर) हो जाती है और जो गोश्त उनके हिस्से में आया वो तेतव्वू (ख़ैरात) बन गया, और उसे उनको गरीब लोगों में ख़ैरात की तरह ही बाँटना होगा। पहले वाले ने जो नीयत की वो सही (जाइज़) है, लेकिन तब वो गोश्त नहीं खा सकता। इसलिए, ये फैसला के गोश्त को ख़ैरात की तरह बाँट दो गोश्त की हर जगह पर ये बात फ़ैलादी गई। कुरबत जिसके लिए नीयत की जाती है ज़रूरत नहीं के वो कुरबत वाजिब हो। ये हो सकता है एक कुरबत हो जो के सुन्नत है या नफ़िला। ये हो सकता

है के कुरबत हो जिसमें बहुत सारे काम वाजिब हों। इस की इजाज़त है के वो या तो बच्चे का अकीक़ा है या बड़े का। (बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के पाँचवें हिस्से के चौथे बाब का आख़री पेराग्राफ देखिए 'अक़ीके' के लिए।) इसलिए, अक़ीका एक कुरबत है जो शुक्रिया अदा करने के तौर पर मनाया जाता है एक बच्चे के जन्म के बाद। इसी तरह, एक मुबारकबाद देने वाला खाना जहाँ मुसलमान निकाह की ख़ुशियाँ मनाते है (इस्लाम के मुताबिक़ शादी का आपसी समझोता, और जो **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से के बारहवें बाब में तफ़सील से समझाया गया है), ये एक क़िस्म का शुकराना है और एक कुरबत जो सुन्नत है। सबसे ख़ास काम जो सब साझेदार को करना है वो है ईद की कुरबानी के लिए नीयत करना। हनफ़ी मस्लक में एक जानवर को ज़बह करना अक़ीका के लिए वो सुन्नत का काम नहीं है। ये मुस्तहब या मुबाह है। एक मुस्तहब का काम एक कुरबत है। एक मुबाह का काम भी कुरबत हो जाता है जब उसे शुकराने की नीयत से अदा किया जाए। रीति रिवाज़ के अनुसार यहाँ पर बहुत सारे दूसरे काम भी है जो नीयत करने की वजह से इबादत का काम बन जाते है। एक मुबाह इसी तरह एक ताअत का काम बन जाता है जब वो नीयत करता है (ताअत के लिए)। अरबी किताबें जिनके नाम है **उकूद-उद-दुर्रिया** और **दुर-उल-मुख़्तार** पूरी तफ़सील से जानकारी देती है एक जानवर को ज़बह करने के बारे में (जहासील मरज़ के ज़रिए) अक़ीके के लिए।]

हज के तीन रूकन है:

1- हज की नीयत करना जैसे ही तुम (लिबास जिसे कहते है) एहराम पहनते हो बाँधते हो।

2- अदा करना (जिसे कहते है सीधे खड़े रहो) वक़्फ़ा (पहाड़ी जिसे कहते है) अराफ़ात पर।

3- तवाफ़-ए-ज़ियारत अदा करना (क़ाबा पर)।

वक़्फ़ा अदा करने का सबसे पहला वक़्त है 'अरफात' पर ज़वाल (बीच का दिन) ज़ुलहिज्जा की नवीं तारिख़ और उसकी दूसरी आने वाली सुबह।[अगर तुम वक़्फ़ा के लिए एक दिन पहले या एक दिन बाद में खड़े हो तो तुम्हारा हज जो तुमने अदा किया वो बातिल (बेकार और बेअसर) हो जाएगा।वहाबी (क़ुरवानी वाली) ईद एक दिन पहले मनाते है, बिना (पिछली शाम को) नया चाँद देखे।लोग जो हज अदा करते है और मुक़र्रर वक़्त पर वक़्फ़ा के लिए नहीं खड़े होते तो ये सही (जाइज़) नहीं है।]

यहाँ पर सात क़िस्म के तवाफ़ है (मस्जिद-ए-हरम में काबा-ए-मुअज़्ज़मा के चारों तरफ चक्कर लगाना):

सबसे पहला है तवाफ़-ए-ज़ियारत।

दूसरा है उमरा के लिए तवाफ़।(ये दोनों क़िस्म के तवाफ़ फर्ज़ है।)

तीसरा है तवाफ़-ए-क़ुदुम, जो के सुन्नत है।

चौथा है वीदा के लिए तवाफ़ (विदाअ)

पाँचवा है नज़र के लिए तवाफ़, जो के वाजिब है।

छठा है तवाफ़-ए-नफ़िला।

सातवां है तेतव्वो का तवाफ़ (या ततवो) जो के मुस्तहब है।

हज के लिए एहराम बाँधते वक़्त नीयत करना फ़र्ज़ है। ये सुनअ है के कपड़े के टुकड़े (ड़ों) को जिसे एहराम कहते है बाँधना। सिले हुए कपड़ों को नज़रअंदाज़ करना ये वाजिब है।

यहाँ पर आठ शर्ते है जो एक शख़्स के हज अदा करने के लिए पूरा करना फ़र्ज़ है:

1- एक मुसलमान होना।

2- बालिग़ उम्र को पहुँच गया हो।

3- अक़ल ओ शऊर की उम्र को पहुँच गया हो।

4- सेहतमंद होना।

5- किसी का गुलाम न होना।

6- इतनी जाएदाद का होना जो उसकी बुनयादी ज़रूरतों के लिए काफ़ी हो।

7- हज के लिए उसका वक़्त होना। हज के लिए वक़्त अराफ़ा का दिन होना और चार दिन ईद (कुरबानी के) होना। जो रास्ते में वक़्त लगा उसे हिसाब में जोड़ लिया जाता है।

8- एक औरत के लिए जो दूर है (मक्का से) (जो कर रही है लम्बी दूरी की सफ़र) सफ़र- तीन दिन का चलना, या एक सौ चार किलोमिटर हनफ़ी मस्लक में,- वो अपने शौहर के साथ हो या एक आदमी और महरम रिश्तेदार के साथ हो जिसके साथ उसका (इस्लामी शादी का समझौता जिसे कहते है) निकाह नहीं हो सकता। [जो लोग आठों शर्तो को पूरा करते है उनपर सारी

ज़िन्दगी में एक बार हज करना फर्ज़ हो जाता है। अगर वो एक हज से ज़्यादा हज अदा करते है, तो जो बाद के सालों में उन्होंने हज अदा किए वो एक नफ़िली हज होगा। एक काम जो **इबादत है नफ़िल की** वो ये है जो एक शख़्स अपनी मरज़ी से करता है अगरचे वो न तो फ़र्ज़ या सुन्नत है (उसको अदा करना)। नफ़िल इबादत का सवाब, जब फ़र्ज़ इबादत के सवाब के साथ मवाज़ना किया जाता है, वो उतना ही कम है जितना के एक पानी की बूँद का जब मवाज़ना किया जाए महासागर के पानी से। इस्लामी उलेमा इस बात पर रज़ामंद नहीं है के जो मुस्लिम लोग मक्का से दूर जगहों पर रहते है वो दोबारा हज करें। अब्दुल्लाह-ए-देहलवी 'कुद्दीसा सिरूह' इस तरह इर्शाद फरमाते है अपने तरेसठवें ख़त में (अपनी क़ीमती किताब जिसका नाम है **मेकातिब-ए-शरीफ़ा**: "हज के लिए जो सफ़र किया जाता है, इसमें अक्सर इबादत के काम सही अदा हो पाना मुमकिन नहीं होता। इस मसले के लिए, इमाम रब्बानी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' ने इर्शाद फरमाया (अपनी पहली जिल्द के मकतूबात मुबारक काम जिसका नाम है) अपने एक सौ तेइस्वें और एक सौ चौबिस्वें खतों में के वो इस बात पर राज़ी नहीं है के जाओ (सफ़र पर) उमरा या नफ़ली हज [दोनों ख़त मौला ताहिर बैदाकशी को लिखे गए। इन ख़तों का अंग्रेज़ी तर्जुमा और एक छोटी सी जीवनी ताहिर बैदाकशी की मौजूदा किताब में शामिल की गई है।) करने की गरज़ से।" नफ़ली हज हराम है अगर ये रोकता है अदा करने से एक इबादत के काम को जो के हराम है या एक औरत को जो अपने आपको सही तरीक़े से ढकी हुई है। इस तरह से नफ़ली हज पर जाना गुनाह का ज़िम्मेदार होता है, बजाए सवाब कमाने के। यही मसला उमरा के लिए सफ़र पर जाने में है।

चौवन फराईज़ (या फर्ज़)

एक बच्चा जब बालिग़ उम्र को पहुँचता है तो एक मुसलमान बन जाता है, और ऐसा ही जब होता है जब एक ग़ैर मुस्लिम **कलिमा-ए-तौहिद** कहता है, यानी कहे, "**ला इलाहा-इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलुल्लाह,**" और माने के ये कहने के क्या मआनी है। सारे गुनाह जो उस वक़्त तक उस ग़ैर मुस्लिम ने किए होगें वो वहीं के वहीं माफ़ कर दिए जाएगें (अल्लाहु तआला के ज़रिए)। बहरहाल, इन दोनों लोगों को, और दूसरे मुस्लिम की तरह, छः ईमान की बुनयादी बातों को याद करना होगा, जिनको मजमूई तौर पर आमन्तु कहा जाता है, जब भी उनको वक़्त हो, उनके मआनी याद करें, और कहें, "मैं ईमान लाया (इस यक़ीन के साथ) के पूरा इस्लाम, यानी सारे हुक़्म और मना किए हुए काम (कुली तौर पर) अल्लाहु तआला के ज़रिए ऐलान किए गए है।" बाद में, जब भी उनके पास वक़्त हो और हालात मुनासिब हों, ये भी फ़र्ज़ है उनके लिए के उन फर्ज़ो को याद करना, यानी सारे हुक़्म और हराम काम, यानी जो मना किए गए है सब इस्लाम की तालिमात में जिसका सम्बन्ध उसूल इख़्लाक़ और तरीक़ें ज़िन्दगी से है और नए हालतों से जो उनके ख़िलाफ़ आएंगी। अगर वो इंकार करें या ईमान न रखे या बुरा कहें उस हक़ीकत को जो के फर्ज़ है याद करना उन तालिमात को और ये के फर्ज़ है इन फर्ज़ो में से किसी एक को भी अदा करना और उनमें से किसी एक को नज़रअंदाज़ करना जो के हराम है, वो **मुरतद** (मुश्रिक़, काफिर) बन जाता है। दूसरे लफ्ज़ों में, एक शख़्स जो इस्लाम की किसी एक तालिमात को बुरा कहता है, मिसाल के तौर पर उन औरतों को जो अपने आपको ढकती है (इस्लाम के बताए गए तरीक़े के मुताबिक़), वो मुरतद बन जाता है। जब तक एक मुरतद अपने कुफ़्र की तौबा न कर ले, वो एक मुस्लिम नहीं बन जाएगा ये कहने से, "**लाइलाहा इल्लल्लाह** या कुछ इस्लाम के हुक़्मों को मानने से जैसे के नमाज़ अदा करने से,

रोज़ा रखने से, हज पर जाने से या अच्छा काम करने के ज़रिए या ख़ैरात का काम करने से। न ही वो कोई फायदा उठा सकते है अपने इन अच्छे कामों का उसके बाद। वो अपने कुफ़्र पर पछताए और अपने मुनकिर होने पर तौबा करें, यानी इस्लामी अकीदा जो उन्होंने मानने से मना किया।

इस्लामी आलिमों ने चव्वन फराइज़ को चुना जो हर एक मुस्लिम को मानना है और ईमान रखना है:

1- ये जानना के अल्लाहु तआला एक है और उसे कभी भूलना नहीं।

2- वही खाना और पीना जो हलाल है।

3- एक वुज़ू का करना।

4- रोज़ाना की पाँच नमाज़ों को अदा करना, हर एक का जब वक़्त आए।

5- जब तुम्हें नमाज़ पढ़नी हो, तो गुस्ल करो हैज़ (अगर तुम एक लड़की या एक औरत हो) और जुनाबत की वजह से।

6- ये जानना सच्चाई के लिए और ईमान रखना के अल्लाहु तआला एक शख़्स को रिज़्क (खाना) देने वाला है।

7- साफ़ और हलाल कपड़े पहनना।

8- काम करना और अल्लाहु तआला पर तवक्कुल (भरोसा) रखना।

9- राज़ी रहना।

10- अल्लाहु तआला की नेमतों का शुक्रिया अदा करना। वो ये के उनको इस्तेमाल करना जगह-जगह पर (और इस तरीक़े से) जैसा के हुक्म दिया गया है।

11- पूरी सुपुरदगी के साथ जो जनाब-ए-बारी की तरफ से क़ज़ा आए उसे ख़ुशआमदीद कहना।

12- जो उतार चढ़ाओ आएं उनपर सब्र करना। वो ये के उनके ख़िलाफ़ विरोध न करना।

13- अपने गुनाहों की (जो तुमने किए है) तौबा करना। [ये कहना (नमाज़ पढ़ना जिसे कहते है) इस्तग़फ़ार रोज़ाना।]

14- इबादत के कामों को इख़्लास के साथ करना। (वो ये, सिर्फ अल्लाहु तआला की मेहरबानी के लिए इबादत करते है, अल्लाहु तआला को ख़ुश करने के लिए।)

15- इंसानों और जिन शैतानों को अपने दुश्मन की तरह देखना।

16- कुरान-ए-अज़ीम-उस-शान को तहरीरी शहादत, असली शहादत मानना। उसके दस्तूर पर पूरा ईमान रखना।

17- ये जानना के मौत हक़ है (अल्लाहु तआला की वसीयत है), और मौत के लिए तैयारी करो।

18- जो कोई भी और जैसा भी अल्लाहु तआला को प्यारा हो उसे प्यार करो और जिसे (और किसको) अल्लाहु तआला ने नापसंद किया उसे तुम भी नज़रअंदाज़ करो। [इसे कहा जाता है हुब-ए-फिलाह और बुख़्दे-ए-फ़िलाह।

19- अपने वालदैन के साथ अच्छा रहना।

20- अच्छे काम करने को बढ़ावा देना और बुरे कामों के करने में हौसला पस्त करना।

21- अपने महरम रिश्तेदारों में जाना।

22- किसी के भरोसे को न तोड़ना।

23- हर वक़्त अल्लाहु तआला से डरना और हराम कामों से बचना।

24- अल्लाहु अज़ीम-उस-शान और उसके पैग़म्बर की इताअत करना। वो ये के, फर्ज़ कामों को करना और हराम कामों से बचना।

25- गुनाहों से बचना और अपना वक़्त इबादत करने में गुज़ारना।

26- उलउ-ल-इमर की नाफ़रमानी न करना और क़वानीन की ख़िलाफ़ वरज़ी न करना।

27- अपने चारों तरफ पूरी कायनात को देखो और गहराई के साथ प्रशंसा करो।

28- अल्लाहु तआला के वजूद पर ध्यान लगाओ यानी उसकी तख़लीक़ और गुणों को जानो।

29- अपनी ज़बान को हराम और गंदा बोलने से बचाओ।

30- अपने दिल को मा-सिवा [दुनिया का प्यार] से पाक रखना।

31- किसी का मज़ाक न बनाओ।

32- किसी पर न देखो (कोई चीज़ जो हराम हो (उसे न देखो)।

33- अपने वादे को रखो चाहे उसकी कोई भी क़ीमत हो।

34- अपने कानों को गुनाह की चीज़ों को सुनने से बचाना जैसे गंदी बातों और गाने के साज़ों से।

35- फराइज़ और हराम को याद करना।

36- तराज़ू और वज़न तौलने के औज़ारों को पूरी ईमानदारी से इस्तेमाल करना।

37- अपने आपको कभी मुतमईन न हो अल्लाहु अज़ीम-उस-शान के अज़ाब से जो वो तुम पर डालेंगे और हमेशा अल्लाह से डरो।

38- गरीब मुसलमानों को ज़कात दो और उनकी मदद करो।

39- अल्लाहु अज़ीम-उस-शान की शफ़कत/रहम से कभी ना उम्मीद न हो।

40- अपने नफ़स की हराम ख़्वाहिशात में कभी शामिल न हो।

41- अल्लाह के फ़ज़ल/करम के लिए किसी भूखे को खाना खिलाना।

42- काम करना और मुनासिब रिज़्क कमाना, [यानी खाना, कपड़ा और मकान।]

43- अपनी जाएदाद के लिए ज़कात देना और अपनी फ़सल के लिए उश्र देना।

44- हैज़ और ज़च्गी के दौरान अपनी बीवी से जिस्मनी मेल ना करना।

45- अपने दिल को गुनाहों से पाक रखें।

46- घमंडी होने से बचना।

47- उस यतीम की जाएदाद की हिफाज़त करना जो बालिग़ उम्र को नहीं पहुँचा है।

48- जवान लड़कों के करीब मत जाओ।

49- रोज़ाना की पाँच नमाज़ें अपने वक़्त पर पढ़ना और उन्हें कज़ा के लिए न छोड़ना, (यानी उनको पढ़ने में इतनी देर न करो के मुक़र्रर वक़्त निकल जाए।)

50- किसी की जाएदाद ज़बरदस्ती मत छीनो।

[ये एक इंनासी हक़ है के जब तुम अपनी बीवी को तलाक़ दे दो तो उसे पैसा अदा करो जिसे महर कहते है। ये हक़ अदा न करना तुम पर दुनिया में सख़्त जुर्माना लगाएगा और उसके बाद सख़्त अज़ाब में मुबतिला होगे। इंसानी हक़ूक में, सबसे अहम है अपने रिश्तेदारों और जो लोग तुम्हारे हुक़्म में है उन पर अमर-ए-मारूफ करना, (यानी उनको इस्लाम सिखाना,) और जब इसको नज़रअंदाज़ किया जाए तो ये सख़्त अज़ाब का ज़िम्मेदार होगा (आख़रत में)। इसलिए, एक शख़्स जो उनको रोकता है और सारे दूसरे मुसलमानों को अपना मज़हब याद करने से और इबादत के काम करने में उन्हें तंग करे और दांव लगाकर वार करे वो एक काफ़िर है और इस्लाम का एक दुश्मन है। उसकी एक मिसाल बिदअती और ला मज़हबी लोग है जो अहल अस

सुन्नत के ईमान को नापाक करते है और मुसलमानों को राह से भटकाते है इस्लाम और ईमान के बाहर अपनी पामाल तक़रीरों और इशाअत के ज़रिए।

51- अपने भागीदारों के गुणों को अल्लाहु अज़ीम-उस-शान से मत मिलाओं।

52- हराम कारी से बचना।

53- शराब और दूसरी नशीली चीज़ों का इस्तेमाल न करना।

54- अपनी झूठी कसम मत खाओ।

[शराब और स्पिरिट और सब दूसरी नशीली चीज़ें काबा नजासत है, (दो क़िस्मों की नजासत में से एक **सआदत अबदिया** के चौथे हिस्से के छठे बाब में तफ़सील से तारीफ़ किया गया है और समझाया गया है।) ये लिखा है **बहर-उर-राईक** और **इबनी आबिदिन** नाम की किताबों में के जब पानी और ज़मीन आपस में मिल जाते है तो नतीजें वाली मिटटी साफ़ होता है, ये क़ौल सही वाला है, और इस कतई फ़त्वे के फैसले से सब रज़ामंद है इजतिहाद के साथ। हालांकि कुछ आलिम ऐसे भी है जो इस फत्वे पर तर्क करते है और उसे एक दा-इफ़ कहते है, ये लिखा हुआ है **इबनी आबिदिन** और **हकीका** में के ये दा-इफ क़ौल तब काम करता है जब वहाँ पर कोई हरज (मुश्किल) होती है। इसलिए, अगर जो चीज़ शराब के साथ मिलती है अपना मतलब का माल बनाने के लिए जैसे के ईओ-डी-कोलौन, वारनीश, अलकोहोलीक दवाइयाँ और डाई जो साफ़ की जाती है, उनका मिश्रण भी साफ किया जाता है। ये लिखा हुआ है नशरयात में (जो सुलेमहन बीन अब्दुल्लाह शी रीदी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' ने मौला हलील शी रीदी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' ने **अल-माफूवत** नाम की किताब में दिया है के ये उसूल इसी तरह शाफई मस्लक़ में भी लागू होते है। वो नमाज़ को नहीं रोकते (सही होने से) अगर उसे साफ करने में

हरज हो। ग़ैर अमली तौर पर इन बहने वाली चीज़ों को साफ करना किसी हरज की वजह से (उनको साफ करने में), इसकी इजाज़त नहीं के जब तक इसकी ज़रूरत न हो इसे पीना। नशीली चीज़ें कभी साफ नहीं की जाती। इसके लिए अलकोहोल जो इन पीने वाली चीज़ों में मिलाया जाता है वो किसी की ज़रूरत को मुतमईन करने के लिए नहीं बल्कि उसके मज़े के लिए किया जाता है। कोई भी चीज़ जो उसपर दाग़ डाल दे वो नजस बन जाती है। ये हमेशा ही हराम है के बिना ज़रूरत इनको पीना।]

गुनाह-ए-कबीरा का बयान

(बड़े गुनाह)

यहाँ पर बहुत सारी क़िस्म के बड़े गुनाह है जिनको गुनाह-ए-कबीरा कहा जाता है। उन में से बहत्तर नीचे बताए गए है:

1- अनुचित तरीक़े से क़त्ल करना।

2- हरामकारी करना।

3- एक साथ ज़िना करना हर मज़हब में हराम है।

4- शराब या और दूसरी नशीली चीज़ें पीना।

5- चोरी करना।

6- नशीली चीज़ों को खाना या पीना।

7- ताक़त का इस्तेमाल करके किसी की जाएदाद को हथियाना।वो ये के धमकी देकर छीनना।

8- झूठी गवाही को सहना।

9- बिना किसी उज़र के दूसरे मुसलमान के सामने खाना रमज़ान के मुबारक महीने में।

10- रीबा, यानी खरीदना या जाएदाद देना या पैसे देना सूद के साथ।

11- सन्जीदगी के वक्त कसम खाना और दोबारा।

12- अपने वालदैन की नाफ़रमानी करना।

13- सिला-ए-रहम को बंद कर देना अपने महरम रिश्तेदारों में जाने से जो के सालिह मुसलमान है।(सिला-ए-रहम का मतलब है अपने नज़दिकी रिश्तेदारों के घर जाना।)

14- एक जंग में, मैदाने जंग को छोड़ देना और अपने दुश्मन से भाग आना।

15- किसी यतीम की जाएदाद को बग़ैर उस यतीम की मर्ज़ी से इस्तेमाल कर लेना।ये आगे ऐसे इर्शाद किया गया है **सआदत अबदिया** के पाँचवे हिस्से के (दसवें शुमारे में) दो सौ छीयासठवें सफहे के आख़िर में: "(यतीम की) देख रेख करने वाला मरने वाला का कर्ज़ यतीम की जाएदाद से अदा नहीं कर सकता।न ही वो यतीम का फ़ितरा दे सकता है या यतीम के लिए कुरबानी भी नहीं कर सकता (उस यतीम की जाएदाद में से।) लेकिन (यतीम का) बाप कर सकता है।अगर देख रेख करने वाला ज़रूरतमंद बन

जाए, तो वो उस यतीम का माल इस्तेमाल कर सकता है, लेकिन वो किसी को उसको ख़ैरात नहीं कर सकता।"

16- अपने मिज़ान और तराज़ू का सही इस्तेमाल न करना।

17- रोज़ाना की पाँच नमाज़ों के उसके (मुक़र्रर) वक़्त से पहले या बाद में पढ़ना।

18- अपने ईमान वाले भाई का दिल दुखाना।

19- झूठा इर्शाद बयान करना इस दावे के साथ के ये हवाला रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम' का है अगरचे हकीकत में वो इर्शाद हमारे नबी का नहीं हो।

20- रिश्वत लेना।

21- सच्ची गवाही को नज़रअंदाज़ करना।

22- अपनी जाएदाद की ज़कात या अश्र न देना।

23- जब तुम एक शख़्स को एक गुनाह करते हुए देखो, और ये कोशिश न करो के तुम उसे बदल सको हालांकि तुम ऐसा कर सकते हो।

24- एक जानवर को ज़िन्दा जला देना।

25- कुरआन अज़ीम-उस-शान को याद करने के बाद (किस तरह पढ़ें) भूल जाना के इसको किस तरह पढ़ते है।

26- अल्लाहु अज़ीम-उस-शान से रहम की उम्मीद छोड़ देना।

27- लोगों के भरोसे को तोड़ना, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता के मुस्लिम है या ग़ैर-मुस्लिम।

28- सुअर का गोश्त खाना, जो के हराम है।

29- किसी भी रसूलुल्लाह के सहाबा 'रिज़वानुल्लाही तआला अलैहिम अजमईन' से नफरत करना और कोसना।

30- पेट भरने के बाद भी खाना खाते रहना, ऐसा करना हराम है।

31- एक औरत का अपने शौहर से शादी की बातें करने को नज़रअंदाज़ करना (बिना किसी ठोस वजह के)।

32- एक औरत के लिए अपने शौहर की इजाज़त के बग़ैर अपने किसी जानने वाले से मिलने बाहर जाना।

33- एक पारसा औरत पर हरामकारी का इलज़ाम लगाना।

34- नेमिमा, यानी बार-बार मुसलमानों में किस्से सुनाना।

35- अपने अवरत अज़ू को दूसरों को दिखाना।[एक आदमी का ओरा अज़ू नाफ़ और घुटनों के बीच में होता है।एक औरत के बाल, बाज़ू और टांगें भी अवरत के हिस्से में शुमार होते है।] दूसरों के ओराह हिस्सों को देखना।

36- उस जानवर का गोश्त खाना (खाने लायक़) जो मर जाए (अपने आप)।ऐसे गोश्त को 'लेश' कहते है।इसी तरह, एक (खाने लायक़) जानवर जो इस तरह मारा जाए जो इस्लाम के हुक्म के मनाफ़ी हो उसे 'लेश' गोश्त कहते है, (और वो अब खाने लायक़ नहीं रहा।)

37- भरोसे की ख़िलाफ़ वरज़ी करना।

38- एक मुस्लिम की ग़ीबत करना।

39- हासिद होना।

40- अपने किसी साथी को अल्लाहु अज़ीम-उस-शान से मिलाना।(इस बुराई के काम को शिर्क कहते है [मुशारिक]।)

41- झूठ बोलना।

42- घमंड करना, अपने को सबसे ऊपर सोचना।

43- एक शख़्स के लिए बिस्तर-ए-मर्ग पर अपने एक वारिस को वीरसे से अलग कर देना (किसी न किसी तरह से)।

44- बहुत कंजूस और लालची होना।

45- दुनिया से बहुत लगाओ होना, [ये हराम है ।]

46- अल्लाहु तआला के ज़रिए दिए जाने वाले अज़ाब से न डरना।

47- अगर एक ख़ास चीज़ हराम है, तो ये नहीं मानना के ये हराम है।

48- अगर एक ख़ास चीज़ हलाल है, तो ये नहीं मानना के ये हलाल है।

49- एक ज्योतषी की बातों को मानना लोगों की क़िस्मत के बारे में और जो ग़ैब है (अनजाना, मुस्तकबिल)।

50- अपने मज़हब को छोड़ देना, एक मुरतदीद (मुशारिक) बन जाना।

51- किसी दूसरे की बीवी या बेटी पर निशाह करना बिना किसी उज़र के।

52- औरतों का आदमियों के कपड़े पहनना।

53- आदमियों का औरतों के कपड़े पहनना।

54- हरम-शरीफ़ के अंदर गुनाह करना।

55- अज़ान देना या नमाज़ अदा करना नमाज़ का वक़्त होने से पहले।

56- रियास्ती हुक़्मरानों की नाफ़रमानी करना, कानून की ख़िलाफ़ वरज़ी करने के लिए।

57- अपनी बीवी के महरम हिस्सों को अपनी माँ के महरम हिस्सों से मिलाना।

58- अपनी बीवी की माँ की कसम खाना।

59- एक दूसरे पर गन से निशाना लगाना।

60- कुत्ते का बचा हुआ खाना या पीना।

61- ताना मारना (किसी को) जो मेहरबानी तुमने की (उनपर)।

62- आदमियों का सिल्क के कपड़े पहनना।

63- जहालत में बाक़ी रहना इसी पर क़ायम रहना। [अहल-अस-सुन्नत के ईमान को याद न करना, फराइज़, हराम और सारी ज़रूरी याद करने वाली बातों को याद न करना।]

64- अल्लाहु तआला के नाम के अलावा दूसरे नामों की कस्म खाना या उन नामों को बोलना जो इस्लाम के ज़रिए नहीं बताई गई।

65- ईल्म से भागना।

66- इस बात को न समझना के जहालत एक बुराई है।

67- लगातार माफ़ी के लायक़ गुनाहों को करते रहना बिना बदले हुए।

68- हंसना बहुत तेज़ आवाज़ के साथ हंसना बिना किसी उज़र के।

69- इतना लम्बा वक़्त जनाबत की हालत में रहना जिससे तुम्हारी एक वक़्त की नमाज़ रोज़ाना की छूट जाए।

70- अपनी बीवी के साथ उसके हैज़ या ज़च्गी के दौरान जिमा करना।

71- मधुर संगीत बनाना। नाशाईस्ता गाने गाना। संगीत के साज़ों को बजाना।

मिर्ज़ा मज़-हर-ए-जान-ए-जानान 'रहीमा-हुल्लाहु तआला', हिंदुस्तान के सबसे बड़े आलिमों में से एक, ने इर्शाद फरमाया मंदरजाज़ेल तरीक़े से अपनी **कलिमात-ए-तैय्यबात** नाम की किताब में और फारसी में: "ये एक इत्तेफ़ाक राए का इर्शाद है (इस्लामी आलिमों के ज़रिए) वो ये के ये हराम है

के किसी भी तरह का संगीत का साज़ बजाना या उनके बजते वक़्त उन्हें सुनना। यहाँ पर एक आलिमाना इर्शाद है के सांरगी एक ऐसा वाहिद साज़ है जिसे बजाना मकरूह है और वो ये के मुबाह (इजाज़त है) शादियों में ढोलक बजाने की। [जैसे के कुरआन-अल-करीम पढ़ा जाता है या किरअत की जाती है मधुरता से या अज़ान ख़ुशनुमा आवाज़ से अदा करना, ये हराम है अगर उसके मआनी बदल गए या लफ़्ज़ अलग हुआ (इस तरह से अर्थ बदल जाएगा)। ये मंदरजाज़ेल तरीक़े से **अल-फिक्ह-उ-अलल-मज़ाहिब-ऊल-एरबाअ** नाम की किताब में इर्शाद हुआ है: आज़ान को गाकर अदा करना हराम है। इस बात की इजाज़त नहीं है के ऐसे कामों को सुना जाए।" इसे **तेग़ाननी या सिमा** पढ़ने के लिए (या किरअत) के लिए एक तवाजुन होना बोलने में आवाज़ में उतार चढ़ाओ होना।

तेग़ननी का मतलब है कहना, (पढ़ना या किरअत) करना शीरीन ज़बान में जो के कानों को भली मालूम दे। यहाँ पर दो क़िस्म का पढ़ना (या किरअत) करना है कुरआन-अल-करीम का या अज़ान अदा करना या मौलिद या इलाहिस (तारीफ़ करना) तेग़ाननी के साथ:

1- तेग़ननी जो के सुन्नत है और जिस से इसलिए सवाब कमाया जाता है, (यानी यहाँ के बाद उसे इनाम दिया जाएगा। ये सांईस को नज़र में रखते हुए अदा किया जाता है जिसे 'तेजवीद' कहते है (और जो ये बात पढ़ाता है के कुरआन-अल-करीम को सही तरीक़े से कैसे पढ़ा जाए या किरअत की जाए)। इस क़िस्म की तेग़ननी दिलों और जानों में मज़बूती पैदा करती है।

2- तेग़ननी जो के मना है, हराम है, वो है के उसे मधुर संगीत और साज़ के साथ अदा किया जाए। इस क़िस्म की तेग़ाननी तरज़े अदा को ख़राब करती है; यह तलफ़्फ़ुज़ को बिगाड़ देती है और उनके मआनी को बदल देती है। तरज़ वो जो अदा करते है वो बड़ी भली मालूम देती है और नफ़्ज़ अल-

अम्मारा को बड़ी मीठी लगती है। वो लोगों को ज़ेर कर देती है उनके अपने रोते हुए नफ़्ज़ से, चिल्लाने और ख़ुश होने से, जो बदले में उनको अनजाना कर देता है उसके मआनी से और उनके लिए नामुमकिन बना देता है के वो अपने दिलों और जानों को इस भूलने वाली हालत और बीमारी से उभार सके।

ये ऐसे इर्शाद हुआ है एक सौ बासठवें सफ़ेह पर **तरग़ीब-उस-सलात** में (लिखी गई है मुहम्मद बिन अहमद ज़ाहिद 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' के ज़रिए, d. 632 [1234 A.D.], इंडिया में, (तेरह सौ और बयालिस सफ़ेह पर **बेरीक़ा** के दूसरे हिस्से में (लिखी गई है मुहम्मद बिन मुस्तफा हाज़िमी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' के ज़रिए d. 1176 [1762 A.D.], हाज़िम, कोनया, तुर्की में,) और पाँच सौ और उन्नासी सफ़ेह पर **हदीक़ा** के दूसरे हिस्से में (लिखी गई है अबद-अल-ग़नी बिन इस्माईल नबलूसी, 1050 [1640 A.D.7, दमस्कस- 1143 [1731], उसी जगह पर:) के ज़रिए "तुम एक घंटीयों से सजे हुए जानवर की सवारी नहीं कर सकते अपने आप को मज़े दिलाने के सबब, ऐसा करना मकरूह है। क्योंकि घंटियाँ शैतान के संगीत के साज़ है। रहम करने वाले फरिश्तें उस काफ़िलें पर नहीं उतरते (जानवरों के साथ) जिसमें उनको घंटियों से सजाया गया हो।" (हालांकि,) किसी कारोबार या फायदे के लिए ऐसे करने की इजाज़त है।

यहाँ पर एक आलिमों की इत्तेफाक राए से इर्शाद हुआ है के ये हराम है के पढ़ना या बयान करना किसी शायरी का जो के बेजोड़ है इस्लाम और उसूल इखलाक के साथ या पढ़ना या बयान करना उसको उन जगहों पर जो फिस्क है जहाँ गाना बजाना हो और नशीली चीज़ें इस्तेमाल की जाए या आदमी और औरतें आपस में एक साथ मज़े करें चाहे अगर शायरी अपने आपमें मुनासिब हो इस्लाम और उसूल इख़्लाक़ के साथ या उसे सुने मिले जुले ग्रुप में उन जगहों पर जहाँ शायरी का बयान किसी और जगह पर किया जा रहा हो

और जिसको दूर-दूर नशर किया जा रहा हो या टेलीविज़न पर दिखाया जा रहा हो या रेडियो पर बजाया जा रहा हो या टेलीविज़न पर या टेप-रिकोडर पर या औरतों और लड़कों के लिए बयान किया जा रहा हो मिले जुले सामूहिक गान की तरह।] इस बात की इजाज़त है के पढ़ो या बयान करो सही शायरी सही जगहों पर।ये नरम ध्यान डालती है (सुनने वालों के) दिलों में और इस तरह अल्लाहु तआला की हमदर्दी का सबब बनती है।कुछ आलिमों को फिर भी इस मुबाह (इजाज़त मिला हुआ) सिमा के बयान (गाने में) कोई कशिश महसूस नहीं होती।उनकी सिमा की तरफ रज़ामंदी न होना उन्हें जुनून से पीछे रोकती है जो उनके स्वभाव में शामिल है और जो उनको उससे मुतासिर होने से बचाती है।ये कुदरती दिल फिरना, हालांकि इन महबूब आलिमों को अपने क़ीमती साथियों को जिनका दिल सिमा की तरफ फिर गया है उनको छोड़ने पर या इंकार करने पर राग़िब नहीं होता।" ये हराम है के कुरआन-अल-करीम या मौलिद या इलाहिस (तारीफ़ करना) या सलावात-ए-शरीफ (ख़ास दुआएं जो रसूलुल्लाह के लिए कही जाती है और तोहफे के तौर पर महबूब रूह को भेजी जाती है) उन्हें पढ़ा या बयान किया जाए उन फ़िस्क की जगहों पर, चाहे वो पूरी इज़्ज़त के साथ क्यों न अदा की जाए।(फिस्क की जगह वो जगह होती है जहाँ गुनाह किए जाते है।) ये कुफ्र (बेईमानी) है अगर इसे ख़ुशी या तफ़रीह के लिए किया जाए।ये लिखा हुआ है **दुर्र-उल-मआरिफ़** के छठे सफेह पर: "संगीत के औज़ार और औरतों और लड़कों की आवाज़े ग़ीना (गुनाह वाला संगीत) और हराम है।इस्तेमाल वाली शायरी सिमा और मुबाह है, अगर नहीं तो इसको अदा किया जाए (इस तरीक़े से और) ऐसी आवाज़ों के साथ।"

72- ख़ुदकुशी करना यानी अपने आपको मारना ये इन्सान के क़त्ल से भी बड़ा गुनाह है।एक ख़ुदकुशी क़ब्र में दोज़ख़ की सख्तियों का सबब बनती है।अगर वो उसी वक़्त नहीं मर जाता और तौबा कर लेता है, तो उसके

सारे गुनाह भुला दिए जाते है। उसको फिर अपनी क़ब्र में अज़ाब को नहीं झेलना पड़ता। [दुरूस्त होना (सही होना) तौबा का जो नमाज़ें छोड़ने के लिए मांगी उसकी इत्तेफ़ाकिया तौर पर (अदा की जाए) कज़ा अदा की जाए। एक शख़्स जो कज़ा अदा करनी शुरू करता है (उन नमाज़ों की जो उसने छोड़ी है) वो साफ़ तरीके से नीयत करता है के वो मरते दम तक अपनी कज़ा नमाज़ें अदा करेगा। उसकी इस नीयत के बदले, उसकी सारी कज़ा नमाज़ों के कर्ज़े भूला दिए जाते है। इसी तरह, मान लो एक मुश्रिक एक ईमान वाला बन जाता है और अपने काफिर होने की या शिर्क रखने की (दीन से फिरना जिसे कहते है) बिदअत करने की तौबा माँगता है दीन के ख़िलाफ होने के लिए, वो साफ तौर पर नीयत करते है के दोबारा काफिर और बिदअती नहीं बनेगें, अलग-अलग, और दोबारा वो बुरे काम नहीं करेंगे जो उन्होंने अपने मज़हब से ख़िलाफ वरज़ी के पूराने दिनों में किए थे। इस नीयत (ख़ालिस इरादे) के बदले, उनको सारे गुनाह भूला दिए जाते है।]

अवरत अज़ू और औरतों का अपने को ढाँपना

ये ऐसे इर्शाद किया गया है निकाह वाले बाब में (शादी का समझोता जो इस्लाम के ज़रिए बताया गया है) **एशी'अत-उल-लेमे'अत** नाम की किताब में (जो के लिखी है अबद-उल-हक़ देहलवी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि', ने **958 [1551 A.D.] - 1052 [1642]** में):

1- अबू हुरेरा 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: कोई रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के पास आया और कहा: "मैं एक लड़की से शादी करना चाहता हूँ जो अंसार से हो।" मुबारक रसूल ने इर्शाद फरमाया:

लड़की को देख लो [एक बार]।**वहाँ पर आँखों में कुछ है** (वो लोग जो तअल्लुक रखते है) **अंसार के कबिले में।**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला **सही-ए-बुख़ारी** नाम की किताब से लिया गया है।ये सुन्नत है के शादी से पहले एक बार लड़की को देख लिया जाए।

2- अब्दुल्लाह इबनी मसूद 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**औरतों को अपने शौहरों को दूसरी औरतों की ख़ूबसूरती और अच्छाईयाँ नहीं बतानी चाहिए जिन्हे उन्होंने देखा हो।ये ऐसा ही है जैसे के उनके शौहरों ने उन औरतों को देखा।**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला **सही-ए-बुख़ारी** और **सही-ए-मुस्लिम** नाम की किताबों में दिया गया है।

3- अबू-सईद-ए-हुज़री 'रज़ि-अल्लाहु अनह' (d. **64** [**683** A.D.]) ने बयान फरमाया: "रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**एक आदमी को दूसरे आदमी के अवरत अज़ू को नहीं देखना चाहिए, और एक औरत को दूसरी औरत के अवरत अज़ू को नहीं देखना चाहिए।**" ऐसा देखा गया है ये आदमियों के लिए हराम है के औरतों के और औरतों के लिए आदमियों के अवरत अज़ू को देखें, और इसी तरह ये हराम है आदमियों के लिए के दूसरे आदमियों के अवरत अज़ू को देखें और औरतों के लिए के वो दूसरी औरतों के अवरत अज़ू देखें।एक आदमी का अवरत अज़ू (जो के हराम है) दूसरे आदमी के लिए (उसको देखना) उसके घुटनों और नाफ के बीच में होता है।यही उसूल औरतों पर भी लागू होता है।एक औरत के अवरत अज़ू के लिए (जो के हराम है) आदमियों के लिए (उनपर देखना); वो उसकी पूरी जिस्म है हाथ और मुँह को छोड़के।इसलिए, औरतों को अवरत (तों) कहा जाता है।इसकी परवाह नहीं के एक औरत एक मुस्लिम है या ग़ैर-

मुस्लिम, ये हराम है के नामहरम औरत के चेहरे को शहवा (हवस) से देखना, और उसके अवरत अज़ू को देखना हराम है चाहे बिना हवस के देखें।

4- जाबिर-बिन अब्दुल्लाह 'रज़ि-अल्लाहु अनह' (शहीद कर दिए गए थे **74** में [693 A.D.] ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "एक नामहरम औरत के घर में रात मत गुज़ारो।"

5- अक़ाबा बिन अमीर 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**अकेले में एक कमरें में नामहरम औरत के साथ नहीं रूकना चाहिए! अगर एक औरत अकेले में अपने शौहर के भाई के साथ या उसके बेटे के साथ रूकती है, तो वो मौत की तरह दूर धकेल दी जाती है।**" वो इस तरह, फ़ितनों का सबब बनती है, (जिसका मतलब हुआ तबाहकुन नतीजा।) कोई कोशिश उसको छोड़ने की नज़रअंदाज़ नहीं की जाती।इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला **सही-ए-बुखारी** और **सही-ए-मुस्लिम** में किया गया है।

6- अब्दुल्लाह इबनी मसऊद 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**एक औरत का शरीर अवरत है।**" इसलिए, उसको ढाँपना ज़रूरी है। "**जब एक औरत बाहर जाती है, शैतान उसको हर वक़्त देखता रहता है।**" (वो इस तरह, वो उसे इस्तेमाल करता है फ़साने के लिए आदमियों को धोखे से और उनको गुनाह करने की तरफ ले जाता है।)

7- बुरेदा 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया हज़रत अली से: "**या अली! जब तुम किसी औरत को देखो तो अपना चेहरा उसकी तरफ से मोड़**

लो। उसकी तरफ दोबारा मत देखो! ये कोई गुनाह नहीं है उसको बेध्यानी में देखना। हालांकि ये गुनाह है के उसको दोबारा देखना।" इसका हवाला अबू दाऊद और दरिमी के ज़रिए दिया गया।

8- अली 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**या अली! अपनी रान किसी को मत दिखाओ, और न ही किसी की रान देखो, मुरदा या ज़िन्दा की।**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला अबू दाऊद के ज़रिए और इबनी मआजा के ज़रिए किया गया। बहरहाल, एक मुर्दा शख़्स के अवरत अज़ू को देखना ऐसा ही है जैसे के एक ज़िन्दा शख़्स के अवरत अज़ू को देखना। [खिलाड़ियों और तैराकी करने वाले लोगों के अवरत अज़ू को देखना हमें कतई तौर पर नज़रअंदाज़ कर देना चाहिए।]

9- अब्दुल्लाह इबनी उमर 'रज़ि-अल्लाहु अनहुमा' (d. 73 [692 A.D.], मक्का) ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**अपने अवरत अज़ू को मत दिखाओ!** [चाहे तुम जब अकेले हो तबभी उनको मत दिखाओ।] **क्योंकि, यहाँ पर ऐसी मख़्लूक भी है जो तुम्हे कभी अकेले नहीं छोड़ती। उनकी मौजूदगी में शर्म महसूस करो और उनकी इज़्ज़त करो!**" वो फरिश्तें है जिन्हे हाफ़ाज़ा कहते है, जो तुम्हें जिनों से बचाते है और जो तुम्हें सिर्फ उस वक़्त छोड़ते है जब तुम बैतुलख़ला में हो या जिसका वास्ता शादी से हो वो काम चल रहे हो।

10- उम्मत-ए-सलमा 'रज़ि-अल्लाहु अनहा' ने बयान किया: मेमूना 'रज़ि-अल्लाहु अनहा' और मैं रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के साथ थी, जब इबनी उम्म-ए-मक़्तूम 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने (अदंर आने की) इजाज़त के लिए पूछा और अंदर आ गए। जब रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने उन्हें देखा तो हमसे कहा: "**परदे के पीछे छुप जाओ!**" तो जब मैंने

कहा, “क्या वो अंधे नहीं है? वो हमें नहीं देख सकते”, **क्या तुम भी अंधी हो? क्या तुम उनको नहीं देखोगी”**, सबसे प्यारी तख़लीक़ ने कहा। दूसरे लफ़्ज़ों में उन्होंने कहा, “उनका अंधा पन तुम्हें अंधा नहीं बना सकता।” इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला इमाम अहमद के ज़रिए और तिरमुज़ी के ज़रिए और अबू दाऊद ‘रहीमा-हुल्लाहु तआला’ के ज़रिए दिया गया। इस हदीस-ए-शरीफ के मुताबिक़, जैसा के एक आदमी के लिए हराम एक औरत को देखना जो के उसके लिए नामहरम है, इसी तरह एक औरत को इजाज़त नहीं है एक आदमी को देखना जो के उसके लिए नामहरम है। इसी तरह हमारे चारों मस्लकों के इमाम (आलिम) ‘रहीमा-हुमुल्लाहु तआला’, ने दूसरी हदीस-ए-शरीफों पर ग़ौर किया, और कहा: ये एक औरत के लिए बहुत मुश्किल है के किसी नामहरम आदमी के सिर और बालों को न देखना। फरमान जिनका करना मुश्किल हो वो ‘**अज़ीमत**’ है। एक औरत के लिए एक आदमी के अवरत अज़ू उसकी नाफ और घुटनों के बीच में होते है ये बहुत आसान है उन हिस्सों को न देखना। फरमान जो के करने में आसान है **रूख़्सत** है।

[ऐसा देखा गया है, के अज़वाज-ए-ताहिरात (पाक बीवियाँ हमारे मुबारक नबी की, यानी मुस्लिम माँए,) ‘रज़ि-अल्लाहु अनहुम’ और सहाबा-ए-ई कराम ‘रज़ि-अल्लाहु अनहुम’ ने अज़िमत का रास्ता अपनाया और रूख़्सत को नज़रअंदाज़ किया। ये हिदायत जो इस बात पर बहस करता है के औरतें “नबी के वक़्त में अपने आपको ढकती नहीं थी। आज के नाटकीय तमाशों में जिसमें हम औरतों को देखते है के अपने आपको जिनों की तरह ढकी हुई है इस तरह उस ज़माने में नहीं था। हज़रत आयशा, एक बार, खुले सिर बाहर गई थी। आज का रिवाज औरतों को अपने आपको ढकने का वो बाद में धर्मा त्माओं और फ़िक्ह के लोगों ने ईजाद किया,” ये एक ख़ौफनाक इलज़ाम है जो अंग्रेज़ों ने साज़िश करके फैलाया और उनका असली मक़सद है इस्लाम को यहाँ से पूरे तौर पर ख़त्म कर दें **जिन्दीक़** के ज़रिए। ये सही है के औरतों को अपने

को ढकना पहले का कोई इस्लामी फरमान नहीं है। ये तीसरे और पाँचवे हिजरा (हिजरत) के बीच के वक़्त की बात है जब औरतों को हुक़्म हुआ अपने आपको ढकने का। बावनज़ादा अहमद नईम बैग़ (1290 [1872 A.D.] - 14 अगस्त 1352 [1934], इदिरनेकापी, इस्तानबुल) ने अपनी (टर्कीश) किताब जिसका नाम **तेकरीद-ए-सरीह तेरजीमेसी** है उसमें लिखा के हिजाब की आयात (औरतें अपने आपको ढकें) अहिस्ता-अहिस्ता बेजोड़ तरीक़े से तीन अलग-अलग मौकों पर ज़ाहिर हुई।

11- बैहज़ बिन हक़ीम, ताबाईन के सबसे बड़े लोगों में से हैं ने, बयान किया अपने बाप और दादा के हुक़्म पर: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**अपने अवरत अज़ू को ढको! किसी को उनको देखने मत दो, अपनी बीवी और जारियाओं को छोड़कर! इसी तरह अल्लाहु तआला की मौजूदगी में भी शर्म करो!**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला तिरमुज़ी के ज़रिए, अबू दाऊद के ज़रिए और इबनी माजा 'रहीमा-हुमुल्लाहु तआला' के ज़रिए हुआ। जारिया कहते है **मुल्क-ए-येमिन**, जिसका मतलब है मुल्क (माल) सीधे हाथ का। क्योंकि, एक जारिया का मुआएना सीधे हाथ से किया जाता है खरीदारी के दौरान, और जारिया के लिए जो पैसा अदा किया जाता है वो सीधे हाथ से किया जाता है।

12- उमर-अल-फारूक 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**अगर एक आदमी हलवत करता है एक औरत के साथ जो के उसके लिए नामहरम है,** (यानी अगर वो और औरत एक साथ एक कमरे में रहते है जिसमें उनके साथ और कोई नहीं है,) **तो शैतान उनके साथ तीसरे शख़्स की तरह शामिल हो जाता है।**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला तिरमुज़ी ने दिया। [ये हराम है के एक नामहरम औरत के साथ हलवत की जाए, यानी एक आदमी और एक औरत

के लिए बंद जगह में तन्हाई में रहना। इबनी आबिदिन ने इर्शाद फरमाया इस तरह अपनी तक़रीर में इमाम बनने पर: "अगर वहाँ पर एक और आदमी या एक औरत है जो उस (पहले) आदमी के रिश्तेदारों में से है जिन्हें ज़ी-रहम-ए-महरम, कहते है, ये वाक्या हलवत नहीं है।"]

13- जाबिर बिन अब्दुल्लाह 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**उन औरतों को देखने मत जाओ जिनके शौहर बाहर है। इस वास्ते** (अगर तुम ऐसा करते हो) **तो शैतान तुम्हारी नसों में ख़ून बनकर फिरेगा।**" जब उन्होंने कहा, "क्या आपके अंदर भी ऐसे ही दौड़ता है," तो अल्लाहु तआला के महबूब ने इर्शाद फरमाया: **हाँ। वो मेरे अंदर भी ऐसे ही फिरेगा। अब तक अल्लाहु तआला उसके ख़िलाफ मेरी मदद करते आए है। उसने उसको एक मुस्लिम बनाया, इसलिए वो मेरे आगे अपने हथियार डाल देता है।**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला तिरमुज़ी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने दिया।

14- उम्म-ए-सलमा 'रज़ि-अल्लाहु अनहा' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' मेरे साथ थे (मेरे कमरे में)। मेरे भाई अब्दुल्लाह बिन अबी उमय्या का गुलाम भी कमरे में था। वो गुलाम मुहाननेथ (औरत नुमा) था। जब रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने उस औरत नुमा शख़्स को देखा और उसकी आवाज़ सुनी तो कहा: "**ऐसे लोगों को अपने घर में मत आने दो!**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला **सही-ए-बुख़ारी** और **सही-ए-मुस्लिम** में है। मुहाननेथ एक आदमी (या लड़का) है जिसका चलन, हरकतें, बातें, आवाज़ और कपड़े सब एक औरत की तरह हो। लोग जो ऐसा करते है उनपर लानत है। एक हदीस-ए-शरीफ में उनके बारे में ऐसे इर्शाद है: "**अल्लाह उन आदमियों को बुरा कहे जो अपने आपको औरतों की तरह बनाए और औरतों को जो अपनी सूरत आदमियों की तरह बनाए।**" औरतें जो कपड़े पहनती है

आदमियों की तरह और बाल कटवाती है आदमियों की तरह और वो काम करती है जो आदमियों के ज़रिए किए जाते है और आदमी जो अपने बाल लम्बे रखते है औरतों की तरह और अपने आपको औरतों की तरह चाहते है, विना किसी उज़र के उनको मजबूर करना ऐसा करने के लिए, ये इस हदीस-ए-शरीफ के दायरे में आता है। मिस्वेर विन महरमा 'रज़ि-अल्लाहु अनह' की पैदाइश हिजरत (हेगिरा) के दूसरे साल में हुई थी। वो अवद-ऊर-रहमान विन औफ़ की वहन 'रज़ि-अल्लाहु अनहुमा' के बेटे थे। उन्होंने बयान किया: मैंने एक बड़ा पत्थर उठाया हुआ था, तभी जो कपड़े मैंने पहने हुए थे वो गिर गए। मैं उनको उठाने में नाकाम रहा। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने मुझे इस हालत में देखा और इर्शाद किया: "**अपने कपड़े ऊपर उठाओ! बिना कवर के बाहर मत जाया करो!**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला **सही-ए-मुस्लिम** में है। इस हदीस-ए-शरीफ में दोनों आदमियों और लड़कियों को मना है विना किसी कवर के सड़कों या साहिलों या खेल के मैदानों में जाना।

16- अवू उमामा 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "अगर एक शख़्स जो एक लड़की की ख़ूबसूरती देखता है और अपनी आँखें उससे फेर लेता है, तो अल्लाह तआला उसको सवाव बख़्शते है एक नए इवादत के काम के लिए और वो फौरन उस ज़ायके का मज़ा चख लेता है।" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला इमाम अहमद विन हनवल 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने दिया।

17- हसन बसरी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' ने बयान की मंदरजाज़ेल हदीस-ए-मुरसेल: [बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के दूसरे हिस्से के छठे बाव को कई तरह की हदीस-ए-शरीफों के लिए देखिए।] रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने इर्शाद फरमाया: "**अल्लाहु तआला उस एक शख़्स पर बुराई भेजें जो अपने अवरत अज़ू को खोले और दूसरे के अवरत**

अज़ू को देखें!” इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला इमाम बएहाकी ने अपनी किताब जिसका नाम **शुअब-उल-ईमान** में किया है ।

18- अब्दुल्लाह इब्नी उमर ‘रज़ि-अल्लाहु अनहुमा’ ने बयान किया: रसूलुल्लाह ‘सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम’ ने इर्शाद फरमाया: “**अगर एक शख़्स अपने आपको एक ख़ास कबिले** (लोगों के समूह) **से मिलाता है, तो वो उनमें से एक बन जाता है!**” इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला इमाम अहमद के ज़रिए और अबू दाऊद ‘रहीमा-हुमुल्लाहु तआला’ के ज़रिए हुआ। इसका मतलब ये हुआ कहना के वो एक शख़्स जो अपनी आदत, अपनी हरकतें, या कपड़े है इस्लाम के दुश्मनों की तरह पहनता है, वो उनमें से एक बन जाता है। [ये हदीस-ए-शरीफ उन लोगों के लिए चेतावनी है जो काफिरों के ढंग के साथ चले और जो हराम को ‘नफ़ीस हुनर’ कहें और उन लोगों को जो हराम करें उन्हें ‘फंकार’ बुलाएं।]

19- अम्र शुऐब ने बयान किया अपने बाप और दादा के हुक्म पर: रसूलुल्लाह **‘**सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम’ ने इर्शाद फरमाया: “**अल्लाहु तआला उन तुहफों को देखना पसंद करता है जो उसने अपने बन्दे को दिए।**” इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला तिरमुज़ी ‘रहीमा-हुल्लाहु तआला’ के ज़रिए हुआ। ऐसा देखा गया है, अल्लाहु तआला पसंद फरमाता है (एक शख़्स के) कपड़े अच्छे और साफ हों। वो पसंद करता है एक शख़्स को जो उन्हें बनाता है (और एक जो उन्हें पहनता है) अपने तोहफे को दिखाने के सबब। वो नापसंद करता उस एक शख़्स को जो उन्हें बनाता है (और एक जो उन्हें पहनता है) अपने हल्के पन की बेजा तारीफ़ करने के लिए। इसकी इजाज़त नहीं है के अल्लाहु तआला के नवाज़े गए तोहफे को छुपाया जाए। इसी तरह, इल्म वाला होना भी एक तोहफा है अल्लाहु तआला के ज़रिए बख़्शा गया।

20- जाबिर बिन अब्दुल्लाह 'रज़ि-अल्लाहु अनह' ने बयान किया: रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' हमारे घर आए। वहाँ पर घर में एक शख़्स था बिखरे बालों के साथ जब नबी ने उसको देखा तो कहा: "**क्यों ये कोई ऐसी चीज़ ढूँढने में नाकाम रहा जिससे ये अपने बाल संवार सकता?**" जब आप किसी को गंदे कपड़ों के साथ देखते तो फरमाते: "**क्या इसके पास कोई चीज़ नहीं थी जिससे ये अपने कपड़े धो सकता?**"

21- अबू-ए-एहवेस, ताबईन में एक ने अपने बाप के हुक्म देने के अधिकार पर बयान किया: मैं रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के घर गया। मेरे कपड़े पुराने और फटे हुए थे। "**क्या तुम्हारे पास जाएदाद नहीं है,**" आपने पूछा। मैंने कहा मेरे पास जाएदाद है। आपने दोबारा पूछा: "**किस किस्म की जाएदाद तुम्हारे पास है?**" "मेरे पास सब तरह की जाएदाद है," मैंने कहा। इसपर सब मख़्लूकों में अव्वल ने फरमाया: "**जब अल्लाहु तआला ने दी है (तुम्हें) जाएदाद, तो वो इसकी निशानी तुम पर देखना चाहता है!**" इस हदीस-ए-शरीफ का हवाला इमामा अहमद के ज़रिए और नेसाई 'रहीमा-हुमुल्लाहु तआला' के ज़रिए हुआ। यहाँ हम अपना तर्जुमा जो **एशीअत-उल-लेमेअत** नाम की किताब के तीसरे हिस्से से लिया ख़त्म करते है।

22- यूसुफ़ क़रदवी की **अल-हलाल-ऊ-व-ल-हराम-ऊ-फी-ल-इस्लाम** नाम की किताब में मंदरजाज़ेल तरीक़े से इर्शाद हुआ: इस्लाम मज़हब ने एक औरत को अपने आपको ऐसी चीज़ से ढकने को मना फरमाया है जो इतनी बारिक हो जिससे ये ज़ाहिर हो के अंदर क्या है। ये एक हदीस-ए-शरीफ में इस तरह इर्शाद हुआ है जिसकी हवालगी **सही-ए-मुस्लिम** और **मुवत्ता** नाम की किताबों में दी गई है: "**औरतें जो ढकी हुई होती है** (लेकिन) **नंगी होती है और** (औरतें) **जिनके सिर ऊपर की तरफ फूले हुए होते है ऊँटों के कुब्बड़ की तरह वो जन्नत में नहीं जाएंगी। उनको जन्नत की ख़ुशबू तक हासिल नहीं**

होगी। दूसरी तरफ, जन्नत की ख़ुशबू बहुत दूर जगहों पर जाएगी।" ये हदीस-ए-शरीफ औरतों को मना करती है बारिक, आर-पार दिखने वाले और बहुत ज़्यादा तंग कपड़े पहनने को, मोज़े और सिर में बैण्ड और अपने बालों को सिर के ऊपर गेंदों की तरह बाँध कर रखने को मना करती है। इस तरह सजना (ऐसा गुनाह है जैसे) बाहर नंगे जाना। मुस्लिम औरतों और लड़कियों को बारिक और तंग कपड़े नहीं पहनने चाहिए और न ही अपने बालों को इस तरह बाँधना या विग में बालों को ऐसे पहनना जैसे ऊँट की तरह कुबड़ जैसी गेंदों को सिर पर रखना। उनको ये पता होना चाहिए के गुनाह वाले काम इतने ज़्यादा ख़राब है के वो एक शख़्स को दोज़ख़ में ले जाने को काफ़ी है।

[क़रदवी एक मज़हबी आदमी है बिना किसी एक ख़ास मस्लक के जो पिछले मूल पाठ में इर्शाद किए गए। इस्लामी मज़हब ने ऐलान किया ये फर्ज़ है औरतों के लिए अपने आपको सही ढंग से ढाँकना और जो कवर इस्तेमाल होगा उसे बयान किया। ये बयान इतनी तफ़सील से नहीं है के ऐसे बताए के कौनसे क़िस्म का सामान इसमें इस्तेमाल किए जाए या कपड़े या स्कर्ट या कोट जो पहने जाए। ये फिकह की किताबों में लिखा हुआ है के ये औरतों के लिए फर्ज़ है अपने आपको ढँकना (उस तरीक़े से जिस तरह बयान हुआ है) और जिस क़िस्म का कवर इस्तेमाल किया जाए या वो कपड़ा जो पहना जाए वो **सुन्नत-ए-जैवाईद** है, जो बदले में वो सुन्नते है जो रस्म से संबध रखती है इबादत के मुकाबले। इस मसले के लिए, जो कवर की क़िस्म इस्तेमाल की जाए वो ख़ासतौर पर उसमें से हो जो दस्तूर के मुताबिक़ हो। ये मकरूह है रस्मों को उस चीज़ में शामिल न करना जो इबादत से संबध नहीं रखती। दरहक़िक़त, ये हराम है अगर इससे फितना पैदा हो। ये **हिंदिया** में इर्शाद है: "इसकी इजाज़त है के एक औरत को देखना जो कुछ मोटा और कुशादा हो। एक औरत जो तंग कपड़े पहने हुए है उसे देखने की इजाज़त नहीं है। ये हराम है एक औरत के चेहरे को हवस की निगाह से देखना जिसने अपने आपको कवर किया हुआ

हो (ढंग) से। ये मकरूह है बिना हवस के भी उसको देखना अगर इसका कोई सबब न हो। एक जैसा उसूल लागू होता है ग़ैर मुस्लिम औरतों को देखने के लिए। आलिमाना इर्शाद के मुताबिक़, सिर्फ उनके बालों को देखने की इजाज़त है।"

पहनना एक कुशादा, मोटे और गहरे रंग के ऊपर से पहनने वाले कोट की तरह जो ऐढ़ी की हड्डी तक हो और जिसमें बाज़ू और कलाइयाँ ढकी हो वो अच्छा है उससे (ऊपर से कपड़ा पहनना जिसे कहते है) एक चारशाफ (और) जो दो हिस्सों में बटाँ हुआ हो। ये **हलाबी-ई-कबीर** में इर्शाद है: "एक आज़ाद (मुस्लिम) औरत के बाल जो कान से नीचे आए वो (उसके अंदर) अवरत (अज़ू) में है, एक जैसी राय के मुताबिक़ (इस्लामी आलिमों के बीच में)। ऐसा ही मसला उसके उन अज़ू के साथ है जो हिस्से कान से नीचे लटक रहे हों आलिमों की अकसरिअत के मुताबिक़। कुछ आलिमों के मुताबिक़, लटकने वाला हिस्सा नमाज़ पढ़ने के दौरान अवरत नहीं होता। बहराल, इस बात की इजाज़त नहीं होती एक नामहरम आदमी के लिए के उसके उस हिस्से को भी देखे।" वो अपने सारे बालों को एक मोरे हैडगियर में कवर करके रखते है। हैडगियर के आगे वाले हिस्से के बीच का हिस्सा उसके माथे से चिपका होता है और भवों तक गया हुआ होता है, इसके दोनों हिस्सों को भवों के बाहरी हिस्से तक होना चाहिए उलटा मोड़के, उसे थौड़ी तक नीचे ले जाए, थौड़ी पर मिलाकर उसपर पिन लगा दी जाए और उसके सिरों को सिने तक लटकने दे; और उसकी पीछे वाली जगह का बीच का हिस्सा उसकी कमर के ऊपर के हिस्से को कवर करे। अगर ऐसा मुमकिन हो के फ़ितना हो सकता है, तो गालों को भी ढक लेना चाहिए। उसको मोटे और गहरे मोज़े पहनने चाहिए। अगर एक चौथाई एक औरत के लटकने वाले बाल इतनी देर तक दिखे के एक रूकन (नमाज़ में), तो नमाज़ जो वो अदा कर रही है वो सही नहीं होगी। और ये मकरूह है अगर एक छोटा हिस्सा (इतना लम्बा) खुला

रह जाए।कोई एक भी इस्लामी किताब तफ़रका/फर्क नहीं करती जवान से बुढ़ों में औरतों की उम्र के मामले में।वहाँ पर इस्लामी आलिम है जो ये इर्शाद करते है के इसकी इजाज़त है एक बूढ़ी औरत के सलाम को क़ुवूल किया जाए या उसके साथ मुसाफ़ाह (हाथ मिलाया जाए) [बराए मेहरबानी **सआदत अबदिया** के तीसरे हिस्से का बासठवाँ बाव देखिए] या उसके साथ हलवत की जाए, (यानि उसके एक बंद कमरे में रहना;) इसके बावजूद कोई भी इस्लामी आलिम ये नहीं फरमाता के इस बात की इजाज़त है एक बूढ़ी औरत को के वो अपने बाल दिखाए या (उस आदमियों के लिए जो नामहरम है उसके लिए) देखना उसके (खुलें) बालों को।कुछ इस्लामी आलिम कहते है के एक ग़ैर मुस्लिम औरत के बाल को देखने की इजाज़त है।लेकिन उनमें से किसी एक ने भी ये नहीं कहा के एक बूढ़ी मुस्लिम औरत के बाल देखने की इजाज़त है।वो इस्लमी आलिम जो कहते है इस बात की इजाज़ात है एक बूढ़ी औरत के लिए के मस्जिद में अंदर जाना या एक कब्रिस्तान में जाना उन्होंने ये शर्त रखी के उसके बाल तरीक़े से ढके हुए होने चाहिए।

ये कहना सही नहीं है के, "ऐसे इर्शाद हुआ है सूरह अहज़ाब की उनसठवीं आयात में के मुस्लिम औरतों को अपने आपको पूरे तरीक़े से ढकना चाहिए **जिलबाब/हिजाब** के साथ।ये आयत उनको हुक़्म देती है के अपने को चारशाफ़ से ढकों, जो दो हिस्सों पर मुवनी हो।" अगर ये आयत हुक़्म देती (औरतों) को चारशाफ़ पहनने का, तो रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की नवाज़ी गई बीवियाँ और सहाबा 'रज़ि-अल्लाहु तआला अनहुम अजमईन' की बिवियाँ चारशाफ़ पहनती।लेकिन कोई इस्लामी किताव से ये ख़बर नहीं मिलती के उन्होंने चारशाफ़ पहना हो।तुर्की की तफ़सीर वाली किताब जिसका नाम **तिबयान** है उसमें (इस आयत) को एक हुक़्म की तरफ बताया गया के औरतों को "अपने सिरों को ढकना चाहिए।" ये इस तफ़सीर की किताव जिसका नाम **जिलालेन** है में है, (यानी जिलबाव,) सिर की पौशाक जो औरतें

पहनती है इस तरीक़े से के वो उनके चेहरे पर लटकती है। सावी ने इस तरह समझाया, कहा: "इसमे एक सिर की पौशाक और एक धीर थी, यानि एक कपड़े का टुकड़ा जो पौशक के ऊपर पड़ा रहता है।" ये तफ़सीर की किताब जिसका नाम **रूह-उल-बयान** और **अबू-स-सूऊद** में मंदरजज़ेल तरीक़े से लिखा हुआ है: "जिलबाव/हिजान एक सिर की पौशाक है जो गौज़ के ऊपर रखकर सिर के चारों तरफ बाँधा जाता है ताकि बाल जो है बिखरे नहीं; जिलबाव/हिजाब गौज़ से चौढ़ा होता है, ये सीने तक जाता है और जेएब को ढक लेता है, [यानि गर्दन खुला हुआ, छाती,) पौशाक की। इस आयत-ए-करिमा में औरतों को हुक़्म दिया जाता है के अपने सिरों को ढको और पूरे जिस्मों को भी।" **ज़ैवाजीर** और **अल-फिकह-ऊ-अला-ल-मज़ाहिब-उल-अरबा** में एक हदीस-ए-शरीफ में बयान किया गया है जिससे ज़ाहिर होता के जिलबाव/हिजाब है (एक कपड़ा जिसे) आदमी भी पहनते है और समझाया के जिलबाव आदमियों के लिए एक लम्बी पौशक जिसे कामिस (केमिज़) कहते है। औरतों का बाहर जाने का एक जोड़ा जिसमें एक लम्बा कौट और एक मोटा सिर की पौशाक और एक क़िस्म का कपड़ा जिसे चारशफ़ कहते है और जो दो हिस्सों में बना हुआ है वो उसी तरह बराबरी से हुक़्म को पहुँचाता है औरतों के अपने आपको ढकने में और जो ऊपर बताया गया है।" औरतों को अपने आपको अपनी मकामी रस्मों के मुताबिक़ ढक लेना चाहिए ताकि कोई फ़ितना पैदा न हो। **सही-ए-बुख़ारी** नाम की किताब के छठे भाग के छब्बिस्वें सफ़हे में लिखा हुआ है वो ये के एक आयत-ए-करीमा का हिस्सा जिसमें औरतों को अपने को ढकने का हुक़्म था वो ज़ेनब 'रज़ि-अल्लाहु तआला अनहा' के निकाह वाले दिन ज़ाहिर हुआ। निकाह हिजरा के तीसरे साल में हुआ था।]

एक शख़्स जो मुस्लिम होने का इक़रार करता है उसको ये जानना चाहिए के जो कुछ वो कर रहा है वो इस्लाम की रज़ा के मुताबिक़ है के

नहीं। अगर वो नहीं जानता, तो अहल-ए-अस-सुन्नत के एक आलिम से पूछ कर याद कर सकता है या इन आलिमों के ज़रिए लिखी गई किताबों को पढ़कर। अगर जो वो करना चाहता है वो इस्लाम की रज़ा के मुतालिक नहीं है, तो वो गुनाहगार होने से या लामज़हबी होने से महफ़ूस नहीं रह सकता। एक सच्ची तौबा रोज़ाना माँगनी होगी। एक गुनाह से भरा हुआ या ग़ैर मज़हबी काम हर हाल में माफ़ किया जा सकता है (अल्लाहु तआला के जरिए) अगर उसके लिए तौबा की जाए। अगर तौबा न की जाए, तो दुनिया में और दोज़ख़ में अज़ाब है, यानी सज़ा झेलनी/भूगतनी होगी। सज़ाए जो दी जाए वो मौजूदा किताब में जगह-जगह लिखी हुई है।

मर्दो और औरतों के जिस्मों के हिस्सें जो ढके हुए हो जब नमाज़ अदा कर रहे हो और जिन्हें **अवरतअज़ू हिस्से** कहा जाता है। **"ये हराम है अपने अवरत अज़ू को दिखाता या दूसरों के देखना (खुले हुए) अवरत अज़ू।"** ये एक आदमी के लिए सुन्नत है अपने पाँव को ढकना (मिसाल के तौर पर मौज़े पहनना) जब वो नमाज़ अदा कर रहा हो। एक शख़्स जो कहे के इस्लाम में कोई अवरत अज़ू नहीं है वो काफ़िर बन जाता है। हमारा मज़हब हमें हुक्म देता है के हम अपने अवरत अज़ू को ढकें। एक जगह जहाँ पर एक आदमी या औरत अपने अवरत अज़ू को दिखाए या जहाँ पर संगीत की साज़ बजाए जाए और या लोग जुआ खेलें और नशीली चीज़ें पीए और लोग औरतों को सुनें गाना गाते हुए वो **फिस्क की जगह** है। फिस्क़ की जगहों पर जाना हराम है। दिल भी पाक होना चाहिए। दिल का पाक होने से मतलब है इल्मे अख़्लाक़ का ख़ूबसूरत होना। दिल पाक होगा इस्लाम की फरमांबरदारी करने से। लोग जो इस्लाम के नाफरमाबरदार है उनके दिल पाक नहीं होते। अगर एक शख़्स कहे, "हलाल", जिस्म के किसी भी एक अज़ू को दिखाने के लिए जिनको अवरत कहा जाए 'इजमा' के जरिए (इस्लामी आलिमों की सामूहिक राय), यानि जो चारों मस्लक़ों में अवरत है, या दूसरे के अवरत अज़ू को देखने के बारे में,

यानी अगर वो डरता नहीं है के अपने इस गुनाह भरे काम से उसे अज़ाब की सख़्तियाँ झेलनी पड़ेंगी, तो वो काफ़िर बन जाता है। यही वाला उसूल उन औरतों पर लगता है जो अपने अवरत अज़ू को दिखाती है, गाना गाती है या मौलीद गाती है आदमियों की मौजूदगी में। एक आदमी के जिस्म के अज़ू जो उसकी रान और घुटनों के बीच में है सिर्फ हनबली मस्लक में अवरत नहीं है।

एक शख़्स जो कहे, "मैं मुस्लिम हूँ" उसे ईमान और इस्लाम और फराइज़ और हराम के लाज़मी याद करने पढ़ेंगे जो चारों मस्लक़ों ने एक राय होकर पढ़ाए है, यानी इजमा (सामूहिक राय) के ज़रिए तालिमात और उनको आला मकाम पर रखे। ये कोई उज़र नहीं के उनको नहीं जानना। वो ये, ये इस तरह है के उसको जानना और इंकार करना। "**एक औरत का पूरा जिस्म, हाथ और मुँह छोड़कर अवरत है,** (वो ये, उनको ढको,) **चारों मस्लक़ों में।**" अगर एक मुस्लिम बेपरवाह होकर अपने जिस्म का एक अज़ू दिखाता है जिस पर कोई इजमा नहीं है, यानी ये अवरत नहीं है उन तीनों मस्लक़ों में से एक के मुताबिक़, वो एक बहुत बड़ा गुनाह करता या करती है अपने मस्लक के मुताबिक़, हालांकि वो कोई काफ़िर (नास्तिक) नहीं बन जाता। इसकी एक

मिसाल है के आदमी अपने रानों और घुटनों के बीच के अज़ू को दिखाए। ये एक मुसलमान के लिए फर्ज़ है के जो उसे नहीं पता उसे याद करे। जब एक बार वो इसके बारे में सीख जांए तो फौरन तौबा कर लें और अपने अज़ू को ढक लें।

एक ईमान वाले की लियाक़त

यहाँ पर सात हुक़ुक़ है जो के एक ईमान वाला मानता है दूसरे ईमान वाले के हवाले के साथ:

उसके बुलावे/दअवत में हिस्सा लेना:

इयादत, [यानी जब वो बीमार हो तो उसे मिलने जाओ।]

उसके मरने में जाओ और हिस्सा लो।

उसको मश्वरे दो।

उसको इस तरह सलाम करो (जैसे के पढ़ाया गया **सआदत अबदिया** के तीसरे हिस्से के बासठवें बाब में।)

उसको ज़ालिम के जुल्मों से बचाना।

"य-र-हमुकल्लाह",कहनाजब वो,"अल-हमद-ऊ-लिल्लाह," कहना।

अच्छे ईमान वाला वो है जो मंदरजाज़ेल छः हुनर को पूरा करे:

वो इबादत अदा करे।जो इल्म याद करे।वो बुराई न करे।वो हराम को छोड़े।वो किसी के माल पर लालची निगाह न रखे।वो मौत को कभी नहीं भूलता।

एक नोट: ये एक हदीस-ए-शरीफ़ में लिखा हुआ है: "**हर एक उन लोगों को पसंद करता है जो उनपर कोई इनायत करे।ये इच्छा हर इंसान की फितरत में पैदाइशी होती है।**" एक शख़्स जो अपने नफ़स की इच्छाओं को ख़ुश करता है उन लोगों को पसंद करता है जो उसके नफ़स की इच्छाओं को पूरा करने में मदद करते है।एक अकलमंद और आलिम शख़्स, दूसरी तरफ़, उन लोगों को पसंद करता है जो उनको एक काश्तकार शख़्स बनने में मदद करते है।इसका ख़ुलासा इस तरह है, अच्छे लोग अच्छे लोगों को ही पसंद करते है।बुरे लोग बुरे लोगों को ही पसंद करते है।किस तरह एक ख़ास शख़्स

को ध्यान से देखकर वो साफ कर सके जिन लोगों को वो पसंद करता है और फौकियत देता हो अपना दोस्त बनाने पर। हमें हर एक को मुस्कुराते हुए चेहरे के साथ और मीठे लफ़्ज़ों के साथ बरताव करना चाहिए, दोस्त और दुश्मन दोनों को एक बरताव करना चाहिए, दोस्त और दुश्मन दोनों को एक समान, और मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम को एक समान, बीदअती लोगों के अलावा। सबसे ज़्यादा फायदेमंद इनायत जो इन लोगों को बख़्शी जाए और सबसे क़ीमती तोहफा जो उन्हें दिया जाए वो है उनके साथ ख़ुशदिली से बात करना उनको मुस्कुराकर देखना। जब हम देखते है एक शख़्स को बैल की पूजा करते हुए, तो हमें चाहिए उस बैल के मुँह में भूसा खिला दें, इससे हम उसकी दुश्मनी से बच सकते है। हमें किसी के साथ लड़ाई नहीं करनी चाहिए। झगड़ा दोस्ती को कमज़ोर करता है और दुश्मनी को और बढ़ाता है। हमें किसी के साथ गुस्सा नहीं करना चाहिए। गुस्सा नसों और दिल की बीमारियों को पैदा करता है। एक हदीस-ए-शरीफ विचार बदलती है: **"गुस्से वाले मत बनो!"** (इस हदीस-ए-शरीफ में मुबारक नबी ने मश्वरा दिया है के गुस्से को नज़रअंदाज़ करो।)

एक शख़्स अच्छा हो सकता है (और फायदेमंद) अगर वो चार चीज़ें छुपा ले:

1- अपनी गरीबी;

2- अपनी ज़कात;

3- अपनी तकलीफ़;

4- अपनी परेशानी।

जन्नत चार लोगों के लिए बैचेन होती हैं:

1- एक शख़्स जिसकी ज़बान ज़िकर करती है।

2- एक शख़्स जो एक हाफिज़-ए-कलामउल्लाह हो।

3- एक शख़्स जो लोगों को खिलाता हो।

4- एक शख़्स जो रमज़ान के मुबारक महिने में रोज़े रखे।

हर एक शख़्स नीचे लिखी हुई सात बातें कहने से अपने को न रोके:

वो जब भी कोई काम शुरू करे तो बिस्मिल्ला-ए-शरीफा पढ़े (अच्छा, फायदेमंद, या इजाज़त वाला काम)। (कहना या करना बिस्मिल्ला का मतलब है ये कहना, "**बिस्मिल्लाह-ईर-रहमान ईर-रहीम।**")

उनको कहना चाहिए, "**अल-हमद-ऊ-लिल्लाह,**" जब वो कही से आर पार हो (अच्छा या फायदेमंद या इजाज़त वाला।)

वो बहुत ज़्यादा उसके साथ बोले, "**इनशा-अल्लाह,**" जब वो कहे, मिसाल के तौर पर मैं जाऊँगा (एक ख़ास जगह पर।)"

उनको कहना चाहिए, "**इन्ना लिल्लाह-वा-इन्ना इलैहि राजेऊन,**" जब भी वो कोई बुरी ख़बर सुने।

उनको तौबा और अस्तग़फार करनी चाहिए जबभी वो कहें (या करे) कोई गलत काम। (तौबा करने का मतलब है अपने किसी ख़ास गुनाह के लिए पछताना, और ठान लेना और अल्लाहु तआला से वादा करना के वो गुनाह दोबारा नहीं करेगा। अस्तग़फार करने का मतलब है ये कहना, "अस्तग़फिरूल्लाह," और इसलिए अल्लाहु तआला से माफी माँगना।)

उनको हमेशा कलिमा-ए-तय्यबा कहना चाहिए, यानी कहे, “लाइलाहा-इल्लल्लाहु वाहदहू ला शरीका-लेह-लेहुल-मुलकू वा-लेहुल-हमदू-वाहुवा अला कुल्ली शेईन-कदीर।”

उन्हें हमेशा कलिमा-ए-शरीफा बोलना चाहिए यानी कहे, “अश्हदु अन लाइलाहा-इलल्लाह वा अश्हदु अनना मुहम्मदन अबदुहू वा रसूलुह।”

इनको मंदरजाज़ेल दिन और रात कहना चाहिए:

1- “अस्तग़फ़िरूल्लाह।”

2- “सुबहान-अल्लाही व लहमद-उ-लिल्लाही व ला-इलाहा-इल्लल्लाहु वल्लाहु अकबर वा-ला होला वला कुव्वता इल्ला बिल्लाह-इल अलय-ईल-अज़ीम।”

अख़्लाक-ए-हमीदा का बयान

(क़ाबिल-ए-तारीफ़ मुहज़्ज़ब गुण)

वहाँ पर कुछ बाहत्तर मुहज़्ज़ब गुण है जो एक शख़्स पर प्यारे है:

ईमान; अहल-अस-सुन्नत का एतेक़ाद; इख़्लास, अहसान, तेवादू; ज़िक्र-ए-मिन्नत; नसीहत; तसफीया; ग़ैरत; ग़ीबत; सेखा; इसार; मुरव्वत; फुतूवत; हिक्मत; शुक्र; रीदा; सब्र; ख़ौफ; रैजा; बुग़द-ए-फिलाह; हुब्ब-ए-फिलाह; हमूल; इस्तीवा-ए-ज़ैम वा मैज़; मुजाहदा; सा-ए-क़सद; अमाल; ज़िक्र-ए-मौत; तफ़वीज़; तसलीम; तलब-उल-इलम; सेला-अहद; इंजाज़-ए-वाद; हुस्न-ए-खुलक; जुहद; कनाअत; रूश्द; सई-ए-फी-ल-ख़ैरात; रीक़्क़त; सवेक़; हया; थेवात-ए-फ़ी एमरील्लाह; आऊज़ो बिल्लाह; शेवकु इला-लीक़ाइल्लाह;

वकार; ज़कावत; इस्तीकामत; अदब; फीरासत; तवक्कुल; सीदक; मुरावाता; मुराकबा; मुहासबा; मुआतबा; कज़म-ए-ग़ैज़; हुब्ब-ए-तुल-ए-हयाती-ली इबादतीही; तौबा; ख़ुशूअ; यक़ीन; उबुदीयात; मुकाफ़त; रिआयत-ए-हुकुक़-ए-ईबाद।

तेवदू का मतलब है आजज़ी; ज़िक्र-ए-मिन्नत का मतलब है हर ताअत को जानना (अल्लाहु तआला की फरमावरदारी का काम) फर्ज़ है रहनुमाई तक, मददगार और रहमदिल अल्लाहु-अज़ीम-उस-शान की तरफ से और शुक्र मनाओ (अल्लाह तआला का) उसके लिए; नसीहत का मतलब है अपने मुस्लिम भाई को नसीहस करना; तसफ़ीया का मतलब है अख़लाक़-ए-ज़ेमिमा (बुरे मुहज़ब गुण) को अपने दिल से निकालना और अख़लाक़-ए-हमीदा से इसको सजाना, ग़ैरत का मतलब है अपने ईमान की हिफाज़त करना; ग़ीबत का मतलब है जो इनाएते किसी और ने हासिल की है उनको शौक से चाहना; सेखा और फुतूवत (दोनों का) मतलब है सखावत; इसर का मतलब है अपने मोमिन भाई की परेशानी के लिए कोई हल सोचना; मुरव्वत का मतलब है इंसानियत की तरफ अपने फर्ज़ निभाना; हिक्मत का मतलब है अपने इल्म-ए-हाल को जानना (इस्लामी तालिमात मुसलमानों के मज़हबी फराइज़ से ताअलुक़ रखने वाली) और अपने इल्म की मशक़त करना; शुक्र का मतलब है बरक़तों को इस्तेमाल करना जगहों पर (और इस तरह से) बयान की गई है (इस्लाम के ज़रिए से); रीदा का मतलब है अल्लाहु तआला ने जो पहले से तुम्हारे लिए बन्दोबस्त किया है उस पर ख़ुश रहो और सब्र का मतलब है आफ़तों के लिए सब्र रखना।

[रिअयत-ए-हुकुक़-ए-इबाद का मतलब है (अल्लाहु तआला के) बंदों (यानी लोगों) के हुकुक़ की निगेहबानी रखे। सबसे ख़ास इन बन्दों के हुकुक़ में से वो है वालदैन के हुकुक़। मीठे बोलों के साथ और एक मुसकुराते हुए चेहरे

के साथ हमें उनकी मदद के लिए भागना चाहिए और उनका दिल जीतने के लिए हमें ख़ुदको सबसे अच्छा दिखाना चाहिए। उसके बाद जो हुकुक़ आतें है वो है हमारे पड़ोसियों के हुकुक़, उस्तादों के हुकुक़, शादी के हुकुक़, हमारे दोस्तों के हुकुक़ और हमारी सरकार के हुकुक़। हमें किसी के साथ झूठ नहीं बोलना चाहिए या किसी को धोखा नहीं देना चाहिए, और हमें नापने वाले औज़ार सही इस्तेमाल करने चाहिए और मज़दूरों का पसीना सूखने से पहले उनका मेहनताना दे देना चाहिए। ये बदख़ुवाही है के हम अपने कर्ज़े न चुकाए या हम बस या उस जैसी और कोई चीज़ से सफ़र करे और किराया अदा न करें। सरकार को टैक्स अदा न करने से हज़ारों लोगों के साथ नाइंसाफी होगी। मान लो सरकार जुर्म करती है सख़्ती बरतती है और इस वजह से जुल्म सहने वाले लोग रियासत के ख़िलाफ बग़ावत कर देते है, वो ये के इसकी इजाज़त नहीं है के बाग़ियों की मदद की जाए **बरीका** नाम की किताब में लिखा हुआ है, उसके उस बाब में जो फितना के मुतालिक है और जो **फत्व-ए-हिंदिया** और **दुर्र-उल-मुख़्तार** में भी है। ये एक हदीस-ए-शरीफ में लिखा हुआ है: "**अगर एक शख़्स सरकार को धोखा देता है तो अल्लाह भी उससे बेवफ़ाई करता है।**" यानी वो बाग़ी को बेइज़्ज़त कराता है और उसे हक़ीर [नीबरास] बनाता है। इस मसअले के लिए, हमें इतबार को जाने नहीं देना चाहिए पामाली की तरफ और जो बरबाद इशाअत मुसलमानों को हुकूमत के ख़िलाफ भड़काने वाली है और जो उन लोगों के ज़रिए चलाई जा रही है जिनका कोई ख़ास मज़हब नहीं है, जैसे के सैय्यद कुतुब और मौदूदी। बग़ावत ऐसी चीज़ नहीं है जो क़ाबिले मंज़ूर हो, चाहे वो एक जुल्म करने वाली हुकूमात के ख़िलाफ हो, और न ही इस बात की इजाज़त है के बाग़ियों का साथ दिया जाए। इबनी आबिदिन 'रहीमा-हुल्लाहु तआला', जैसे के उन्होंने समझाया के ये हराम है आदमियों का रेशमीन कपड़े पहनना, ने इर्शाद किया: "इस बात की इजाज़त है के सिल्क के सामान को या सोने और चाँदी के ज़ेवरों को बिना इस्तेमाल करे

तुम ख़ुशियों के मौकों पर जैसे के ईद के दिन और शादियों में सिर्फ हुकूमत के अहकाम को मानने के लिए किया जाए न के दिखावा करने के लिए। हालांकि, ये बरबाद करना है और बेज़रूरत है के माल का इस्तेमाल किया जाए बत्तियाँ लगाने के लिए, मोमबत्तियाँ जलाने के लिए या दिन में रोशनी वाले इश्तेहारात चलाना, इस सबकी इजाज़त नहीं है। इस बात की इजाज़त है या अपने बच्चों को मिले जुले स्कूलों में भेजो जहाँ लड़के और लड़कियाँ एक साथ तालीम हासिल करें, अगर सरकार ऐसा करने के लिए लोगों को हुकुम दे। दूसरी जगह जिसकी इजाज़त नहीं है (मुसलमानों के लिए) वहाँ जाने के लिए वो है जहाँ आदमी और औरतें मिले हुए हों और लोग अपने अवरत अज़ू दिखा रहे हों।" ये लिखा हुआ है **इबनी आबिदिन** में, उन बाबों में जो जुमे की नमाज़ और एक कादी होने से मुनसलिक है, वो ये के इसकी इजाज़त नहीं है के काफिरों के कानून के खिलाफ भी बग़ावत नहीं कर सकते। ये इर्शाद है (इस्लामी आलिमों के ज़रिए) के इबादत का काम जो अदा किया जाए अल्लाहु तआला के बंदों (यानी इंसान) के हुकूक़ की पामाली करके तो वो क़ुबूल नहीं किया जाएगा और इबादत करने वाले की जन्नत में दाख़िल होने में कोई मदद नहीं करेगा। ये इर्शाद है के ग़ैर मुस्लिम के हुकुक़ को अदा करना बहुत ज़्यादा मुश्किल है बनिसबत एक मुस्लिम के हुकुक़ अदा करने के। हमें सबके साथ अच्छा करना चाहिए और बुराई करने वालों के साथ रहम के साथ पेश नहीं आना चाहिए। एक सच्चा मुसलमान अल्लाहु तआला के हुक़्मों की और सरकार के क़वातीन की फरमाबरदारी करता है।]

एक मुबारक वली की साथ बहुत मुश्किल से मिलता है,
लोग जो उसे हासिल करते है वो उस मरतबे को जाने नहीं देते।

एक को दूर और पास देखना चाहिए सही लड़का ढूँढने के लिए;
एक पैसे भुनाने वाला ही गौहर को जानता है, न के एक पागल लड़का।

अगर तुम एक बंद जग को पानी के निकास पर रख दोगे;
चाहे वो चालिस साल वहाँ रहे, वो सूखा ही रहेगा।

सोहबत दिल को पाक करती है, आसमान को अपना दुश्मन बनाने के लिए;
एक आदमी को जो अक्लमंद बनाती है वो उसके सिने की पौशाक को ऊँचा करती है।

सबसे पहले ईमान लाओ, और हराम को बंद करो;
जिस पर आत्मा को खिलाओगे वो पाए पर लगे बादाम नहीं है!

सहाबा की फज़ीलतो मुताल्लिक़

सारे सहावाओं में रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के चार ख़लीफा सबसे अफ़ज़ल है 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम अजमाईन'। हर एक की ख़िलाफत **30** सालों तक रही। [यह ऐलान हो चुका है कि सहाबा 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम अजमाईन' जन्नत में जायेंगे। उनके बारे में बुरा कहना जायज़ नही।

औलियाओं की करामत हक़ यानि सच है। [यह अल्लाह तआला की आदते इलाहिया है कि वो चीज़ों को सबब के ज़रिए बनाता है। मसलन पानी से भरी चीज़ पानी में डूब जाती है। कभी-कभी अल्लाह तआला अपने प्यारे बन्दों के लिए अपना कानून बदल देता है, जैसे औलिया और नबी, इसलिए इन बड़े लोगों के साथ करामाते और मोजिज़ाते होते है। अगर ऐसा नबियों के ज़रिए होता है तो उसे मोजिज़ा कहते है और औलियाओं के ज़रिए हो तो करामात।]

हज़रत अबू बकर सिद्दिक़ 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' सारे वलियों में सबसे अफज़ल है। आपकी ख़िलाफत हक़ है। इजमा के सबूत के मुताबिक़

आप पहले ख़लीफा है। आप रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के ससुर है। आपने अपनी बेटी आयशा 'रज़ि-अल्लाहु अन्हा' का निकाह रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' से किया। आप हकीकत के इल्म में माहिर है। अपने अपनी पूरी जायदाद हक़ (यानि इस्लाम) के रास्ते पर खर्च की, इतना कि आपके पास एक टुकड़ा न बचा। तो आपने खजूर के रेशों से बुना हुआ कपड़ा अपनी कमर पर बांध लिया। जिबराईल 'अलैहिस्सलाम' भी वैसा ही लिबास पहने अल्लाह के रसूल के पास पहुँचे। जब रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने फरिश्ते को इस भेस में देखा तो आपने फरमाया: "**ऐ जिबराईल मेरे भाई। मैने तुम्हे इससे पहले ऐसा नहीं देखा। मैं हैरान हूँ कि क्या हो रहा है।**" तब जिबराईल 'अलैहिस्सलाम' ने वज़ाहत की: "या रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम'। आप मुझे इस भेस में देख रहे है। सारे फरिश्तें भी इसी हाल में है। इसकी वजह यह है कि: अल्लाह तआला ने ऐलान किया है: "**मेरे बन्दे अबू बकर ने अपना पूरा माल मेरी रज़ा और मेरे रास्ते में खर्च कर दिया हत्ता कि वो खजूर के रेशों से बने कपड़ों में लिपटा हुआ है। ऐ मेरे फरिश्तों। तुम भी ऐसा ही लिबास पहनों !**" तो सारे फरिश्तें इस हाल में है। उस दिन से हज़रत अबू बकर को सिद्दिक़ कहा गया। (अल्लाह तआला की तरफ से)

आपके बाद सबसे बड़े वली हज़रत उमर 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' है। आपकी ख़िलाफत इजमा के मुताबिक़ सही रहबरी की थी। आप इस्लामी इल्म के सूबे में माहिर है। एक दिन एक मुनाफिक [एक मुनाफिक वो काफिर होता है जो एक मुसलमान होना दिखाता है, मुसलमानों में रहता है, उनकी कुछ जमातों में इबादत भी करता है।] और एक यहूदी रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के पास आये, आपस के मतभेद है मसले के निपटारे के लिए, रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने दोनों के दावे सुने। फैसला यहूदी के हक़ में आया (प्यारे नबी ने यहूदी के हक़ में फैसला दिया)। जब मुनाफिक

फैसले से मुतमईन नहीं हुआ तो रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: "**ऐ इन्सानों! उमर के पास जाओ और उसे तुम्हारा फैसला करने दो।**" तो वो हज़रत उमर 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' के पास पहुँचे। जब मुबारक सहाबा ने पूछा कि वो लोग यहाँ क्यों आये है तो मुनाफिक ने कहा: "इस यहूदी और मुझमे एक मतभेद है।" हज़रत उमर 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' ने फरमाया: "मैं अल्लाह के नबी के होते हुए तुम्हारे मामले का फैसला कैसे कर सकता हूँ?" मुनाफिक ने बताया: "हम रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के पास गए थे। उन्होंने फैसला यहूदी के हक़ में सुनाया। मैं इस फैसले से मुतमईन नहीं हूँ।" उमर 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' ने कहा: "तुम रूको, मैं एक हल (जवाब) के साथ वापस आता हूँ," और अन्दर चले गए। कुछ देर बाद वो अपने कपड़ों में एक खंजर छुपाए आए और उस मुनाफिक का सिर धड़ से अलग कर दिया। "उसके लिए यही सज़ा है जो रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के फैसले से मुतमईन न हो," महान सहाबी का यह जवाब था। इस मामले की बिना पर आपका नाम उमर-उल-फारूक 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' पड़ा और आप हमेशा यही कहे जायेंगे।

रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: "**उमर वो है जो सही को ग़लत में से फर्क करता है।**"

उनके बाद सबसे बड़े वली है उसमान-ए-जिन्नुरैन 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' आपकी ख़िलाफत की सही रहबरी थी। यह इजमा-ए-उम्मत (सहाबा की एक राय) से सच बात है। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अपनी दो मुबारक बेटियों की शादी उनसे की, एक के बाद एक। जब आपकी दूसरी बेटी भी वफात पा गई तो आपने फरमाया: "**अगर मेरी एक और बेटी होती तो वो भी में उसमान को ही देता।**

जब रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अपनी दूसरी मुबारक बेटी की शादी उसमान 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' से की तो उन्होंने अपने दामाद की ख़ूब तारीफ की। तजवीज़ के बाद बेटी ने फरमाया: "ऐ मेरे प्यारे बाबा! आपने हज़रत उसमान की ख़ूब तारीफ की। वो आपकी मुबारक तारीफ के मुताबिक़ अच्छे नहीं है!" तब रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अपनी बेटी से कहा: **"ऐ मेरी बेटी! जन्नत के फरिश्तें भी उसमान से हया करते है!"**

चूंकि रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अपनी दो बेटियों का निकाह उसमान 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' से किया था इसलिए आपका नाम उसमान-ए-जिन्नुरैन पड़ा। जिन्नुरैन का मतलब है, दो नूर का मालिक। वो मारिफत के इल्म में महारथ पाये हुए थे। (अल्लाहु तआला का नूरानी इल्म)

चौथे सबसे आला ख़लीफा व वली है अली करीमुल्लाहु वेजहा व 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह'। आपकी ख़िलाफत हक़ पर थी इजमा-ए-उम्मत के मुताबिक़। आप रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के दामाद है। प्यारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अपनी बेटी हज़रत फातिमा आपको निकाह में दी। आप तरीक़त के इल्म में माहिर है। आपका एक गुलाम था। एक दिन उस गुलाम ने अपने मालिक को आज़माने की सोची। हज़रत अली 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' उस वक़्त घर से बाहर थे। फिर आपने अपने गुलाम से किसी काम को कहा, पर गुलाम चुप रहा। फिर हज़रत अली 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्ह' ने पूछा: "ऐ गुलाम! मैने ऐसा क्या किया कि तू मुझसे नाराज़ है या मेरे किसी हिस्से ने तुझे नुक़सान पहुँचाया?" गुलाम ने जवाब दिया: "आपने मेरे साथ कुछ ग़लत नहीं किया। मैं आपका गुलाम हूँ। मैने सिर्फ आपको आज़माने के लिए ऐसा किया। आप सच्चे वली हो।"

[मुसलमान जो सभी सहाबा इकराम से मुहब्बत करते है और उनके नक्शे कदमों पर चलते है उन्हें **अहले सुन्नत (या सुन्नी मुस्लिम)** कहते है। वो जो कहते है कि हम इनमें से कुछ को पसन्द करते है और काफी सहाबाओं से नफरत करते है **शिया** कहलाते है। जो सहाबा के ख़िलाफ है उन्हें **रफीदी** कहते है। वो जो यह कहता है कि वो सारे सहाबाओं से मुहब्बत करता पर असल में किसी के भी नक्शे कदम पर नहीं चलता उसे **वहाबी** कहते है। **वहाबियत** पाखंडी मज़हब के आदमी अहमद इब्नी तैमिय्या और ब्रिट्रिश जासूस हैमपर की साज़िश का नतीजा है। वो अहले सुन्नत को 'काफिर' कहते है क्योंकि सच्चे मुसलमान वहाबियों के ईमान की बुनयादों को नहीं मानते। [उनकी बात उनपर वापस आती है ख़ुद काफिर बन के]

वहाबियों का सिधांत ब्रिट्रिशों ने **1150** [1737 A.D.] में अरब पेनिनसुला में मनगढ़त बनाया। उन्होंने अपने इस मनसूबे में कामयाब होने के लिए कई मुसलमानों का ख़ून बहाया। आज भी वो वहाबी मरकज़ बना रहे हैं जिन्हें वो **राबिता-तुल-अलैहिस्सलामी** कहते है, हर मुल्क में अनपढ़ लोगों को पकड़ कर खोज करते है और उन पर सोने की बारिश करते है। इन तरीकों से वो मुसलमानों को गुमराह कर रहे है। यह अहले सुन्नत के उलेमाओं को बदनाम कर रहे है जिन्होंने चौदह सौ सालों से इस्लाम की हिफाज़त की और ऑटोमन की भी। मुबारक आलिमों की तरफ से नास (हदीस और आयत) से लाई गई इस्लामी इल्म को यह लोग ख़राब कर रहे हैं।

कुछ वहाबी कहते है, "हम भी सुन्नी मज़हब से है। हम हनफी मज़हब से है।" इनका यह दावा एक पाखंडी ग्रुप मुताज़िला की तरह ही है जो कहते है "हम भी सुन्नी मुस्लिम है। हम हनफी मज़हब से है।" वो ऐसा इसलिए कहते है क्योंकि वो जानते है कि लोग जो सुन्नी नहीं है दोज़ख़ में जायेंगे। जबकि सच यह है कि, मज़हबी काम की लय और इबादत किसी एक मज़हब का

शख़्स हो उसे यह कहने की ज़रूरत नहीं कि वो उस मज़हब से है। किसी शख़्स का किसी मज़हब में होने का मतलब है उस मज़हब की ईमान की बुनयादें अपनाना और उसके मुताबिक़ इबादत करना। चारों मज़हब अपने ईमान की बुनयाद में एक जैसे है। चारों मज़हब अहले सुन्नत है ईमान में। किसी शख़्स का हनफी या हनबली मज़हब में होने का मतलब है अहले सुन्नत के मज़हब में होना। वहाबी सुन्नी ईमान रखते है।]

खाने और रिज़्क से मुताल्लिक़

खाने से पहले यह सोचकर हाथ धोना कि यह एक सुन्नत है तो उसके दस फायदे है:

अगर कोई शख़्स खाने से पहले अपने हाथ धोता है और अपने गीले हाथ यानि शहादत की उंगली अपनी आंखों के नीचे हिस्से पर मलता है और आंखे बन्द करके आंखों के पर्दो पर भी मलता है, उस शख़्स पर अल्लाह के हुक्म से कभी भी आंखों के दर्द की परेशानी नहीं होगी। दस फायदे हैं:

1- अर्श के नीचे का फरिशता अभिवादन करता है: जैसे तुमने अपने हाथ साफ़ किए है, उसी तरह से तुमने अपने गुनाह साफ़ किए है। (सगीरा गुनाह)।

2- नफिल नमाज़ के बराबर सवाब मिलेगा।

3- वो फक़ीरी से महफ़ूज़ रहेगा।

4- वो सिद्दिक़ के बराबर सवाब पायेगा।

5- फरिश्तें उसके लिए इस्तग़फार करेंगे।

6- उसके खाये हुए एक लुक्मे का सवाब उसे ऐसा मिलेगा जैसे उसने सारा खाना बांट दिया हो।

7- अगर वो बिस्मिल्लाह करके खाये तो उसके गुनाह भी साफ़ हो जायेंगे।

8- खाने के बाद जो वो दुआ करेगा वो अल्लाह तआला क़ुबूल करेगा।

9- अगर वो उस रात मर जाता है तो वो शहीद के बराबर सवाब कमायेगा।

10- अगर वो उस दिन मरता है तो उसका नाम शहीदों में लिख दिया जायेगा।

सुन्नत अदा करने की नीयत से हाथ धोने के छः सवाब है:

1- अर्श-उर-रहमान के नीचे का फरिश्ता कहता है: "ऐ ईमान वाले! रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' तुझसे राज़ी है।"

2- इस बरक़त का सवाब हासिल होगा।

3- सवाब इतना मिलेगा जितने तुम्हारे जिस्म पर बाल है।

4- रहमत के सागर में एक हिस्सा मिलेगा।

5- जितने पानी के कतरे तुम्हारे हाथ से गिरेंगे उतना सवाब मिलेगा।

6- शहीद की मौत मिलेगी।

[अल्लाह तआला का हुक्म दो सूबों में है अमरे तकवीनी और अमरे तकलीफी या अमरे तैशीरी।

अमरे तकवीनी: यह उसका कहना है, "**होजा**, वो चीज़ें जो वो बनाना चाहता है। चीज़ें उसी वक़्त वजूद में आ जाती है जब वो कहता है, होजा!" कोई उस चीज़ को वजूद में आने से नहीं रोक सकता। उसने कुछ चीज़ों को बाकी चीज़ों के लिए वजह से बनाया। जैसा कि उसने कुछ चीज़ों को दूसरी चीज़ें बनाने का ज़रिया बनाया है, इसी तरह से आदमी की ताकत, माद्दा और रूहानी ताक़त और अलग तरह की ऊर्जा भी वजह बनी है कई दूसरी चीज़ें बनने की। अगर वो अपने बन्दे पर कोई ईनाम अता फरमाना चाहता है तो वो उसका ज़रिया बना देता है। जब वो वजह होनी हो तो अगर वो चाहे तो कहता है, होजा!" और वो चीज़ वजूद में आ जाती है। कोई भी चीज़ उसके चाहे बग़ैर वजूद में नहीं आती। उसने अपनी हिकमत को अपनी चीज़ों की बनाने की वजहों में छुपा रखा है। कई लोग सिर्फ वजहों को देखते है और हिकमत को नहीं देख पाते, उसकी ख़ल्क के पीछे की वजह। यह नासमझी उन्हें बरबादी की तरफ ले जाती है।

अमरे तकलीफी: यह वो हुक्मों का मजमुआ है जिसमें वो अपने इन्सानी बन्दों को जोड़ता है यह कहके कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। यह हुक्म इन्सान की मर्ज़ी और चाह पर है। उसने इन्सान को उसकी मर्ज़ी के लिए खुला छोड़ रखा है। फिर भी वो उन चीज़ों को बनाता है जो इन्सान चाहता है। अगर कोई इन्सान कुछ चाहता है या चुनता है तो वो उस चीज़ को बना देता है। अगर वो ख़ुद भी चाहे तो। वो नहीं बनाता अगर वो ना बनाना चाहे तो। वो अकेला ही सब बनाता है और सारा सामान मुहय्या कराता है। उसके अलावा कोई ख़ालिक नही। उसके अलावा किसी और को ख़ालिक मानना उसकी ज़ात में शरीक मानना होगा। जिसे उलूहियत कहते

है। उसने ऐलान कर दिया है कि जो इस दुनिया में उसका शरीक बनायेगा वो उसे बहुंत शदीद अज़ाब देगा। जो शख़्स उसका हुक्म मानता है और अच्छे काम करता है तो वो उसके लिए रहम का मामला करता है और उसकी नफअे की चीज़ें बनाता है। वो लोग जो उसके हुक्मों के ख़िलाफ करते है और बुरे काम करना चाहते है, वो चाहता है तो उनके बुरे कामों को बनाता है। जब उसका कोई मानने वाला (ईमान वाला) उससे कुछ बुरा काम करने को मांगता है तो वो उसे उस बुरे काम से बचाता है और उसका ज़रिया नहीं बनाता। क्योंकि उसके दुश्मनों की सारी बुरी नियतें पूरी होती है, तो वो उसमें और घुसता जाता है और धंसता जाता है।

अल्लाह तआला के अमरे तकलीफ के दर्ज़े उनकी अहमियत के मुताबिक़ है:

1- उसने सारे इन्सानों को ईमान और मुसलमान होने का हुक्म दिया है।

2- जिनके पास ईमान है उन्हें हराम न करने और बुराई से बचने का हुक्म दिया है।

3- उसने ईमान वालों को फर्ज़ पूरा करने का हुक्म दिया है।

4- उसने मुसलमानों को जो हराम से बचते है और फर्ज़ अदा करते है उन्हें मकरूह से बचने और सुन्नत और नफिल इबादत करने का हुक्म दिया है।

ऊपर दिए गए दर्जो में से, किसी दर्जे को किसी दूसरे पर एहमियत देना और दूसरे को कम एहमियत देने जैसा कुछ नहीं है। वो कारगर नहीं होगा। अगर कोई शख़्स विना ईमान लाए बुराईयों से बचता है या विना बुराईयों और हराम से बचे फर्ज़ करता है और नफिल और सुन्नत अदा करता है विना

फ़र्ज़ अदा करे तो अल्लाह तआला उसे पसन्द नहीं करेगा और जो उसने किया उसे क़ुबूल नहीं करेगा। हू बा हू मसले के लिए, अगर एक मुसलमान नमाज़ अदा न करे या ज़कात अदा न करे और या अपने माँ बाप या बीवी बच्चों के हुक़ूक़ अदा न करे तो अल्लाह तआला इसे नापसन्द करेंगे और इसके नेक अमाल क़ुबूल नहीं करेंगे जैसे की भीख और दान, चंदा, मस्जिदों की तामीर, पैसों से मदद। या खाने से पहले या बाद में हाथ धोना, या उमरा करना, जैसे की यह ऊपर फरमाए गए एहमियत के हुक्म में देखा जाता है के हर किसी को अवामीर-ए-तेकलीफ़िया अदा करनी चाहिए, दूसरे हाथ, अगर कोई शख़्स आला तबके के अमालात अदा किए बग़ैर कुछ कम एहमियत से अदा करता है। और अगर इसका कहना इसकी वजह बनता है और फ़र्ज़ को छोड़ना या कोई हराम करना; ये कोई सवाब नहीं कमाएगा यह सच है लेकिन फिर (दोनों में से कोई एक) उसे अपने आपको उस अच्छे काम के बग़ैर नहीं रहने देना चाहिए। यह तफसीर की हक़दार किताब **रूह-उल-बेयान** में लिखा है, इसके छठे बाब के आख़िर में, उस अच्छे अमाल को लगातार अदा करने की बरक़त के साथ यह उम्मीद है के अल्लाह तआला इसके आला तबके के हुकूमात अदा करने पे रहमत फरमाए।]

खाने में चार फ़र्ज़यात है:

1- खाने पीने के दौरान, अल्लाह अज़ीम-उश-शान के ज़रिए दिए गए इतमिनान और मुतमईन को जानना।

2- वह खाना खाना जो हलाल है।

3- उस खाने की ज़रूरत के लिए अपनी पूरी ताक़त खर्च कर देना अपने फाराईज़ों को अल्लाह तआला के गुलाम की तरह करना।

4- जो भी तुमने हासिल किया उसके साथ मुतमईन रहना।

जब खाना खाना शुरू करो तुम्हें नीयत करनी चाहिए अल्लाह तआला की इबादत के ज़रिए ताक़त को हासिल करने की, और अल्लाह तआला का मज़हब हासिल करना, हमेशा-हमेशा की ख़ुशियाँ और सुकून हासिल करना, व तमाम लोगों तक पहुँचाना, नंगे सर खाना जायज़ है।

खाने में मुस्तहिबें: किसी लकड़ी की थाली को फर्श पे रखना (खाने की टेबल की जगह पे); खाने के लिए बैठते वक़्त साफ सुथरे कपड़े पहनना; अपने घुटनों पर बैठना; खाने से पहले हाथ मुँह धुला हुआ होना; बिस्मिल्लाह करना, (यानि बिस्मिल्लाह-हिर-रहमान-निर-रहीम कहना,) खाने की शुरूआत में थोड़ा सा नमक चखना और फिर खाना; जो के आटे से बनी रोटी खाना; रोटी को हाथ से तोड़ना: और रोटी के टुकड़े को बरबाद न करना; थाली की एक तरफ से खाना जो तुम्हारे करीबी हो; एक छोटा सिरका खरीदना: रोटी को छोटे निवाले में खाना; खाने को अच्छे से चबाना; अपनी तीन उंगलियों से खाना; अपनी उंगलियों से थाली को पोछना; अपनी उंगलियों को तीन बार चाटना; खाने के बाद हम्द पढ़ना, दन्तखुदनी का इस्तेमाल करना।

खाने में मकरूह: उल्टे हाथ से खाना; जो खाना तुम खाने जा रहे हो उसको सूंघना; बिस्मिल्लाह को नज़रअंदाज़ करना; (बिस्मिल्लाह जब भी याद आ जाए उसको करना लाज़िम है, चाहे तुम काफी खाना खा चुके हो।)

खाने में हराम: पेट भरे होने के बावजूद लगातार खाना; (अगर तुम्हारे पास मेहमान है, तो तुम्हें खाना खाने को जताना जारी रखना चाहिए कही ऐसा न हो के तुम उसे खाने से रोक दो; खाने की बरबादी होगी; इस्लाम के कुछ उलेमाओं के हिसाब से, बिना बुलावे के किसी के खाने में नाहक बिस्मिल्लाह करना, खाने में से थोड़ा सा ले लेना; यह खाना जोकि तुम्हारी सेहत

को कमज़ोर बना देगा: और वह खाना खाना जो की रीया (दिखावट) से बनाया गया हो: वह खाना जो तुमने देख लिया हो।

गर्मा-गर्म खाना खाने के नुक़सानात की वजहें निम्नलिखित है: यह बेहरेपन की वजह होती है: यह चेहरा फीका पड़ने की वजह होती है; आँखों को बिना चमक के बनाने की वजह होती है; दाँतों का पीला पड़ने की वजह होती है; मुँह का स्वाद खो देने की वजह होती है; यह लोभ की वजह बनती है; याद-दाशत कमज़ोर बनती है; दिमाग़ को नुक़सान पहुँचाती है; और जिस्मानी मर्ज़ की वजह बनती है।

थोड़ा खाने के फायदे निम्नलिखित है: तुम्हारा जिस्म ताकतवर होगा; तुम्हारा दिल नूर से भर जाएगा: तुम्हारी याद-दाशत मज़बूत होगी; तुम्हारी जीविका असान होगी; तुम अपने काम को पसंद करोगे; तुम अल्लाहु अज़ीम-उश-शान का बहुत ज़िक्र करोगे; तुम अपना ध्यान आख़िरियत पे लगाओंगे; तुम इबादत से बहुत सारे स्वाद हासिल करोगे; तुम्हारे तमाम मामलातों में शहरी पहुँच और मार्गदर्शन होगा; तुम (कयामत के दिन) असानी से फैसले से गुज़रोगे।

जब कोई शख़्स कहता है, "मैं मुसलमान हूँ,"
रोज़ाना पाँच वक़्त की नमाज़ उसपे लाज़िम है।
ऊपर जाने वाला दिन जो की करीबी है,
पोशाक और ताज ,और एक घोड़ा उसको ले जाने के लिए।

शादी के मुताल्लिक़

शादी के कई फायदे हैं।

पहला यह है कि आपके भरोसे की हिफाज़त होती है। तुममे अच्छी आदतें आयेंगी। आपकी आमदनी में बरक़त होगी। एक सच्चे मामले के तौर पे, आपने एक सुन्नत अदा की। हमारे नबी ने फरमाया: "**निकाह करो** (यानि शादी करो इस्लामिक तौर पे जिसे 'निकाह' कहते हैं,) **और खूब औलाद करो, ताकि मैं रोज़े महशर के दिन में दूसरी उम्मतों के मुकाबले में अपनी** (मुसलमान) **उम्मत की तादाद पे फख़्र करूँ।**"

शौहर और बेग़म को एक दूसरे के हुक़ूक महसूस करने चाहिए।

एक शख़्स जो शादी करने का इरादा करता है इसको अच्छे से तलाश करनी चाहिए जब तक के यह एक लड़की (या औरत) ना ढूँढ ले जो सालिहा हो (यानि जो अपने भरोसे की पक्की हो) और जोकि इसकी (करीबी रिश्तेदार नहीं है) एक महरम रिश्तेदार, और जो लड़की (या औरत) मुक़र्रर शर्तें पूरी करती हो। ऐसी औरत के साथ निकाह करना जायज़ (मान्य) होगा जो ज़िना के ज़रिए गर्भवती हो गई हो। अगर हमबिस्तरी करने वाला मर्द कोई और है, तो वाटी (संभोग) बच्चे की पैदाईश से पहले जायज़ नहीं होगा (फतवा-ए-फ़ैज़ीय्या) [फ़ेज़उल्लाह एफ़ेन्दी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' के ज़रिए लिखा गया (एडिर्ने 1115 [1703 A.D.] में शहीद एरज़ुरूम) तुर्की, 46वें ओटोमन शेख़-उल-इस्लाम।]

किसी लड़की से उसकी ख़ूबसूरती या जाएदाद के मक़सद से शादी ना करो। नही तो तुम नीच हो जाओगे। हमारे मुबारक नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि

वसल्लम' ने फरमाया: "**अगर कोई शख़्स किसी लड़की की ख़ूबसूरती या जाएदाद के मक़सद से शादी करता है, तो वह उसकी जाएदाद और ख़ूबसूरती से मेहरूम रहेगा।**"

अगर कोई शख़्स किसी लड़की से सिला-ए-रहम और अच्छी आदत की वजह से शादी करता है, हक़ तआला उस लड़की की जाएदाद और ख़ूबसूरती बढ़ा देते हैं।

एक बेग़म को अपने शौहर से चार तराहियतों से कम रहना चाहिए: उसकी उम्र, उसका कद, उसके दोस्त और उसका परिवार और चार तराहियतों में एक बेग़म को अपने शौहर से बेहतर होना चाहिए: वह ख़ूबसूरत हो, उसके पास अदब हों, अच्छी नैतिक शिक्षा हो और उसको हराम से व शकशुवा चीज़ों से बचना, व उसकी अपने बाल, सर, बाँह और पैर ना महरम मर्द को ना दिखाना।

जवान लड़कियों को बूढ़े आदमी से शादी नहीं करनी चाहिए, यह फसाद की वजह बन सकती है, (जिसका मतलब, क्रोध, या गलत काम की वजह बन जाती है।)

शादी करने से पहले शादी के मुताल्लिक़ ज़रूरी जानकारी हासिल करनी चाहिए (शादी का ज़िम्मा जिसे) निकाह कहते है घरवालों को जोड़े के प्रति तमाम जानकारी छोटों के ज़रिए हासिल करनी चाहिए, जोकि सुन्नत भी है और निकाह को मुसलसल कायम रखने में मदद करेगी। उलेमाओं के बयानातों के हिसाब से यह तीन फायदें पैदा करेगा: पहला, इससे जोड़े के दरमियान ता उम्र मोहब्बत क़ायम रहेगी: दूसरी बरक़त होगी उनके रिज़्क में (रोज़ाना की चीज़ों, व खाने में) तीसरा उन्होंने सुन्नत अदा की।

इसके बाद कानूनी वैवाहिक प्रक्रियाओं को नगरपालिका के ज़रिए पूरा किया जाना चाहिए। यह बहुत बड़ा गुनाह है कि (शादी का सिलसिला) निकाह के अंतर्गत व सुन्नत के मुताबिक़ न किया जाए और यह एक गलती होगी कि शादी की प्रक्रियाओं को कानूनी तौर पर पूरा ना किया जाए।

सुन्नत के मुताबिक़ निकाह अदा कर लेना और उसके बाद, लड़के के परिवार को ख़ूबसूरत और क़ीमती तोहफे लड़की के परिवार को भेजने चाहिए ऐसा करने से मोहब्बत की वजह बनती है।

एक बेग़म के लिए यह जायज़ है कि वह अपने शौहर के लिए ख़ुद को अच्छे से सवारें; यह ज़्यादा सवाब कमाएगी (यानि अख़िरत में ईनाम)।

ब्याह की शाम को खाना देना सुन्नत है। [वह भोज खाना शाम की इबादत के बाद खाना चाहिए, और रात की इबादत के बाद दुल्हा-दुल्हन को दुल्हा की जगह ले जाना चाहिए, तय हुई इबादतों और दुआओं के बाद लोगों को गायब हो जाना चाहिए।

एक सुन्नत का काम जो दुल्हा-दुल्हन को पहली रात अदा करना चाहिए वह यह है कि दुल्हन के पैर धोने चाहिए और घर के आस-पास उस पानी को छिड़क देना चाहिए। दुल्हा को दो रकात नमाज़ अदा करनी चाहिए और इबादत करनी चाहिए, उस रात की गई कोई भी इबादत (अल्लाह तआला के ज़रिए) क़ुबूल की जाएगी। लोग जो दुल्हा-दुल्हन को देखें उन्हें दुल्हा को इसे जताना चाहिए, उन्हें कहना चाहिए, "**बाराकल्लाहु लेक वा बाराकल्लाहु अलैयहा वा जेमिआ बेयनाकुमा बिल ख़ैरी**," जिसका मतलव, "अल्लाह तआला तुमपे करम करें और साथ में तुम्हारी बीवी पे भी रहम फरमाए, और तुम्हें ख़ैर के साथ मिला कर रखे!" कुछ लोग नए दुल्हा-दुल्हन को यह कहकर भी मुबारकबाद देते है कि, "तुम हमेशा ख़ुश रहो और तुम्हारे पास बेटे व

नौकर हो!" यह जहालतपना व वक़्त ग़ैर इस्तेमाल लायक़ बयानात है। उस वक़्त के लिए जो इबादतें बताई गई उनको कहना सुन्नत है।

आपको मज़हबी तालीमियत को जानना ज़रूरी है और अपनी बीवी को सिखानी चाहिए क्योंकि तुमसे इस के लिए आख़िरत में सवाल होंगे। ना जानने का बहाना क़ुबूल होने के लायक़ नहीं होगा। अहल-अस-सुन्नत के फ़र्ज़ यात ईमान, हराम और उसूलों को जानना और अपने बीवी बच्चों को इनको सिखाना फ़र्ज़ है।

तुम्हें अपनी बीवी को ऐसी जगह ले जाना या भेजना नहीं चाहिए जिसकी इस्लाम में इजाज़त ना हो! बिना जिस्म को अच्छी तरह ढांके ना उसे बाहर भेजे और ना जाने दे। इसके लिए हमारे मुबारक नबी 'अलैहिस्सलाम' ने फरमाया: **"अगर एक औरत हमारी मस्जिद में ख़ुशबू लगाकर नमाज़ अदा करती है, तो** (अल्लाह तआला) **के ज़रिए वह नमाज़ क़ुबूल नहीं की जाएगी जबतक के वह घर जाए और गुस्ल करे जैसे की वह जुनूब की हालत से बाहर आई हो।"** जब से औरतों के लिए ख़ुशबू लगाकर मस्जिद में जाना जायज़ नहीं है हमें इस बहुत बड़े गुनाह की दिमाग़ी तसवीर बनानी चाहिए के औरत का कही जाना और अपने आप को लोगों को दिखाना कितना बड़ा गुनाह है। हमें तुलना करनी चाहिए और सोचने की कोशिश करनी चाहिए के वह कितने बड़े गुनाह की शिकार बनेगी!

हमारे मुबारक नबी ने अपनी एक हदीस-ए-शरीफ में फरमाया के: **"जन्नत के ज़्यादातर लोग वह है जो** (दुनयावी ज़िन्दगी के दौरान) **गरीब थे। और दोज़ख़ की पौशिन्दा ज़्यादातर औरतें है!"** इसके बाद हज़रत आईशा 'रज़ि-अल्लाहु अन्ह' ने छान बिन की: "के ऐसी क्या वजह है जो दोज़ख़ ज़्यादातर औरतों के ज़रिए घिरी हुई है?" रसूल-ए-अकरम 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने समझाया: **"के जब उनपे कोई मुसीबत आन पड़ती है वह सब्र नहीं**

दिखाती। जब कोई शख़्स जो हमेशा से उनके साथ अच्छा रहा और उसने इनके बारे में दस खट्टी बातें करदी, वह हमेशा उनकी खट्टी बातों को गिनेगी, उनके पुराने दस पक्षों को बिल्कुल भूल जाएगी, यह दुनयावी गहनों से प्यार करती है और आख़िरत की तैयारी नहीं करती और ख़ास तौर पर गपशप की शौकीन होती है,"

तमाम, औरतें व मर्द जो इन शैतानी आदतों में मुबतला है वह दोज़ख़ के लोग है।

हज़रत अली 'करीम-अल्लाहु वाजेह' फरमाते है: एक दिन मुबारक रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' की मौजूदगी में एक औरत तशरीफ़ लाई और कहने लगी के: "या रसूलुल्लाह (या अल्लाह के नबी)! मैं एक आदमी से शादी करना चाहती हूँ, आपकी मुबारक सलाह क्या होगी?" और शौहर के हकूक़ क्या होंगे?" अल्लाह तआला की सबसे ख़ुश मख़लूक़ ने फरमाया: **एक आदमी का अपनी बीवी पे हकूक़ों की तादाद है, क्या तुम उनको महसूस करोगी संभालोगी?"** औरत ने कहा: "या रसूलुल्लाह! एक आदमी के हकूक़ क्या है?" **अगर तुम अपने शौहर का दिल दुखाओगी तो तुम अल्लाह की तरफ से नकार दी जाओगी, और तुम्हारी नमाज़ क़ुबूल नहीं की जाएगी"** आपने यह मुबारक जवाब फरमाया। औरत ने कहा और दूसरे हकूक़ भी है?" आपने फरमाया: "**अगर कोई औरत अपने शौहर की इजाज़त के बिना बाहर चली जाती है, तो (उसकी अमाल की किताब में) हर एक कदम का एक गुनाह लिखा जाएगा"**। औरत ने कहा: "और दूसरे हुकूक?" यह सबसे ख़ूबसूरत जवाब रसूल-ए-अकरम ने फरमाया: "**अगर कोई औरत अपने शौहर का गन्दें अलफ़ाज़ों से दिल दुखाती है, रोज़े मेहशर में वह उसकी ज़बान पीछे की तरफ से पकड़ कर खिंच लेगें"** औरत ने पूछा और?" (मुबारक नबी) रसूल-ए-अकरम ने फरमाया "**कोई औरत जिसके पास जाएदाद है और वह**

अपने शौहर को ज़रूरत पड़ने में उसकी मदद नहीं करती तो वह आख़िरत में उसकी मदद नहीं करती, वह आख़िरत में एक काले चेहरे के साथ उठाई जाएगी,"। औरत ने पूछताछ की: "और दूसरे हकूक़?" रसूल-ए-अकरम ने जवाब दिया: "**अगर कोई औरत अपने शौहर के माल में खयानत/धोका करती है, और वह किसी और को देती है तो अल्लाह तआला उसकी ज़कात ख़ेरात को क़ुबूल नहीं करेगें जब तक के वह औरत अपने आदमी से माफी ना मांग ले और वह इस को माफ ना कर दे।**" औरत ने पूछा: "और कोई?" इसके बाद अल्लाह के मुबारक नबी ने फरमाया: "**अगर कोई औरत अपने शौहर की कसम खाती है, या उसको मानने से इन्कार करती है, तो वह दोज़ख़ की आग में ज़बान से बांध कर लटकाई जाएगी, और अगर कोई औरत बाहर जाती है और नाचने वाली औरतों को देखती है वा गाना बजाना सुनती है और उसपे एक पैसा भी खर्च करती है, जो भी सारा सवाब उसने बचपन से नैक अमालों के लिए कमाया है वह बरबाद हो जाएगा कपड़े जो वह पहनती आ रही है उसके खिलाफ मुकादमा करेगें कहेंगे इसने हमें अपने पाक दिनों में नहीं पहना था जब वह अपने हलाल शौहर के साथ थी।इसने हमें हराम जगहों पे पहना जहाँ यह गई।' इसके बाद हक़ तआला ऐलान करेंगे: 'मैं ऐसी औरतों को हज़ारों सालों के लिए जलाऊंगा।'** [इसलिए हमें सिनेमा रेडियों टी.वी के प्रोग्रामों के देखने से बचना चाहिए] जब इस औरत ने यह तमाम जवाबात सुने कहा: "या रसूलुल्लाह! मैने अभी तक शादी नहीं की है, और ना ही करूंगी।"

इस वक़्त रसूल-ए-अकरम 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अपनी बातों को मोहब्बत से बयान किया: "या ख़ातून (या औरत) मैं तुमको यह भी बताऊँगा कि एक आदमी से शादी करने से कितनी रहमत है: सुनो! अगर किसी औरत का शौहर उसको कहे, अल्लाह तुमपे अपना रहम फरमाए, उसे साठ साल से भी ज़्यादा इबादत का फायदा होगा और इसका अपने शौहर को थोड़ा पानी भी पीने को देना एक साल से भी ज़्यादा रोज़े रखने का सवाब

है। अगर वह अपने शौहर के साथ की हमबिस्तरी के बाद गुस्ल करती है, तो वह इतना सवाब हासिल करेगी के जैसे उसने कुरबानी अदा की हो। अगर वह अपने हलाल (शौहर) के साथ चाले ना खेलती हो, तो जन्नत में फ़रिश्तें इसकी तरफ से तसबीह पढ़ेगे। [तसबीह पढ़ना यानि "सुबहान-अल्लाह" कहना, जिसका मतलब, "मैं जानता हूँ कि अल्लाह तमाम तरह की ख़राबियों से दूर है," तसबीह पढ़ना यानि खूब सवाब कमाना (आख़िरत में इनाम)।] अगर वह अपने शौहर के साथ हंसमुख़ है, वह साठ गुलामों को अज़ाद करने से भी ज़्यादा मुबारक है। अगर वह अपने शौहर का रिज़्क बचाती है और शौहर के नातेदारों पे रहम करती है और पाँचों वक़्त नमाज़ व रमज़ान में सारे रोज़े अदा करती है, तो यह हज़ार बार काबे की ज़ियारत से ज़्यादा ख़ुशनसीब होगी।" फातिमा-ए-ज़ेहरा 'रज़ि-अल्लाहु अन्हा' (रसूलुल्लाह की मुबारक बेटी) ने पूछा: उस औरत का क्या होगा जो अपने हलाल (शौहर) का दिल दुखाती है?" फिर तमाम वालीदों से ज़्यादा मुबारक वालीद ने फरमाया: "अगर कोई औरत अपने शौहर की बात मानने से इन्कार करती है, अल्लाह का अज़ाब उसपे रहता है जबतक के वह अपने शौहर से माफी ना मांग ले और वो इसे माफ ना कर दे; अगर वह अपने शौहर के साथ जिस्मानी रिश्ता बनाने से इन्कार करती है तो वह उसका सारा सवाब खो देगी; अगर वह अपने शौहर के साथ घंमडी रहती है, वह अल्लाह तआला के गुस्से की वजह बन जाएगी, अगर वह अपने शौहर से कहती है, क्या तुम एक दस्तदाज़ दख़लअंदाज़ हो? या कभी तुम मेरे किसी काम आए? तो अल्लाह तआला अपनी रहमत उसपे हराम कर देते हैं, अगर वह अपनी जबान से अपने शौहर का ख़ून पोछ दे तब भी वह अपने शौहर का हक़ अदा नहीं कर सकती। अगर उसका शौहर अपनी बीवी को उसको जिस्म अच्छे से ढकें बग़ैर जाने की इजाज़त देता है, तो हज़ार गुनाह उस आदमी के अमाल-ए-नाम में लिख दिए जाते है।" यह इस बात का अंदाज़ा लगाने में

मदद करती है कि सिर्फ अपने शौहर की इजाज़त के बग़ैर बाहर जाना कितना बड़ा गुनाह है!

रसूल-ए-अकरम 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: "या फातिमा! अगर अल्लाह तआला ने इन्सानों को दूसरों से पहले अपने आप को पराजित करने का, हुक्म दिया होता तो मैं औरतों को अपने शौहर से पहले पराजित होने का हुक्म देता।"

हज़रत आईशा 'रज़ि-अल्लाहु अन्हा' फरमाती है: मैने आप रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' से एक वसीअत के लिए पूछा। मुबारक नबी ने फरमाया: "**या आईशा! मैं तुम्हारे लिए एक वसीअत करूंगा तुम वो वसीअत मेरी उम्मा की औरतों के लिए कर देना! जब लोग फैसले के लिए रोज़े महशर के दिन उठाए जाएंगें: सबसे पहले उनसे ईमान के बारे में सवाल होगा, दूसरा वुज़ू और नमाज़ के ऊपर किया जाएगा औरतों के साथ तीसरा सवाल उनके शौहरों के (हकूक़) के बारे में होगा। अगर कोई शौहर अपनी बीवी की बदमिजाज़ी पर सब्र करे, तो हकताआला उसको सवाब से नवाज़ेगें जितना हज़रत अय्यूब (जोब) को दिया था। और अगर कोई औरत अपने शौहर की बदमिजाज़ी पर सब्र करे तो अल्लाह तआला उस को हज़रत आईशा सिद्दिका के दर्ज़े के बराबर नवाज़ेगें।**"

"अगर कोई आदमी अपनी बीवी को मारता है तो मैं रोज़े मेहशर के दिन उस के ख़िलाफ मुकदमा दर्ज करूंगा," रसूल-ए-अकरम 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के ज़रिए बताई गई दूसरी हदीस शरीफ।

तीन वजेंह है जिसके लिए किसी आदमी को अपनी बीवी को मारने की इजाज़त है, अपने खुले हाथ से या अंगोछे से: नमाज़ छोड़ने की वजह से या गुस्ल या उसके बिस्तर पर आने से मना करने पर या इसकी इजाज़त के

बग़ैर बाहर जाने पर, इसका मतलब यह नहीं कि तुम लकड़ी या घूसे से या ठोकर या गाठ बांध कर रूमाल वग़ैरह से या सर पर और जिस्म पर मारों। किसी और गलतियों के लिए उसे बिल्कुल भी नहीं मारना चाहिए। उसे कई बार समझाओं, अगर वह अपने आपको सुधारती है, तो उसे उसके हाल पे छोड़ देना चाहिए ताकि तुम अज़ाब ना कमाओ।

[यह **शिरयत-उल-इस्लाम** में फरमाया गया है: "अगर तुम्हारी बीवी बदमिजाज़ी बरताओं दिखाने लगे तो, आप अपने आपको ज़िम्मेदार मानये। आप को अपने आप से कहना चाहिए, "वह ऐसा बरताव नहीं करती अगर मैं सही होता, अगर आपकी बीवी (सालिह) नेक है, तो आपको दूसरी बीवी नहीं लानी चाहिए। किसी शख़्स के लिए अपने परिवार के अंजाम-ए-इन्साफ देख-रेख के लिए दूसरी शादी करनी जायज़ नहीं है अगर यह जानता है कि यह अंजाम-ए-इन्साफ के लिए क़ाबिल होगा, तो इसके लिए (दूसरी बीवी लाना) जायज़ होगा। हालांकि, ऐसा ना करना इसके लिए सराहनिय होगा, जब आपकी बीवी कहीं जाए जहाँ उसको जाने की इजाज़त हो, उसको ज़रूर ही अपने सर और जिस्म को पूरी तरह ढंकना चाहिए। यह हराम है कि औरत ख़ुशबू लगाकर या ज़ेवरात पहन के दिखाती हुई जाए। एक सालिह (नेक) औरत दुनिया की निगाह में बहुत मान्य होती है। किसी मुसलमान से रहम और कोमलता से बात करना नफ़िल नमाज़ के पक्ष में ज़्यादा सवाब देता है।" यह **रियाद-उन-नासीख़ीन** में लिखा है: निसा सूरा की 18वीं आयत से मुराद है: "**अपनी बीवियों के साथ नम्रता और अच्छा बर्ताव रखों।**" निम्नलिखित हदीस-शरीफ: "**या अबू बकर! अगर कोई शख़्स अपनी बीवी के साथ मुस्कुराहट और नम्रता से बात करता है, तो इसको इतना सवाब मिलता है जैसे की इसने किसी गुलाम को आज़ाद किया हो।**" और "**जो औरत किसी फासिक़ आदमी से शादी करती है उसके लिए अल्लाह का कोई रहम नहीं होगा।**" और "**जो मेरी शफाअत चाहता है वह अपनी बेटी की शादी फासिक़**

आदमी से ना करे।" और "**लोगों में सबसे अच्छे लोग वह हैं जो लोगों के साथ अच्छे है।वा बुरे लोग वह है जो लोगों को नुकसान पहुचाते है।**" और "**नाइन्साफी से किसी मुसलमान का दिल दुखाना काबे शरीफ को सत्तर मरतबा गिराने से भी ज़्यादा बुरा है।**"

यह **दुर्र-उल-मुख़्तार** में फरमाया गया है: "एक मरतबा एक मुसलमान आदमी ने एक औरत से सही (मान्य) शादी कर ली (उसके साथ मुआहेदा शादी जिसे निकाह कहते है, (यह उसकी बीवी बन जाती है) और यह शौहर पे फ़र्ज़ बन जाता है कि उसको **नफाका** (यानि गुज़र बसर) अदा करे **नफाका** में खाना कपड़ा और ज़रूरत की चीज़ें होती है।इसे अपनी बीवी को घर में रखना होगा जो या तो इसका अपना हो या फिर किराये का।बीवी ये ख़्वाहिश कर सकती है के उसके शौहर के रिश्तेदार को घर में दाख़िले की इजाज़त ना हो।और इसी तरह से शौहर भी ख़्वाहिश कर सकता है कि उसकी बीवी का कोई रिश्तेदार घर में दाख़िला ना करे।दोनों को यह इख़्तियार है।घर ऐसी जगह होना चाहिए जहाँ सालिह मुसलमान रहते हों।[मुअज़्ज़िन की ख़ुद की आवाज़ सुनाई दे (बिना किसी लाउडस्पिकर के, क्योंकि यह इस्लामिक तरीक़े से एक बिद्दत है)] शौहर अपनी बीवी को हफ्ते में एक बार अपने माँ-बाप से मिलने जाने के लिए नहीं रोक सकता।और इसी तरह से वह भी अपनी बेटी से हफ्ते में एक बार मिलने आ सकते है।अगर उनमें से कोई एक बीमार हो जाता है और वहाँ उसके अलावा उनको देखने के लिए कोई नहीं है, तो बीवी को चाहिए वह जाए और उनका साथ दे चाहे उसका शौहर उसके ऐसा करने से ख़िलाफ हो।शौहर अपनी बीवी के दूसरे महरम रिश्तेदारों से साल में एक मरतबा, मिलने से नहीं रोक सकता, या उसे उनके पास जाने से, अगर वह इसको दूसरों के पास जाने या गुनाही जगहों पे जाने की इजाज़त देता है, तो दोनों गुनेहगार होंगे, वह इसको दूसरों के काम करने से रोके जिससे उसे तोहफें या पैसे मिले, घर पे या कही और, स्कूल या उपदेशों से बाहर जाने पे: एक औरत को घर

के काम में मुबतला (मसरूफ़) रहना चाहिए; उसको मूर्ति की तरह नहीं बैठना चाहिए। शौहर को लोगों के साथ अपनी बैग़म को अवरत हिस्सों को खुला दिखाते हुए नहीं भेजना चाहिए, जैसे की सार्वजनिक स्नान (आम नहाने की जगह) [समुंद्र के किनारे या और किसी जगह जहाँ खेल की चहल पहल हो। उसको अपने घर में टी.वी नहीं रखना चाहिए ताकि वह इस तरह की हरकतों को ना देख सके।] उसको ज़ेवर पहन कर या नए कपड़ों में बाहर नहीं जाने देना चाहिए।" वह उसको बाहर ले जा सकता है जहाँ मुसलमान हराम चीज़ों को नज़रअंदाज़ करते हो। चाहे वह उसके महरम रिश्तेदार ना हो यानि करीबी रिश्तेदार जिनके साथ इसके लिए शादी करना हराम हो; इस वजह से आदमी और औरतें अलग-अलग कमरों में बैठें। औरत के **महरम रिश्तेदार** (18) तरह के होते है: उसका बाप; दादा; बच्चें; पौते; भाई, सिर्फ सगें और एक माँ-बाप से हो; उसके भाई और बहन के बच्चें उसके माँ, के भाई। यह सात लोग महरम के रिश्तेदार ऐसे है जो उसके रिश्ते में दूध पिलाया हो या ज़िना के ज़रिए से भी। और दूसरे चार आदमी निकाह के ज़रिए महरम रिश्तेदार बन जाते है (इस्लाम के ज़रिए बताई गई शादी करने से)। वह ससुर और उसके बाप, दामाद, सौतेला बाप; सौतेला बेटा या बेटें, किसी आदमी के बच्चें, बहु और किसी औरत के बच्चें, दामाद यह सब इनके महरम रिश्तेदार है, महरम मतलब जिस शख़्स के साथ तुम निकाह नहीं कर सकते, (यानि जिसके साथ तुम शादी नहीं कर सकते।) मसला किसी आदमी की बहन उसकी महरम रिश्तेदार है, सबके भाई बहन या बच्चें उनके महरम रिश्तेदार है। किसी आदमी की भाइयों की बीवियाँ या इसके मामा और चाचा, और ख़ाला की बेटियाँ या इसके चाचा और मामा' की बीवियाँ इसकी महरम रिश्तेदार नहीं होगी। तुम्हारी ख़ाला के बच्चें और उनके शौहर नामहरम है, (यानि वह महरम रिश्तेदार नहीं है।) तुम्हारे शौहर या बीवी के भाई बहन नामहरम है, किसी औरत की बहनें या ख़ाला के शौहर और उसके शौहर के भाई उसके लिए नामहरम है, यह

निमत-ए-इस्लाम नामी किताब में दर्ज है, इसके हज (तीर्थ यात्रा) की ज़रूरयात बाब में। यह बीवी के लिए हराम है कि वह इन आदमियों के सामने अपने आप को बिना अच्छे से ढंके जाए जोकि इस्लाम के ज़रिए सिखाया गया या उनके साथ किसी बंद अकेले कमरे में ठहरे जबकि इसने अपने आप को पूरी तरह ढंक रखा है या उसके साथ बहुत दूर के सफर में जाना। किसी औरत के मामा और चाचा की माँऐ दामादों के लिए महरम रिश्तेदार है। कोई लड़की अपने महरम रिश्तेदार से शादी नहीं कर सकती, इसकी इजाज़त है कि वह उस के सामने बग़ैर पर्दा बैठ सकती है लेकिन इस तरह जैसे के वह किसी नामहरम आदमी के सामने रहती है। वह बंद कमरे में एक साथ रूक सकती है या वह इसके साथ लम्बे सफर पे जा सकती है जोकि उसका महरम रिश्तेदार हो। जब कोई रिश्तेदार जो महरम नहीं है वह उनकी जगह आता है वह उसका "स्वागत" करती है," अपने शौहर की मौजूदगी में या किसी औरत के जो उसके महरम रिश्तेदार है और अपने पूरे जिस्म को अच्छी तरह ढंक कर उसको अपना मुँह खोलने की इजाज़त है, वह उनको चाय कॉफी वग़ैरह दे सकती है लेकिन वहाँ बैठ नहीं सकती। मुसलमानों को चाहिए वह बताए हुए रास्ते पर चले यानि जो इस्लाम की तालीम है। बजाए इसके वह दुनयावी दिखावा करें, हर मुसलमान को चाहिए के अपनी बीवी को इस्लाम के तरीक़े और उसको रोज़ाना की ज़िन्दगी के बारे में बताए, अगर वह ख़ुद इतना पढ़ा लिखा नहीं है तो उस को किसी औरत के पास पढ़ने के लिए भेजे ताकि वह पढ़े और सालिह (नेक) हो जाए (ताकि उसपे भरोसा किया जा सके) अगर वह ऐसी कोई औरत ना ढूंढ पाए जो इस्लाम का पालन और हराम को नज़रअंदाज़ करती है, इसको और इसकी बीवी को साथ मिलकर बैठना चाहिए और अहल-अस-सुन्नत के उलेमाओं के ज़रिए लिखी हुई इस्लामी तालीमियत को सही से पढ़ना चाहिए; इस तरह दोनों इस्लाम सीख लेगें, यानि ईमान, हराम, फ़र्ज़यात सभी को अच्छे से। इसको अपने घर में ऐसी मुशरिकी किताबें नहीं रखनी चाहिए

जिसकी तफसीर किसी ऐसे आदमी ने लिखी हो जोकि किसी पक्के मज़हब का ना हो; उस तरह की किताबें नहीं पढ़नी चाहिए। इसको अपने घर रेडियो टी.वी नहीं रखने चाहिए क्योंकि यह इस्लाम के ख़िलाफ चलाने वाली और बरबाद करने वाली चीज़ें है। यह शैतान के साथ से भी बदतर है। यह आप की बीवी बच्चों का भरोसा और उन के बरताओं को ख़राब कर देता है। बीवियाँ और बेटीयाँ घर के काम-काज में मुबतला रहनी चाहिए: उनसे बज़ार, दफ़तर, बैंक, फैक्टरी इत्यादि नौकरीयाँ नहीं करानी चाहिए। बीवियों और बेटीयों को अपने शौहरों और वालीदों के व्यापार और कला में मदद नहीं करनी चाहिए। यह आदमी का फर्ज़ है कि घर का ज़रूरत का समान बज़ार, दुकान से ख़रीद कर घर लाए। अगर औरत को इस काम के लिए मजबूर किया गया तो वह उस का भरोसा उस का बरताव और उस की सेहत को नुक़सान पहुचाता है, दोनों की दुनिया व आख़िरत पूरी तरह से तबाह हो जाएगी। वह कड़वी और गलत बात महसूस करेगा तो इसको चाहिए ऐसा ना करे! वह उसको गुनाहों और तबाहियों से नहीं बचा सकता। कोई शख़्स जो इस्लाम का पालन करता है वह दुनिया व आख़िरत दोनों में राहत (अराम) हासिल करेगा, हमें अपने आप को अपने मज़हब की तालीमियत में रूजू करना चाहिए और हमें ऐसी मुस्कान व चापालूसी अलफ़ाज़ों में शैतानी साथ के हिस्से में नहीं आना चाहिए (धोकेबाज़ लोगों) को मुनाफीख़ कहते है। हमें अपने बेटें बैटियों को हराम से बचाना चाहिए। हमें अपने बेटों को ऐसे स्कूल भेजना चाहिए जहाँ मुसलमान उस्ताद हो। औरत को आदमियों के बीच काम करने की ज़रूरत नहीं है जैसे स्टोर, फैक्टरी या नागरिक सेवा, अगर उसका शौहर नहीं है, या उसका शौहर अब दुनिया में मौजूद नहीं है, तो उस औरत के महरम रिश्तेदारों को उसकी तमाम ज़रूरयात पूरी करनी है। अगर इस औरत के रिश्तेदार गरीब है, तो सरकार उसको वज़ीफा दे। अल्लाह तआला हर औरत की ज़रूरत उस की ज़रूरत के हिसाब से देता है, यह आदमी को इसकी ज़रूरतों का ज़िम्मा दे देता है। हालांकि औरत

को रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के लिए काम नहीं करना, आदमी अपनी जाएदाद का आधा हिस्सा अपनी बीवी से बांटता है। औरत को घर के अंदर के फर्ज़ निभाने चाहिए। सबसे पहले और सबसे ज़रूरी यह है कि बच्चों को अच्छे से पाले पोसे, बच्चे की सबसे बुनयादी उस्ताद उस की माँ होती है। एक बार जब बच्चा अपनी माँ से मज़हब की अच्छी तालीम सीख लेता है, यह कभी भी ग़ैर मज़हबी उस्तादों के ज़रिए नहीं भटक सकता, शैतानी साथ के ज़रिए या ज़िन्दीख़ों के झूठ के ज़रिए, ज़िन्दीख़ जोकि इस्लाम के दुश्मन है। यह अपने माँ बाप की तरह एक सच्चा मुसलमान बनता है। बराए मेहरबानी **सआदते अबदिया** के बारवें (12वें) बाब की पाँचवीं पूलिका और पन्द्रहवें (15वें) बाब की छठी पूलिका को भी देखें। मुनाफिक जो इस्लाम के विरोध में नुक़सानदायक चीज़ें करते है उन्हें **ज़िन्दीख़** कहा जाता है।]

किसी जनाज़े के मुताल्लिक़ तेजहीज और तेकफीन और तेदफीन (मुसलमान की मय्यत को कैसे गुस्ल, कफ़न और दफ़न करें)

जनाज़े की नमाज़ अदा करना, किसी मुसलमान की मय्यत को गुस्ल, कफ़न, दफ़न तमाम इबादत के फर्ज़ी कर्म है।

मुसलमान मय्यत का गुस्ल, मुरदे को कमर के बल मार्बल पे या लकड़ी के तख़्ते पे तनहाई में रखा जाए, इसकी कमीज़ उतारी जाए, इसे वुज़ू कराया जाए। उसके जिस्म का ऊपर का हिस्सा सर से नाफ तक हल्के गर्म पानी

से धोया जाए। फिर इसके नाफ के नीचे का हिस्सा घुठनों तक ढंक दो और फिर उस को धोओ। जो शख़्स उसको धो रहा है वह अपने सीधे हाथ में दास्ताना पहने। फिर वह अपना दास्ताने वाला हाथ ढंके हुए कपड़े के भीतर डाले और ढंके हुए हिस्से को धोए। वह ढंके हुए हिस्से के अन्दर निगाह ना डाले। फिर उसको बांय हाथ की तरफ मोड़ दिया जाए दांय तरफ दस्ताने वाले हाथ से धोया जाए; उसके बाद इसको दांय तरफ मोड़ो और इसकी बांयी तरफ को दास्ताने वाले हाथ से धोओ। फिर कफ़न के तीन हिस्से तख़्ते पर मय्यत के नीचे फैला दो मय्यत को कफ़न में करने के बाद मसेरी पर रख दिया जाए।

कफ़न तीन तरह के होते है कफ़न-ए-फर्ज़, [जिसे कफ़न-ए-ज़रूरत भी कहते है;] कफ़न-ए-सुन्नत और कफ़न-ए-किफाया।

कफ़न-ए-सुन्नत में आदमी के लिए तीन हिस्से होते है और औरत के लिए पाँच हिस्से होते है।

कफ़न-ए-किफाया में आदमी के लिए दो हिस्से और औरत के लिए तीन हिस्से होते है।

यह **बहर-उर-राईक** में फरमाया गया है: औरत के लिए कफ़न-ए-किफाया इज़ार, लिफाफा और हिमार यानि सर ढंकने का कपड़ा। औरत जब ज़िन्दा होती है (कम से कम) उस वक़्त उसको ढंकने के लिए यह तीन कपड़े होते है इज़ार, उन पुराने दिनों में ऐसा कपड़ा था जो उसका तमाम जिस्म ऊपर से लेकर पैरों तक ढंक देता था, इब्ने अबीदीन लिखते है लिफाफा कमीज़ है। जैसे की यह देखा जाता है कि औरत एक ओवरकोट और सर पर कपड़ा लपेट कर बाहर जाती है, यह **दुर-उल-मुनतख़ा** और बहर-उर-राईक में लिखा गया है: "नफाका जोकि शौहर के लिए वाजिब है कि अपनी बीवी को खाना, कपड़ा और ज़रूरत की चीज़ें दें। हिमार की मिलावट से कपड़े (सर को ढंकने

का कपड़ा) और मिलहाफा (मफ्लट), जिसका मतलब बहारी लपेटन। [इसे आज 'फेराजा' या 'मनटो' या 'साया' कहा जाता है। जैसे की यह देखा जाता है, औरत के पहनावे में तीन हिस्सों की मिलावट होती है। और उनमें चादर (चारशक़) शामिल नहीं है क्योंकि चादर आज कल फैशन में है, औरत के लिए जायज़ है के वह जहाँ भी रिवाज़ हो चादर पहने और ओवरकोट (मानटो) और सर के लिए मोटा कपड़ा पहने जहाँ इन्हें पहनने का रीतीरिवाज़ हो आम लोगों में अपने आपको न्याय मानना और रिवाज़ी इस्तेमालात फितने की वजह बनते है, जो हराम में बदल जाता है।]

कफ़न-ए-फर्ज़- यह आदमी और औरत दोनों के लिए एक टुकड़ा होता है।

वह जगह जहाँ सिल्क (रेशम) के अलावा कोई और कपड़ा ना हो तो मर्द के लिए एक और औरत के लिए दो टुकड़े होने चाहिए।

अगर वह मुसलमान है, जनाज़े की नमाज़ पढ़ाने के लिए ऐसे इमाम को तरजीह देनी चाहिए जैसे सदर, किसी शहर का जज ख़तीब जो जुम्मे की नमाज़ पढ़ाता हो और इमाम-ए-हाए है। (बराए मेहरबानी ज़्यादा जानकारी के लिए **सआदते अबदिया** के (20वें) बाब की चौथी पूलिका को देखें।)

इमाम-ए-हाए उस को कहते है जो क़ाबिल मुसलमान हो और मुसलमानों की जानकारी रखता हो (जो नमाज़े जनाज़ा पढ़ा सकता हो) और जब वह मुर्दा ज़िन्दा हो तो उस इमाम पे अच्छी अक़ीदत रखता हो। उसके बाद दूसरी तर्जी पुराने वली की है। अगर कोई वली न हो तो नमाज़ कोई और मुसलमान पढ़ा दे जो ऊपर बताए लोगों में से ना हो, वली की मर्ज़ी होगी। यह दोबारा नमाज़ पढ़ाए या ना पढ़ाए। तफ़सीली जानकारी **सआदते अबदिया** की चौथी वा पाँचवीं पूलिका में मौजूद है।

फर्ज़ करो कि अगर किसी शख़्स की आधी (लम्बाई में) कटी हुई लाश मिलती है तो उस आधी लाश की नमाज़े जनाज़ा होनी ज़रूरी नहीं है।

फर्ज़ करो कि अगर लाश टुकड़ों में मिलती है और टुकड़े इधर-उधर पड़े हो तो उस शख़्स की भी नमाज़े जनाज़ा ज़रूरी नहीं है। हाँ अगर टुकड़ों को एक साथ इकट्ठा कर ले तो नमाज़े जनाज़ा पढ़ेगें।

अगर किसी मय्यत को गुस्ल दे दिया गया और कोई एक हिस्सा सूखा रह गया; तो उस हिस्से को धोना होगा अगर कफ़न नहीं पहनाया गया तो। दूसरे अलफ़ाज़ों में, फर्ज़ करो की जनाज़ा कब्र के पास लाने के बाद कहा जाता है कि एक वुज़ू वाला हिस्सा सूखा रह गया है तो वह उस हिस्से को धोए और उस के बाद नमाज़े जनाज़ा पढ़े। और अगर मय्यत को कब्र में रखने के बाद कोई कहे तो मय्यत को ना दफ़नाऐं। अगर (यह कब्र में उतारने के बाद पता चला है कि) मय्यत को गुस्ल नहीं हुआ; तो ज़रूर ही मय्यत को बाहर निकाला जाए और गुस्ल दिया जाए, अगर मय्यत को अभी तक दफ़नाया नहीं हो तो।

फर्ज़ करो कि मय्यत को तय्यम्मूम करा दिया हो और जब तुम मय्यत को (मसेरी पे) ले जा रहे हो तो पानी मिल जाए उस वक़्त आपकी मर्ज़ी होगी की गुस्ल कराएं या नही।

फर्ज़ करो कि किसी शहर में बहुत से लोग एक साथ मर जाते है; तो तमाम के लिए सिर्फ एक ही नमाज़े जनाज़ा पढ़ाई जा सकती है। यह बताना ज़रूरी है कि, इस्लामिक हुकूमत से मुहाएदा है बेहतर होगा अगर हर एक की नमाज़ अलग-अलग अदा कि जाए।

मुसलमान को नमाज़े जनाज़ा की नीयत इस तरह करनी चाहिए: “(नियत करता हूँ मैं) नमाज़े जनाज़ा अल्लाह तआला की रज़ा के लिए इस

आदमी [या औरत] की मग़फिरत के लिए इस इमाम के पीछे जो यहाँ मौजूद है और जो नमाज़ पढ़ाने वाला है।"

फर्ज़ करो कि कोई शख़्स मुसाफिरों सवारियों को लूटता हुआ पकड़ा जाता है और जज या किसी वली के फैसले पर मार दिया जाता है या कोई राज-द्रोही जोकि राज्य के ख़िलाफ लड़ाई करते में मारा जाता है या कोई शख़्स इस लिए मारा गया क्योंकि इसने अपने माँ-बाप की हत्या कर दी ऐसे तीन मुजरीमों की नमाज़े जनाज़ा नहीं पढ़ाई जाती।

अगर किसी ने ख़ुदकुशी कर ली हो यानि जिसने अपने आपको मौत के गले लगा लिया हो उसकी नमाज़े जनाज़ा पढ़ाई जाती है **(दुर-उल-मुख़्तार)**

सुन्नी मुसलमान की दस ख़ूबी है:

1- सुन्नी मुसलमान (पाँचों वक़्त की नमाज़ों के लिए) रोज़ाना मस्जिद में जमाअत के लिए जाएगा।

2- वह जमाअत में मिलेगा और इमाम के पीछे नमाज़ अदा करेगा (जिसका ईमान और अकीदा (गुनेहगारता) इतनी बुरी नहीं होगी कि वह अंधविशवासी बन जाए।

3- वह गंदगी के लिए मसाह की जाईज़ता को समझेगा।(जोकि **सआदते अबदिया** के चौथी पूलिका के तीसरे बाब में तफसीर से बताया गया है।)

4- वह किसी असहाब-ए-ईकराम 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम अजमाईन' को बदनाम नहीं करेगा।

5- वह रियासत के ख़िलाफ़ बग़ावत नहीं करेगा।

6- वह मज़हबी मामलातों पर ज़बरदस्ती बेईमानी या झगड़ा नहीं करेगा।

7- वह मज़हबी धोकेबाज़ी पर ध्यान नहीं देगा।

8- वह अल्लाह तआला की तरफ से अच्छाई या बुराई सबको समझेगा।

9- वह ऐसे मुसलमान को माफ नहीं करेगा जो क़िब्ले पे यक़ीन नहीं करते [जब तक कि उसका इलहाद ना जान ले।]

10- वह दूसरे सहाबियों पे (शुरूआती) चारों खलीफाओं का हवाला देगा, (यानि, हज़रत अबू बकर, हज़रत उमर, हज़रत उस्मान और हज़रत अली,)

मौत के मुताल्लिक़

ओ ग़रीब कमज़ोर, तूँ मौत से भागता है! "फला फला शख़्स मर गए है। अगर प्लेग या कोई और छूत की बीमारी या ख़तरनाक मर्ज़ किसी ईलाक़े में फैल जाता है, तो तुम दूसरी जगह बदल देते हो, यह कहते हुए के, अगर मैं इसके पास रहा तो हो सकता है इस छूत की बीमारी से मेरी भी मौत हो जाए।" इस तरह के अक़ाईद का होना हराम है। कोई भी बीमारी तुमको हो सकती है अगर अल्लाहु तआला चाहें।

ऐ ग़रीब कमज़ोर, तुम कहाँ तक भागोगे! तुमसे यह वादा लिया गया है मौत ही तुम्हारा अन्त है। एक लम्हें के लिए भी मौत नहीं टलेगी। जब तुम्हारी मौत का वक़्त आएगा, ख़ालीक़-ए-आलम (तमाम मख़्लुक़ात का बनाने वाला)

तुमको पलके झपकने के बराबर भी मोहलत नहीं देगा। मौत ना वक़्त से पहले और ना वक़्त के बाद यह अपने मुक़र्रर वक़्त पर आएगी।

जहाँ कहीं भी हक़ तआला की तरफ से उस शख़्स की पहले से तय की हुई मंज़िल होगी, वह शख़्स उस जगह जाएगा अपनी तमाम जाएदाद, परिवार और बच्चे छोड़कर और उसकी रूह जब तक नहीं निकलेगी की जबतक के वह उस जगह नहीं पहुँच जाता जहाँ उसकी मिट्टी उसका इन्तेज़ार कर रही है।

जब मौत का वक़्त आएगा तो हर कोई मर जाएगा। सूरत आराफ में यह फरमाया गया है: "**...जब उसकी मौत का वक्त पूरा हो जाता है, तो किसी तरह की देरी नही होती है और ना ही पहले मौत आती है** (यह पहले ही तय होती है)।"

किसी शख़्स के पैदा होने से पहले, यह मुक़र्रर हो जाता है कि यह कितना जीएगा और यह लोह-ए-मेहफ़ूज़ में लिखा गया है: कहाँ ये शख़्स इन्तेक़ाल फरमाएगा, के तौबा करके मरेगा या बिना तौबा किए बग़ैर मर जाएगा (अगर किसी) बीमारी से मरेगा तो कौनसी, हालांकि यह ईमान से मरेगा या बग़ैर ईमान के मरेगा। हक़ीक़त में, ये सच्चाई लोक़मान सूरा की आख़िरी आयत में छेड़ी हुई है।

ख़ालिक़-ए-आलम ने मौत बनाई। उसके बाद इसने हयात (ज़िन्दगी) बनाई। और उसके बाद हमारा रिज़्क बनाया वा लौह-ईल-महफ़ूज़ में लिखा।

हक़ तआला जानता है कि तुम कितने सांस लोगे और इसने लोह-ईल-महफ़ूज़ लिख दिया है। फ़रिश्तें इसकी देखभाल करते है, और जब वक़्त आता है तो वह मलाकुल-मौत (मौत के फ़रिश्ते) को बता देते है।

अगर तुमने अपनी ज़िन्दगी कुरान-अल-करीम के मुताबिक़ गुज़ारी और जो उसमें हुकूमात लिखे है उनपे मश्क़्क़त करी, तो तुम (अगली दुनिया में) ख़ुश शख़्स बनके जाओगे! अल्लाह तआला की हर बात मानना। किसी शख़्स की मौत पर मत रोओ पीटो। इस तरह की चीज़े किसी शख़्स के बग़ैर ई मान के मरने की वजह बनती है। हम अल्लाह तआला की पनाह में ले लिए जाएंगें। क्या हमें कोई गुनाह या गलती करनी चाहिए, हमें तौबा-ए-नसूह करनी चाहिए।

हक सुब्हानल्लाहु वा तआला ने इज़राईल 'अलैहिस्सलाम' (मौत के फ़रिश्ते) को हुक्म दिया: "**ले आओ मेरे दोस्तों की रूहों को असानी से, और मेरे दुश्मनों की रूहों को कठोरता से**" इन आऊज़ु बिल्लाह, अगर कोई ना फरमान हो !

आख़िरत में एक दिन इतना लम्बा होगा जोकि एक हज़ार साल या पचास हज़ार साल के जैसा इस मामले से मुताल्लिक़ बहुत सारे बयानात है। यह हक़ीक़त सजदा सूरा की पाँचवीं आयत-ए-करीमा और मेराज सूरा की चौथी आयत-ए-करीमा में समझा जाता है।

उसके बाद मौत का फ़रिश्ता ना फ़रमान आदमी की रूह को बहुत तकलीफ से खींच लेगा। उसके बारे में बताने में ज़बान कम पड़ेगी। हमको अल्लाह पे यक़ीन रखना चाहिए, जिसने हमें शुन्य (नबुदगी) से बनाया, कुछ लोग तड़पेंगे और एक तरफ से दूसरी तरफ मोड़ दिए जाएंगे जैसे की बसंत। सच्चाई के तौर पर, अल्लाह तआला उन्हें वा-न-नाज़ीआती सूरा में बताते है। फ़रिश्तें उनको बहुत ज़्यादा तड़पाएंगे, और एक दूसरे से बातचीत के दौरान। जिबराईल 'अलैहिस्सलाम' उनके लिए कहते है: "रहम दया ना करो!" मुनाफिक की रूह उस की नाक की नोक तक आएगी। तब फ़रिश्तें उस को ढीला छोड़ देगें, उसके सारे जिस्मी हिस्सों को इतनी मज़बूती से मींच देगें के

उसकी आँखों की रौशनी ज़मीन पर गिर जाएगी। फ़रिश्तें उनको कहेगें: "तुम जन्नत के लिए नहीं हो! क्या तुम भूल गए ज़िन्दगी में जो तुमने गलत काम किए थे? तुम अच्छे काम के आदमी नहीं थे। अज़ाब जो तुम्हारे लिए तैयार हुआ है वह अज़ाब मुनाफिकों और मुशरिकों का होता है। तुम्हारे लिए नमाज़, ज़कात, भीख या गरीबों के लिए रहम कोई मायने नहीं रखता था। तुमने हराम को नहीं छोड़ा, और तुमने तमाम फसाद कि। तुमने ग़ीबत की और फिर कहा: 'अल्लाह करीम है', और अब तुम्हारे लिए सख़्त अज़ाब है" फिर हज़रत हक़ सुबहानाह वा तआला बताते है: "**वो मुनाफिक जिन्होने एक बार भी अपनी मौत के बारे में नहीं सोचा। वह घंमडी थे। वह फर्ज़यात सुन्नतें या वाजीबात महसूस नहीं कर पाए। तो अब इन्हें मेरा अज़ाब देखने दो!**" दोबारा, ज़ेबानिस (सज़ा देने वाला फ़रिश्ता) उसका नाख़ून नीचे पकड़ेगा और उस की रूह को छाती की नाभी से खीचेगा और उस को ग़सनी (जो आधानाल होती है) उस तक उठाएगा और फिर उस को वापस दो बार नीचे तक जाने देगा। दुबारा दूसरी आवाज़ आएगी (अल्लाह की तरफ से) कहेगें: "**क्या तुम्हें उलेमाओं ने नहीं बताया था? तुमने हमारी किताबें नहीं पढ़ी थी? क्या तुमसे नहीं कहा था: ना जान्ने वालों की पकड़ में ना आना और शैतानी बातों को ना मानना? क्या यह नहीं बताया था: के जान लो तमाम चीज़ें अल्लाह की तरफ से है?**" इस दुनिया की तलब मत करना, जो कांटों से भरी है, जो कुछ अल्लाह तआला ने दिया उसका शुक्र करना और अल्लाह के गुलामों पर रहम (दया) करना, गरीब और मिसकीनों को खाना खिलाना। अल्लाह तआला इतना बड़ा शासकीय है कि उसने तुमको बनाया तुम्हारे लिए खाना पैदा किया, अगर कोई मुसीबत इसकी तरफ से तुमपे आती तो तुम इससे दुबारा भीक माँगो, और इससे दुबारा बचाव की दुआ करो, यह मत कहो के "मैंने डॉक्टरों को पैसे दिए और उन्होने मुझे ठीक कर दिया।" यह जान लो कि अल्लाह तआला ने तुम्हें बचाया है। जाएदाद जो तुम कहते हो तुम्हारी है दरअसल तुम इसकी देख-रेख के लिए

हो। यह तुम्हारी बीमारी का ईलाज नहीं है। अगर यह वह है जो तुमने हलाल तरीक़े से कमाया है, तो तुमको उसके हक़ में बुलाया जाएगा। जिस चीज़ के लिए भी हक़ सुबहानाहु वा तआला तुमको हुक्म देता है, वह तुमको लेना होगा; तुम्हारी जाएदाद तुम्हारे बच्चों या तुम्हारे दोस्तों से कोई भी मदद नहीं आएगी और तुम अपने आप को नहीं बचा पाओगे कोई मसला नहीं होगा तुम कितना चिल्लाओं कितनी ऊँची आवाज़ से रोओ या कितना ही भागने की कोशिश करो। आख़िरकार तुम उस ही मिट्टी में दफ़नाए जाओगे जहाँ तुम्हारी कब्र तुमको पुकारती है। जबतक तुम्हारी मौत का वक़्त नहीं आ जाता कोई तुमको नुक़सान नहीं पहुँचा सकता, सिर्फ तुम ख़ुद को ख़तरों से बचा सकते हो और जो तुम्हारी बीमारियों की वजुहात है उसका पालन कर सकते हो।

और जब भी हक़ तआला तुमपे दया करता है जैसे सेहत, माल और बच्चें, तुम उनमें ख़ुश रहते हो और कहते हो, "हमारे रब की मेहरबानी है," लेकिन जब अल्लाह तआला तुमको मुसीबत में डालता है यानि जब कोई आफत परेशानी आती है, तो तुम उदास हो जाते हो बजाए इसके सब्र करो और सारी मेहरबानी भूल जाते हो।

एक आवाज़ अल्लाह तआला की तरफ से कहती है: "**ओ मेरे फ़रिश्तों! इसको पकड़ो!**" फ़रिश्तें उसके बालों को गहराई से पकड़ेगें फिर छोड़ देगें, और इसके बाद बार-बार ऐसे ही करेगें। किसी के पास भी इतनी ताक़त नहीं होगी के अल्लाह की तरफ से किसी अज़ाबित शख़्स को बचा सके।

जब आदमी अपनी मौत के बिस्तर पे यह अज़ाब देखता है हैरान हो जाता है: अफसोस, अफसोस, कैसे मैं ख़्वाहिश करूं के दुनिया में अल्लाह तआला कि बताई गई चीज़ों (इस्लामियत) पर अमल करता, तो आज मैं इस अज़ाब में ना घिरता! दुबारा, अल्लाह तआला की तरफ से एक आवाज़ गलत लोगों के लिए आएगी: "**ओ मेरे घंमडी गुलाम! जाओ अपनी जाएदाद को खर्च**

करके अपने इस दोस्त को बचा लो! दुनिया में जब मेरी तरफ से मुसीबत आई थी तुमने सब्र नहीं दिखाया, और मेरे बारे में शिकायत थी। यहाँ यह गुलाम अज़ाब में है मेरी ताकत से इसकी रूह गले की हडडी तक आ गई है।" फ़रिश्तें यह आवाज़ सुनेंगे और ख़ुद को झुका देगें, यह कहते हुए "ओ हमारे रब! तेरी सज़ा बरहक (सच्ची और बिल्कुल) ठीक है!" इसके बारे में हक़ तआला ने हमको कुरानुल करीम बताया था। इसके बाद दूसरी आवाज़ आती है, फ़रिश्ते को हुक्म होगा के "इसको पकड़ो।" ऐसे दर्दनाक तरीक़े से इसके जड़ से बाल उखाड़ो कि इसके जिस्म पे एक भी बाल अज़ाब से ना बचे, फ़रिश्तें एक के पीछे एक चिल्लाएगें: "ओ अल्लाह के गुलाम की नाफरमान रूह! आजा अपने जिस्म से बाहर निकल आज का दिन तेरे लिए अज़ाब का है, क्योंकि तूँ अल्लाह तआला के अलावा दूसरी चीज़ों से मुहब्बत करता था और तूँ इतना घंमडी था के गरीबों को हिकारत से देखता था और तूने वह चीज़ें करी जो हराम थी और तूँ गलत को सही, और सही को गलत मानता था।" इन वाक़ियात पे कुरानुल करीम में इर्शाद है।

उसके बाद वह शख़्स फ़रिश्ते से कहता है: मुझे एक पल के लिए छोड़ दो ताकि में अपने आपको एक साथ घसीट लूँ। जबकि मौत का फ़रिश्ता उस के बिस्तर की तरफ खड़ा होगा, जैसे ही वह मौत के फ़रिश्ते को देखेगा कांपना शुरू कर देगा, अज़ाब के बारे में भूल जाएगा जो उसने देखा। जब मौत के फ़रिश्ते को देखेगा तो कहेगा तुम कौन हो तुम इन अज़ाब देने वाले फ़रिश्तों में से हो, और तुम यहाँ क्यो हो? उसके बाद मौत की धोकनी उसपे हावी हो जाएगी: मैं मौत हूँ जो तुझे ज़मीन से ले जाने आई हूँ, तेरे बच्चें यतीम हो जाएगें और तेरी जाएदाद दुनयावी रिश्तेदारों की विरासत हो जाएगी।

जब वह मौत से यह अलफ़ाज़ सुनेगा, वह कांपना शुरू कर देगा और मुँह इधर-उधर करेगा। यह निशानियाँ रसूल-ए-करीम 'सल्लल्लाहु तआला

अलैहि वसल्लम' के ज़रिए सही-ए-बुख़ारी हदीस शरीफ में बताई गई है: "**जब यह फ़रिश्तों को सुनता है, वह अपना मुँह दीवार की तरफ करता है और मौत के फ़रिश्तें को खड़ा पाता है।**"

जिधर भी यह मुड़ता है मौत उसके ठीक सामने होती है और फिर दुबारा पीछे की तरफ मुड़ता है।

मौत का फ़रिश्ता ज़ोरदार आवाज़ से चिल्लाएगा: "मैं वह बड़ा फ़रिश्ता हूँ जो तेरे माँ-बाप की रूह ले गया; तब तुम वही थे; तुमने उनकी तब क्या मदद की? और आज सब तुम्हारे बच्चें और मिलने जुलने वाले तुम को देख रहे है। किस फायदे के लिए? मैं बहुत बड़ा फ़रिश्ता हूँ और जिन लोगों को मैं तुमसे पहले मार चुका हूँ वह तुमसे ज़्यादा ताकतवर थे।

जैसे यह बिस्तर पर लेटेगा फ़रिश्तें से बात करेगा, तब तड़पाने वाला फ़रिश्ता हार जाएगा और वह चला जाएगा, जब वह तमाम फ़रिश्तों के साथ इज़राईल 'अलैहिस्सलाम' (मौत का फ़रिश्ता) की मौजूदगी देखेगा, वह अपना दिमाग़ खो देगा यानि उस नज़ारे को देख कर घबरा जाएगा।

इज़राईल 'अलैहिस्सलाम' पूछेगें: तुमको दुनिया कैसी लगी? वह जवाब देगा: मैं दुनिया की वातों में मौजमस्ती कर रहा था। और यह नतीजा है मेरी मौजमस्ती का।

और ख़ालिक़-ए-जहान (दुनिया को बनाने वाले) दुनिया को एक औरत में बदलता है। अपनी अपमानजनक आसमानी आँखों में, उस के दांत जैसे भेस के और डरावनी बदबु के साथ वह उसकी छाती पर बैठ जाएगी।

फिर वह उस शख़्स की जाएदाद उसके सामने लाते है। उसकी आँखों के सामने और उसके मिनमिनाने के बावजूद, वह इसको जाएदाद देते है, जोकि

इसने अपने विरासतियों के लिए हलाल और हराम में फर्क किए बग़ैर कमाई थी।

उसके बाद जाएदाद अपने मालिक से कहती है: "ओ नाफरमाबरदार गुलाम! तूने मुझे कमाया और बग़ैर ज़कात या ख़ैरात के गलत तरीक़े से खर्च किया। और अब मैं तेरे पास से जा रही हूँ और उन लोगों का माल बन जाऊँगी जिन्हें तूँ नापसन्द करता था। वह अब मुझे तुझसे बग़ैर किसी शुकर अदा करे लेगें।"

जैसे ही यह इस हाल में होगा, वह अपने चारों ओर बेताबी से देखेगा जैसे के इसका दिल बुरी तरह जल रहा हो।

इसकी हरकतों का यह हाल शैतान के लिए अवसर होगा वह इसे पकड़ने के लिए बहुत ख़ुश होगा: और शैतान अपने हाथ में एक गोलाकार लेकर उसके बिस्तर के पास जाएगा ताकि वह उसका ईमान चुरा ले वह उसके बिस्तर के पास गोलाकार को ठंडे पानी में डालकर हिलाएगा। यह वह वक़्त है जहाँ और जब एक गरीब आदमी और एक अमीर आदमी एक दूसरे को जानते होंगे।

अगर वह शख़्स बग़ैर सआदत के होगा, तो कहेगा: "मुझे वह पानी पीने दो।" शैतान को और क्या चाहिए था! यह कहता है कहो के -हाशा- दुनिया का कोई बनाने वाला नहीं है। अगर वह अशत्क आदमी होगा, तो इसको जो भी कहने को कहा जाएगा कहेगा, फिर इनआऊज़ु बिल्लाह उसका ईमान चला जाता है। हालांकि जैसे की हिकमत हुदा (अल्लाह तआला) से वास्ता रखती है, इस तरह के अशत्य लोग हाथ के पास कुछ पानी रखते है।

फटाफट अशत्य व्यक्ति का मुँह अजर खुलता है और वह कुछ पानी पीना चाहता है।

अगर उसके बचाव के लिए हिदायत आती तो यह शैतान से नफरत करता और जो पानी वह देता उसको नाकार देता।

अगर ईमानवाले का वक़्त ख़त्म हो गया इज़राईल 'अलैहिस्सलाम' इसकी रूह को बाहर निकालने का हुक्म करते है और मुबारक फ़रिश्तें हुक्म पे अमल करते है। तीन सौ साठ फ़रिश्तें उस (क़िस्मतवाली) रूह को इज़राईल 'अलैहिस्सलाम' के हाथों से लेगें, वह सभी दोस्तों और जान पहचान वालों में बात करेगें, वह रूह को जन्नत के कपड़े पहनाएगें और जन्नत लेकर जाएगें और इसको जन्नत में इसकी जगह देखा कर फौरन बाद इसके जिस्म में रूह को रख देगें।

और अगर कोई बिना ईमान के मर गया। सिज्जीन से तीन सौ साठ फ़रिश्तें उसके लिए (दोज़ख़ के पेड़ का) ज़क्कूम लाएगें, जोकि तार से भी ज़्यादा काला होगा, इसकी रूह को इसमें लपेटेगें, जिसने इसके जिस्म को बग़ैर ईमान के छोड़ा, फौरन दोज़ख़ लेकर जाएगे, इसको इसकी जगह दिखाएगें, और दुबारा इसकी मय्यत के पास वापस ले आएगें।

अगर कोई शख़्स बालिग़ हो जाता है, दुनिया में काफी लम्बी उम्र गुज़ार देता है, हुकूमात की नाफरमानी करता है, और दुनिया में बग़ैर तौबा किए मर जाता है - इनाऊज़ु बिल्लाह (अल्लाह हमें ऐसे खात्मे से बचाए) - वह यह तमाम सज़ाऐ देखता है, तमाम शर्मिन्दगी वाले व्यवहारों से गुज़रेगा, और दोज़ख़ में ख़त्म होगा, जबतक के अल्लाह तआला की हिदायत (रहमत) उस को बचाने के लिए नहीं आती या हज़रत मुहम्मद 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' की शफाअत। (बराए मेहरबानी [बचाव के लिए] **सआदते अबदिया** का दूसरी पूलिका का **35**वां बाब देखें। शफाअत की तफसीली जानकारी के लिए)

(मासूम) बच्चे की मौत के मुताल्लिक़

जब कोई मुस्लिम बच्चा बीमार हो जाता है और मौत के बिस्तर पर पहुँच जाता है, इसका ठिकाना मकाम-ए-इल्लियय्यीन होता है, यानि, जन्नत। तीन सौ साठ फ़रिश्तें वहाँ से आते है, और उस बच्चे के पास लाईन में खड़े हो जाते है और उसको कहते हैं: "या मासूम (ओ मासूम बच्चे)। तुम्हारे लिए ख़ुशख़बरी है! आज का दिन वह दिन है जब तुम्हारे बीते हुए कल के लिए हक़ तआला से दरख़्वास्त होगी। तुम्हारे बाप के लिए, दादा दादी के लिए और पड़ोसियों के लिए।" इसके बाद सौ फ़रिश्तें इसके सर पे शफाअत का ताज रखते है और दूसरे सौ इसे प्यार का ताज पहनाते है और दूसरे सौ इसे जोश के और ताक़त के कपड़े पहनाते है और बाकी साठ फ़रिश्तें इसकी आँखों से पर्दा और अवरोध को हटाते है। जितनी जल्दी जैसे ही तमाम बाधाओं को उठाया जाता है, यह दिखाता है के हज़रत आदम से लेकर तमाम मरहूम ई मान वालों के, वालिद और दादा, और उनमें से कुछ के ज़रिए किया हुआ आज़ाब भी। जब उन लोगों के मुताल्लिक़ यह हालात और सच्चाई दिखती है, यह रोते है और कंपकपाते है, कि वह लोग जो मौत के अंदरूनी सार कष्ठों; ऐठन के मतलब को नहीं जानते है।

जब फ़रिश्तें इसकी रूह बाहर निकालने आते है और इसे शहफाअत में ढके हुए व ताज पहने देखते है और इसकी आँखे खुलने से पहले पर्दो के साथ और अब वह इसकी रूह निकालने लायक़ नहीं है, वह इससे कहते है: "या मासूम! ख़ालिक-ए-आलम (तमाम मख़लुक़ात के बनाने वाले ने) तुझे सलाम भेजा है (तुझे सलाम किया और नेक ख़्वाहिशात पेश की है), तुझसे कहता है: मैने तुझे बनाया था, और अब इसे मेरे पास वापस आने दो, और इसके बदले में मुझे इसे जन्नत देने दो और अपना दीदार कराने दो, अगर तुम

हमारा यक़ीन नहीं करते तो अपना चेहरा जन्नत की तरफ करो, ताकि तुम (अपने लिए) देखोंगे।" इसके बाद बच्चा नज़र डालता है और फ़रिश्तें व अल्लाहु तआला की ख़ूबसूरती (जमाल) देखता है यह कंपकपाता है, मुँह पे झाग आते है, और ख़ुशी से लाल हो जाता है, कितना महान है यह ख़ुश होता है और छलांग लगाने की कागार पे आ जाता है और अपनी रूह को छोड़ने की जल्दी करता है, जब किसी तरह यह अपने पूर्वजों पे अज़ाब का नज़ारा देखता है, और फिर अपनी रूह को छोड़ने से मना करता है। फरिश्तें कहतें है: "या मासूम"! तुम क्यों अपनी रूह नहीं छोड़ रहे?" बच्चा कहता है "ओ फ़रिश्तों अल्लाह तआला से मेरे हक़ से गुज़ारिश करो के मेरे रिश्तेदारों और पूर्वजों को माफ कर दे" फ़रिश्तें कहते है: "या रब्बी! आप जानते है कि हम इस मासूम बच्चे के साथ क्या कर रहे है" इसके बाद अल्लाह जल्लाला शहानूहु उनको इकतेला करते है: "कि मेरे इज़ (ताकत, व जलाल) के हक़ के लिए, मैने उनको माफ कर दिया है।" फिर फ़रिश्तें बच्चे के पास जाते है और कहते है: या मासूम! तुम्हारे लिए ख़ुशख़बरी है! अल्लाहु तआला ने उन सभी को माफ कर दिया जिनके पास ईमान था और तुम्हारी सारी दरख़्वास्त क़ुबूल कर ली है।" जैसे ही बच्चा इतनी बड़ी ख़ुशख़बरी में ख़ुश होता है हक़ तआला इसके पास जन्नत से अपनी दो हूरों को भेजता है इसके वालिदैन का भेस बदलकर जो इसे दिखते है, अपनी बांहे खोलते है, और कहते है: "ओ मेरे बेटे, या बेटी! हमारे साथ आओ। हम जन्नत में तुम्हारे बिना नहीं रह सकते, उन्होंने उसके हाथ में एक सेब दिया जो वह जन्नत से उस बच्चे के लिए लाए थे और कहा, "ये लो" जैसे ही बच्चा सेब सूंघता है, हज़रत इज़राईल 'अलैहिस्सलाम' (मौत के फ़रिश्ते) एक इतने प्यारे बच्चे बन जाते है जितना की यह है और इसकी ज़िन्दगी [रूह] एकदम से बाहर निकाल लेते है।

दूसरी रिवायत के मुताबिक़, जैसे ही बच्चा सेब सूंघता है, इसकी रूह सेब से चुपक जाती है और मौत का फ़रिश्ता सेब से बच्चे की जान ले लेता है। दोनों रिवायते जायज़ है।

उसके बाद मौत का फ़रिश्ता रूह को जन्नत में ले जाता है, रूह रास्ते में जन्नतें देखती हुई जाती है। वहाँ एक बहुत बड़ा खुला देश है हरे चन्द्रकान्त से बना हुआ, जब वह वहाँ पहुँचते है बच्चा पूछता है: "तुम मुझे यहाँ क्यो लाए हो?" फ़रिश्तें समझाते है: "या मासूम! वह क़यामत के दिन की जगह है। वहाँ बहुत गर्मी है। इस बड़े देश में सत्तर हज़ार फव्वारे रहमत के सिर है। जोकि हज़रत रसूल-ए-करीम 'अलैहिस्सलाम' के ज़रिए खड़े किए गए मुबारक तलाब और नूर के चश्मे देखों! जब तम्हारे वालिदैन क़यामत के दिन की जगह पे आएंगे, तुम इन चश्मों को पानी से भरना और उनको दे देना, और उनको यहाँ रख लेना और जाने ना देना, ऐसा ना हो की वह दोज़ख़ की तरफ जांए और अज़ाब व कलंक का निशाना बने, उस हाल में, तुम जो दुआ करोंगे हक़ तआला की नज़र में क़ुबूल होगी। और जुम्मे की रातों को (यानी जुम्मेरात और जुम्मे के बीच वाली रातें) नीचे ज़मीन पे चली जांएगी, जब तुम वहाँ जाओ अल्लाह तआला का उम्मत-ए-मुहम्मद 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' के लिए सलाम लेते जाना। और उनपे नूर छिड़क देना और उनके हम्द की बारात अल्लाहु तआला के लिए लेना।"

बच्चे की रूह के इन दर्जो के सफर करने के बाद वह जल्दी से इसे वापस ले आएंगे और इसको मरे हुए बच्चे के सिरहाने रख देगें। जनाज़े की नमाज़ की अदाएगी की प्रक्रिया के दौरान, मुर्दे को दफ़नाना और कब्र में सवालात, रूह कब्र में रहती है। अगर इसके वालिदैन बग़ैर ईमान के वफात पा लेते है। तो वह बच्चा उनको कही नहीं दिखेगा और मिलेगा उनके बीच एक

पर्दा होगा, ताकि वह एक दूसरे को देखने के इच्छुक हो, यह मुसलमान बच्चे के बालिग़ उम्र से पहले मर जाने के बारे में सच्चाईयाँ है।

मुसलमान औरतों की मौत के मुताल्लिक़

अगर एक औरत जेर से मर जाती है या गर्भवती या अंदरूनी बीमारी या, इनमें से बिना किसी वजह से, सामान्य मौत से मरती है जैसे कि इसने अपनी ज़िन्दगी जी जिसमें इसने कभी भी अपने आप को अपने जिस्म (शरीर) को बिना ढके किसी भी नामहरम मर्द को नहीं दिखाया, (यानि इस्लाम के ज़रिए सिखाए गए रास्ते पे चली) और जिसमें उसका शौहर उससे राज़ी था, उसकी मौत के वक़्त जन्नत के फ़रिश्तें आए और उससे पहले कुछ अलफ़ाज़ात कहे और उसको गहरी इज़्ज़त से सलाम करके, उसको कहते है: "ओ अल्लाह तआला की मुबारक व शहीद बंदी। बाहर आ जाओ तुम इस दुनियावी जगह में क्या कर रही हो? अल्लाह तआला तुमसे राज़ी है और अल्लाह ने तुम्हारी बीमारी की वजह से तुम्हें माफ फरमा दिया है और अपनी जन्नत में तुम्हें क़ुबूल लिया है। आ जाओ और अपने आप की हिफ़ाज़त करना छोड़ दो।" जब वह औरत उस ऊँचे दर्जे को देखती है जो वह हासिल करने जा रही है तो फिर वह अपनी रूह छोड़ना चाहती है, हालांकि वह अपने आस पास देखती है और कहती है: "पहले अल्लाह तआला को दुनिया में मेरे दोस्तों का फैसला रहम के साथ करने दो, और उसके बाद में अपनी रूह को छोड़ दूंगी।" फ़रिश्तें इसकी इलतिजा जनाब-ए-हक़ को हाज़िर करते है। उसके बाद अल्लाहु तआला अपने आप इज़हार करते है कि: अपनी अज़मत के हक़ के लिए, मैंने अपनी इस बंदी की तमाम इबादतों को क़ुबूल फरमा लिया है," फिर फ़रिश्तें उसको ख़ुश ख़बरी

देते है। उसके बाद मौत का फ़रिश्ता और रहमत के (120) एक सौ बीस फ़रिश्तें उधर आते है। उनके चहरों का नूर अर्श तक पहुँचता है, वह अपने सर पे ताज पहने होते है, वह नूर की पोशाक और सोने मोदरी में नाल दार पहने आते है, और इनके हरे पंख है। हाथ में जन्नत के फल और ख़ुशबू से महक़दार मुसक के जैसे उनपे थपका, वह नीचे आए और गहरी इज़्ज़त व रहम के साथ सलाम किया और कहा: ख़ालिक-ए-आलम (तमाम मख़लुक़ात के बनाने वाले ने) तुम्हें सलाम भेजा है, तुम्हें जन्नत दे रहे है, और तुम्हें अपने महबूब नबी मुहम्मद 'अलैहिस्सलाम' का पड़ोसी बना रहे है और हज़रत आएशा का साथी।"

यह ईमान वाली औरत जो भी उससे कहा जा रहा है सुन रही होती है, उसकी आँखों का पर्दा खुल रहा होता है, और ईमान के साथ वाली औरत दिख रही होती है और वह जोकि अपने गुनाहों के खाते में अज़ाब झेलती है। इसलिए वह गिड़गिड़ाती है: "या रब्बी! बराए मेहरबानी उनको उनके गुनाहों को माफ फरमा दो" इसके बाद जनाब-ए-इज़्ज़त से एक आवाज़ आती है, कहते है: "ओ मेरी जारीया! मैने तेरी सारी ख़्वाहिशातों को सच कर दिया है। अब अपनी रूह को महफ़ूज़ करना छोड़ो मेरे महबूब लोगों बिवी और बेटी के साथ हाज़िर और इन्तेज़ार करो।" जैसे ही वह यह आवाज़ सुनती है तो अपनी ज़िन्दगी छोड़ने की कोशिश करती है, उसकी रूह कांप रही है, उसके पेर आगे भाग रहे है, और वह पसीने में है। और वह अपनी ज़िन्दगी छोड़ने के करीब है, तब दो फ़रिश्तें दृष्य पे दिखाई पड़ते है दोनों अपने हाथों में आग की लकड़ी पकड़े हुए है, वह उसके दोनों तरफ खड़े है, उनमें से एक दांए तरफ है और एक बांए, इतने में शापित शैतान दृष्य की तरफ दोड़ता है, तेहरीर करते हुए की: "मैने इससे ज़्यादा उम्मीद नहीं की थी, लेकिन मुझे देखने दो" वह उसको गहने के बर्तन दिखाता हुआ किनारे पे बर्फीले पानी के साथ आगे आता है। जब वह फ़रिश्तें उस दज मख़लूक़ को देखते है, वह अपने हाथों की

लाठीयों से उसके बर्तन को तोड़ देते है और उसको डरा कर दूर भगा देते है, जैसे ही वह मुस्लिम औरत उनको देखती है वह हंस पड़ती है। उसके बाद जन्नत की कुमारी जिसे हूर कहते है वह उसको (जन्नत का) मदिरा कवतार तलाब से गहने के बने बर्तन में पेश करती है, और वह उसे पीती है। जन्नत का मदिरा कितना लज़्ज़ती है के उसकी रूह कूद के जाम को चिपक जाती है, जहाँ से मौत का फ़रिश्ता उसे उठाता है। फ़रिश्तें एक दूसरे से मौत का ऐलान करते हुए कहते है: "**इन्ना लिल्लाही वा इन्ना इल्यही राजीऊन** (यक़ीनन हम उस से है, और बेशक हमें उसके पास वापस जाना है)!" और वह रूह को ऊपर जन्नतों में ले जाते है दर्शनीय जगहों के सफर की तरह जन्नत में उसका ठिकाना दिखाते है, और उसी वक़्त रूह के साथ वापस आते है, मुर्दे के सिरहाने उसकी रूह रख देते है।

जब वह इसके कपड़े उतारते है और बाल खोलते है, उसी वक़्त उसकी रूह उसकी लाश के सिरहाने आती है और कहती है: "ओ तुम, वह शख़्स हो जो नेहलाओगे! धीरे से पकड़ना! क्योंकि, इस जिस्म ने इज़राईल की तलोनो से फतल ज़ख़्म हासिल किया है, और मेरी त्वचा तमाम थकानों से गुज़रने के बाद कमज़ोर हो गई है।" जब जिस्म को नेहलाने के तख़्ते पे लाया जाता है रूह दूबारा आती है और कहती है: "पानी को ज़्यादा गर्म न करना! मेरी त्वचा बहुत कमज़ोर है, जितनी जल्दी मुमकिन हो मुझे अपने हाथों से बचाओ, ताकि में राहत हासिल कर लू!" जब मुर्दे को नेहलाकर कफ़न में कर दिया जाता है, रूह थोड़ी देर का इंतेज़ार करती है और फिर कहती है: "यह आख़री मरतबा में दुनिया देख रही हूँ, मुझे अपने रिश्तेदारों और उनको मुझे देखने दो, ताकि यह उनके लिए एक इशारा हो, के जब से भी वह है, जल्द ही मेरी तरह ही मर जाएंगे, उनको मेरे बाद रोने चिल्लाने मत देना। उसको मुझे भुलने न देना, और उनका मेरे को हमेशा याद रखना, कुरानुल करीम की तिलावत करना (और उसका सवाब मेरी रूह को भेजना जोकि अच्छा अमाल

उन्होंने किया उसके लिए), उनका जाएदाद के ऊपर कोई झगड़ा न हो जोकि मैने उनके लिए छोडी ताकि में कब्र में उनके झगड़े की वजह से अज़ाबित न हूँ। उनको मेरे को जुम्मे और ईद के दिनों में याद रखने दो।"

उसके बाद जब मुर्दे को मसेरी पे रख दिया जाता है (बेंच जिसे मुस्ल्ला कहा जाता है जनाज़े की नमाज़ के लिए), रूह कहती है: "ओ मेरे बेटों, बेटीयों और वालिदैन अच्छे से रहना। जुदाई का कोई भी दिन इस तरह का नहीं है, हम एक दूसरे को याद करेंगे जब तक दूबारा मुलाकात नहीं होगी, क़यामत के दिन ज़्योंही। अलवीदा तुम्हें, ओ लोगों जो मेरे बाद रोओगे।"

जब मसेरी ऊपर कंधों पे रख ली जाती है, उसकी रूह दुबारा बुलाती है, कहती है: "मुझे आराम से ले जाना। अगर तुम्हारा मक़सद सवाब कमाना है, मुझे परेशानी मत देना! और मुझे अल्लाह तआला के पास तुम्हारे लिए अपनी ख़ुशी ले जाने दो!

जब मसेरी कब्र के पास रख दी जाती है, उसकी रूह दुबारा बुलाती है कहती है: "मेरा हाल देखो जिसमें में हूँ और इसे अपने लिए एक चुनौती लो। अब तुम मुझे अंधेरी जगह रखोंगे व छोड़ दोगें, मैं अपने अमाल के साथ अकेली रहूँगी (अमाल यानि दुनियावी काम,) अपना मायूस वक़्त सुधारों कही ऐसा न हो की तुम इस नक्ली दुनिया के चालबाज़ों के ज़रिए न उठाए जाओ!"

जब मुर्दा कब्र में भेज दिया जाता है इसकी रूह अपनी जगह सिरहाने पे ले लेती है। किसी हालत में भी मरे हुए शख़्स को तेलख़ीन (उपदेश) के बिना उसकी कब्र में नहीं छोड़ना चाहिए सालिह मुसलमान के लिए दफनाने के बाद **तेकखीन** को अनजाम देना जिसे उपदेश कहते है एक सुन्नत का काम है। [बराए मेहरबानी तेलख़ीन के लिए **सआदते अबदिया** की पाँचवी पूलिका के सोलवें बाब को भी देखें।] वहाबी इस सच से इन्कार करते है। कि तेलकीन

करना सुन्नत है। वो कहते है कि ऐसा करना बिद्दत है। वो कहते है कि एक मुर्दा तुम्हें नहीं सुन सकता। अहले सुन्नत के उलेमाओं ने कई किताबों में लिखा है कि तेलकीन देना सुन्नत है। इनमे से एक कीमती किताब है **नूर-उल-यक़ीन फी मेबासित-तक्लीन** जोकि मुस्तफा बिन इब्राहीम सियामी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' ने लिखी है। तबरानी और इब्ने मेन्दा की आथोरिटी की हदीस शरीफ भी इस किताब में है। यह हदीस शरीफ तेलकीन अदा करने का हुक्म देती है। किताब यानि **नूर-उल-यक़ीन...**, बैंककौक, थाईलेंड में **1396 [1976** अ।ड।] में छपी। अल्लाह के हुक्म से इसकी कब्रों के मुर्दे उठते है। जैसे सो कर उठे हो और इसको एक अंधेरी जगह में पाते है। वो अपने नौकर या बन्दी या उसके दुनयावी मदद गार को पुकारती है और कहती है: "मेरे लिए एक मोमबत्ती जला दो!" फिर कोई जवाब कोई आवाज़ नहीं आती। फिर कब्र दो टुकड़ों में फट जाती है और सवालों के फरिश्तें दाख़िल होते है। [मुनकर व नकीर] उनके मुँह से आग निकल रही होती है और नाक से धुआं। वो उसके करीब जाते है और पूछते है: "**मन रब्बुका व मा दीनुका, व मन नब्बियुका,** (यानि तेरा रब कौन है और तेरा मज़हब क्या है, और तेरा नबी कौन है।)?" अगर वो इनका सही जवाब दे देती है तो वो उसे हक़ तआला की रहमत की ख़ुशख़बरी देते है और छोड़ के चले जाते है। उसी वक़्त उसके सीधे हाथ की तरफ कब्र में एक खिड़की खुल जाती है और चांद सी शक्ल का शख़्स उसके करीब आता है। जब वो ईमान वाली औरत उस ख़ूबसूरत शख़्स को देखती है और न सोचा हुआ साथ महसूस करती है तो पूछती है: "तुम कौन हो?" "मैं तुम्हारे दुनयावी सब्र और शुक्र से बना हूँ," वो जवाब देता है। "मैं क़यामत के दिन तक तुम्हारा साथी रहूँगा।"

जब तक नफ्स हराम की तरफ खिचती रहेगी।
तब तक दिल फरिश्तों की तरफ से आने वाली रौशनी से नहीं जगमगायेगा!

ग़लत लोगों के मुताल्लिक़, बीमार और ग़रीब शहीदों की मौत

इन सभी लोगों की मौत समान है। हम उनमें से एक का ख़ुलासा करेंगे वो यह है कि बाकी के हिसाब से मिलान किया जाएगा। वहाँ **2** तराह के गरीब (अकेला, लाचार, अकेला छोड़ा हुआ) लोग है: इनमें से एक वो है जो अपनी ज़मीन से दूर रहता है और जिसका कोई रिश्तेदार नहीं है और उसके साथ कोई जानने वाला नहीं। दूसरा गरीब इन्सान, हालांकि वो अपने घर के देश में रहता है। कोई उसके यहाँ जाना पसन्द नहीं करता और न ही उनको देखना यह दोनों ईमान वाले ग़रीब लोग हैं, कौन शहीद होगा व मर जाएगा (इस हालत में)। एक दूसरे ईमान वाला शहीद वो कहलाएगा जिसने अपनी साठ साल की उम्र मे कभी पाँच वक़्त की नमाज़ का नागा नहीं किया [एक वो व्यक्ति जो कि हराम काम करता है इसका मतलब यह नहीं है कि उसे शहीद कहा जाए मिसाल के तौर पर एक व्यक्ति जो कि शराब पिता हे और ज़हरी बन जाता है। (वो शख़्स शहीद नहीं होगा अगर वो ज़हर से मरा है) हां अगर वो शख़्स शराब के दौरान मरा है पर किसी और वज़ह से मसलन जिस इमारत में वो शराब पी रहा हो वो गिर जाये तो वो शहादत हासिल करेगा। एक औरत के हाथ और चेहरा छोड़के बाकी हिस्सें अवरत है उसके लिये फर्ज़ है कि वो किसी ना-महरम के सामने अपने आपको ढके रहे इन हिस्सों को। एक औरत जो इन मामलों को एहमियत नहीं देती वो काफिर हो जाती है। एक औरत को शहादत मिलेगी यानि शहीद का दर्जा मिलेगा जो अपनी पूरी ज़िन्दगी बिना अपने आपको ढके कही न गई हो और जिसने **अहकाम-ए-इस्लामिया** का पालन करा हो। वालदैन जो अहकाम इस्लमिया सीखते है और अपने बच्चों को सिखाते है उनका भी रूतबा शहीद का होगा।] यह लोग जब तक शहीद का रूतबा नहीं पायेंगे जब तक कि इनमें ईमान न हो और पाँच वक़्त नमाज़ न पढ़ते हो। (ईमान अहले सुन्नत के

मुताविक़) कोई मुसलमान जो किसी दुश्मन की कैंद में मर जाये वो भी शहीद है। कोई काफिर जो पीड़ित होके मर जाये तो वो शहीद नहीं होगा। एक शख़्स जो काफिर मरे वो कभी जन्नत में नहीं जा पाएगा।

जो वक़्त जब ऊपर लिखे हुए शहीद लोग अपना सर अपने कफ़न में डालेंगे, तो जन्नत के दरवाज़ें खोल दिये जायेंगे और बहुत सारे फरिशतें ज़मीन पर उतर आयेंगे जिनकी तादाद सिर्फ अल्लाह जानता है। अपने हाथों में नूर के कपड़ें और ताज लिये हुए होंगे। और बहुत अदव से वो उसकी रूह को पुकारेंगे। सच्चाई यह है कि अल्लाह तआला ने यह हाल सूरह फज्र के आख़िरी हिस्से में बताया है।

दूसरा ईमान वाला शहीद वो है जो अपना चेहरा दरगाह-ए-इज़्ज़त की तरफ करता है और कहता है, "ऐ मेरे मावूद! जब तक मैं जिया हूँ मैने अपनी उम्मीद तेरे अलावा किसी से नहीं लगाई! और न तेरे अलावा किसी के आगे सिर झुकाया और न किसी दुश्मन के झांसे में आके तुझसे दूर गया। या रब्बी! अब, मुझे तुझसे उम्मीद है कि तू मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैयहि वसल्लम' की उम्मत को मग़फिरत फरमायेगा।" यह शख़्स भी शहीद है।

फरिशतें उस रूह को कपड़े में लपेटेंगें। जो कपड़ें वो अपने साथ लाये थे। उस वक़्त एक आवाज़ आयेगी अल्लाह की तरफ से कहते हुए: "इस रूह को जन्नत ले जाओ। क्योंकि यह दूसरों से ज्यादा नमाज़ें पढ़ता था और मेहमानों का आना पसन्द करता था, और लोगों को उनकी गलतियों पर माफ कर देता था और बहुत 'अस्तग़फार' करता था। और मेरा बहुत ज़िक्र करता था। और बिना ख़ुद को अच्छे से ढके बाहर नहीं जाता या जाती थी। और हराम से वचता था। और दुनिया में नबियों और इस्लाम को मानता था "फिर शख़्स के कन्धे के दो फरिशतें जो इन्सान के अच्छें और बुरें कामों का हिसाब लिखते है कहेंगे: या रब्बी! तुने हमें इस शख़्स की ज़िम्मेदारी दी थी दुनिया

में। और अब इस शख़्स की रूह के साथ हमें भी जन्नत में जाने की इजाज़त दे। फिर आवाज़ आयेगी अल्लाह की तरफ से कहते हुए: "तुम इस शख़्स की कब्र में रहो, तस्बीह पढ़ो और तकबीर कहो और सजदा करो और इसका सवाब मेरे इस बन्दे को भेजो। तो वो तस्बीह करते है और सवाब उस बन्दे को भेजते रहते है क़यामत के रोज़ तक।

[**एक जरूरी नोट:** मिस्र के मुनाफिक, ख़लीफा उस्मान 'रज़ि अल्लाहु अन्ह' के ख़िलाफ हुए और उन्हे मारने के इरादें से मदीना पहुँचे। मदीना में उनके गुनाह के साथियों ने उनका साथ झूठ से दिया। उन्होंने सहावा को गालियाँ दी यह अफवाह उड़ाते हुए कि, "मदीना के मुसलमानों ने ख़लीफा की मदद नहीं की थी।" जबकि सच यह था कि ख़लीफा का मकसद शहीदों को जन्नत में ऊँचा मुकाम हासिल कराना था और वो अल्लाह तआला की बड़ी रहमत के लिए इबादत करते थे। दूसरे मुसलमान उनकी मदद करने आये पर आपने उन्हे इस मामले से दूर रहने की गुज़ारिश की। उन्होने वापस भेज दिया। इसका फायदा उठाके विद्रोहियों ने ख़लीफा को आसानी से शहीद कर दिया। इस तरह उनकी ख़्वाहिश पूरी हुई। अल्लाह तआला ने उनकी दुआ सुनली। शहीद को मरते वक़्त किसी दर्द का एहसास नहीं होता। उन्हे जन्नत में दी जाने वाली बरक़तें दिखा दी जाती है। ताकि वो अपनी रूह अपनी मर्जी से फरिश्तों को सौंप दे क्योंकि उनका ईमान उनका इन्तेज़ार कर रहा है।]

काफिर की मौत से मुताल्लिक़

जब कोई काफिर या मुरतद या कोई बेवकूफ जो इस्लाम से नफरत करता हैं और कुरान-करीम को 'रेगिस्तानी कानून' कहता हैं और जो ऐसा जाहिल हैं जो मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम'- सबसे बड़े और इज़्ज़तबख्श इंसान और नबियों के उस्ताद- को 'ऊँट रेवड़' कहता हैं- अल्लाह

तआला हमें ऐसे जाहिलाना काम से बचाये-, और जो कहता हैं इस्लाम मज़हब की शुरूआत बिना किसी ज़रूरत के हुई हैं- जबकि इस्लाम ख़ुशियों की जगह, सुकून का ज़रिया, इल्म का ज़रिया, अख़लाक़, सफाई, सेहत व कानून न्याय हैं- उसे एक कंजूसी तरकीब और एक सड़े हुए दिमाग जोकि नुक़सान पहुँचाने वाला अम्ल हैं जैसे मुर्दो का बक्सा हो,- और जोकि कुछ नहीं हैं बस अपनी नफ्स का गुलाम हो-, मरने वाला हो, उसकी आँखों के सामने से पर्दे हट जाते हैं। उसे जन्नत दिखाई जाती हैं। एक ख़ूबसूरत फरिश्ता उससे कहता हैं: "ऐ काफिर! ऐ जाहिल इंसान, जो मुसलमानों को 'पुराने ढंग' का कहते थे, और जो हवस के पीछे भागते थे और जो अपने अख़लाक़ी उसूलों को कुचलते हैं ये ऐसे रौशन और नये ज़माने के इंसानों! तुम गलत रास्ते पर थे। तुम सही मज़हब इस्लाम से नफरत करते रहे। वो लोग जिन्होने अल्लाह की तालीम मुहम्मद 'अलैहिस्सलाम' से सीखी और उसपे ईमान लाये वो इस जगह जन्नत में जायेंगे।" वो जन्नत की रहमत देखेंगा। और जन्नत की हूरें कहेंगी: जिन लोगों के पास ईमान हैं वो अल्लाह तआला के ज़रिये मुसल्लत किये हुए अज़ाब से बच जायेंगे।" फिर उसके बाद शैतान एक पादरी के भेस में आयेगा और कहेगा: "ऐ तू, फला-फला के बेटे! जो कुछ वक़्त तेरे साथ थे वो झूठे थे। वो नेमतें तुम्हारी हो सकती थी।" तब उसे जहन्नुम दिखाई जाती हैं। उसमें आग के पहाड़, बिच्छू और खच्चर जितने बड़े कनखजूरे हैं। वो हदीस शरीफ में बयान अज़ाब देखेगा। जहन्नुम के फरिशतें जिन्हे 'जबानिस' कहते हैं वो आग की छड़ी से मार रहे होंगे। उनके मुँह से आग की लपटे निकल रही होगी। वो मीनारों जितने लम्बे होंगे और उनके दांत, बैल के सींगों जितने बड़े होंगे। उनकी आवाज़ बिजली कड़कने जैसी हैं। काफिर उनकी आवाज़ सुनके कपकपा उठता हैं और शैतान की तरफ रूख़ करता हैं। शैतान ख़ुद डरा हुआ होगा और वो अपनी पूँछ मोड़ लेता हैं। फरिशतें शैतान को पकड़ते हैं और उसे नीचे धक्का दे देते हैं। फिर काफिर से ख़िताब करते हुए कहते हैं: "ऐ तू;

इस्लाम के दुश्मन! दुनिया में तू अल्लाह के नबी मुहम्मद 'सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम' को झुठलाता रहा। और अब तू फरिश्तों को झुठला रहा हैं, एक बार फिर अभागे शैतान ने तुझे धोखे में डाल दिया।" वो उसके गले में आग की ज़ंजीर डालते हैं, उसके पैर उसके सिर तक खींचते हैं, इससे उसके पैर उसके सिर के पिछले हिस्से तक पहुँच जाते हैं, और उसका सीधा हाथ उसके उल्टे हाथ के सीने की तरफ धकेल दिया जाता हैं और उल्टा हाथ सीधे हाथ की तरफ, जिससे उसके दोनों हाथ कन्धों से अलग हो जाते हैं। एक आयत करीमा में इस भयंकर वाक्ये के बारे में मौजूद हैं। वो रोता हैं और अपने चापलूसों को मदद के लिये पुकारता हैं। ज़ेबानी इसका जवाब देते हैं: "ऐ काफिर; ऐ कमअक़्ल तूने मुसलमानों को झूठा बोला! अब वक़्त भीख मांगने का नहीं हैं। ईमान और इबादत अब क़ुबूल नहीं होगी। यह वक़्त तेरे कुफ़्र की सज़ा का हैं।" वो उसकी गर्दन के पीछे से उसकी ज़बान खींच लेते है। उसकी आँखें निकाल लेते हैं। और भी कई तरीकों से यह ख़तरनाक अज़ाब दिया जाता हैं और उसकी घिनौनी रूह को निकाल कर उसे जहन्नुम की तरफ उछाल दिया जाता हैं। अल्लाह तआला हमारी रूह को मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' के मज़हब में रखे और हमें अहले सुन्नत की लिखी हुई किताबों के सच से भर दे, जिन्होने अज़ीम नबी के मज़हब को हम तक सही पहुँचाया! आमीन।

चाहे तुम कितना भी जी लो, आख़िर में मरना हैं। हमारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: **जब एक इंसान की रूह उसका जिस्म छोड़ती हैं तो एक आवाज़ कहती हैं: ऐ इंसान, तूने दुनिया को छोड़ा, या दुनिया तूझे छोड़ गई? तूने दुनिया कमाई या दुनिया ने तूझे कमाया? तूने दुनिया को मारा या दुनिया ने तुझे मार दिया? जब जनाज़े को नहलाना शुरू किया जाता हैं तो एक आवाज़ तीन सवाल पूछती हैं:**

1- कहाँ हैं तेरा मज़बूत जिस्म? किस चीज़ ने तूझे कमज़ोर बना दिया?

2- कहाँ हैं तेरी मीठी बाते? किस चीज़ ने तुझे खामोश कर दिया?

3- कहाँ हैं तेरे अज़ीज़ दोस्त? वो कहाँ चले गये, तुझे अकेला छोड़कर?

जब जनाज़े को कफ़न में लपेटा जाता हैं, तब एक और आवाज़ कहती हैं: मुक़द्दर के बगैर कुछ नहीं हैं! इस सफर की वापसी नहीं हैं, तुम कभी वापस नहीं आ सकते।तेरा ठिकाना अज़ाब देने वाले फरिश्तों में हैं।जब लाश को ताबूत में रखा जाता हैं तो एक अलग आवाज़ कहती हैं: अगर तू जनाब-ए-हक़ को राज़ी करने में कामयाब रहा हैं तो तेरे लिए ख़ुशख़बरी हैं, ख़ुशियाँ और कामयाबी तेरा इन्तेज़ार कर रही हैं! अगर तू जनाब-ए-हक़ का गुस्सा कमाया हुआ हैं वो तुझ पर दुख: आ पड़ेंगे! जब जनाज़ा क़ब्र के करीब लाया जाता हैं एक और आवाज़ कहती हैं: ऐ आदमज़ात! तूने अपनी क़ब्र के लिए दुनिया में क्या तैयारी की? तू इस अंधेरी जगह में अपने साथ क्या नूर लाया हैं? तू अपनी दौलत और शौहरत में से क्या लाया हैं? इस बंजर क़ब्र को सजाने और सवारने के लिए तू क्या लाया हैं? जब जनाज़ा क़ब्र में रख दिया जाता हैं तो क़ब्र कहना शुरू करती हैं: तूने मेरी पीठ पर बहुत बोला हैं, अब तू मेरे पेट में ख़ामोश हैं।और आख़िर में, जब दफनाना पूरा हो जाता हैं और ख़िदमत गुज़ार चले जाते हैं, तब हक़ तआला की आवाज़ आती हैं: ऐ मेरे बन्दे, तू अब अकेला हैं; वो जा चुके, तुझे अंधेरी क़ब्र में अकेला छोड़कर।वो तेरे दोस्त, भाई, बच्चे और वफादार थे।पर किसी का कुछ तुझे फायदा न पहुँचाया।ऐ मेरे बन्दे, तू मेरा नाफरमान रहा; तूने मेरा हुक्म नहीं माना, तूने कभी इस हालत के बारे में नहीं सोचा।अगर मरने वाला इंसान ईमान पर मरता हैं तो उम्मीद की जा सकती हैं कि जनाब-ए-हक़ उसे मग़फिरत से

नवाज़ेंगे, यह कहते हुए: ऐ मेरे ईमान वाले बन्दे! यह मेरी शान के खिलाफ हैं कि मैं तुझे तेरी कब्र में अकेला छोड़ दूँ। मुझे मेरी इज़्ज़त-उ-जलाल की कसम, मैं तुझे ऐसी रहमत से नवाज़ूगा कि तेरे दोस्त हैरान हो जायेंगे और तुझपे ऐसी मेहरबानी दिखाँऊगा जो वालदैन के अपने बेटे पर की गई मेहरबानी से भी ज़्यादा होगी। अपनी मुनफरिद मेहरबानी और एहसानों से, वो उस बन्दे के सारे गुनाह माफ कर देगा, तो उसकी कब्र जन्नत का बगीचा बन जायेगी जिसमें हूरे और जन्नत की बरकतें होंगी। अल्लाह तआला रहीम हैं कि वो अपने गुनाहगार बन्दों को भी माफ कर देता हैं। वो निहायत रहम वाला हैं कि वो अपने बन्दों के गुनाहों पर पर्दा डाल देता हैं बजाये कि उन्हे दिखाने के। तो हमें ऐसे ख़ालिक का हुक्म मानना चाहिए और उसकी मना की हुई चीज़ों से बचना चाहिए और अमल-ए-सालिह करके ख़ुद को उस करीबी अज़ाब से बचाना चाहिए।"

हर ईमान वाला चाहे गुनाहगार हो या न हो हर एक कब्र के सवालों से रूबरू होगा। जिनको मग़फिरत नहीं मिली और काफिरों को अज़ाब भी मिलेगा। लोग जो मुसलमानों में अफवाहे उड़ाते हैं और जो अपने कपड़ों पर पेशाब की छींटे उड़ा देते हैं वो कब्र के अज़ाब के हक़दार हैं। [कब्र का अज़ाब सिर्फ रूह पर नहीं बल्कि रूह और जिस्म दोनों पर होगा (यानी जिस्मानी तौर पर भी), यह सच्चाई समझ से काफी परे हैं। तो हमें इन्हें अपने दिमाग़ से समझ के हल करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।]

अगर वो इंसान बिना ईमान के मर जाता हैं (यानी काफिर,) वो महशर (यानी क़यामत का दिन) के रोज़े तक बहुत दर्दनाक अज़ाब में होगा। [और उसके बाद अबदी जहन्नुम में भी।]

अब्दुर्र रहमान समी पाशा एक रिटायर्ड ऑटोमन जनरल जो अपनी सनत की सदस्यता में 1295 [1878 A.D.] में वफात पा गये, उनकी लिखी हुई तुर्की नज़्म का आसान तर्जुमा पेश हैं:

ऐ तूँ, ज़िन्दा मुसाफिर! अपना दिल अल्लाह के सिवा किसी पर न फिदा करना!

कोई दुनिया में बाकी नहीं रहेगा। अल्लाह के सिवा कोई कुछ भी नहीं कर सकता। कोई नहीं बस अल्लाहु तआला हमेशा रहेगा।

हर कोई ख़ुशी और ग़म के दिन देखता है। इस मुक़ाबले के लायक़ यह दुनिया नहीं है।

मैं, भी, मेरे वक़्त मे, राष्ट्रपति के हाथ की अंगूठी का नगीना था, ख़ुद मुख़्तार का दस्तख़त था। अब नसीब ने सब उलट पलट कर दिया।

फिर मेरा दिल बीमार पड़ा। मेरी ताक़त सारी चली गई। और आख़िर में मेरी ज़िन्दगी का परिंदा [मेरी रूह] उड़ गई। और पिंजरा सताया और बर्बाद कर दिया गया।

मेरी सेहत, एक मोमबत्ती की तरह, निकल गई। मेरे चारों तरफ अंधेरा था। आख़िरत के फूल का सूरज। सब अल्लाह के नूर से जगमगा रहा था।

उस लम्हे मुझे मेरा रब मिला। मेरे उपरी गुनाह दिये गये। फिर जब मैने मग़फिरत की भीख मांगी वो अपनी अज़ीम रहमत के नूर के साथ मुझसे मिला।

या रब्बी! मैने हज़ारों लाखों गुनाह किये है। फिर भी मुझे ख़ुद पर भरोसा है, मेरे सियाह चेहरे के साथ, कि तेरा दर सबसे बड़ा है। मुझे माफ कर दे!

*जब मैने नज़म लिखी तेरा नाम ग़फूर उस तारीख़ को दिया।**[1286]** इसके मायने बेशक सच्चे है।अल्लाह ही सब कुछ कर सकता है।और अल्लाह के सिवा किसी को बक़ा नही!*

यह ज़िन्दगी एक ख़्वाब है, ग़मों से घिरा हुआ;
क्या हम आख़िर में मरने के लिये नहीं बने?
ख़ुशी के चन्द घंटों के बाद,
परवाह हर चीज़ ख़ुशी का पीछा करती है।

हम जहालत में हर पल डुबकी लगाते हैं:
मौत की गहराईयों में पूरे जोश से।
डुबकी लगाने वाले की परेशानियों और मुश्किलातों में,
यह दुनिया हमें दिवालेपन की तरह धक्का दे रही है।

और हम बेचारे, यह इमारत देखते हुए,
पूछते है कि इसके निवासी जहाँ से आ रहे है।
उसका ख़ालिक़, उसकी मख़लूक़, उसके राज़,
उसकी छुपी वजहे, बहुत शानदार है।

पर हक़ तआला के ख़ुद के राज़,
बेशक बन्दों की समझ के बाहर है।
इन्सान, अनजान, खाली, असमर्थता के साथ,
ग़लती में भ्रम बनाया जायेगा।

क़ब्रों की ज़ियारत करना और कुरान करीम का पढ़ना।

क़ब्रों की ज़ियारत करना सुन्नत है। क़ब्रों की ज़ियारत हर हफ्ते या कम से कम ईद पर करनी चाहिए। ज़ियारत जिसमें ज़्यादा सवाब है वो हैं जुमेरात या जुमा या हफ्ते की ज़ियारत। **शीरतुल इस्लाम** [मुहम्मद बिन अबू बकर 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि', d. **573** [**11788** A.D.] बुख़ारा की लिखी हुई] किताब के आख़िरी पन्नों में लिखा है कि क़ब्रों की ज़ियारत करना सुन्नत है। ज़ियारत करने वाला इस सच पर ग़ौर करेगा की क़ब्र के अंदर की लाश गल-सड़ चुकी है, जो उसे एक चेतावनी और इबरत का सबब बनेगा। जब भी उसमान 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हु' क़ब्र के पास से गुज़रते तब इतनी शिद्दत से रोते कि आपकी दाढ़ी गीली हो जाती। इसके अलावा, [ज़ियारत वाले को आगाह करने के लिए], जो शख़्स क़ब्र में दफ़न है उस शख़्स से सवाब हासिल करेगा। रसूलल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अपने रिश्तेदारों और सहाबा अकरम 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम' की क़ब्रों की जिय़ारत की। सलाम पढ़ने और दुआएं पढ़ने के बाद, ज़ियारत करने वाला क़ब्र के पास बैठता है उसकी तरफ चेहरा करके और पीठ क़िब्ले की तरफ कर के। अपने हाथ मलना और क़ब्र की तरफ आराम से चेहरे करना या क़ब्र को चूमना ईसाईयों का रिवाज़ है। यह हदीस शरीफ का मफहूम है: "**जब कोई शख़्स अपने जान पहचान के बन्दे की क़ब्र पर जाता है और सलाम करता है, उसके जान पहचान वाला जो उस क़ब्र में है वो उसके सलाम को पहचानता है और तसलीम करता है।**" अहमद इबने हमबल 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' बयान करते है: "जब तुम कब्रिस्तान से गुज़रों, इख़्लास पढ़ो, और दो सूरत जो कुल आऊज़ू से शुरू होती है, और फातिहा, और इसका सवाब क़ब्रों में दफन लोगों

को भेजो। सवाब उनके पास पहुँच जायेगा।" अनस बिन मलिक 'रहमतुल्लाही तआला अन्ह' हदीस शरीफ की रिवायत करते है: "**जब आयतल कुर्सी पढ़ी जाती है और उसका सवाब क़ब्रों में लेटे हुए लोगों को भेजते हो, अल्लाह तआला उसका सवाब उन सभी मुर्दो को पहुँचाता है।**"

किताब **ख़ज़ानात-उर-रिवायत** में लिखा है, (काजी हिन्दी 'रहमतुल्लाहि तआला अलैहि' के ज़रिये लिखी गई): "अगर किसी आलिम की ज़ियारत उन की हयात में की गई हो, तो यह जायज़ है। उनकी वफ़ात के बाद भी उनकी ज़ियारत की जाये चाहे के कितनी ही दूर दफ़न हो। फायदेसो मुतालिक, नबियों 'अलैहिम-अस्सलावातु वत-तसलीमात' और औलिया या उलामा 'रहीमा-हुमुल्लाहु तआला' की ज़ियारत करने में कोई फर्क नहीं है। फर्क सिर्फ उनके दर्जे का है।"

[अगर कोई मुसलमान एक नाम लिखी हुई पट्टी लगाता है उसका जिसे के बहुत मुहब्बत करता है, किसी भी दिवार पर उसकी बैठक की, या उस शख़्स की क़ब्र पर उसके नाम का एक पत्थर खड़ा करता है, तो जब भी कोई मुसलमान जो उस कमरे में आता है या क़ब्र पर जाता है और उस बन्दे के लिए दुआ करता है, अल्लाह तआला उस नाम के शख़्स को अपनी रहमत और मग़फिरत से नवाज़ता है। तख़्ती पर नाम लिखना या पत्थर पर लिखने की नीयत यह नहीं कि उस इन्सान का नाम याद रखा जाए। यह इसलिए कि फातिहा पढ़ने वाला शख़्स उस नाम के इन्सान के लिए दुआ कर सके। इसलिए मुसलमानों के मुल्कों में नाम की तख़्ती लटकाना या क़ब्रों पर पत्थर गाढ़ना एक रिवाज बन गया है। अगर किसी वली का नाम लिखा हो, जब तुम नाम पढ़ते हो और नाम के मालिक से शफाअत और दुआओं के लिये कहते हो, वली तुम्हे सुनते है और इस दुनिया और आख़िरत की तुम्हारी दुआओं को पूरा होने के लिए दुआ करते है और उनकी दुआएं अल्लाह क़ुबूल करता है।]

हालांकि क़ब्रों की ज़ियारत औरतों के लिये भी जायज़ है, उनके लिये बेहतर है कि वो क़ब्र की ज़ियारत न करे, हैज़ और जुनूब की हालत में रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की क़ब्र छोड़के बाकी ज़ियारत करना जायज़ है। पर फिर भी ज़ियारत से पहले वुज़ू करना सुन्नत है। यह हदीस शरीफ में बयान है: "**जब तुम किसी ईमान वाले की क़ब्र पर जाते हो और यह दुआ पढ़ते हो: अल्लाहुम्मा इन्नी अस अलुका बि हक्की मुहम्मदिन वा अली मुहम्मदिन अन ला तुआज्जीबा हाज़िल मय्यित; तो वो ईमान वाला अज़ाब से बचा लिया जायेगा।**" दूसरी हदीस शरीफ में है: "**अगर कोई शख़्स अपने वालदैन की क़ब्र की ज़ियारत करता है या किसी एक की क़ब्र पर हर जुमे के दिन, वो मग़फिरत पायेगा।**" अगर क़ब्र तुम्हारे माँ या बाप की हो तो सिर्फ उनकी क़ब्र की मिट्टी को चूमना जायज़ है। किताब **किफाया** में है कि किसी ने रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' से पूछा: "मैने जन्नत की हद को चूमने की कसम खाई है। मैं अपनी कसम कैसे पूरी करूँ? "**अपनी माँ के कदम चूमो**", नाबियों के उस्ताद ने जवाब दिया। जब उस शख़्स ने जवाब दिया कि मेरे वालदैन नहीं हैं, रसूलुल्लाह ने फरमाया: "**अपने वालदैन के कदम चूमो! अगर तुम उनकी क़ब्र नहीं जानते तो दो लकीरें उनकी क़ब्रों की नीयत से बनाओ! तो तुम अपनी कसम पूरी कर लोगे।**"

हमें बड़ें लोगों की क़ब्रों पर जो घर से दूर हो, भी ज़ियारत करनी चाहिए जब तुम वहाँ किसी काम से नहीं बल्कि सिर्फ उनकी ज़ियारत करने जा रहे हो। साथ ही, हमारे नबी रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' का सवब है। एक शख़्स जो नबियों 'अलैहिम-उस-सलाम' और औलियाओं की क़ब्रों पर जाता है वो उनकी रूहे मुबारक से सवाब हासिल करता है। उसका दिल उन पाक रूहों से जुड़ने से ख़ुद पाक हो जाता है। अगर औलिया के मकबरे पर गुनाह करे जाये जैसे अगर वो अपनी औरतों के साथ जाये जिन्होने अच्छी तरह से ख़ुद को न ढका हो, इस बिना पर ऐसी जगहों की ज़ियारत करना बन्द

नहीं किया जाना चाहिए। अगर हम उन्हे नहीं रोक सकते तो हमें उनसे नफरत करनी चाहिए। इसी तरह से हमें एक मुसलमान के जनाज़े में शिरकत करनी चाहिए चाहे वहाँ औरत हो गाने या प्रशंसनिए भाषण पढ़े जा रहे हो या बयान दिये जा रहे हो।

अगर औरत का ज़ियारत करना रोने धोने या दो आदमियों के दरमियान फसाद की नीयत से है तो यह हराम है। जो औरत ऐसा करती है उनकी निंदा करनी चाहिए। हालांकि बूढ़ी औरत, औलिया या अपने रिश्तेदारों की क़ब्र पर बिना मर्दो के साथ के जाना जायज़ है, पर यह शर्त जवान लड़कियों के लिये मकरूह है। यही बात जनाज़े में शिरकत लेने वाली औरत पर भी लागू होती है।

ज़िला-उल-कूतूब (ज़ैनुद्दीन मुहम्मद बिन अली बिरग़िवी, 928 [1521 A.D.], बालिकेसिर, तुरकी - 981 [1573], बिरगी में भी लिखी हुई है) किताब में बयान है: कोई शख़्स जो कब्रिस्तान में दाख़िल होता है। वो कहे: "**अस्सलामु अलैकुम, या अहला दारिल कौमिल मुमिनीन! इन्ना इन्शा अल्लाहु अन करीबीन बिकुम लहीकुन,**" जैसे के खड़ा है वैसे ही। फिर वो बिस्मिल्लाह के बाद सूरह इख़्लास पढ़े 11 दफा (हर बार से पहले बिस्मिल्लाह के बाद पढ़ के) और सूरह फातिहा एक बार, (बिस्मिल्लाह पढ़ने के बाद)। फिर यह सूरत पढ़े: "**अल्लाहुम्मा रब्ब-इल-एजसाद-इल-बालियेह, वल इज़ामिन नीरहा-तिल्लति हराजत मिन-अज दुनिया वा हिया बिका मुमिनातुन, अज़ील-अलैहि रैवहान मिन इन्दिका व सलामान मिन्नी,**"। वो क़ब्र **के** सीधे हाथ पर, (क़िब्ले की तरफ) मय्यत के पैर के करीब बैठना ज़्यादा अफजल है। वो सलाम करता है, (यानि वो कहता, "सलामुन अलैकुम।") खड़े होके, घुटने के बल या बैठके, सूरह बकर की शुरूआती और आख़िरी हिस्सा पढ़ता है, फिर सूरह

यासीन, सूरह तबारिका और तकातुर और इख़्लास-ए-शरीफ और फ़ातिहा और सवाब हदये के तौर पर मय्यत को भेजे।

एक ख़ास नोट: किसी और की तरह से हज की गुफ्तगू में हमारे आलिमों ने फरमाया है की फर्ज़ या नफिल इबादत या दूसरे नेक काम और अच्छे काम जैसे नमाज़, रोज़ा, अमल, क़ुरान करीम पढ़ना, जिक्र करना, तवाफ करना, हज, उमरा, नबियों की क़ब्रों की ज़ियारत, औलियाओं की ज़ियारत, मुर्दे मुसलमान को कफ़न पहनाना, इनका सवाब किसी मरे हुए मुसलमान की रूह को पहुँचाना जायज़ है। दोनों शख़्स, जो इबादत करता है और इसका सवाब भेजता है और वो शख़्स जिसको सवाब भेजा जाता है दोनों को अल्लाह की तरफ से सवाब मिलेगा। इसलिए क़ब्रों की ज़ियारत करते वक़्त क़ुरान करीम पढ़ना चाहिए, या कही और से भी, इसका सवाब ईमान वाले मुर्दे की रूह को पहुँचाना चाहिये और तभी उनके लिए रहमत की दुआयें करनी चाहिए। बरक़त और रहमत वहाँ भेजी जाती है जहाँ क़ुरान करीम पढ़ा जाता है। उस जगह पर की गई दुआएं क़ुबूल की जाती है (अल्लाह तआला)। जब यह क़ब्र के पास पढ़ा जाता है वो क़ब्र रहमत और बरक़त से भर जाती है। हनफी मजहब के मुताबिक़ जब कोई शख़्स नफ़िल नमाज़ अमल या क़ुरान करीम पढ़ता है और दुआ करता है और ज़िन्दा या मुर्दा मुसलमानों को इसका सवाब पहुँचाता है, तो सवाब उन तक पहुँच जाता है। इस्लामिक आलिम का कहना यह भी है कि यह बात फर्ज़ इबादत पर भी लागू होती है। मय्यतों के मुताबिक़ सिर्फ जिस्मानी इबादत जैसे क़ुरान करीम का पढ़ने, का सवाब दूसरे मुसलमानों को नहीं पहुँचाया जा सकता। उन पर दुआयें एक जिस्मानी इबादत के तौर पर पढ़ी जाती है।

किताबुल फिक अलाल मज़ाहिबिल एरबिया किताब में लिखा है: क़ब्र ज़ियारत करना सुन्नत है आदमियों के लिए ताकि वो मौत से आगाह रहे और

इबरत ले और आख़िरत का ध्यान करे। हनफी और मालिकी मज़हब में, जुमेरात, जुमे और हफ्ते को ज़ियारत करना सुन्नते मुअक्किद है। शाफी मज़हब में देर दोपहर बाद जुम्मेरात और हफ्ते के सवेरे ज़ियारत करना सुन्नत मुअक्कद है। ज़ियारत करने वाले को मय्यत के लिये कुरान करीम पढ़ना चाहिए और सवाब पहुँचाना चाहिए। यह मय्यत के लिए काम की चीज़ें है। जब तुम कब्रिस्तान पहुँचो तो यह दुआ पढ़ना सुन्नत है: "**अस्सलामु अलैकुम, या अहला दारिल कौम इल मुमिनीन: इन्ना इन्शाअल्लाहु अन करीबीन बिकुम लहि कून**।" हर क़ब्र की ज़ियारत करनी चाहिए पास हो या दूर। दर असल दूर सफर करके वली 'रहीमा-हुमुल्लाहु तआला' और सालिह मुसलमानों की ज़ियारत करने जाना सुन्नत है। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की क़ब्र पर ज़ियारत करना एक इबादत में से एक है। बूढ़ी औरतों के लिए भी क़ब्र की ज़ियारत करना जायज़ है पर उसने पूरे और अच्छे कपड़े पहने हों। अगर बूढ़ी औरत से फसाद या फितना क़ब्र का तवाफ करना या उसकी मिट्टी को चूमना जायज़ नहीं या ज़ियारत के दौरान उनसे कुछ मांगना।" औलिया 'रहीमा-हुमुल्लाहु तआला' अल्लाह तआला की रहमत से शफाअत की दुआ करते है।

दो चीज़ें है जो गुमशुदा है,
वो जला देगी इस बात से बेपरवाह की वो क्या है।
ख़ून भरी आंखें कभी अपना बक़ाया नहीं भरेगी;
एक है जवान, दूसरा मुसलमान भाई!

तीसरा बाब, नौवा ख़त

मक़तूबात, इमामे रब्बानी मुजद्ददी अलफसानी अहमद फारूकी की लिखी हुई किताब के तीसरे बाब का नौवां ख़त मीर मुहम्मद नोमान के लिये

लिखा गया था। यह आयत करीमा की वज़ाहत करती है वो दावा करती है, जो रसूलुल्लाह तुम्हारे लिये लाये है उसे लो!" ख़त अरबी जबान में है। मनदरजा इसका हिन्दी तर्जुमा है।

विस्मिल्लाहिर्रहमान निर्रहीम! हशर सूरत की 7वीं आयत यह दावा करती है: "**जो रसूलुल्लाह तुम्हारे लिये लाये है उसे लो! उनकी मनाहियों से बचो और अल्लाह से डरो!** [अल्लाह के हुक्म को मानना और मनाहियों से बचना इस्लाम कहलाता है] अल्लाह तआला ने जोड़ा है, "...अल्लाह से डरो," "उनकी मनाहियों से बचो..." के बाद, यह दिखाता है कि मनाहियों से बचना कितना अहम है। तकवा इस्लाम की बुनियाद है। शक वाले मसलों से बचना **वारा** कहलाता है। रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने फरमाया: "**वारा हमारे मजहब के जहाज़ का मास्टर मस्तूल है।**" अपने एक और हदीस में फरमाया: "**वारा जैसा कुछ नहीं हो सकता।**" हराम से बचने के लिए हमारे मज़हब ने जो अहमियत दी है यह इस बिना पर है कि ज्यादा से ज्यादा काम से बचा जाये और हराम से बचना बहुत लाभदायक है। हुक्म में भी मनाही होती है। और यह और भी अहम है कि नफस के उल्टे अमल हो। जब एक हुक्म पूरा किया जाता है तो उसके मज़े में नफस का भी एक हिस्सा होता है। नफ्स को किसी काम में जितनी कम रियायत दी जाये तो उतना ही वो काम मुफीद होगा। दूसरे लफ्ज़ों में अल्लाह तआला की रज़ा हासिल करना जल्दी आसान होगा। अहकाम-ए-इस्लामिया, यानि इस्लाम का हुक्म और मनाही, की नियत नफस को कमज़ोर करना है। नफस अल्लाह तआला की दुश्मन है। एक हदीस-कुदसी में बयान है: "**अपने नफ्स के मुखालिफ रहो!** क्योंकि **वो मेरी दुश्मन है।**" इसलिए सभी तुरूके आलिया (रास्ता और हुक्म तसव्वुफ का), वो जो इस्लाम को बहुत कड़े तरीके से मानता है वो जो अल्लाह के नज़दीक का रहबर हो। इसलिए हर कोई अपनी नफ्स से उल्टे होना चाहिए। जैसा कि इस मामले के माहिर को पता है कि जो रास्ता हम इख़्तियार करते आ रहे थे। यह इसलिए

कि बड़े आलिम बहाद्दीन बुख़ारी, हमारे आला रहबर ने फरमाया है: मैने अल्लाह तआला को पाने का सबसे छोटा रास्ता ढूँढा है।" यह रास्ता नफ्स के उल्टे है।इस रास्ते की जीत इसके इस्लाम को अच्छे से पालन करने में है, यह एक समझदार इन्सान के लिए काफी आसान है जो रहबरों की किताबें पढ़ता है सच जानने के लिए।वो शख़्स सच साफ-साफ देख लेगा।इस की तरह कई सच है, मैने अपने ख़तों में काफी वज़ाहत से बताया है।अल्लाह तआला हर चीज़ का सच जानता है।उसकी मदद हमारे लिये काफी है।वो सबसे अच्छा वकील है।हमारे प्यारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' पर सलातो सलाम हो और उनकी आल और सहाबा अकरम और उन लोगों पर भी जो सही रास्ता इख़्तियार कर रहे है।

तीसरा बाब, 84वां ख़त

हम्द हो अल्लाह की, और उसके बन्दों पर सलाम जिसको उसने चुना और चाहा! एक शख़्स जो इस रास्ते पर चलना चाहता है [अल्लाह की मुहब्बत पाने के लिये], सबसे पहले उसे अपना मज़हब सही रास्ते के आलिमों के मुताबिक़ करना होगा (यानि अहले सुन्नत के आलिम) (एव बड़ें आलिमों ने अपनी तालीम असहाबा-ए-ईकराम से इख़्तियार की है।उन्हे इनकी ज़ाती राय के लिये गलत नहीं समझना चाहिए या फिलोस्फरों की बातों से।) अल्लाह तआला इन महान लोगों को इनके काम के लिए ईमानों से नवाज़े! उसके बाद उस शख़्स को फिक का इल्म जो हर एक के लिये जरूरी है सीखना चाहिये।फिर उसने जो सीखा हो उसे अमल में लाना चाहिये।फिर उसे अपने हर वक़्त में अल्लाह का ज़िक्र करना चाहिये।[यानि उसे हर वक़्त अल्लाह तआला और उसकी ज़ात जिसे सिफाते ज़ातिय्या कहते है, याद करनी चाहिए।] ज़िक्र करना शर्तिया है पहली सीख उस शख़्स से सीखना जो कामिल

हो (यानि और जिसने किसी दूसरे बड़े इन्सान की निगरानी में सीखा हो) और मुकम्मिल, (यानि वो जिसे अपने बड़े उस्ताद से दूसरे मुसलमानों का रहबर बनने की इजाज़त मिली हो।) अगर के गलत लोगों से सीखता है (यानि वो जिन्हे अनपढ़ या पाखंडी शेख कहते है) तो वो सही तरह से नहीं सीख पायेगा। शुरूआत में उसे बहुत ज़िक्र करना चाहिए: पाँचों फर्ज़ नमाज़ों के बाद, और उनके सुन्नत हिस्से, ज़िक्र के अलावा कोई और इबादत न करनी चाहिए; यहाँ तक की कुरान करीम पढ़ना और नफ़िल इबादत भी कुछ देर के लिये रोक देनी चाहिए। ज़िक्र वुज़ू के या बिना वुज़ू के भी किया जा सकता है। यह काम हमेशा करना चाहिए, खड़े हुए, बैठे हुए, चलते हुए, लेटते हुए। कोई भी वक़्त ज़िक्र के बग़ैर नहीं होना चाहिए चाहे गली में चल रहे हो, खाना खा रहे हो, या सोने जा रहे हो। एक पारसी दोहा हिन्दी में है:

ज़िक्र करो, जब तक तुम ज़िन्दा हो, हर वक़्त, हमेशा!
मुहब्बत का ज़िक्र दिल को साफ करता है, बाकी कुछ नही।

उसे इतना जिक्र करना चाहिये कि अल्लाह के सिवा उनके दिल में कोई और ख़्वाहिश या ख़्याल न रहे। इतना कि अगर वो अल्लाह के अलावा किसी और चीज़ को सोचना की चाहे तो वो ख्याल लाने में नाकाम रहे। उसके दिल में उनके अलावा कोई न रहे। अल्लाह को पाने की शुरूआत है। ऐसा दिल मतलूब (अल्लाह तआला) की रज़ा और मुहब्बत पाने की लहर है। एक अरबी दोहा हिन्दी में है।

हम सुआद पाने लायक कैसे हो सकते है,
जबकि बड़ें पहाड़ और गहरी वादी बीच में है!

(सुआद, माशूका का नाम है।) अल्लाह तआला वाहिद ही हर बन्दे को। हर चीज पाने लायक़ बनाता है। सही रास्ते के मुसाफिरों को सलाम! [तीसरे

बाव के 17वें ख़त में लिखा है: किसी बन्दे का अल्लाह के सिवा दिली मुहब्बत से बाकी चीजों का "ज़िक्र, करना । मुहब्बत दिल की बीमारी है। जब तक इस बीमारी से आज़ाद न हो जाये वो सही ईमान और अहकामुलइस्लामिया पर आना बहुत मुश्किल है। यानि अल्लाह का हुक्म और मनाही। इन नियमों को पालन नीयत करके करना भी ज़िक्र है और मुबाह करते वक़्त नफ्स के बारे में न सोचना।" दिल की बीमारी नफ्स की मानना है। नफ्स अल्लाह की दुश्मन है। यह उनको नहीं मानने देती। वो ख़ुद की भी दुश्मन है। यह जिस्म के हिस्सों और दिल को हराम काम करने का चसका लगाती है। वो लामज़हबी और बिना ईमान को पसन्द करती है ताकि वो यह मज़े ले सके। यह दिल को ऐसा बीमार कर देती है कि काफिरों के साथ दोस्ती और बिना किसी मज़हब वाले का साथ, उनकी किताबें पढ़ना या अख़बार, उनके रेडियो सुनना और उनके ख़तरनाक टेलीविज़न प्रोग्राम देखने, पर मजबूर कर देती है। इस्लाम का पालन करना दिल की सफाई है। और वो नफ्स को बीमार करता है। वो इसकी दिल की ख़्वाहिशों और उसकी ताक़त को कम कर देती है।]

इस ज़मीन पर कौन है जो अपनी ख़्वाहिशों पर जीत हासिल कर सकता है? बरहक़ ज़रूर जो भी नसीब में लिखा है वही होगा!

एक सौ चौदहा वा ख़त

मकतबा शरीफ जो 'अब्दुल्ला देहलवी' 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' हिन्दुस्तान के महान आलिम के जरिये लिखी गई किताब है उसमें 125 खुतूत है। मनदरजा 114वे ख़त का हिन्दी अनुवाद है जिसे अंग्रेज़ी में हाजी 'अब्दुल्ला बुख़ारी ने लिखा था':

अल्लाह तआला में कोई कमी नहीं है। वो हमेशा सच बोलता है, और अपने बन्दों को सही रास्ता दिखाता है। हमारा सलाम और दुआएँ हमारे सबसे बड़े रहबर मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' और उनकी मुबारक आल (परिवार) पर और असहाबे अकरम 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम अजमाईन' पर हो! यहाँ तरीका के आदमी रहते है [यानि दिल्ली के शहर में] और एसमा पढ़ते व मुस्कस लिखते हैं अपनी ख़्वाहिशों के लिए। और इस तरह वो दूसरे लोगों को अपनी तरफ लुभा रहे है। वो अमीरूल मोमीनीन, और बाकी तीन खलीफाओं से अफज़ल हज़रत अली 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम' को मानते है। यह लोग **शिया** कहलाते है। जो लोग तीन ख़लीफाओं और असहाबे अकरम के ख़िलाफ़ दुश्मनी रखते है उन्हे **रफीदी** कहते हैं।

[**अहले सुन्नत वल जमाअत** 'रहीमा-हुल्लाहु तआला के उलेमाओं ने अपनी कई किताबों में बयान फरमाया है कि हज़रत अबू बकर, हज़रत उमर और हज़रत उसमान, हज़रत अली 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम अजमाईन' से अफज़ल थे, और इस बात के कई सबूत आयत करीमा, हदीस शरीफ और इजमा यानि असहावा-ए-ईकराम 'रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम अजमाईन' की एक राय से दिये। **इज़ालात-उल-ख़फा अन ख़िलाफत-इल-ख़ुलाफा** और **कुर्र तुल अयनैन** फी तफ़जीले शैख़ियन दो कीमती किताबें है, दोनों किताबें वलीयुल्लाह मुहद्दिस देहलवी 'रहीमा-हुल्लाहु तआला' (1114 [1702 A.D.] 1176 [1762], देहली) की लिखी हुई है। यह किताबें अरबी और फारसी ज़बान में है; पहली किताब उर्दु ज़बान में तर्जुमा हुई और उसके दो एडिशन 1382 [1962 A.D.] में पाकिस्तान में छपे। और एक दूसरी तुर्की और यहाँ से अंग्रेज़ी में तर्जुमा हुई। अंग्रेज़ी किताब के आख़िरी हिस्सा 'मुबारक सहाबा' (सहावा द बलैस्ड) में है, जोकि हकीकत किताबेवी इस्तानबुल, तुर्की के पब्लिकेशन से है। इसमें एक और किताब 'डाक्यूमेन्ट ऑफ द राईट वर्ड' का भी हिस्सा है। अरबी किताब **अस-सावैक-उल-मुहरिका**, बड़े आलिम इब्ने मक्की

‘रहीमा-हुल्लाहु तआला’ (899 [1494 A.D.] - 974 [1566], मक्का) को दुबारा इस्तानबुल तुर्की में हकीकत किताब के ज़रिए बनाया गया। एक मुनासिब मुसलमान जो वो किताब पढ़ेगा, समझ जायेगा कि लामज़हबी लोग गलत रास्ते पर हैं। आजकल उनमें से कुछ लोग ख़ुद को जाफरी कहते है। वो नौजवानों को यह झूठ बोलके धोखा देते है। पर सच यह है कि बारह इमामों की पैरवी करने वाले मुसलमानों को **अहले सुन्नत** के मुसलमान कहते है। सच्चे रास्ते वाले आलिम जिन्हे अहले सुन्नत ‘रहीमा-हुल्लाहु तआला’ कहते है फरमाया: “बारह इमामों की मुहब्बत करने से मौत ईमान पर होती है।”

यह जनाज़े के जुलूस निकालते है और दावत देते है ‘दौर’ की। [जमात से नमाज़ नहीं पढ़ते मस्जिद में] मौलिद के जोड़ में इनके गुप होते है जो इलाही और मरसिया गाते है। वो संगीत इस तरह सुनते है जैसे मठ में वीणा। यह तरीकत (तसव्वुफ का रास्ता) के नाम पर कई बिद्दती काम और कई शिर्क करते है। यहाँ तक कि यह लोग लामज़हबी चीज़ें, जुकिस्म और

ब्राहमानिस्म की भी अपने इन कामों जिन्हे यह तरीकत कहते है, मिला रहे है। वो दुनियावी फायदेमंद लोगों के और फासिक (गुनाहगार) लोगों के साथ रहते है। वो नमाज़ में, जमाअत में, जुम्मे की नमाज़ में क़ौमा और जलसा नहीं दिखाते। (जिसका ज़िक्र हम इस किताब में पहले वज़ाहत से कर चुके है। इनके कोई तदफीन और रसूमात इस्लाम में नहीं है। यह चीज़ें सलफ-अल-सालिहीन के वक़्त में भी नहीं थी। **अहले सुन्नत वल जमाअत** के आलिम ‘रहीमा-हुल्लाहु तआला’ ऐसी बिद्दती अमलों से बचते रहे। अल्लाह के करम से असहावा-ए-ईकराम ‘रज़ि-अल्लाहु तआला अन्हुम’ में से किसी में भी ऐसे गन्दे बिद्दती काम मौजूद नहीं थे। एक शख़्स जो मुसलमान होना चाहता है और सलफ-अस-सालिहीन (पहले के इस्लामी आलिम) ‘रहीमा-हुल्लाहु तआला’ के नक्शे कदम पर चलना चाहता है उसे ऐसे झूठ तरीकत के इन्सानों से दूर भाग

जाना चाहिए। यह ईमान के चोर है। यह अल्लाह के बन्दों का ईमान और मज़हब दोनों बरबाद कर रहे है। इनका ज़िक्र करना और दूसरे काम नफ्स और दिल को हरकत में लाते है। [ऐसी चीज़ों को दिल मासिवा (अल्लाह के अलावा कोई सोच) से पाक करना चाहिए, कुछ हरकतों के बजाए] ऐसी चीज़ें जैसे कशफ [करामात जो खोई चीज़ों का पता बताए या जिनों से बात करना] की इस्लाम में कोई अहमियत नही। काफिर जैसे जूकी भी खशफ और करामात दिखाते है। अकलमंद लोगों को होशियार रहना चाहिए और गलत में से सही को अलग करना चाहिए। इस्लाम के करीब होना और दुनियावी चीज़ों से मुहब्बत करना दो ऐसी चीज़ें हैं, जो एक दूसरे से मुताज़ाद (उल्टे) है और जो एक शख़्स में एक साथ नहीं हो सकते। यह ऐसी चीज़ नहीं हैं जिसे एक अक्लमंद शख़्स कुछ दुनियावी चीज़ें पाने के लिए अपनी मज़हबी उसूलों को छोड़ देगा। बुखारा शहर के शेख और आलिम तवक्कुल (अल्लाह तआला पर भरोसा) के लोग थे। वो दुनियावी फायदों के आदि नहीं थे। दुनियावी दिलचस्पी के लिए लोगों का इकट्ठा होने की दावते देना दिल को काला करता है। उन बड़े लोगों ने ऐसी चीज़ों से ख़ुद को बचाया। उन्होने रोज़ा का पालन करा जैसा कि सलफ अस सालिहीन 'हुमुल्लाहु तआला' और रसूलुल्लाह 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' की सुन्नतों के मुताबिक़ था। आपने जो भी किया उसमें **अज़ीमत** का रास्ता अपनाया। बिद्दत से बचे। रास्ते में आने वाली हर हराम और मकरूह से बचे। जब मुबाह से हराम होता है तो वो भी हराम है, **ज़िक्र-ए-ख़फी** यानि ख़ामोशी से ज़िक्र करना, **ज़िक्र-ए-ज़ेहरी** से बेहतर है यानि तेज़ी से ज़िक्र करना। इन्होने पहले वाला ज़िक्र किया। आपने हदीस शरीफ में बयान 'इहसान' का दर्जा हासिल किया। आपका दिल हमेशा फायज़ (अल्लाहु तआला) की तरफ रहे। अगर कोई वफादार और सच्चा शागिर्द ऐसे अफज़ल तसव्वुफ के लोगों की तवज्जुह हासिल करे तो वो उसका दिल, उसके सभी लतीफे भी उसी वक़्त ज़िक्र करना शुरू कर देते है। वो हुज़ूर यानि अल्लाह तआला के अलावा

कुछ दिल में न रहना हासिल कर लेता है जिस सूरते हाल को **मुशाहदा** कहते है जज़्बा और फायज़ उसे **वरीदत** कहते है जिसका मतलब नसीब वाले शागिर्द का ज़ाहिर और बातिन नूर में नहा रहे होते है। जब शागिर्द अपने मुर्शिद के दिल से फैज़ पाना शुरू कर देता है तो अल्लाह तआला के अलावा उसके दिल में कोई ख़्याल नहीं आता। उसके जिस्म के सभी हिस्से ख़ुद ही अजीमत और सुन्नत के हिसाब से काम करने लग जाते है। क्या खूब ख़ुशियाँ है इस बरक़त की। या रब्बी! अपने प्यारे नबी मुहम्मद मुस्तफा 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' और मैशाके ईकराम 'रहमतुल्लाहि अलैहिम अजमाईन' जोकि प्यारे नबी की पैरवी करने वाले है, हमारे रिज़्क में बरक़त फरमा। इमामे रब्बानी मजददिद अल्फसानी 'रहमतुल्लाहि अलैहि' के फैज़ से हर शख़्स के लतीफा पे बरक़त हासिल करना नसीब फरमा। (**सआदते अबदिया** के छठे एडिशन **23**वां और **26**वां बाब और पहले एडिशन का **29**वां बाब देखें 'लतीफा' के लिए।)

आपकी राह पे मेरी जान कुर्बान,
नाम में ख़ूबसूरती और जौहर, मुहम्मद!

अपने शाईस्ता गुलामों की सिफारिश करें,
नाम में ख़ूबसूरती और जौहर, मुहम्मद!

ईमान वालों ने बहुत झेला है इस ज़िन्दगी में,
उन्हे दूसरी ज़िन्दगी में ईनाम मिलना चाहिए।

ज़िन्दगी में 18 हज़ार दुनिया की चारे,
नाम में ख़ूबसूरती और जौहर, मुहम्मद!

जिसने सात आसमान का सफर करा,
जो आसमान और कुर्सी से ऊपर गये,

जिसने अपनी उम्मत के लिए हक तआला से मिन्नत की,
नाम में ख़ूबसूरती और जौहर, मुहम्मद!

क्या है युनुस दो जहाँ तुम्हारे बिना?
बिना किसी शुबा के, आप सच्चे नबी हो!

आपके मुख़ालिफ जो बग़ैर ईमान के चले गए;
नाम में ख़ूबसूरती और जौहर, मुहम्मद!

जन्नत की राह की किताब से आख़िरी राय

हम ये ग़ौर करते है कि सभी चीज़ें ज़िन्दा या मुर्दा एक मुनज़्ज़म तरीक़े में है। हम सीखतें हैं कि हर काम, हर हरकत, हर शय एक कभी न बदलने वाली तरतीब और 'हिसाब' (मैथ) की बंदीशों में है। हम इन चीज़ों को फिज़िक्स के कानून, कीमिया, एस्ट्रोनोमी, बायलोजी में तक्सीम करते हैं। इन न बदलने वाले कानूनों के ज़रिये हम इन्ड्रस्ट्री तामीर करते हैं; फैक्ट्ररी खोलते हैं, दवा बनाते हैं, चांद पर जाते हैं, और तारों और माह्रों में राबता क़ायम करते हैं। हम रेडियो, टेलिविज़न, कम्प्यूटर और नेटवर्क बनाते हैं। अगर यह मख़लूक़ में इस तरह का निज़ाम न होता, और हर चीज़ बेतरतीब होती, तब हम इन चीज़ों को शुरू नहीं कर पाते। हर चीज़ एक दूसरे से टकरा जाती, और बेतरतीब हो जाती, और तबाहियाँ होती। सारी मौजूदगी मौजूद न होती।

इस तरतीबी, कोई सुडौल ऑडर और चीज़ों का एक दूसरे से जुड़ा होना इस बात की तरफ इशारा करता है कि यह अपने आप नहीं बनी, और सारी चीज़ें किसी सर्वज्ञाता (सब जानने वाला), सर्वशक्तिमान (सबसे ताकतवर), सब देखने वाले, और सबकी सुनने वाले ने बनाई है, जो वह चाहता है या करता है। वो वजहे और मायने बनाता है अपनी दूसरी चीज़ों को

बनाने के लिए। वो अपनी मरज़ी से बनाता है और मिटाता है। अगर वो बिना वजाहों और मायनों के कोई चीज़ बनाता तो इन चीज़ों में तरतीब नहीं होती। हर चीज़ उथल-पुथल होती। उसकी मौजूदगी के कोई निशान ही नहीं होते। और फिर कोई सांईस कोई सभ्यता भी मौजूद नहीं होती।

उसने न कि सिर्फ अपनी मौजूदगी अपने तरतीब को दिखा के ज़ाहिर की वल्कि अपने बन्दों पर अपनी मौजूदगी का ऐलान भी किया, जोकि उसका अपने बन्दों के प्रति उदारता दिखाता है। आदम 'अलैहिस्सलाम' से शुरू करके उसने हर सदी और उम्मत के बंदों के लिए सबसे आला इन्सान भेजा, और उसपर उसके फरिश्तें भेजे, उसको अपने नाम और मौजूदगी बताई, और उसे सिखाया कि लोगों को दुनिया और आख़िरत की ज़िन्दगी को सुखी और ख़ुशहाल बनाने के लिए क्या-क्या करना चाहिए और किस-किस चीज़ से बचना चाहिए। यह आला और चुने हुए लोगों को **नबी** कहते हैं। हुक्म और मनाहियाँ जो यह लोगों तक पहुँचाते है उन्हें **दीन** और **अहकामे दीनीया** कहते हैं। क्योंकि इन्सानी क़ुदरत भूलने वाली है जो पुरानी मालूमात भूल जाती है और क्योंकि बुरे लोग, जो हमेशा लोगों में मौजूद रहते है, नबियों 'अलैहिम अस सलावातु वत तस्लीमात' की आसमानी किताबों को पढ़ते और बदलते रहे है, पुराने मज़हब भूले और बदले जा चुके है। और उससे भी बुरा यह कि लोग मनघड़त फर्ज़ी मज़हब बना रहे हैं।

क्योंकि अल्लाह तआला ने सबको बनाया है, और अपने इन्सानी बन्दों पर बहुत रहम करता है, उसने हमे अपने आख़िरी मज़हब के लिए नबी भेजा। और उसने यह ख़ुशख़बरी भी दी कि इस दुनिया के आख़िर तक वो इसकी हिफाज़त करेगा और फैलायेगा, बुरें लोगों के हमलों और इसे बदलने की कोशिशों के बावजूद भी।

हम आभारी हैं उस अल्लाह के कि उसने हमारे बचपन से ही उस पर ईमान वाला बनाया, और हमें ख़ालिक का नाम अल्लाह सीखना नसीब हुआ और मुहम्मद 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' उसके आख़िरी नबी को पहचाना, और **इस्लाम** सच्चा मज़हब है जो नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने अल्लाह के बन्दों तक पहुँचाया। हम इस्लामी मज़हब को सही तरीक़े से सीखना चाहते है। हम अपनी पूरी ज़िन्दगी की पढ़ाई, स्कूल, यूनिवर्सिटी में इसे सीखने का स्रोत ढूँढते रहे। पर हमारे मुल्क के जवान अमली तौर पर नाक़ाबिले तसख़ीर शाम के वैज्ञानिकों की रूकावटों से घिरे हुए हैं जिन्होंने ख़ुद को फ्रिमासिन और कम्यूनिस्टों और वहाबियों के भाड़े के लोगो को बेच दिया है। और पर्दे के पीछे के कामों को करने वाले चालाक लोग रहे है, और पांखण्डी लोग जिन्होंने दुनियावी चीज़ों के लिए अपना ईमान अदल कर दिया है तो यह नामुमकिन के बिल्कुल करीब है सही रास्ता ढूँढना। अल्लाह तआला से मांगने के अलावा कोई रास्ता नहीं है। हमारे अल्लाह ने हमपर रहमत की इन अहले सुन्नत के आलिमों 'रहीमा-हुमुल्लाहु तआला' की किताबें पढ़वाकर। पर इस सांईसी इल्म के नाम पर **शाम मज़हब के इन्सान** कुरान करीम के तर्जुमा के नाम पर अपने ख़ुद के फायदे के लिए हमारी रूहों को तकलीफ पहुँचाते है। अल्लाह तआला हमें सही मज़हब के इन्सानों का हिस्सा बनाये ताकि हम असल और बातिल में फर्क कर सके। हम यह समझने के क़ाबिल हुए थे कि हमारा दिमाग़ किस ज़हर से भरा है, इल्म के अलावा, और हमारा दिल किस तरह की गलत चीज़ों से भरा है। क्या हमने अहले सुन्नत की किताबें नहीं देखी, हम दोस्त और दुश्मनों में फर्क नहीं कर पाये, हम हमारी नफ्स और दीन के दुश्मनों की चालों में आ गए। हम उन दुशमनों के चंगुल से नहीं निकल पाये जो अपने तानो, नामज़हबों 'एडवान्समेंट' कहते रहे। हम अपने माँ बाप और सच्चे और पाक मुसलमानों को चुप करा रहे है और उस इस्लामी इल्म को भी जो हमें उनमें मिला है। हमारे प्यारे नबी 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ने हमें ऐसे दुश्मनों के जालों से आगाह

किया है: “**रिजाल के मुँह से अपना ईमान सीखों!**” जब हम कोई रिजाल न ढूँढ़ पाये यानि मज़हब का सच्चा आलिम, हम उनकी किताबों से सीखेंगे। बिद्दतियों या लामज़हबियों की लिखी गई किताबें काफिरों की लिखी किताबों की तरह ही खतरनाक हैं।

औरतों और लड़कियों को उनके सिर, बाल, बाहें और पैर और मर्दो के लिए नाभि के नीचे से घुटनों तक, किसी दूसरों की मौजूदगी में जिस्म का खुला छोड़ना हराम है। दूसरे लफ़्ज़ों में अल्लाह तआला ने इसकी मनाही की है। चार सच्चे मज़हब, जो अल्लाह तआला का हुक्म और मनाहियाँ सिखाते हैं, आदमी के अवरत हिस्सों के मसले में एक दूसरे से अलग हैं, यानि उनके शरीर के हिस्से जिनकी मनाही है दूसरे मर्द को दिखाने और किसी और मर्द को देखने। हर मुसलमान को उसके मज़हब के हिसाब से अवरत हिस्सें डाकने चाहिए। अगर वो हिस्सें खुले हैं तो दूसरों का उसे देखना हराम है। **कीमिया-ए-सआदत** किताब में बयान है: “औरत और लड़कियों के लिए न सिर्फ उनके सिर, बाल, बाहें और पैर खुलें छोड़ना हराम है बल्कि बारीक, ज़ेवरी, कसे हुए और ख़ुशबूदार कपड़े पहनना भी हराम है। अगर उनके माँ बाप, भाई या शौहर उन्हें ऐसा करने की इजाज़त देते है तो वो भी उस अज़ाब में हिस्सेदार हो जायेंगे और उस अज़ाब को झेलेंगे जहन्नुम में। अगर वो तौबा कर लें तो माफ कर दिए जायेंगे और नहीं जलाये जायेंगे। अल्लाह तआला तौबा करने वालों को पसंद करता है। हिजरत के तीसरे साल में वो लड़कियाँ जो बालिग़ हो चुकी थी और औरतें, तो उनके लिए नामहरम मर्दो को ख़ुद को दिखाने पर मनाही थी। हमें इस मिथ्याकरण पर यक़ीन नहीं करना चाहिए कि औरतों का ख़ुद को ढकना एक बाद की मनघड़त खोज है फिक के आलिमों की तरफ से। यह ब्रिटिश जासूसों की तरफ से एक धोखा है और कुछ अनपढ़ लोग जो उनके झांसे में आ गये हैं कि हिजाब के हुक्म की आयत से पहले औरत ख़ुद को नहीं ढकती थी।

हम दुबारा कहेंगे: जब एक बच्चा आकिल बनता है और बालिग़ होता है यानी जब वो सही और गलत की समझ रखने की उम्र तक पहुँच जाये और शादी करे, तो उस बच्चे के लिए फौरन फर्ज़ है कि वो ईमान की **6** बुनियादें सीखे फिर उसके बाद **अहकाम-ए-इस्लामिया** सीखे यानि, फर्ज, हलाल, हराम और इन नियमों पर चलते हुए ज़िन्दगी गुज़ारना। एक लड़की जब **9** साल की हो जाती है तो आकिल और बालिग़ हो जाती है, और लड़का **12** साल की उम्र में। उनके लिए यह बुनियादे सीखना फर्ज़ हो जाता है, कानूनों को भी सीखना अपने माँ बाप से पूछके, नातेदारों से, जानने वालों से। उसी तरह जब कोई काफिर ईमान लाता है तो उसको फौरन मज़हब के इन्सान के पास जाना चाहिए, जैसे एक मुफ्ती, और उससे यह इल्म लेना चाहिए, और उस शख़्स को उस ईमान लाए हुए शख़्स को सिखाना पड़ेगा चाहे सीधे ही या एक सच्ची इस्लामिक किताब के ज़रिए। दोनों पार्टियों पर यह फर्ज़ है अपना काम करना यानि उस नये मुसलमान को सीखना, और सिखाने वाले का काम सिखाना। अगर सिखाने वाला कहता है, "बहुँत अच्छा, बहुँत अच्छा," और उसे सिखाने में मदद नहीं करता या उसे सही किताबें ढूँढने में मदद नहीं करता, तो उसने फर्ज़ की अवमानना की है। जो शख़्स फर्ज़ की ना मान्ना करता है वो दोज़ख़ की आग में जलेगा। जब सीखने वाला मज़हब के इन्सान की या सच्ची किताब की तलाश कर रहा हो तो उसके लिए जब तक यह एक उज़र हो जाता है कि जब तक वो इल्म का स्रोत न ढूँढ ले। (एक उज़र एक बहाना होता है जो एक मुसलमान को हुक्म पूरा करने से दोषमुक्त कर देता है या मनाहि को करने से। जैसा कि यह मनाहि और हुक्म इस्लाम के बताये हुए है, ऐसे ही हर हुक्म और मनाहियों के लिए उज़र भी इस्लामी तौर पर बताये गये है। जैसा कि इस्लामी हुक्म और मनाहियों को अहले सुन्नत के आलिमों की किताबों से सीखा जा सकता है वैसे ही उनके उज़र को भी इन किताबों से सीखा जा सकता

है। हकीकत किताबेवी, तुर्की में कुतुबख़ाना है जहाँ से कोई आसानी से जो चाहे इस्लामी किताब ढूँढ सकता है अलग अलग ज़बानों में।

नयी पीढ़ी को सच्ची इस्लामी तालीमात से रूबरू कराने के लिए और पूरी दुनिया के लोगों की खिदमत के लिए काम कर रहे है ताकि वो इस दुनिया में सुकून पा सके और आख़िरत में अनंत बरक़तें हासिल करे, इन्शाअल्लाह हम इन कीमती किताबों की छपाई जो अहले सुन्नत के आलिमों के ज़रिए लिखी गई है जारी रखेंगे।

ख़्वाहिशों को पूरा करने के लिए यह दुआ है जिसे **सलात-उन-तनजिना** कहते हैं: "अल्लाहुम्मा सल्ली अला सय्यिदिन मुहम्मदिन वा आल आली सय्यिदिया मुहम्मदिन सलात अन तुनजीना बिहा मिन जमीउल अहवाल इ वल आफात वा तक़दी लेना बिहा जामिअल हाजात वा तुताहहिरूना वा तुबेल्लिग़ना बिहा मिन जमी इस सय्यिआत वा तरफे उना बिहा अल अद देरेजात वा तुबेल्लिग़ना बिहा अक़स ल ग़यात मिन जमील ख़ैरात इ फिल हयात ए वा बा'द-अल-मेमात।"

यह हदीस शरीफ में बयान है कि इस्तग़फार पढ़ना, हर तरह की परेशानियों, ख़तरे और हराम से बचने और दुशमनों और शैतानों से बचाने में कारगर है।

मेरी ज़िन्दगी आई और एक हवा के झोके की तरह चली गई।
मेरे लिए यह बस एक पलक झपकने जैसा था।
हक तआला गवाह है: जिस्म रूह के साथ वक़्त बिताता है।
और एक दिन वो इस पिंजरे से एक पक्षी की तरह उड़ जायेगी।

एक सौ तेईसवां ख़त

यह ख़त हज़रत इमामे रब्बानी 'कुद्दुसी सिरूह' ने ताहिर-ए-बेदाहशी के लिए लिखा था। यह बताता है कि एक नफ़िल इबादत, जैसे एक हज, किसी काम का नहीं अगर उसकी वजह से एक फ़र्ज़ छूटता हो:

मेरे दानिशमन भाई। यह कीमती ख़त मौला ताहिर के ज़रिए भेजा है, जो अपने नाम के जैसे पाक है, यहाँ पहुँच गए है। मेरे भाई! यह हदीस शरीफ में बयान है: "**अल्लाह तआला की नाराज़गी अपने बन्दे से, उस बन्दे का अपना वक़्त बेफज़ूल बरबाद करते देखने से पहचानी जा सकती है।**" फर्ज़ की जगह पर नफिल इबादत का अदा करना बेकार है। तो, हमें सीखना चाहिए कि हम अपना वक़्त कहाँ लगा रहे है। हमें जानना चाहिए हम किसके साथ मशगूल है। हम नफिल इबादत कर रहे है या फर्ज़? एक नफिल हज को करते हुए कई हराम और मनाहिया भी हो जाती है। आपको सही से सोचना चाहिए! समझदार के लिए इशारा काफी है। मैं आपको और आपके दोस्तों को अपना सलाम भेजता हूँ।

[इस ख़त से ज़ाहिर है कि पाँच वक़्ता नमाज़ों की सुन्नतें, फज्र नमाज़ की सुन्नत को छोड़के, व कज़ा की नीयत से पढ़नी चाहिए।]

एक सौ चौबीसवा ख़त

यह ख़त भी ताहिर बेदाहशी के लिए लिखा गया था। हज का वुजूब और उसके जाने के खर्चे की शर्त पर है। हज पर जाना बिना सफर के पैसों का मतलब है दूसरे फर्ज़ो से अपना वक़्त बर्बाद करना। मुबारक ख़त यह बात की वज़ाहत करता है:

ख़्वाजा मुहम्मद ताहिर बेदाहशी का कीमती ख़त यहाँ पहुँच चुका है। हम्द हो अल्लाह तआला की और उसका शुक्र कि मुझे फक़ीर के लिए आपके दिल में मुहब्बत की कोई कमी नहीं आई। बिछड़ने के दिनों की सुस्ती ने उसके लिए रास्ते को पक्का नहीं किया। (बदतर के लिए बदलाव) आपकी हालत ख़ुशियों की अग्रदूत है। ऐ मेरे भाई, जो हमें प्यार करते हैं! तुमने जाने का फैसला किया और हमसे इजाज़त मांगी। जैसे हम अलग हो रहे है हम कहते है कि शायद दुबारा इस रास्ते पर मिलने की बरक़त हासिल होगी। पर इस्तिहरस [**सआदते अबदिया** के छठे एडिशन का **25**वां बाब का आख़िरी पैराग्राफ देखें।] जो हमने बनाया था उसके पूरे होने के निशान नहीं मिले। वो इकट्ठे नहीं हुए इसलिए आपका सफर जायज़ है। तो हमने अपनी राय बदली। उससे पहले, आपकी रवानगी के लिए मंज़ूरी नहीं थी। पर, आप इतने जोश से आये जोकि एक साफ नाराज़गी की दूर ले गई। सफर पर जाने के लिए पैसा होना शर्त है। अगर कोई शख़्स वो शर्त पूरी करने में नाकाम है, उसने अपना वक़्त हज जाने के लिए निरर्थक व्यापार में खर्च किया। [हज के वुजूब की शर्त है पैसा होना। (दूसरे लफ़्ज़ों में मुसलमान के पास इतना पैसा हो कि उसपे हज फर्ज़ हो जाए।) हज पर जाने वाले शख़्स के पास अगर सफर का पैसा नहीं है तो उसपर हज फर्ज़ नहीं है। अगर वो पैसों के बिना हज पर जाता है तो उसे नफिल हज करना पड़ेगा। यह सच है कि, उमरा पर जाना फर्ज़ या वाजिब नहीं है। के एक नफिल इबादत है। और अगर कोई नफिल इबादत के लिए, फर्ज़ छोड़ा जाये या हराम किया जाए तो वो नफिल इबादत अपनी पहचान खो देती है। वो गुनाह करने पर बदज़ात हो जाती है। [**29**वां ख़त देखें (जिसका आज की तारीख़ में अंग्रेज़ी तर्जुमा नहीं है!)] फर्ज़ की जगह पर कोई ऐसा काम जो फर्ज़ न हो, करना जायज़ नहीं है। मैने यह बाते अपने कुछ ख़तों में लिखी हैं। मैं नहीं जानता वो आपको मिले कि नहीं। हम अपना मुक़दमा छोड़ते

हैं। आप जानते हो बाक़ी क्या करना है। वस्सलाम। [यह हज की मालूमात थी **250**वें ख़त में, (जो अब तक अंग्रेज़ी में तर्जुमा नहीं हुआ।]